रोहल साहब-ग्रंथावली

जीवनी और वाणी

ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल

रोहल साहब–ग्रंथावली

जीवनी और वाणी

ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल

प्रधान सम्पादक
डॉ. धर्मेन्द्र पारे

सम्पादक
अशोक मिश्र

**जनजातीय लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् भोपाल का प्रकाशन**

प्रकाशक – जनजातीय लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय, श्यामला हिल्स, भोपाल–462002
फोन – 0755–2661948, 2661640
E-mail : mplokkala@rediffmail.com
mptribalmuseum13@gmail.com
web. : www.mptribalmuseum.com

प्रकाशन वर्ष – वर्ष 2022 प्रथम संस्करण

स्वत्वाधिकार – जनजातीय लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्

मुद्रण – मध्यप्रदेश माध्यम, भोपाल

मूल्य – 300/– रुपये (तीन सौ केवल)

■ पुस्तक से सम्बन्धित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्य क्षेत्र भोपाल होगा।

■ पुस्तक में प्रकाशित समस्त सामग्री लेखक की है, आवश्यक नहीं कि प्रकाशक इससे सहमत हों।

ISBN - 978-93-92148-16-3

संत-साहित्य रचने वाले न होकर लोकजीवन की शब्दावली में परमात्म अनुभव को अभिव्यक्त करने वाले रचनाकार रहे हैं। इनके यहाँ न भाषा, न जाति- वर्ण, न देश और न एक दर्शन विशेष का ही बंधन रहा है। ये निर्बंध परमात्मा को भेंट कर बन्धनहीन रहने वाले मनमौजी फकीर रचनाकार रहे हैं। रोहलसाहब आजीवन सिंध प्रदेश में रहे। पारिवारिक परिवेश फारसी भाषा का रहा। समाज में सिन्धी भाषा का बोलबाला था। आसपास पंजाबी भाषी जनता थी। फिर भी इन्होंने ठेठ ब्रजी मिश्रित मारवाड़ी भाषा में जो निर्गुणी संतों की मान्य भाषा रही है, उसमें अपना अनुभव व्यक्त किया है।

कई प्रान्तों के संतों और भक्तों पर शोधपूर्ण ग्रंथ और उनकी वाणियों के कुशल सम्पादक श्री ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल ने कन्नड़, गुजराती, पंजाबी, सिंधी, राजस्थानी और ब्रज आदि भाषाओं के रचनाकारों पर प्रमाणिक कार्य किया है। इनकी खोजी प्रवृत्ति इन्हें अनेक अज्ञात या अल्पज्ञात रचनाकारों तक पहुँचा देती है। रोहलसाहब हिन्दी साहित्य क्षेत्र में अभी तक अज्ञात ही हैं, जबकि इन्होंने उत्कृष्ट वाणी का सृजन किया है। संभव है इस गुमनामी का कारण इनकी रचनाओं का अरेबिक सिंधी भाषा में मिलना और भारत से सुदूर अमरकोट का निवासी होना हो। आश्चर्य है कि इनके ऊपर किसी अंग्रेजी भाषी विद्वान ने भी कोई ठोस काम नहीं किया। सिंधी भाषा के ऐतिहासिक ग्रन्थों में भी इन पर दो-चार पंक्तियों में ज्यादा लिखा नहीं मिलता। श्री सिंहल ने रोहलसाहब तथा उनके पश्चातवर्ती रचनाकारों की समस्त रचनाओं के बारे में यथासंभव जानकारी देने का प्रयत्न किया है।

अकादमी ऐसे उत्कृष्ट ग्रंथ को प्रकाशित करने में गौरव का अनुभव कर रही है। हम श्री ब्रजेन्द्र सिंहल जी को कोटिश: धन्यवाद देते हैं। आशा है संत साहित्य में उत्सुक पाठकों के लिए यह ग्रंथ उपयोगी होगा और वे अपनी प्रतिक्रिया से अकादमी को अवगत भी करायेंगे।

- अशोक मिश्र

सम्पादक

अनुक्रम

रोहल साहब-ग्रंथावली : परिचय	9
रोहल साहब की वाणी	37
साहू साहब की वाणी	244
गुलामअली साहब की वाणी	274
खुदाबख्श साहब की वाणी	298
दुल्हदरियाखान साहब की वाणी	300

रोहल साहब-ग्रंथावली : परिचय

1. पृष्ठभूमि

मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य प्रायः भक्ति-साहित्य माना जाता है जिसकी मुख्यतः तीन धाराएँ मानी गई हैं। निर्गुण-भक्ति-साहित्य, सगुण-भक्ति-साहित्य तथा सूफी-साहित्य।

निर्गुण-भक्ति-साहित्य ज्ञानमार्गी होते हुए भी भक्तिमार्ग के सोपान पर चढ़कर ही ज्ञानमार्ग के गन्तव्य पर पहुँचता है जिसको साहित्यिकों ने ज्ञानाश्रित-भक्तिमार्ग कहा है। दर्शन की भाषा में जहाँ ज्ञानमार्गी ज्ञान को, भक्तिमार्गी भक्ति को, कर्ममार्गी कर्म को तथा योगमार्गी योग को मोक्ष का किम्वा भगवत्प्राप्ति का किम्वा स्वस्वरूपस्थ होने का स्वतंत्र व एकमात्र साधन मानते हैं, वहाँ संतों द्वारा अंगीकृत निर्गुणी ज्ञानाश्रित भक्ति-मार्ग को क्रमसमुच्चय-मार्ग के अन्तर्गत मानते हैं। क्रमसमुच्चय-मार्ग वहाँ होता है जहाँ पहले एक मार्ग के अनुसार साधना की जाती है, तत्पश्चात् दूसरे साधन-मार्ग या तीसरे साधन-मार्ग से लक्ष्य प्राप्त किया जाता है। निर्गुणी संत पहले भक्ति-मार्ग का आचरण करता है, तत्पश्चात् ज्ञान-मार्ग का; दोनों मार्ग साथ-साथ आचरित नहीं किये जाते; दोनों मार्गों का एक साथ सम्पादन होना प्रायः संभव होता भी नहीं, इसीलिये इसको 'क्रम-समुच्चय-मार्ग' कहा गया है। एक साथ दो या तीन साधन-मार्गों का सम्पादन करने पर 'सम-समुच्चय-मार्ग' कहा जाता है। आचार्य शंकर ने क्रम-समुच्चय-मार्ग को मान्य ठहराया है तथा सम-समुच्चय-मार्ग को अमान्य किया है। निर्गुणी संत भी क्रम-समुच्चय-मार्ग के ही समर्थक व आचरण-कर्ता हैं। सूक्ष्मता से विचार करने पर सूफी भी प्रेम-मार्ग से चलकर ज्ञान-मार्ग के लक्ष्य ऐक्यभाव में प्रतिष्ठित होते हैं; अतः ये भी क्रम-समुच्चय-मार्गी हैं।

हम जिन रचनाकारों की चर्चा यहाँ करने जा रहे हैं, वे मूलतः योगमार्गी होकर भी सूफी कहलाते हैं। जांगेचा शिया मुसलमान होकर भी हिन्दू साँईनाथ नामक योगी के शिष्य बनकर योगमार्गानुसार साधना कर आत्म-साक्षात्कार-लाभ प्राप्त करते हैं। इनकी वाणियों में

हिन्दू-धर्मानुसार ही विचार व्यक्त किये मिलते हैं। यदि सूफीमतानुसार कुछ विचार यत्र-तत्र मिलते हैं तो वे प्रसंगवश ही मिलते हैं। फिर भी इनके वर्तमानकालीन उत्तराधिकारी अपने आपको सूफी कहने लगे हैं।

ये योगमार्ग की चर्चा करते-करते भक्ति की भी बातें करते हैं और अन्तन्तः ब्रह्मात्मैक्य रूप अद्वैत की बात करते हैं। ये योगमार्गी गोरखनाथ की भाँति द्वैताद्वैतविवर्जित ऐक्य की बात न करके, अद्वैत-ब्रह्म व ब्रह्मात्मैक्य की चर्चा करते हैं। योगियों के प्रिय विषय 'सृष्टि की उत्पत्ति व लय' का वर्णन अनुलोम-प्रतिलोम दोनों रीतियों से करते हैं जो कुछ अंश में पौराणिक वर्णनों से मेल खाता है तथा शेष नाथों व सिद्धों के वर्णनों से। इन रचनाकारों के अनुयायी जितने मुसलमान हैं, उतने से भी अधिक किसी समय हिन्दू रहे थे। भारत के राजस्थान, विशेषकर मारवाड़-राज्य में इनके अनुयायी अच्छी मात्रा में मिलते हैं। अतः ये सिन्धी होकर भी हिन्दी हैं और हिन्दी होकर भी सिंधी। इनकी आधी के करीब रचनाएँ सिन्धी-भाषा में व इतनी ही हिन्दी-भाषा में मिलती हैं।

उपर्युक्त संत, सूफी, रचनाकारों में प्रमुख व प्रथम हैं—श्रीरोहलसाहब। इन्हीं के साले मुरादसाहब व पुत्र-पौत्रादि हैं इस शृँखला के रचनाकार। इन सभी रचनाकारों की रचनाएँ अरेबिक-सिंधी-लिपि में 519 पृष्ठों में लिखी मिलती है। मेरे पास इन रचनाकारों की रचनाओं की हस्तलिखित प्रति की एक श्वेत-श्याम प्रति उपलब्ध है। इस हस्तलेख में 1. रोहल-साहब 2. मुराद-साहब 3. साहू-साहब 4. गुलाम-साहब 5. दुल्हदरियाखान-साहब 6. नज़रअलीखान-साहब 7. अलीनवाज़खान-साहब 8. महरहयातखान-साहब 9. खुदाबख्शखान-साहब 10. नवाबखान-साहब 11. फकीर दरमहलखान-साहब, कुल ग्यारह रचनाकारों की रचनाएँ पृष्ठ एक से 513 तक हैं। पृष्ठ 514 से 519 तक उक्त रचनाकारों की संक्षिप्त तवारीख है। यही तवारीख हमारी जानकारी का प्रमुख व प्रामाणिक स्रोत है।

दुःख है कि न तो सिंधी-साहित्येतिहास की पुस्तकों और न हिन्दी-साहित्येतिहास की पुस्तकों में ही इनका विस्तृत उल्लेख मिलता है। कहीं दो-चार पंक्ति लिखी मिल जाएँ तो बात अलग है। यह भी कम आश्चर्य का विषय नहीं कि इनमें से किसी भी रचनाकार के ऊपर अंग्रेजी में भी पुस्तक नहीं है।

ऐसा अनुमान होता है कि इस गुमनामी का एक ही कारण है और वह है, इन रचनाकारों की रचनाओं की सीमित मात्रा में हस्त-लिखित प्रतियों का प्राप्त होना। प्रकाशित संस्करणों का तो प्रायः अभाव-सा ही है। यदि एक दो संस्करण प्राप्त हैं भी तो वे या तो लोक में प्रचलित कंठानुकंठ से सुनकर संग्रहित प्रकाशन हैं या किसी आधी-अधूरी पाण्डुलिपि के आधार पर संकलित-संपादित संस्करण।

यह सौभाग्य ही समझना चाहिए कि मुझको जो हस्तलेख मिला है, वह रोहलसाहब की मुख्य-गद्दी कंडड़ी में उपलब्ध हस्तलेख की प्रतिलिपि है जिसको लिपिकार ने सन् 1932 में तैयार किया था; किसने किया, हस्तलेख से ज्ञात नहीं। वैसे याददास्ती के लिये सन् 1932 के पश्चात् रोहल-साहब की गद्दी पर बैठने वाले उत्तराधिकारियों की भी नोटिंग इस पुस्तक के 519वें पृष्ठ पर है, जिसकी चर्चा आगे चलकर करेंगे।

2. पाण्डुलिपि

जैसा पूर्व में कहा गया है, आलोच्य पाण्डुलिपि में कुल 519 पृष्ठ हैं। पृष्ठानुसार रचनाकारों की सूची निम्न प्रकार है।

	पृष्ठ से पृष्ठ तक
1. रोहल-साहब	1 से 68 तक
2. साहू-साहब	69 से 98 तक
3. गुलाम-साहब	99 से 107 तक
4. दुल्हदरियाखान-साहब	108 से 119 तक
5. मुराद-साहब	120 से 132 तक
6. रोहल-साहब	133 से 166 तक
7. साहू-साहब	169 से 170 तक
8. गुलाम-साहब	173 से 182 तक
9. दुल्हदरियाखान-साहब	183 से 202 तक
10. नज़रअलीखान-साहब	204 से 210 तक
11. अलीनवाज़खान-साहब	212 से 215 तक
12. मुरादखान-साहब	217 से 232 तक
13. महरहयातखान-साहब	233 से 233 तक
14. दुल्हदरियाखान-साहब	235 से 238 तक
15. रोहल-साहब	239 से 250 तक
16. खुदाबख्शखान-साहब	251 से 253 तक
17. मुरादखान-साहब	260 से 267 तक
18. दुल्हदरियाखान-साहब	268 से 274 तक
19. मुरादखान-साहब	275 से 280 तक
20. रचनाकारों की सूची	281 से 292 तक

21.	रोहल-साहब	295 से 309 तक
22.	गुलाम-साहब	309 से 318 तक
23.	दुल्हदरियाखान-साहब	320 से 377 तक
24.	नज़रअलीखान-साहब	383 से 389 तक
25.	नवाबखान-साहब	393 से 395 तक
26.	फकीर दरमहलखान-साहब	397 से 398 तक
27.	मुराद-साहब	399 से 405 तक
28.	महरहयातखान-साहब	409 से 419 तक
29.	रचनाकारों की सूची	421 से 423 तक
30.	रोहल-साहब	425 से 437 तक
31.	साहू-साहब	441 से 442 तक
32.	गुलामअली-साहब	447 से 448 तक
33.	दुल्हदरियाखान-साहब	453 से 466 तक
34.	मुरादखान-साहब	473 से 510 तक
35.	तवारीख	514 से 519 तक

उपर्युक्त सूची से पाठक जान सकते हैं कि एक ही रचनाकार की रचनाएँ एक स्थान पर न होकर, भिन्न-भिन्न स्थानों पर लिखित हैं।

पाठक इसको अग्रांकित उदाहरण के साथ आसानी से समझ सकते हैं। हस्तलेख में सर्वप्रथम रचनाकारों की ग्रन्थात्मक रचनाएँ सम्मिलित हैं। अगले विभाग में पदावली है। तत्पश्चात् रेखते, काफी आदि हैं। तत्पश्चात् लोकगाथाओं सम्बन्धी रचनाएँ हैं। फिर बैतों के रूप में रचनाएँ हैं। इनके पश्चात् सी-हरफी, चाली-दरबाब आदि शीर्षक की रचनाएँ हैं।

इसका तात्पर्य है कि यह हस्तलेख जब तैयार किया गया, तब सभी रचनाकारों की एक-एक प्रकार की रचनाएँ क्रमशः लिखकर, फिर दूसरी प्रकार की, फिर तीसरी प्रकार की, इस प्रकार सभी रचनाओं को लिखा गया।

हस्तलेखों को इस प्रकार की पद्धति पर लिखने की रीति मुझे अभी तक या तो रोहल-साहब और उनके परवर्तियों की रचनाओं के संकलन में मिली है या राजस्थान के विष्णोई संतों की रचनाओं को अपने पोथों में लिखने वाले परमानंद बणिहाल के पोथों में मिली है। अन्यथा दादूपंथियों की पंचवाणी पुस्तकों, रामस्नेही-सम्प्रदाय, शाहपुरा की बड़ी पुस्तकों, निरंजनियों की बड़ी पोथियों आदि में सर्वत्र रचनाकार विशेष की समस्त प्रकार की

रचनाएँ एक साथ क्रमशः सलंग रूप में लिखी मिलती हैं। तत्पश्चात् दूसरे रचनाकार की, फिर तीसरे रचनाकार की...।

दादूपंथी हस्तलेखों की एक-एक पोथी में 150 रचनाकारों तक की रचनाएँ लिखी मिलती हैं। मेरे पास एक हस्तलेख सम्वत् 1785 का है जिसमें 103 रचनाकारों की रचनाएँ संग्रहित हैं। एक हस्तलेख ऐसा है, जिसको नौ लेखकों ने लिखा है जिसमें लगभग 2.5 लाख अनुष्टुप श्लोक प्रमाण वाणियों का अलभ्य संग्रह है।

यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि रोहल-साहब और उनके अनुवर्तियों की रचनाएँ, रचनाओं के प्रकारों के आधार पर संकलित हैं। इसी प्रकार के संकलन विष्णोई परमानन्द के पोथे में हैं जिनमें रचना-प्रकारों के आधार पर रचनाएँ लिखित हैं। संत रज्जब की सरबंगी, गुरुग्रंथ-साहब, गोपालदास की सरबंगी-सरह- चिंतामणि, जगन्नाथदास का गुणगंजनामा, नवलरामजी का सर्वांगसार तथा रामभजनजी रामस्नेही का सर्वसार-संग्रह ग्रंथ विषयानुसार संकलन हैं। इन ग्रंथों के एक-एक अंग अर्थात् अध्याय में एक-एक विषय से संबंधित अनेक-अनेक रचनाकारों की रचनाएँ संकलित हैं।

3. प्रस्तुत सम्पादन

ऊपर हमने लिखा है कि उक्त हस्तलेख में कुल ग्यारह रचनाकारों की रचनाएँ संकलित हैं। हमारे पास इस पूरे हस्तलेख के समस्त रचनाकारों की रचनाओं का अरेबिक-सिंधी-लिपि से नागरी लिप्यंतरण तैयार है किन्तु एक ही जिल्द में समस्त रचनाओं को प्रकाशित करना समुचित नहीं जान पड़ता। अतः मैंने सर्वप्रथम स्वयं रोहलसाहब, जो अपने सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं, उनकी समस्त वाणी सहित उनके चारों पुत्रों की वाणियों को इस संकलन में संपादित की है। रोहल-साहब की वाणी सानुवाद तैयार की गई है। इन समस्त रचनाकारों की रचनाओं का विवरण निम्न प्रकार है।

3.(1). रोहल-साहब : इनकी कुल तेरह रचनाएँ हैं जिनकी विगत अग्रांकित है। पाठक जान सकेंगे कि एक गद्य-पद्य मिश्रित ग्रंथ सहित इनकी वाणी का कुल परिमाण 742 छन्दात्मक है।

1. शास्त्र मन-प्रबोध	छंद प्रकार	5	छंद संख्या	251
2. शास्त्र अद्भुत-ग्रंथ	छंद प्रकार	6	छंद संख्या	94
3. शास्त्र सर्व-ग्यान-निज-मूल ग्रंथ	छंद प्रकार	3	छंद संख्या	165
4. अगमवार्ता (गद्य-पद्य मिश्रित)	छंद प्रकार	4	छंद संख्या	18

5. सबद (पद)	राग प्रकार	12	पद संख्या	59
6. पंद्रह-तिथि	छंद प्रकार	1	छंद संख्या	16
7. सी-हरफी	छंद प्रकार	2	छंद संख्या	37
8. सी-हरफी	छंद प्रकार	1	छंद संख्या	30
9. काफी, गजल, रेखता	राग प्रकार	6	पद संख्या	09
10. बैत पंजाबी	छंद प्रकार	1	छंद संख्या	25
11. बैत सिंधी	छंद प्रकार	1	छंद संख्या	22
12. बैत पूरव	छंद प्रकार	1	छंद संख्या	9
13. बैत सुहिणी व हीर-रांझा	छंद प्रकार	1	छंद संख्या	7
	कुल			**742**

3.(2). साहू-साहब : ये रोहल-साहब के ज्येष्ठ पुत्र थे और प्रायः उनकी यात्राओं में उनके साथ रहते थे। रोहल-साहब के पश्चात् उनकी गद्दी पर ये ही बैठे। इनकी कुल निम्न चार रचनाएँ हैं–

1. ग्रन्थ सर्वशास्त्र-अन्तर-विलास	छंद प्रकार	2	कुल छंद	198
2. आत्म-विचार-अनुभव ग्रंथ	छंद प्रकार	9	कुल छंद	127
3. सबद (पद)	–		कुल पद	7
4. बैत	–		कुल बैत	4
कुल				**336**

3.(3). गुलामअली-साहब : ये रोहल-साहब के दूसरे क्रमांक के बेटे थे और ये तथा साहू-साहब सहोदर अर्थात् एक माँ-जाये भाई थे। साहू-साहब निःसंतान थे; अतः उनके पश्चात् ये ही गद्दीनशीन हुए और वर्तमानकाल तक इनके वंशज ही रोहल-साहब की गद्दी पर बैठते आ रहे हैं। इनकी चार रचनाएँ हैं, जिनकी विगत निम्न प्रकार है।

1. ग्रंथ ब्रह्म-विचार	छंद प्रकार	9	कुल छंद	49
2. सबद	राग प्रकार	7	कुल पद	20
3. काफी-रेखता	राग प्रकार	7	कुल पद	22
4. बैत	–		कुल छंद	7
			कुल	**98**

3.(4). दुल्हदरियाखान-साहब : ये रोहल-साहब के सबसे छोटे पुत्र थे। इन्होंने गुलामअली-साहब को अपना गुरु माना है। इनकी माता और पूर्ववर्ती साहू साहब व गुलामअली-साहब की माताएँ अलग-अलग थीं। इनके मामा मुराद-साहब थे जो रोहल-साहब के कल्होड़ा-शासन में सहकर्मी व दरवेशी-जीवन में सहवर्ती थे। रोहल-साहब के परवर्तियों में सर्वाधिक समर्थ रचनाकार दुल्हदरियाखान-साहब को ही माना जाता है। इनकी रचनाओं का विवरण इस प्रकार है-

1. ग्रन्थ ब्रह्म-वेद	छंद प्रकार	5	कुल छंद	103
2. सबद	राग प्रकार	13	कुल पद	39
3. बावन अखरी	छंद प्रकार	1	कुल छंद	35
4. चाली दरबाब नसीहत	संख्या प्रकार	5	कुल छंद	61
5. काफी-रेखता	राग प्रकार	15	कुल संख्या	148
6. बैत	प्रकार	6	कुल संख्या	92
7. सी-हरफी		1	कुल संख्या	1
			कुल	**479**

3.(5). खुदाबख्शखाँ-साहब : ये उक्त दुल्हदरियाखान-साहब के सहोदर माँजात बड़े भाई थे जबकि साहू-साहब व गुलामअली-साहब की माँ इनकी विमाता थी। इनकी रचना के रूप में मात्र एक सी-हरफी की 13 कड़ियों की मिलती हैं।

1. सी-हरफी	छंद प्रकार	1	छंद संख्या	13

उपर्युक्त पाँचों रचनाकारों की रचनाओं की कुल संख्या 1668 छंद प्रमाण है। इनके अलावा रोहल-साहब के एक गद्य-पद्य मिश्रित ग्रंथ में गद्य और है।

यह आश्चर्य का विषय है कि धुर सिंधु-देश के रहने वाले, इन मुस्लिम धर्मानुयायी परिवार में जन्मे दरवेशों ने सिंधी-प्रभावित ब्रजभाषा के छन्दों सहित सिन्धु-देश में प्रचलित काफी, रेखते एवं विभिन्न रागों के पदों में अपनी रचनाएँ लिखी हैं। इनकी भाषा प्रायः ब्रजी, मारवाड़ी और सिंधी है। कुछ सी-हरफियाँ व एक-दो काफियाँ पंजाबी-भाषा में भी हैं। लिपि अरेबिक-सिंधी है और यही कारण है कि वर्तमान समय तक इनकी रचनाएँ न तो हिन्दी क्षेत्र के विद्वानों के संज्ञान में आईं और न सिंधी विद्वान् ही अभी तक इनकी समग्र रचनाओं की खोजबीन कर इनको प्रकाशित कर सके। संभवतः इसका प्रधान कारण यही है कि इनकी रचनाओं की सीमित हस्तलिखित प्रतियों का मिलना व आजकल हस्तलेखों को पढ़कर पाठ-सम्पादन करने वालों का प्रायः अभाव-सा होता जा रहा है।

संभवतः यह पहला अवसर है, जब उक्त पाँच महान् दरवेशों की समग्र वाणियाँ एक ही जिल्द में, एक साथ प्रकाशित होकर हिन्दी-भाषी सिन्धी-समाज सहित हिन्दी-साहित्य-सेवियों को सुलभ होंगी।

4. जीवन-परिचय :

रोहल-साहब अपने समय के महान् संतोंदरवेशों में परिगणित हैं। फिर भी न तो इनके ऊपर हिन्दी में और न अंग्रेजी में ही कोई प्रामाणिक विस्तृत अध्ययन मिलता है। हाँ, सिंधी-भाषा में पाकिस्तान के सिंधी-अदबी-बोर्ड ने एक पुस्तक प्रकाशित की है जिसमें परिचयात्मक भूमिका तो अच्छी मात्रा में है किन्तु यह भूमिका व इसकी रचनाएँ लोक में प्रचलित सामग्री के आधार ही लिखी गई है, जिस कारण इसकी प्रामाणिकता संदिग्ध हो जाती है।

रोहल-साहब की दरगाह से एक पुस्तक 'सरताज-ए-कंडीरी' प्रकाशित हुई है जिसके सम्पादक फकीर ताजुद्दीनखान साहब हैं। ये उक्त गुलामअली-साहब के वंशज हैं। इन्होंने पुस्तक के शुरू में एक वंश-सजरा भी प्रकाशित किया है। पाठकों के लाभार्थ वह यहाँ परिशिष्ट में प्रकाशित कर रहे हैं। इसमें रचनाएँ तो अच्छी मात्रा में प्रकाशित हैं किन्तु इन रचनाकारों के बारे में कोई शोधपूर्ण अध्ययन नहीं है। हर-एक रचनाकार की रचना के प्रारंभ में सामान्य-सी परिचयात्मक जानकारी है। यह जानकारी प्रायः हमारे द्वारा विवेचित हस्तलेख में उपलब्ध तवारीख के अनुसार ही है; अतः इस पुस्तक से भी इन दरवेशों के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती।

मैंने मेरे कई परिचित सिंधी विद्वानों से इनके बारे में चर्चाएँ कीं किन्तु किसी के पास भी कोई विशेष जानकारी नहीं मिली। एक विद्वान् ने तो यहाँ तक कहा 'प्रवाद सुनने में आता है, रोहल-साहब की वाणी पढने से अनष्टि होने की आशंका बद्धमूल होने से कोई भी रोहल-साहब के बारे में पढ़ता-लिखता नहीं है।' आज के जमाने में एक विद्वान् के मुँह से उक्त बात सुनकर मैं सोचने को विवश हुआ।

4.(1). रोहल-साहब : इनकी जाति जांगेचा बलोच मुसलामान है जिसको अब सिन्धी-मुसलमान कहा जाता है। पहले इनकी बोलने की भाषा बलोच थी किन्तु अब ये इस भाषा का प्रयोग नहीं करते। अब इनकी बोलने व लिखने की भाषा सिरायकी है जो उर्दू से मिलती-जुलती है। सन् 2009 में बलोचों की जनसंख्या 90 लाख आँकी गई, जिनमें से 60% पाकिस्तान के बलोचिस्तान में निवास करते हैं। रोहल-साहब का प्रभाव इन बलोचों में अब भी है जो प्रायः सिंध-प्रान्त में रहते हैं। मूलतः जांगेचा-बलोच-कबीले सुन्नी मुसलमान हैं

(विकीपीडिया की साइट की जानकारी के अनुसार) किन्तु रोहल-साहब का कबीला शिया मज़हब से सम्बद्ध है, ऐसा रोहल-साहब की तवारीख में लिखा है।

जब हम सिंध का इतिहास पढते हैं, तब ज्ञात होता है कि रोहल-साहब के जमाने में उमरकोट-क्षेत्र कल्होड़ा-शासकों द्वारा शासित था। तवारीख रोहल-साहब में लिखा है कि तत्कालीन कल्होड़ा शासक गुलामशाह का सेनाध्यक्ष जो जांगेचा बलोच था रोहल-साहब का मौसी-जात भाई था। सिंध की तवारीख से यह भी ज्ञात होता है कि कल्होड़ों को शासनासीन करने में जांगेचाओं का बड़ा भारी योगदान था; अतः ये जांगेचा कल्होड़ों के राज्य में महत्वपूर्ण पदों पर आसीन थे। इन सभी परिस्थितियों के कारण रोहल-साहब के पिता साहो-साहब कल्होड़ाओं के यहाँ महत्वपूर्ण पद पर नियुक्त थे, जैसा उक्त रोहल-साहब की तवारीख में लिखा है।

4.(2). रोहल-साहब का जन्म किस सन् में हुआ, का उल्लेख तो रोहल-साहब की तवारीख व वाणी में नहीं है किन्तु तिथि का उल्लेख वाणी में इस प्रकार मिलता है। यथा–

मेरी पूनम की जोई राखै व्रती, कर सत्संग अर भाव ब्रतावै।
रटै सत नाम अंतर में राखै, अनासुरत की डोर लगावै ॥

–शास्त्र सर्वग्यान-निज-मूल, 98

सेली सींगी सतसटी, हम हैं प्रगटे आइ।
पूनम तिथि दिन सोम, ले देह घर साहो के पाइ ॥

–अगमवार्ता, दोहा-1

रोहल-साहब की तवारीख में लिखा है कि जब कल्होड़ा शासक गुलामअली सन् 1772 में मरा और घटना विशेष घटी, जिसका वर्णन हम आगे करेंगे एवं जिस ही के कारण रोहल-साहब ने कल्होड़ों की नौकरी छोड़ी, तब वैराग्य धारण किया अथवा उमरकोट छोड़कर दरवेशी धारण की उस समय उनकी उम्र 46 वर्ष की थी। यदि हम सन् 1772 में से 46 वर्ष ऋण करते हैं तो इनका जन्म-समय 1726 सन् आता है। जब हम श्रीमोहन गियानी द्वारा लिखित 'सिन्ध का इतिहास' पुस्तक के पृष्ठ 116-117 को पढ़ते हैं तो ज्ञात होता है कि कल्होड़ा-शासक गुलामअली के उत्तराधिकारी मिंया सरफराज ने सन् 1772 से 1776 तक शासन किया। इसने अपने सेनापति बेहरामखान को उसके पुत्र सहित तब मरवा डाला, जब वे राजकीय दफ्तर में प्रवेश कर रहे थे। बेहरामखान बलोच था। इस हत्या के कारण संपूर्ण बलोच-जाति सरफराज की जानी दुश्मन हो गयी। यह भी एक अन्य कारण है रोहल-साहब का नौकरी छोड़ने का।

तवारीख स्पष्ट कहती है कि जब सरफराज ने गुलामअली के ऊपर उस कफन को डालने से बिल्कुल मना कर दिया जिसको गुलामअली ने मंगवाकर इसलिये रोहल-साहब के पास सुरक्षित रखा कि उसके मरने पर वही कफन उसके ऊपर डाला जाए, तब रोहलसाहब के मन में वैराग्य का भाव दृढ़ हो गया और उन्होंने बारह दिन का कार्यक्रम पूरा करके राजधानी से निकल जाने का पक्का निर्णय-कर निकल गये।

अतः हमें लगता है, रोहल-साहब का जन्म-वर्ष सन् 1726 ही ठीक है।

इसके विपरीत, विकीपीडिया की साइट पर उपलब्ध रोहल-साहब के सम्बन्ध में सामान्य जानकारी के अनुसार रोहल-साहब का जन्म सन् 1734 ज्ञात होता है किन्तु इसका कोई आधारभूत स्रोत विकीपीडिया से ज्ञात नहीं होता है।

इधर डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र लिखते हैं- 'ऐसे रोहल-साहब के जन्म-वर्ष के सम्बन्ध में निश्चित् प्रमाण तो नहीं मिलते। हाँ, उनके चोला-त्याग का वर्ष सन् 1804 ई. लिखा मिलता है। जनाब लुत्फुल्लाह बदवी द्वारा संपादित पुस्तक 'कंडड़ी वारनि जो कलाम' (प्रकाशक : सिन्धी-अदबी-बोर्ड, हैदराबाद, पाकिस्तान, सन् 1964), डॉ. मुरलीधर जेतली द्वारा लिखित 'सिन्धी-साहित्य जो इतिहास' (प्रकाशक : सिन्धू-समाज, नईदिल्ली, सन् 1972) तथा श्री एल॰एच॰ अजवाणी द्वारा लिखित और आनन्द खेमानी द्वारा अनुवादित पुस्तक 'सिन्धी-साहित्य का इतिहास' (प्रकाशक : साहित्य-अकादमी, दिल्ली सन् 1978) एवं डॉ. दशरथराज द्वारा संपादित पुस्तक 'संत रोहल की वानी' (प्रकाशक : शिव-शक्ति-प्रकाशन, पूना, सन् 1969 ई॰) में उल्लिखित संत रोहल का जन्म-वर्ष सन् 1734 मानते है।' 'संत रोहल-फकीर-ग्रंथावली', पृष्ठ-19, सन् 2016 संस्करण।

साहित्य-अकादमी द्वारा प्रकाशित 'सिंधी-साहित्य का इतिहास', पुस्तक के पृष्ठ 132, 135, 136 व 138 पर रोहल-साहब, मुराद-साहब व दुल्हदरियाखान-साहब का अति संक्षिप्त वर्णन है किन्तु इन पृष्ठों पर तीनों में से किसी एक के भी जन्म-मरण के सन्-सम्वतों की चर्चा नहीं है। डॉ. मिश्र ने अन्य पुस्तकों के नाम मात्र लिखे हैं, किन्तु उनके उद्धरण उद्धृत नहीं किये हैं, जिनसे जाना जा सके कि उनके उल्लेख कहाँ तक प्रामाणिक हैं। वैसे विकीपीड़िया की साइट भी 1734 ईस्वीय सन् की ही चर्चा करती है, इससे इतना तो समझ में आता है कि भेड़ी-धसान न्यायानुसार एक-दूसरे ने, एक-दूसरे का अनुगमन किया है किन्तु इस मत के पीछे कोई आधार नहीं है।

हमने रोहल-साहब के गद्दी-स्थान में उपलब्ध ऊपर वर्णित हस्तलेख (तवारीख) के आधार पर अपनी बात कही है जिसके अनुसार रोहल-साहब का जन्म-वर्ष 1726 ईस्वी सन् सुनिश्चित् होता है। इस सम्बन्ध में तवारीख का सम्बद्ध पाठ इस प्रकार है।

पृष्ठ 514 का प्रारम्भ 'गुलामशाह 1772 में बफात कई, रोहल-साहब उहा जोड़ी संदसि कफन जे मथां विझण लाए खणी आथो पर जब मिंया गुलामशाह जे पुट मिंया सरफराज जों खाँउसि पोए गादीनशीन थियो उन उहा जोड़ी में खेसि डाढ़ी पसन्द आई सो चयाड़ त इहा जोड़ी मां पंहिंजो कतबि आगीं दुसि उन जे एवज तूं बिया कपड़ा कीमखाब, बखमल, अतलस बी खणीं कफन ते बिझ, रोहल-साहब खेसि घणो समुझायेसि त तुंहिंजो पीउ सची बादशाही ऐं हेतिरो धन ऐं मिलकियत तव्हां खे डेई बियो आहे पाण कुझ बि साणु कोन खणी वियो फकत हीअ जोड़ी पंहिंजे कफन ते बिझण लाए बसीयत करे वियो आहे तव्हां पंहिंजे पीउ जी इहा खसीस वसीयत नथा मञियो, मगर सरफराज न मुड़ियो, इन्हीअ गातह रोहल-साहब जी दिल खे डाढी चोट लगाई, खयाल कयाऊंत बादशाही दौलत मिलकियत त साणु न हलंदी पर पुट बि बीठे जा आहिनिं तंहिकरे जमाने में रहण मुं कहिड़ो फाइदो आहे? मिंया गुलामशाह जो बारहों गुजरियो त रोहल-साहब घर अची चयो त असां हाणे नौकरी छडी, हाणे फकीरी पाईदासीं सो जेकडहिं तूं इते रहण चाहीं त धन ऐं मिलकियत झझो अथई जे चवीं त पेके छडे अचां पर माई चयो त जेडाहुं तव्हां वेंदा ओडांहुं मां बि हलंदुसि रोहल-साहब घणो समुझाइसि त तकलीफू ऐं डाखडा डिसणा पवंदव पर माई न मुड़ी, तंहिंते रोहल-साहब चयुसि त भला जेवर समलाहे, उन वक्त रोहल-साहब खे ब पुट जा वल पुट हुवा शाहुसाई ऐं गुलामअलीसाई उन्हनि खे जे की जेवर पियल हुआ उहे बि लाथाऊं सभई घर खां निकरी थिया बाहिर पोइ रोहल-साहब सभ जेवर धन ऐं बी जे का बि मिलकियत हुअन, हथनि सां लुटयाइ को बि बसिलो थाटपड़ पाण सां कोन रखियाऊं, पोइ उमरकोट छडियाऊ चवनि था त उन वक्त रोहल-साहब जी उम्र 46 साल हुई मुरादसाई सागी तरह नौकरी छडीअन उन वक्त मुरादसाई जी उम्र 43 साल चवण में आये थी हिजरी सन् मूजिब—जेकड़हि बराबर आहे त रोहल-साहब जो जन्म ईस्वी सन् 1726 धारे ऐं मुरादसाई जो जन्म 1729 धारे थियो हूंदो, रोहल-साहब अगमवार्ता में एतिरो जाणायो आहे संदनि जन्म पूनम तिथि ऐं मुराद डसह में थियो हो मगर महीनो ऐं साल जाणायल कोन आहे।'

ऊपर उद्धृत तवारीख की निश्चयात्मक जानकारी के आलोक में रोहल-साहब का जन्म-वर्ष 1734 मानने का कोई आधार शेष नहीं बचता। निश्चयात्मक रूप से कह सकते हैं कि रोहल-साहब का जन्म-वर्ष सन् 1726 व मुरादसाँई का जन्म-वर्ष 1729 ही सर्वथा प्रामाणिक है।

विकीपीडिया में लिखा है कि मुरादसाँई रोहल-साहब से दस वर्ष छोटे थे, यह सूचना भी गलत ही माननी चाहिए क्योंकि तवारीख मुरादसाँई को रोहल-साहब से कुल तीन वर्ष छोटा बताती है।

डॉ. रमेश मिश्र ने मुरादखान-साँई को रोहल-साहब का चचेरा भाई बताया है तथा कहा है कि उन्होंने रोहल-साहब को अपनी बेटी विवाहित की (पृष्ठ-19, उक्त पुस्तक)। ये दोनों ही सूचनाएँ डॉ. मिश्र की झूठी हैं। तवारीख में स्पष्टतः लिखा है कि मुराद-साँई व रोहल-साँई के खानदानों में पहले से कोई पारिवारिक या रिश्तेदारी जैसे सम्बन्ध नहीं थे। दोनों कल्होड़ाओं के दरबार में नौकरी करते थे, केवल इतना ही सम्बन्ध था। जब रोहल-साहब ने नौकरी छोड़ी, तब मुराद-साँई ने भी नौकरी छोड़ दी और रोहल-साहब के साथ ऊमरकोट छोड़ दिया। जब दोनों फकीर 'कोटली' या 'कोटड़ी' में रहे, तब मुराद-साहब ने अपनी बहिन की शादी रोहल-साहब से की, जिससे रोहल-साहब के दो पुत्र उत्पन्न हुए—(1) खुदाबख्शखान-साहब व 2. दुल्हदरियाखान-साहब (देखें, तवारीख, पृष्ठ-514 व विकीपीडिया-साइट)

4.(३). माता-पिता : जैसा पूर्व में कहा गया है, रोहल-साहब के पिता का नाम 'साहू' या 'साहो' था; स्वयं रोहल-साहब ने इस नाम की पृष्टि 'अगमवार्ता' ग्रंथ में की है।

सेली सींगी सतसटी, हम हैं प्रगटे आइ।
पूनम तिथि दिन सोम, ले देह घर साहो के पाइ ॥ दोहा-1

इनकी माता का नाम क्या था, हमको जितनी सामग्री प्राप्त है, उससे ज्ञात नहीं होता। तवारीख रोहल-साहब में लिखा है कि 'हिन घराणे जा दरवेश शीया जा आहिन ही दरवेश असल किथे जा वेठल हुवा इन जो पूरो पतो कोन्हे के कीअ था चवनि के कीअ। राजो लेखा जो कल्होड़नि जो वजीर हो जो सिंध जो तारीख में बि जिकर आहे सो रोहल-साहब जो सगो मासात हो।' पृष्ठ-514

विकीपीडिया-साइट पर उपलब्ध सूचना के अनुसार इनके पिता साहोखान कल्होड़ा शासक नूरमोहम्मद के शासनकाल में महत्वपूर्ण पद (नूर मोहम्मद के सलाहकार) पर आसीन थे। नूरमोहम्मद सन् 1755 में मरा, तत्पश्चात् मिंया मुरादयाव शासनारूढ़ हुआ जो मात्र सन् 1757 तक रहा। इसके पश्चात् गुलामशाह कल्होड़ा शासनारूढ़ हुआ, जिसके समय में रोहल-साहब तोशाखाना के अध्यक्ष थे। गुलामशाह सन् 1757 से 1772 तक शासनारूढ़ रहा।

जैसा तवारीख के ऊपर उद्धृत कथन से ज्ञात होता है, कल्होड़ाओं का वजीर रोहल-साहब का सगा मौसा-जात भाई था। यह कौन से शासक का वजीर था, स्पष्ट नहीं। श्रीमोहन गियानी द्वारा लिखित 'सिंध का इतिहास' पृष्ठ 115 से 117 तक से ज्ञात होता है कि नूर मोहम्मद, मुरादयाव, गुलामशाह व सरफराज तक के शासन में दीवान के पद पर

गिद्दूमल थे जिनके नाम से ही ज्ञात होता है, ये मुसलमान न होकर हिन्दू थे। अतः इस बात की संभावना बिल्कुल नहीं है कि दीवान गिद्दूमल की पत्नी व साहोखान की पत्नी बहनें रही होंगी।

जैसा पूर्व में उल्लेख कर आये हैं, कल्होड़ाओं के सेनापति प्रायः बलोच होते रहे थे। रोहल-साहब की जाति भी बलोच जांगेचा ही थी; अतः हो सकता है, तवारीख लिखने वाले ने सेनापति को ही दीवान लिखा हो। चूँकि गुलामशाह के शासन में बेहरामखान बलोच सेनाध्यक्ष था, वही सरफराज के समय में भी था; अतः हो सकता हे, रोहल-साहब की माँ और बेहरामखान की माँ दोनों बहिनें रही हों। अतः हमने सेनाध्यक्ष माना है, दीवान नहीं।

4.(4). भाई-बहन : उक्त तवारीख तथा विकीपिड़िया-साइट की जानकारी बताती है कि रोहल-साहब कुल तीन भाई थे। रोहलसाहब मँझले थे। इनके बड़े भाई का नाम 'सुलतान' तथा छोटे भाई का नाम 'मेवो' था। (तवारीख पृष्ठ-514) इनके कोई बहिन थी अथवा नहीं, इसका उल्लेख इसमें नहीं है। तवारीख के अनुसार सुलतान तथा मेवो भी कल्होड़ों की नौकरी में ही थे। अब इन दोनों के वशंज भी कंडड़ी में ही रहते हैं। ये अब भी जांगेचा बलोच ही कहलाते हैं।

4.(5). नौकरी : जैसा ऊपर उल्लेख हो चुका है, रोहल-साहब के पिता कल्होड़ा शासक नूरमोहम्मद के महत्वपूर्ण सलाहकार थे; अतः उन्होंने अपने तीनों पुत्रों की कल्होड़ा राजदरबार में नौकरी लगवा दी; तवारीख व साइट दोनों के अनुसार रोहल-साहब तोशाखाना के अध्यक्ष थे। तोशाखाना शासकों का निजी खजाना होता है जिस पर महत्वपूर्ण व विश्वासपात्र व्यक्ति को ही नियुक्त किया जाता है। रोहल-साहब ने काफी दिनों तक राजदूत के पद पर भी कार्य किया और वे यदा-कदा कार्यवशात् वर्तमानकालीन राजस्थान राज्य के बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर जैसे राज्यों में भी आया-जाया करते थे। मारवाड़ी-भाषी इन राज्यों में आने-जाने व इनके निवासियों तथा राजकर्मचारियों के सम्पर्क में रहने से इनको हिन्दी-भाषा का, यहाँ के साहित्य, विश्वास व सामाजिक-जीवन के बारे में काफी कुछ जानने को मिला जिसका ही सुफल यह रहा कि इन स्वयं सहित इनके उत्तराधिकारियों ने निःसंकोच-भाव से हिन्दी में प्रयुक्त छन्दों को अपनी रचनाओं में प्रयुक्त किया है। जोधपुर के महाराजा विजयसिंह ने तो इनसे लगातार सैतीस दिन तक सत्संग किया। इसी दरमियान काफी हिन्दू जनता भी इनकी अनुयायी बनी। अब भी उक्त तीनों पुराने रजवाड़ों में इनके अनुयायी पाये जाते हैं। पाठकों के मनों में ही नहीं, मेरे मन में भी प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठा कि रोहल-साहब के पिता का नाम साहोखान अथवा साहूखान था, तब रोहल-साहब के पुत्र का नाम भी साहूखान कैसे हो सकता है? क्या दादा व पोता का एक नाम होना संभव है।

मैंने यह जिज्ञासा रोहल-साहब के अखाड़े के पुजारी वा महंत श्रीअचलरामजी साँसी से पूछा, तब उन्होंने बताया कि जांगेचाओं में कभी-कभी दादा व पोते का नाम एक हो जाया करते थे। हमने सुविधा के लिये रोहल-साहब के पिता को साहोखान-साहब तथा पुत्र को साहूखान-साहब लिखा है।

4.(6). जन्म-स्थान : रोहल-साहब के जन्म-स्थान के बारे में तवारीख में जो उल्लेख मिलता है, वह वह इस प्रकार है, ''नका लाज बारे में का बि दाखिला आहे चवनि था त ऊमरकोट मां समई विया ऐं पोइ पदमात जे भिट ते अची रहिया, चवण में अचे थो त पदमात जे भिट ते हिक ओलियाउ जो मकबिरो अञां ताईं आहे जिते सालियानो मेलो बि लगन्दो आहे। पृष्ठ 514

विकीपीडिया की साइट पर उपलब्ध सूचना के अनुसार इनका जन्मस्थान ऊमरकोट के निकटस्थ पद्म-भिट (सिन्ध) ही ज्ञात होता है।

डॉ. रमेश मिश्र ने भी इनका जन्मस्थान 'पद्माद जी भिट्ट गाँव, तहसील ऊमरकोट, जिला थारपरकर (सिंध) ही लिखा है। संत रोहल फकीर : ग्रन्थावली, पृष्ठ-18.

विकीपीडिया में और भी लिखा है कि रोहल-साहब का जन्म जिस गाँव में हुआ उसका नाम रोहलबाई हो गया किन्तु अब इस नाम का गाँव अस्तित्व में नहीं है।

डॉ. मिश्र ने जन्म-स्थान या जन्म-देश के बारे में निम्न पदांश के आधार पर एक कल्पना और की है कि रोहल-साहब ने अपना जन्म-देश 'थर-देश' बताया है। यथा–'वे अपना गाँव थर ही बताते हैं–'थर गाँव मेरा थर नाम हमारा।

आपो हि आप रहूँ निरधारा' ॥थल॥ पदांक 31, पृष्ठ-20।

वस्तुतः रोहल-साहब अपना गाँव व नाम–दोनों 'थर' बताते हैं। यहाँ अगम-देशस्थ गाँव व नाम का उल्लेख है, न कि संसार में रहने वाले गाँव व देश का नाम। अगली पंक्ति में वे स्पष्ट कहते हैं कि मैं उस स्थिर गाँव में, स्थिर नाम धारण करके, स्वयं की ही महिमा में स्थित हुआ, स्वयं ही निराधार रूप में रहता हूँ। मेरा कोई आधार नहीं है, बल्कि मैं ही सबका आधार रूप हूँ, अधिष्ठान रूप हूँ। यहाँ 'थिर' का तात्पर्य स्थिर=निश्चल है। रोहल-साहब अन्यत्र अपना नाम 'रोहल नाम धराया' कहकर स्वयं को रोहल ही कहते हैं। अतः 'थर' शब्द के द्वारा रोहल-साहब का गाँव 'थर-पारकर' मानना सर्वथा भूल है।

4.(7). गुरु : रोहल-साहब सगुरे थे अथवा निगुरे थे, पहला प्रश्न तो यही है। दूसरा

प्रश्न है, यदि सगुरे थे तो इनका गुरु कौन था; हिन्दू था अथवा मुस्लिम था। हिन्दू था तो किस साधना-पद्धति और विचारधारा का अनुयायी था; और यदि मुसलमान था तो क्या वह सूफी था; सूफियों के किस सम्प्रदाय को मानता था? ये प्रश्न ऐसे हैं जिन पर प्रकाश पड़ने पर ही रोहल-साहब की विचारधारा का कुछ अंश स्पष्टतापूर्वक समझा जा सकता है।

विकीपीडिया-साइट के अनुसार रोहल-साहब कादिरी-सम्प्रदाय के सूफी शाह ईनायत की कृपा से सूफियत की ऊँचाइयों तक पहुँचे।

सिन्धी-साहित्य का इतिहास, लेखक ला॰ह॰ अजवानी में भी रोहल-साहब के गुरु का नाम शहीद शाह इनायत बता रखा है। 'झोक के संत प्रसिद्ध शहीद शाह इनायत के आशीर्वाद से सूफी-मत की पराकाष्ठा पर पहुँच गए।' पृष्ठ-135

इधर डॉ. रमेश मिश्र ने भी लिखा है कि रोहल-साहब के गुरु शाह इनायत शहीद थे जो उसी इलाके के मीरांपुर कस्बे के निकट झोंक गाँव के निवासी थे। (संत रोहल फकीर : ग्रन्थावली, पृष्ठ-22)

पृष्ठ-23 पर डॉ. मिश्र एक अन्य संभावना और व्यक्त करते हैं 'दूसरी मान्यता के अनुसार रोहल के गुरु रूप में एक अन्य योगी महात्मा डूंगरसी महाराज(फकीर) का नाम भी आता है जिनसे इन्हें योग-साधना एवं योग-ज्ञान प्राप्त हुआ था। (उक्त, पृष्ठ-23)

तवारीख में गुरु सम्बन्धी उल्लेख इस प्रकार मिलता है- 'मगर गुरुअ जो नालो बिन्हीं दरवेशनि किथे बि जाहिर कोन कयो आहे। चवनि था त इहो दरवेश डाढो लिकल हो ऐं पान खेनि मनह कई हुवाई त संदसि नालो न कजो। के चवनि था त संदनि मुरशिद जो नालो असहाक हो ऐं झोक वाजन साहिबनि जो मुरीद हो। कंडड़ी वारा दरवेश बि चवनि था त संदनि मुरशिद झोक वारा साहिब आहिन। मुराद साँई हिक बैत में चयो आहे त 'वरूं पुसी पदमात जे बन हलो व हालात' इन्हीअ बैत मां मथिन गाल्ह खे थोड़ी घणी मिले थी।' पृष्ठ-514

उक्त तीनों स्रोत झोंक गाँव निवासी शाह इनायत शहीद को ही रोहल-साहब का गुरु बताते हैं किन्तु लगता है, यह जनश्रुत्याधारित जानकारी मिथ्या है। कारण स्पष्ट है कि रोहल-साहब का जन्म तवारीख के अनुसार सन् 1726 जबकि अन्य स्रोतानुसार सन् 1734 सिद्ध होता है। इधर शाह इनायत शहीद सन् 1718 में ही शहीद हो गये। विकीपीडिया की साइट पर शाह इनायत शहीद, झोंकवालों का समय, जन्म 1655 ई॰ व मरण–7 जनवरी, सन् 1718 (सफर 17, 1130 हिजरी) बता रखा है। सन् 1726 में जन्मने वाला व्यक्ति कभी भी

सन् 1718 में मरने वाले व्यक्ति का शिष्य नहीं हो सकता; अतः शाह इनायात शहीद को गुरु मानने का मत खारिज हो जाता है।

इधर डॉ. मिश्र, योग-साधना के ज्ञान के लिये रोहल-साहब को डूंगरसी फकीर का शिष्य बताते हैं; यह भी निरी झूठी कल्पना है। रोहल-साहब और डूंगरसी फकीर ('डूंगरसी' सही नाम न होकर, 'डूंगर पुरी' है। देखें रोहलसाहब-ग्रंथावली (आलोच्य पुस्तक), पदांक 58-59) रोहल-साहब व डूंगर पुरी का सम्वाद जिस लहजे में उक्त दोनों पदों में उपलब्ध है, उससे यह बिल्कुल समझ में नहीं आता कि ये दोनों गुरु-शिष्य रहे होंगे। पहले डूंगर पुरी ने प्रश्न पूछा है और तत्पश्चात् रोहल-साहब ने उत्तर दिया है। उत्तर की पहली पंक्ति 'कहूँ म्हारी भक्ति का भेद, पड़ूत्तर साधू कहै' ही यह स्पष्ट करने को पर्याप्त है कि जब रोहल-साहब तथा डूंगर पुरी का सम्वाद हुआ, तब तक रोहल-साहब अपनी साधना-पद्धति, इष्ट आदि का निश्चय कर चुके थे और परमतत्व को प्राप्त कर चुके थे। परमात्म-प्राप्त व्यक्ति को गुरु करने की जरूरत नहीं होती और इस सम्वाद से वाद-प्रतिवाद होने की ही ध्वनि तो निकलती है किन्तु गुरु-शिष्य के प्रश्नोत्तर का आभास नहीं होता। अतः यह डॉ. मिश्र की कोरी कल्पना-भर है।

भारत में रोहल-साहब के अखाड़े के महंत वा पुजारी श्रीअचलरामजी से बात करने पर ज्ञात हुआ कि रोहल-साहब साँईनाथ नामक नाथयोगी के शिष्य थे। साँईनाथ हिन्दू थे और हिंगलाजदेवी के मंदिर के आस-पास वहीं कहीं के निवासी थे। साँईनाथ योगीराज के प्रभाव से रोहल-साहब हिन्दू योगियों की भाँति कोपीन लगाते थे तथा कमर से ऊपरी भाग के शरीर को योगियों की भाँति नग्न रखा करते थे। सेली-सींगी धारण करते थे जैसा कि अगमवार्ता के दोहा क्रमांक एक में उन स्वयं ने स्पष्टता के साथ कहा है। ये पूर्णतः शाकाहारी थे। इनके उपदेश जितने हिन्दू-विचारधारा के अनुकूल होते थे, उतने मुस्लिम अथवा सूफियों की विचारधारानुसार नहीं होते थे। उक्त महन्त श्रीअचलरामजी के अनुसार रोहल-साहब केवल मुस्लिम माता-पिता की सन्तान होने से ही मुस्लिम थे, अन्यथा विचारों से वे पूर्णतः हिन्दू थे। इसी कारण, इनके अनुयायियों में हिन्दू व मुसलमान दोनों ही थे। महंत अचलरामजी का कहना है कि मुसलमानों के प्रभाव से इनके बाद वाले उत्तराधिकारी अब रोहल-साहब को सूफी कहने लगे हैं किन्तु वे सूफियों की तरह न तो कुरान की आयतों को पढ़ते थे, न मोहम्मदसाहब का ही उन्होंने कहीं जिक्र किया है। उनकी सारी की सारी रचनाएँ निर्गुण-संतों व नाथ-सिद्धों का अनुगमन करती हैं। एक जगह रोहल-साहब ने स्वयं को कबीर का अवतार कहा है और इसीलिये इनको 'सिंध का कबीर-साहब' भी कहा जाता है। पद क्रमांक एक में कहते हैं–

'साधु कबीर मैं हुवा कासी। मिल पंडिताँ सूँ कीनी हाँसी ॥1/7॥

रोहलसाहब के अनुयायियों में इस संबंध में निम्न दोहा प्रचलित है–

कनड़ी कासी एक है, रोहल रूप कबीर।
जो चल आवै दुख मिटै, जनम जनम की पीर ॥

पद एक को ध्यानपूर्वक पढने से संज्ञान में आता है कि रोहल-साहब इस पद में अनेक हिन्दू साधु-संतों की तो चर्चा करते हैं किन्तु वे एक भी सूफी फकीर की चर्चा नहीं करते। सृष्टि को बनाने वाला भी वे स्वयं को ही बताते हैं। 'हम हूँ साहब सकल कूँ पालूँ। मैं अविनासी उपावणहारौ ॥'

इतना ही नहीं, रोहल-साहब स्वयं को ही समस्त ब्रह्मांड में व्याप्त बताते हैं। तत्काल बाद में, वे कहते हैं- मैं सबसे न्यारा=निर्लिप्त भी हूँ। जिस प्रकार स्वामीजी श्रीरामचरणजी राम को 'रमतीत' बताते हैं। जो राम समस्त ब्रह्माण्ड में रम रहा है और संसार से अतीत भी है। गीता भी इसी प्रकार का कथन करती है

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानिसर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥9/4॥

रोहल-साहब का पद ''हम हूँ सकल, सकल सूँ न्यारा ॥'' पदांक 57॥

कुरान में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता कि अल्लाह मानवाकृति में सृष्टि में अवतरित होता है जो सबमें रम भी रहा है तथा सबसे सर्वथा निर्लिप्त भी है। कुरानानुसार तो अल्लाह सातवें आसमान में पर्दों के भीतर रहता है, जहाँ केवल मोहम्मदसाहब जाते हैं और अल्लाह से मिलते हैं। अन्य किसी को मिलने की इज़ाज़त नहीं।

ये सभी बातें हिन्दूधर्म की हैं जो शाह इनायत शहीद की सूफियाना शिक्षाओं से मेल नहीं खातीं। अतः हमारा दृढ़ निश्चय है कि परम्परागत श्रुतकथन से सुनी गई जानकारी जो अचलरामजी ने बताई है, वही सही है। रोहल-साहब का यह कथन, क्या यह सिद्ध नहीं करता कि वे एक सिद्ध योगी थे, न कि सूफी

सेली सींगी सतसटी, हम हैं प्रगटे आइ।
पूनम तिथि दिन सोम, ले देह घर साहो के पाइ ॥ -अगमवार्ता, दोहां क-1

संत-साहित्य में प्रकटने का तात्पर्य साधनान्तर प्रकाश में आने से लगाया जाता है, न कि माता के गर्भ से उत्पन्न होने से। किन्तु रोहल-साहब के उक्त कथन में तो प्रकटने

का तात्पर्य पैदा होने से ही है और वे कहते हैं कि मैं साहोखान के घर में पूनम तिथि, सोमवार को सींगी, सेली, सतसटी के साथ ही उत्पन्न हुआ। इससे तो यह भी सिद्ध होता है कि रोहल-साहब जन्मजात सिद्ध योगी थे, पूर्वजन्मकृत ऋणानुबन्ध-वश ही उनका जन्म मुस्लिम-धर्मानुयायी माता-पिता के यहाँ हुआ। निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि शाह इनायत शहीद, रोहल-साहब के गुरु, समान समय न होने से हो ही नहीं सकते। डूंगर पुरी दसनामी संन्यासी थे, जो संभवतः जालोर (राजस्थान) के रहने वाले थे, जहाँ आकर शिक्षा पाना रोहल-साहब के लिये संभव नहीं था। द्वितीयतः जो उत्तर रोहल-साहब ने दिया है, उससे भी ज्ञात होता है कि जब दोनों का सम्वाद हुआ, तब दोनों परिपक्व विचाराधारा वाले अपने-अपने सिद्धांतों को मानने वाले सिद्ध-पुरुष थे। दोनों के मार्ग भिन्न थे। दशनामी संन्यासी शंकराचार्य के अद्वैत-वेदांत सिद्धान्त को मानने वाले संन्यासी होते हैं। पुरी दशनामियों का ही एक भेद है।

वस्तुतः गुरु वह होता है जो आत्मजिज्ञासु को अथवा भटके हुए साधक को तत्काल अध्यात्म-मार्ग पर आरूढ़ करा दे। जैसे रामकृष्ण परमहंस ने नरेन्द्र जैसे तार्किक पढ़े-लिखे नवयुवक को तत्काल भगवद्दर्शन करा-कर अध्यात्म-पथ-पथिक बना दिया। दादू ने रज्जब को एक शब्द सुनाकर सावधन कर दिया और विवाह करने से पराङ्मुख करके अध्यात्म-पथ-पथिक बना दिया।

रोहल-साहब का जीवन भी ऐसी ही एक आकस्मिक घटना से एकदम परिवर्तित हो गया जिसका वर्णन तवारीख में निम्न प्रकार हुआ है। चाहे वह दिव्य सिंह रूपी उपदेष्टा भगवान् स्वयं ही क्यों न हो। यदि वास्तविक रूप से देखा जाय तो रोहल-साहब के गुरु यह सिंह रूप धारी कोई महात्मा (साँईनाथ) या भगवान् स्वयं ही है।

'चवनि था त अजो रोहल नौकरी में हो त हिक डींहुं शिकार ते वियो हो दरियाह भरते त उते कंहिं संदसि नालो वठी सडियो हेडे होडे त को बि नजर कोन आयसि। करी बीहर बि सागी तरह सड़ू थियस पर तडहि बि को माण्हू नजर कोन आयसि, नेठि टीट्टर सड़ु थियण ते जां डिसे त हिक शख्स दरियाह जे डन्एं ते बीठी आहे पाणीअ में, रोहल-साहब डाऊंसि वियो, उहो शख्स संदसि डिठल कोन हो, उन चयुसि 'रोहल प्यालो पीअंदे' चयाउ छो त 'पीयंदसि' तहिं ते उन शख्स चयुसि त दरियाह जी मिटीअ मां सुराहीं ऐं प्यालो ठाहे, रोहल-साहब तैयार करे, खेसि डिना, उन सुराही दरियाह मां पानी सां भरे, प्याले मां भरी, पोए उन पाण ढुक भरे वाकी बचात, रोहल-साहब खे डिना ऐं, पीतो पोए छा डिसे त उहो शख्स आहे ई कोन, उहो केर हो तहिं बावत का बि साबिती कोन आहे, मगर चवन में अचे थो त खवाज़ हनकर हो, कंहिं वि सूरत में दरवेश कोन हो, प्याले पियण सां रोहलसाहब

जा कपाट खुली विया ऐतिरे कदुर जो सम पंहिंजी दिल जो हाल दुखी मइलूम पियो थे।'' पृष्ठ 513॥

उक्त उद्धरण से ज्ञात होता है, उक्त घटना के पूर्व रोहल-साहब राजसीक पुरुषों की भाँति शिकार करने भी जाया करते थे। उनका जीवन पूर्णतः राजपुरुषों जैसा था, जैसा कि तवारीख में लिखा है। इनके पास धन-दौलत, बाग-बगीचे, जेवर-जेवरात अच्छी मात्रा में थे। बस, पूर्वजन्मार्जित शुभ पुण्यों के कारण इनका भाग्योदय हुआ और ये विलासितामय जीवन को त्यागकर सर्वथा योगमार्ग-पथिक बन गये। यह सब परब्रह्म-परमात्मा की इन पर विशेष कृपा का फल था।

4.(8) विवाह : न तो तवारीख में ही और न अन्यत्र ही उल्लेख मिलता है कि रोहल-साहब का पहला विवाह किस परिवार की किस नाम वाली लड़की से हुआ किन्तु दूसरा विवाह मुराद-साहब, जो कल्होड़ाओं के यहाँ रोहल-साहब के साथ ही राज्य की नौकरी करते थे, तथा रोहल-साहब के प्रबल समर्थक व प्रथम अनुयायी थे, की बहिन के साथ हुआ। नाम इसका भी हमको ज्ञात नहीं। पहली पत्नी से साहूखान-साहब व गुलामअली-साहब पैदा हुए। दूसरी पत्नी से खुदाबख्शखान-साहब व दुल्हदरियाखान-साहब। रोहल-साहब की पुत्रियाँ भी थीं या नहीं, इसकी जानकारी हमको उपलब्ध साहित्य से ज्ञात नहीं हो सकी। ये चारों ही रचनाकार थे जिनकी सभी उपलब्ध रचनाएँ इस पुस्तक में प्रकाशित की जा रही हैं। इन सभी का विस्तृत विवरण आगे उत्तराधिकारी शीर्षक में मिलेगा।

डॉ. रमेश मिश्र ने बडी ही हास्यास्पद बात लिखी है 'आपकी दूसरी बीबी, आपके चचेरे भाई मुरादखान (सन् 1743-1796) की बेटी थी, जिनसे आपके तीसरे और चौथे क्रम के पुत्र थे।' सन्त रोहल फकीर : ग्रंथावली पृष्ठ-19। जैसा हम पूर्व में तवारीख के हवाले से लिख आये है, रोहल-साहब ने मुराद-साहब की बहिन से विवाह करके सम्बन्ध स्थापित किये। रोहल-साहब की दूसरी पत्नी मुराद-साहब की बेटी नहीं, बहिन थी। 'सिन्धी-साहित्य का इतिहास', पृष्ठ-138 पर स्पष्टतः लिखा है ''मुराद फकीर रोहल के उत्साही शिष्य थे। वे उनके साले भी थे।' पृष्ठ-138। विकीपीड़िया-साइट पर भी स्पष्टतः मुराद-फकीर को रोहल-साहब का साला ही बताया है। तवारीख तो स्पष्टतः दोनों को साला-जीजा ही बताती है। मुराद-साहब, रोहल-साहब से केवल तीन वर्ष छोटे थे, न कि नौ वर्ष; जैसा डॉ. मिश्र ने लिखा है। मृत्यु सन् के सम्बन्ध में तवारीख कोई निश्चित जानकारी नहीं देती है। अतः हम मुराद-साँई की मृत्यु-वर्ष के बारे में प्रश्न नहीं उठा रहे हैं।

तवारीख में विवाह के बारे में एक बात और लिख रखी है कि जिस समय

रोहल-साहब ने ऊमरकोट छोडा, उस समय उनकी एक ही पत्नी व दो लड़के थे। दूसरा विवाह तब हुआ, जब रोहल-साहब तथा मुराद-साहब कोटली उर्फ कोटड़ी गाँव में साथ-साथ रहे। तवारीख इस सम्बन्ध में अनभिज्ञता जाहिर करती है कि रोहल-साहब ने दूसरा विवाह, पहली पत्नी के मरने पर किया अथवा उसके जीवित रहते ही कर लिया।

4.(9). रोहल-साहब ने कल्होड़ाओं की **नौकरी क्यों छोड़ी**, का बहुत ही सुंदर विवरण तवारीख में मिलता है।

'सिंध का इतिहास' लेखक मोहन गियानी ने लिखा है कि सन् 1718 में कल्होड़ा-राज्य-संस्थापक यार मोहम्मदखान मरा और उसका उत्तराधिकारी नूर मोहम्मद बना। सन् 1740 में नूरमोहम्मद ऊमरकोट में चला गया क्योंकि इसी वर्ष में नादिरशाह ने सिंध पर आक्रमण किया। रोहल-साहब के पिता साहोखान इसी नूर-मोहम्मद की नौकरी में थे। यह सन् 1755 में मरा। इसके पश्चात् मुरादयाव व इसके पश्चात् गुलामशाह कल्होड़ा गद्‌दी पर बैठे। गुलामशाह ने मक्का-मदीना से अपने कफन के लिये दो कीमती कफन मंगवाए और तोशाखाना के अध्यक्ष रोहल-साहब को संभलाकर कहा कि यदि पहले मैं मर जाऊँ तो इस कफन को मेरे ऊपर डलवा देना और यदि आप मर जायेंगे तो मैं आपके ऊपर इसको डालूंगा। सन् 1772 में गुलामशाह कल्होड़ा मर गया। रोहल-साहब प्रतिज्ञानुसार उक्त कफन को गुलामशाह के ऊपर डालने को ले गये। जैसे ही गुलामशाह के उत्तराधिकारी सरफराज ने इस कफन को देखा, उसने रोहल-साहब से कहा, यह कफन में डालने लायक नहीं। इसको मेरे को दे दो और इनके ऊपर दूसरा कफन डालो। रोहल-साहब ने समझाया कि तुम्हारे मरहूम अब्बा ने तुमको राज्य दिया, दौलत दी, सब कुछ दिया, फिर भी तुम हो कि अपने पिता की इच्छानुसार उनके ऊपर एक कफन तक डालने को मना कर रहे हो। अच्छा हो, तुम मरहूम पिता की इच्छा का आदर करो। सरफराज नहीं माना। उसने उस कफन को अपने कब्जे में ले लिया। रोहल-साहब इस घटना से अत्यन्त व्यथित हुए तथा सोचने लगे कि व्यक्ति जिस धन-दौलत, राज-शासन के लिये इतना कठोर परिश्रम करता है, उसमें से एक तार भी उसके काम नहीं आता। अतः क्यों नहीं, इन सबको छोड़कर परमात्माभिमुख हुआ जाए! गुलामशाह के बारहवें का कार्यक्रम करके रोहल-साहब ने ऊमरकोट को त्यागने का निर्णय ले लिया। मुरादसाँई, जो इनके सहकर्मी थे, ने भी रोहल-साहब के साथ रहने का निर्णय किया और दोनों ने ऊमरकोट छोड दिया।

उस समय रोहल-साहब के पास बहुत अधिक सम्पत्ति, कुआँ, बाग, खेत, जमीन, जायदाद, माल, मवेशी प्रभूत मात्रा में थे।

उक्त घटना घटने पर रोहल-साहब ने पत्नी से आकर कहा- अब मैं नौकरी छोड़कर ऊमरकोट भी छोडूँगा। यदि तुमको मेरे साथ रहना है तो तुमको सब कुछ छोड़ना होगा। पत्नी ने सब कुछ छोड़कर फकीरों की तरह रहना स्वीकार किया। शरीर के गहने तक दान कर दिये। दोनों पुत्रों के शरीरों के भी गहने दान कर दिये। मुराद-साँई और रोहल-साहब के परिवार ऊमरकोट को छोड़कर कोटड़ी या कोटली में आकर रहने लगे। ये कोटली में कितने वर्ष रहे, ज्ञात नहीं, किन्तु मुराद-साँई का इन्तकाल कोटली में ही हुआ। यदि विकीपीडिया पर उपलब्ध इन्तकाल के समय को सही मानें तो मुराद-साँई का इन्तकाल सन् 1798 में हुआ। संभव है, रोहल-साहब व मुराद-साहब कोटली में सन् 1772 से 1798 तक रहे हों किन्तु तवारीख के अनुसार रोहल-साहब कोटली में अधिक वर्ष नहीं रहे। हो सकता है, रोहल-साहब कंडड़ी की ओर चले गये हों और मुराद-साहब कोटली में ही रहते रहे हों, जहाँ ही इनका इन्तकाल हुआ।

आगे तवारीख बताती है कि कोटली में एक शक्करशाह नाम का जबरदस्त आदमी रहता था। वह मुराद-साहब से झगड़ा करता था। मुराद-साहब ने उस शक्करशाह की शिकायत रोहल-साहब से की। रोहल-साहब ने कहा, वह शहीद है; उससे झगड़ा करना अच्छा नहीं, तब मुराद-साँई को संतुष्टि नहीं हुई। वे अपने कपड़े बाँधकर वहाँ से चले गये किन्तु मुराद-साँई का इन्तकाल कोटड़ी (कोटली) में ही हुआ। जब मुराद-साँई कपड़े बांध कर चले गये, तब रोहल-साहब का मन कोटली में नहीं लगा और वे वहाँ से, वहाँ तक आगे बढते चले गये जहाँ जाकर उनका रास्ता कंडी (काँटों के झाड़) ने रोका। तवारीख का कहना है कि वह काँटे का झाड़ अभी तक भी मौजूद है। उसकी छाल को गले में बाँधने से या घिसकर लगाने से लाभ होता है। जो मूल गाँव कंडड़ी रोहल-साहब के समय पर था, वह समुद्र के बहाव में वह गया। उस बहाव में काफी साहित्य, मजारें वगैरह भी बह गये। अभी का कंडड़ी गाँव रोहल-साहब नम्बर दो के जमाने में बसा। (रोहल-साहब नम्बर दो का विवरण आगे आयेगा।) तवारीख के वर्णन से स्पष्ट होता है, जब शक्करशाह से मुरादसाँई का वश न चला, तब वे वहाँ से चले गये। रोहल-साहब का मन भी अकेले नहीं लगा। उन्होंने भी कोटली (कोटड़ी) को छोड़ दिया और कंडड़ी में आ बसे किन्तु मुराद-साँई समय पाकर कोटली (कोटड़ी) में पुनः आ गये और अपने अंतिम समय तक यहीं रहते रहे। इनका इंतकाल भी कोटली (कोटड़ी) में ही हुआ।

4.(10). जोधपुर-प्रवास : जैसा पूर्व में लिखा है, रोहल-साहब कल्होड़ाओं के राजदूत भी रहे और इनको कई राज्यों में आना-जाना पड़ता था। जब इन्होंने पूर्णतः दरवेशी जीवन धारण-कर कंडड़ी में रहना प्रारम्भ किया, तब रोहल-साहब कुछ विश्वस्त सहयोगियों सहित जोधपुर के महाराजा विजयसिंह के शासनकाल में महाराजा के बुलावे पर जोधपुर आये और

गुलाब-सागर क्षेत्र में बने महलों में सैंतीस दिनों तक रहकर सत्संग सुनाते रहे। इस सत्संग में कौन-कौन-सी चर्चाएँ हुईं, का सामान्य-सा विवरण स्वयं रोहल-साहब की रचना, अगमवार्ता में मिलता है।

महाराजा विजयसिंह, महाराजा बखतसिंह के पुत्र थे और जोधपुर की पाट-गद्दी पर सम्वत् 1809 में बैठे। इनके पिता बखतसिंह को भाई-बँटवारे में नागौर की जागीर मिली थी। वे सम्वत् 1808 में जोधपुर के महाराजा बने और 1809 में मर गये। महाराजा बखतसिंह व महाराजा विजयसिंह दोनों ही परम वैष्णव थे। इन्होंने नागौर में अनेक मस्जिदें तुड़वाकर वहाँ मंदिर बनवाए। अजान पर रोक लगा दी, गौ-हत्या बन्द करवा दी। कसाइयों को दूसरे काम-धन्धों में नियोजित किया। विजयसिंह ने गोकुलिए गोस्वामियों को चौपासनी गाँव उदक में दिया जहाँ उन्होंने पुष्टिमार्ग-सम्मत ठाकुर-पूजा का मंडान बांधा। इनकी पासवान गुलाब परम वैष्णव थी जिसके कारण ही महाराजा की वैष्णव-भक्ति की ओर अभिरुचि अधिक जागृत हुई।

चूँकि अगमवार्ता स्वयं रोहलसाहब का बनाया हुआ ग्रन्थ है; अतः हमको यह मान लेने में कोई हिचकिचाहट नहीं कि इन दोनों का आध्यात्मिक-सत्संग हुआ था। हाँ, यह मानना ठीक नहीं होगा कि महाराजा रोहल-साहब का शिष्य बन गया। गुलाब को महाराजा विजयसिंह ने महलों में सम्वत् 1822 में चढ़ाया। उसके नाम से गुलाब-सागर व महल कुछ समय बाद बने होंगे। अतः हमको ऐसा लगता है, इस सत्संग का समय लगभग सम्वत् 1840 के आसपास का रहा होगा, क्योंकि रोहल-साहब ने सन् 1772 (सम्वत् 1829) में ऊमरकोट छोड़ा, कुछ समय कोटली (कोटड़ी) में रहे। तत्पश्चात कंडड़ी में आये, तब ही उनकी ख्याति जोधपुर तक पहुँची और वे जोधपुर आये होंगे। इस सारी घटना को घटने में ग्यारह वर्ष का समय लग जाना कोई बडी अवधि नहीं; अतः हमारा अनुमान है कि रोहल-साहब और महाराजा विजयसिंह का सैतीस दिन का सत्संग लगभग विक्रम-सम्वत् 1840 (सन् 1783) के आस-पास में हुआ होगा।

डॉ. रमेश मिश्र ने इस सत्संग का विवरण देते समय राजस्थान के इतिहास से अनभिज्ञ होने के कारण निम्न भूलें की हैं जो निश्चिय ही संशोधनीय हैं।

डॉ. मिश्र ने लिखा है 'इतिहासकार गौरीशंकर हीराचंद ओझा द्वारा लिखित जोधपुर राज्य का इतिहास (भाग 2, पृष्ठ 709) में विजयसिंह का उल्लेख मिलता है। विजयसिंह के पिता आत्माराम के निधन के बाद कुल 23 वर्ष की अवस्था में विजयसिंह राजगद्दी पर आसीन हुए थे। इनका राज्यकाल सन् 1752-1793 तक चला था। राजा विजयसिंह के सम्बन्ध में यह भी इतिहास-प्रसिद्ध है कि इन्होंने सन् 1783 ई॰ में अब्दुलनबी के साथ युद्ध

भी लड़ा था। नबी ने इन्हें थरपारकर जिले के ही ऊमरकोट क्षेत्र और उस क्षेत्र का किला सौंप-कर संधि की थी। संत रोहलसाहब विजयसिंह के दादा, बखतसिंह और पिता आत्माराम के समय से ही जोधपुर राजघराने में जाया-आया करते थे।' संत रोहल फकीर : ग्रंथावली, पृष्ठ-25।

डॉ. मिश्र का यह कथन ठीक है कि महाराजा विजयसिंह के अधीन ऊमरकोट का किला रहा था। यही वह कारण था जिसकी वजह से रोहल-साहब और महाराजा विजयसिंह का सत्संग सम्पन्न हुआ।

डॉ. मिश्र ने ओझाजी के इतिहास का संदर्भ तो दिया है किन्तु लगता ऐसा है कि उन्होंने ओझाजी की पुस्तक को ध्यानपूर्वक नहीं पढ़ा। यदि पढ़ा होता तो आत्माराम निरंजनी साधु को विजयसिंह का पिता न लिखते। वस्तुतः आत्माराम नामक व्यक्ति निरंजनी-पंथ का साधु था जिसको महाराजा विजयसिंह ने वि॰सं॰ 1816 में बागी तीन सामन्तों के साथ जोधपुर के मेहरानगढ किले में धोखे से बुलवाकर मरवा डाला। आत्माराम निरंजनी की समाधि किले में अब भी है। महाराजा विजयसिंह आत्माराम निरंजनी में गुरुभाव रखता था किन्तु इसके बागी सामन्तों से मिल जाने के कारण महाराजा ने इसको उनके साथ मरवा डाला। महाराजा विजयसिंह के पिता महाराजा बखतसिंह थे और बखतसिंह, महाराजा अजीतसिंह के दूसरे क्रमांक के पुत्र थे। अजीतसिंह के बड़े पुत्र अभयसिंह थे। अजीतसिंह के पश्चात् जोधपुर के मालिक अभयसिंह बने। अभयसिंह के पश्चात् इनके पुत्र रामसिंह जोधपुर के स्वामी हुए। रामसिंह से शासन नहीं सँभला, तब समस्त सामंत, मुत्सद्दी, कार्यकर्ता नागौर से बखतसिंह को बुलाकर लाये और सम्वत् 1808 में जोधपुर की गद्दी पर बैठाया। इस प्रकार बखतसिंह व विजयसिंह जोधपुर के महाराजा बने।

बखतसिंह वि॰सं॰ 1786 से 1808 तक नागौर के राजा रहे। उसके पश्चात् लगभग 14 महिने सम्वत् 1808 से 1809 तक जोधपुर के शासक रहे।

डॉ. मिश्र ने अगमवार्ता का परिचय देते समय एक भयंकर भूल और की है। वे लिखते हैं- 'संवाद जोधपुर के राजा विजयसिंह और उनके दरबारी पुरोहित ईसरसिंह के साथ बातचीत के रूप में निरूपित किया गया है।' (उक्त पुस्तक, पृष्ठ-43)

वस्तुतः गद्य ग्रंथ 'अगमवार्ता' में कहीं भी 'ईसरसिंह' का कोई उल्लेख नहीं है। पता नहीं, डॉ. मिश्र को ईसरसिंह का नाम कहाँ से मिल गया। सम्वाद सीधे-सीधे रोहल-साहब और महाराजा विजयसिंह के बीच में है। शास्त्रार्थ के लिये आये विभिन्न शास्त्रार्थियों का उल्लेख अवश्य है। जैसे रामस्नेही (शाहपुरा के रामस्नेही), रामापंथी (खेड़ापा के रामस्नेही) आदि-आदि। यहाँ भी नामोल्लेख नहीं है।

हाँ, रोहल-साहब के पदांक 15 में ईसरदास वैरागी का नाम अवश्य आया है जिसके साथ रोहल-साहब की ज्ञानचर्चा, प्रश्नोत्तर का विवरण है। इस पद में चर्चा करने वाले का नाम ईसरदास वैरागी आया है जिसका तात्पर्य है, यह साधु वैरागी अर्थात् रामानन्दी-सम्प्रदाय का वैष्णव साधु था। डॉ. मिश्र एक तरफ ईसरसिंह लिखते हैं, दूसरी ओर उसको पुरोहित लिखते हैं। राजस्थान की संस्कृति व जाति व्यवस्था को ठीक ढंग से न जानने के कारण ही ऐसा लिखने में आ गया है। राजस्थान में केवल वे ब्राह्मण पुरोहित ही 'सिंह' शब्द का प्रयोग करते हैं जो मात्र राजा का पौरोहित्य करते हैं किन्तु वे अध्यात्म-चर्चा नहीं करते। अध्यात्म-चर्चा आदि करने के लिये व्यास होते थे। राजपुरोहित जन्म-मरण आदि का भी सारा कार्य राजा की ओर से करते थे। जैसे पिता के मरने पर पुत्र शिर का मुंडन कराता है किन्तु राजा का पुत्र, पिता के मरने पर मुंडन नहीं कराता। यह राजपुरोहित ही मुंडन करवाता है, यही बारह दिनों तक समस्त विधि-विधान करता है। इनके अलावा अन्य पुरोहित 'सिंह' शब्द का प्रयोग नहीं करते। लगता है, डॉ. मिश्र कुछ का कुछ लिखने के आदी हैं, या लिखते समय संदर्भो की पुनः जाँच नहीं करते और कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा मिलाकर स्मृति को आधार बनाकर कुछ का कुछ लिख डालते हैं। वस्तुतः पदों के आधार पर रोहल-साहब का सम्वाद ईसरदास वैरागी से हुआ है, न कि ईसरसिंह से।

4.(11). उत्तराधिकारी : रोहल-साहब के पश्चात् उनकी संतति का क्रम व गद्दी पर कौन-कौन बैठा, का एक खाका तवारीख में उपलब्ध है, उसी को आधार बनाकर यहाँ लिखा जा रहा है।

रोहल-साहब का परमधाम-गमन विकीपीडिया-साइट के अनुसार सन् 1804 है जबकि तवारीख में कोई निश्चित् सन् न देकर कहा गया है कि रोहल-साहब नम्बर एक सन् 1806 के पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो गये होंगे। रोहल-साहब के पश्चात् उनकी गद्दी पर उनके बड़े पुत्र साहूखान-साहब बैठे। साहूखान-साहब के नाम का एक परवाना खानगाह में सन् 1231 हिजरी का तवारीख लिखने वाले को मिला, इसके आधार पर यह हिजरी सन् 1816 के समान ज्ञात होता है। तवारीख में लिखा है, साहू-साहब इसके पश्चात् ही मृत्यु को प्राप्त हुए। कहते हैं, मृत्यु के समय इनकी उम्र काफी बड़ी थी, किन्तु कितनी थी, पता नहीं। यदि ये अपने पिता की बीस वर्ष की उम्र में भी जन्मे हों तो इनका जन्म वर्ष 1746 ई॰ आता है। इनके कोई पुत्र नहीं था। अतः इनके पश्चात् इनके छोटे भाई गुलामअली-साहब को गद्दी पर बैठाया गया। इन्होंने अपनी रचनाओं में गुरु के रूप में साहूसाहब का ही नाम लिया है। गुलामअली साहब के समय की कोई सनद या रुक्का-परवाना नहीं मिल सका।

जैसा पूर्व में लिखा गया है, पुराना कंडड़ी गाँव दरिया के किनारे था और दरिया के

जलजले में डूब गया। अतः यदि कोई दस्तावेज रहे भी होंगे तो वे जल की भेंट चढ़ गये होंगे। अब वे प्राप्त नहीं हैं। गुलामअली-साहब के दो पुत्र थे। बड़े पुत्र अल्लादितो तथा छोटे पुत्र नवाबखान थे। गुलामअली-साहब के पश्चात् गद्दी पर अल्लादितो बैठे। इन्हीं का नाम रोहल-साहब नम्बर दो हुआ। इन रोहल-साहब दूसरे के नाम का पहला प्रमाण सन् हिजरी 1256, सन् 1840 का है। इससे ऐसा ज्ञात होता है कि सन् 1840 के पूर्व ही गुलामअली-साहब का इंतकाल हो गया। गुलामअली-साहब ने गद्दी अपने पुत्र को दी। अपने दोनों छोटे भाइयों खुदाबख्श-साहब व दुल्हदरियाखान-साहब को नहीं दी।

इन दोनों ही वैमात्रेय भाइयों ने गुरु रूप में गुलामअली-साहब का ही नाम-स्मरण किया है।

तवारीख कहती है कि उक्त रोहल-साहब नम्बर दो, गद्दीनशीन होने के पूर्व टालपुर-खैरपुर की राज्य-नौकरी करते थे। तवारीख के अनुसार उस समय टालपुर-खैरपुर रियासत का शासक मीर अलीमुराद था। जब हम 'सिंध का इतिहास' पढ़ते हैं, तब पता लगता है कि कल्होड़ा शासक सरफराज ने बलोच बेहरामखान व उसके पुत्र मीर सूबेदारखान को मरवा दिया था। इस मीर सूबेदारखान के चार पुत्र थे, मीर फतेहखान, मीर करमअलीखान, मीर गुलामअलीखान और मीर मुरादअलीखान।

मीर फतेहखान ने ही कल्होड़ा-शासन का अंत किया और 'सिंध का विजेता' खिताब प्राप्त किया। फतेहखान ने जीते हुए देश को सात भागों में बाँटा। चार भाग चारों भाइयों के लिये रखे। दो भाग सहयोगी मीर सोराब को दिये तथा एक भाग मीर ताहरखान को दिया। फतेहखान ने अपनी राजधानी हैदराबाद को बनाई। सोराबखान ने खैरपुर को तथा ताहरखान ने मीरपुर खास को अपनी राजधानी बनाई। यद्यपि ये सभी स्वतंत्र थे तथापि बाहरी आक्रमण के समय एक होकर लड़ने-भिड़ने के लिये वचनबद्ध थे। देखें–'सिंध का इतिहास' : मोहन गियानी, पृष्ठ-118, 119।

हस्तलिखित तवारीख मीर मुरादअली को टालपुर-खैरपुर का शासक बताती है जबकि इतिहास खैरपुर का शासक सोराबखान को बताता है। यह इतिहास का विषय है। हमारे पास जितनी जानकारी है, हमने पाठकों को उपलब्ध करवाई है।

तवारीख में लिखा है, उक्त मुरादअलीखान का दरवेशों की ओर विशेष झुकाव था और वह फकीरों, दरवेशों की कद्र व इज्जत करता था।

ख्यात=तवारीख लिखने वाला लिखता है कि मेरे पिता ने रोहल-साहब नम्बर दो की बहुत वर्षों तक सोहबत (सत्संग) की थी, वे साथ-साथ रहे थे। उसको उसके पिता ने

बताया कि रोहल-साहब नम्बर दो कद्दावर वदन, कद काठी बड़ी, जिस्मानी ताकत वाले तथा शक्ल-सूरत से सोहने-सुन्दर लगने वाले इंसान थे। उनका चलना-फिरना, रहन-सहन अमीरों जैसा था। उनके बाल घुंघराले थे, इस कारण उनके सफेद बाल कभी भी दिखने में नहीं आये। लेखक को उसके पिता ने बताया कि रोहल-साहब नम्बर दो जैसा शक्ल का शानदार, खूबसूरत और सोहना आदमी उसने उसकी जिन्दगी में नहीं देखा। इन रोहल-साहब दूसरे के गुरु गुलामअली साहब ही थे।

इन रोहल-साहब दूसरे के तीन मित्र थे जिनमें से एक का नाम कादरबख्श अपर नाम बैदल फकीर था। कहते हैं- चारों ने एक ही समय, एक ही तारीख को, एक ही रात्रि में प्राणों को त्यागा।

प्राण त्यागने का जब समय नज़दीक आया, तब उक्त रोहल-साहब नम्बर दो के पुत्र मोहम्मदहसन साँई ने आकर कहा कि बाबूजी! आपका बेड़ा जाने को कोठी के बाहर तैयार खड़ा है। तब रोहल-साहब दो ने कहा, मैं कमर कसे तैयार खड़ा हूँ किन्तु उक्त कादरबख्श साहब ने कुछ समय लगा दिया है। इसलिए रुका हुआ हूँ। इन्होंने हिज़री सन् 1289 में देह त्यागी। 1289 हिजरी सन् का क्रिश्चियन वर्ष 1872 आता है। महिना ग्यारहवाँ व तारीख सोहलहवीं थी (विकीपीडिया साइट पर सन् 1873 है।) रोहल-साहब दूसरे के दो चाचा थे–खुदाबख्शखान-साहब व दूल्हदरियाखान-साहब। खुदाबख्शखान साहब सन् 1847 से 1850 के बीच कभी मृत्यु को प्राप्त हुए किन्तु दूल्हदरियाखान-साहब सन् 1872, जब रोहल-साहब दूसरे मरे, तब तक जीवित थे। इन रोहल-साहब द्वितीय के छोटे भाई नवाबखान-साहब अपने सबसे छोटे चाचा दूल्हदरियाखान-साहब के शिष्य थे।

इन रोहल-साहब द्वितीय के केवल एक पुत्र थे। जैसा पूर्व में कहा गया है,उनका नाम मोहम्मदहसन साँई था। रोहलसाहब द्वितीय ने अपनी गद्दी इन्हीं मोहम्मदहसन साँई को सौंपी।

रोहल-साहब द्वितीय पूर्णतः सबूरी (शान्त आत्मा वाले) थे। बहुत कम बोलते थे। उनको फारसी, उर्दू, हिन्दी तीनों भाषाएँ अच्छी तरह आती थीं। इन्होंने अपनी रचनाएँ रोहल के नाम से रचीं। जब इन्होंने अपनी व रोहल-साहब नम्बर एक की रचनाओं को मिलाया तो दोनों करीब-करीब एक जैसी निकलीं। अतः इन्होंने अपनी समस्त रचनाओं को अग्नि में डालकर स्वाहा कर दीं। इस कारण इनकी अब कोई रचनाएँ नहीं मिलतीं।

अगले गद्दीनशीन मोहम्मदहसन साँई अपने सोऽहं स्वभाव में मस्त रहते थे। इनके कोई संतान नहीं हुई। अतः इन्होंने अपने चाचा के पुत्र गुलामअली साँई को गद्दी सौंपी। उस समय गुलामअली साँई की उम्र बारह वर्ष की थी।

यह जीवनी GBI दिसम्बर 1932 तक की लिखी गई है।

गुलामअली साहब ने सन् 1955 में प्याला पिया अर्थात् गादीनशीन हुए।

इनके पश्चात् मिट्ठलसाँई गद्दीनशीन हुए और उनका नाम रोहल-साहब तीसरा रखा गया। ये सन् 1956 में गद्दीनशीन हुए और सन् 1989 अगस्त 7 को, चार मोहर्रम, सोमवार दिन, शाम साढे... बजे मृत्यु को प्राप्त हुए। इनके बाद 20/10/ 1989 को इनके पुत्र गुलामरसूल फकीर को गद्दीनशीन किया गया जो अभी मौजूद हैं।

4.(12). रोहल-साहब की समाधि (मज़ार) पर प्रतिवर्ष उर्स का आयोजन होता है जिसमें थार, रहीमयारखान, बहावलपुर तथा आस-पास के रोहल-अनुयायी आते हैं। रोहल-साहब व इनके परवर्तियों के भजन श्रद्धा से गाते हैं। गद्दीनशीन गद्दी पर बैठते हैं। यात्री नमस्कार करते हैं। भोजन शाकाहारी परोसा जाता है, उर्स में। वैसे, वहाँ के वातावरण के अनुसार वर्तमानकालीन लोग अब निरामिष-भोजी नहीं रह गये बताये।

4.(13). मृत्यु : जैसा पूर्व में लिख आये हैं, तवारीख लिखने वाले ने रोहल-साहब की मृत्यु का कोई निश्चित, सन्, महीना, तारीख व दिन नहीं लिखा है। केवल इतना ही लिखा है कि सन् 1806 से पूर्व मृत्यु का प्राप्त हुए।

विकीपीडिया की साइट, मृत्यु सन् 1804 बताती है। अतः जब तक कोई विपरीत प्रमाण या पुख्ता जानकारी नहीं मिलती, तब तक सन् 1804 को ही रोहल-साहब का परमधाम-गमन का वर्ष मान सकते हैं।

4.(14). इस पुस्तक में हम कुल पाँच रचनाकारों की रचनाएँ दे रहे हैं। जितनी जानकारी इनके बारे में तवारीख व अन्यान्य प्रामाणिक स्रोतों से हमको मिलीं, उतनी हमने यहाँ लिख दी हैं। हो सकता है, इनके बारे में और भी जानकारी हों किन्तु वे हमारे पास नहीं हैं, ऐसी दशा में हम विवश हैं।

4.(15). विचार : रोहल-साहब की रचनाएँ हमने सानुवाद प्रस्तुत की हैं। अतः उनके विचारों को समझना मुश्किल नहीं। फिर भी भूमिका में लिखते समय लेखक तुलनात्मक रूप में स्वतंत्रतापूर्वक लिखता है जिससे पाठक के जहन में विषय स्पष्टता के साथ शीघ्रतापूर्वक प्रवेश पा लेता है। फिर भी हम विचारधारा को यहाँ नहीं लिख रहे हैं।

4.(16). भारत में रोहल-साहब के अखाड़े के महंत व पुजारी श्रीअचलरामजी से वार्तालाप में ज्ञात हुआ है कि रोहल-साहब 'सोऽहं' गुरु-मंत्र अपने शिष्यों को सुनाया करते थे। अब भी ये अनुयायी सम्बोधन व परस्पर मिलने पर 'हरिओम' बोलकर अभिवादन करते

हैं। रोहल-साहब की गद्दी के साँई अथवा सूफी कौनसा सम्बोधन या अभिवादन-शब्द प्रयुक्त करते हैं, पता नहीं किन्तु भारत के अनुयायियों द्वारा प्रयुक्त 'हरिओम' शब्द व गुरुमंत्र 'सोऽहं' का प्रयोग निश्चिततः रोहल-साहब को हिन्दुओं के अत्यधिक निकट ही नहीं, हिन्दू ही सिद्ध करते हैं। तवारीख में भी बार-बार इस बात पर जोर दिया गया है कि पूरे सिन्ध में ऐसा कोई भी सूफियों का फिरका नहीं, जिसने हिन्दुस्तानी-भाषा में इतना बडा साहित्य रचा हो। रोहल-साहब व इनके परवर्तियों ने लगातार सिंधी-भाषा सहित हिन्दुस्तानी-भाषा में भी साहित्य की रचना की है।

4. आभार :

भारत में रोहलसाहब के अखाड़े के महंत श्रीअचलरामजी व श्रीप्रभुरामजी 'दासावत' ने मेरे से निवेदन किया कि मैं रोहलसाहब व उनके अनुवर्तियों की वाणी, जो अरेबिक-सिंधी-लिपि में लिखित हैं तथा जिनको उन्होंने श्रीमती कमलेशजी से नागरीलिपि में लिखवा ली है, का सम्पादन कर दूँ। मैंने अपनी योग्यतानुसार रोहलसाहब की वाणी सानुवाद व उनके चारों पुत्रों की मूल वाणी का सम्पादन कर दिया। रोहलसाहब व इनके सभी अनुवर्तियों ने तत्कालीन हिन्दी प्रदेशों के निर्गुणी-संतों ने जिस भाँति की भाषा प्रयुक्त की है, वैसी ही भाषा में इन्होंने अपनी अधिकांश वाणियों की रचना की है। कुछ वाणी सिंधी-भाषा में भी रची हैं। सिंधी-भाषायी-वाणियों को सही व शुद्ध रूप में सम्पादित करने के लिये मैंने सिंधी-भाषा-विज्ञों से, जो मेरे परिचित हैं सहयोग करने का निवेदन किया किन्तु किसी ने भी सहयोग का आश्वासन देकर, सहयोग नहीं किया। केवल श्रीसाहिब-बिजाणीजी, आदिपुर (कच्छ), गुजरात ने रोहलसाहब के आठ-दस काफी-रेखतों के शुद्ध रूप के आडियो मेरे पास भेजे।

जब पुस्तक मेरी ओर से पूर्णतः तैयार हो गयी, तब मैंने पुणे के प्रो. (डॉ.) लछमण परसराम हर्दवाणी साहब को पूरी पाण्डुलिपि टेलीग्राम पर भेजी। उन्होंने पूरी पाण्डुलिपि का अवलोकन कर आवश्यक सुधार करने के सुझाव दिये और अपनी मूल्यवान सम्मति लिखकर भेजी। मैं, उक्त सभी महानुभावों सहित अन्यान्य ज्ञाताज्ञातों के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। जिनकी पुस्तकों को मैंने उद्धृत की हैं, उनके प्रति भी आभार।

—ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल
सम्पादक : श्रीरामस्नेही-संदेश
60/60, रजत-पथ, मानसरोवर, जयपुर 20
चर-भाष : 09351503555
क्षिप्र-संदेश : bksinghal57@gmail.com

रोहल साहब की वाणी

शास्त्र मन-प्रबोध मन-चित्त का सम्वाद

दोहा

सतगुरु पाँइ पड़ंत हूँ, जिन सँग उपज्यो ग्यान।
दया भई दय्याल की, तब जीत्यो गढ अभिमान ॥1॥

सद्गुरु के पैरों में नमस्कार करता हूँ जिनकी संगति में ज्ञानोदय हुआ। जब सद्गुरु दयालु की कृपा मेरे ऊपर हुई तब मैंने अभिमान के गढ़ को जीत लिया ॥1॥

गढ जीतण आसान है, मुसकिल वैसण माहिं।
बिना जोत जगदीस की, अँधियारा ठहरत नाहिं ॥2॥

पाठांतर : अंधा सूझत नाहिं

अभिमान-गढ़ को जीतना आसान है किन्तु उसमें निवास कर पाना मुश्किल है। बिना जगदीश्वर की ज्योति के अज्ञानी रूपी अंधा उसमें ठहर नहीं पाता ॥2॥

जो चाहौ प्रभ आपनौ, ऐ हँस काया सोध।
रोहल राज रत कहत है, मन को मन परबोध ॥3॥

ऐ हंस! यदि तू अपने प्रभु को पाना चाहता है तो अपनी काया का शोधन कर। राज-रत = आत्म-तत्त्व के रहस्य का मर्मी रोहल मन को प्रबोधित करने को 'मन-प्रबोध' कहता है ॥3॥

एक कमल दो फूलड़ा, जड़ चेतन है नाम।
जड़ तजि चेतन जद गहै, तव पावै विसराम ॥4॥

एक कमल के दो फूल हैं। एक का नाम जड़ व दूसरे का नाम चेतन है। साधक जब जड़ को त्यागकर चेतन-तत्त्व का ग्रहण करता है, तब ही वह विश्राम प्राप्त करता है ॥4॥

जड़ चेतन समझे बिना, सरै न एकौ काज।
जान सकै तो जान मन, अवसर बीत्यो आज ॥5॥

जड़ एवम् चेतन का भेद समझे बिना एक भी कार्य सिद्ध नहीं होता। हे मन! इस रहस्य को जानना चाहे तो भली प्रकार जान ले, अन्यथा अवसर समाप्त हुआ जा रहा है ॥5॥

जड़ चेतन दोनों बसै, काया नगरी गाम।
आपौ अपनी भावना, आपौ अपना ठाम ॥6॥

काया-नगर रूपी ग्राम में जड़ एवम् चेतन दोनों निवास करते हैं। उनकी अपनी-अपनी भावनाएँ व अपने-अपने स्थान हैं ॥6॥

आपौ अपने ठाम में, करते भोग विलास।
जगत भूल संसै पड़्यो, को समझै बिरला दास ॥7॥

अपने-अपने स्थानों में ही अपने-अपने भोग-विलास करते हैं। जागतिक-लोग जड़-चेतन का भेद न समझ-कर संशयग्रस्त हो जाते हैं कि कौन-सा तत्त्व नित्य व कौन-सा अनित्य है। चिज्जड़ का यथार्थ भेद कोई बिरला ही जानता है ॥7॥

जड़ चेतन समझे बिना, पचि पचि मरना आग।
समझैगा को संतजन, जिनके मस्तक भाग ॥8॥

जड़ व चेतन तत्त्व को समझे बिना संसारी जीव जन्म-मरण रूपी अग्नि में पच-पच कर जल मरता है। जिनके मस्तक पर अच्छा भाग्य लिखा है, वे ही संतजन चिज्जड़ के यथार्थ भेद को समझते हैं ॥8॥

चेतन एक अखंड है, सब घट रह्यो समाइ।
माया सूँ मिल जड़ भयो, सुद्ध सरूप न पाइ ॥9॥

चेतन-तत्त्व एक व अखंड है जो समस्त शरीरधारियों में समाया हुआ है। माया से मिल जाने के कारण जड़ तत्त्व हो जाता है; फलतः शुद्ध स्वरूप आत्मतत्त्व = चेतन-तत्त्व को प्राप्त नहीं कर पाता ॥9॥

माया सूँ मिल जड़ भयो, जड़ सँग होया जीउ।
नीच करम नीचौ भयो, ओहि जीउ ओहि सीउ ॥10॥

माया को अंगीकार करने से जड़ हो जाता है और जड़ के संग से जीव संज्ञा हो जाती है। नीच कर्म करने से नीचा हो जाता है। माया के संग से यही चेतन-तत्त्व जीव हो जाता है जबकि माया का संग त्याग देने से यही चेतन-तत्त्व परमात्मा है ॥10॥

जीउ समावै सीउ में, सीउ मिलै ब्रह्म पास।
ए तीनों भव जब मिट गए, केवल एक प्रकास ॥11॥

जीव, शिव में समाहित होता है। शिव, ब्रह्म में समाहित होता है। जब जीव, शिव व ब्रह्म नामक तीनों भाव मिट जाते हैं, तब एक कैवल्य का प्रकाश होता है ॥11॥

इन्द्रिन स्वादन लग रह्यो, रात दिवस विष खात।
सुधी बुधी सब भुल गई, अब कछू न आवै हाथ ॥12॥

जीव, इन्द्रियों के भोगों में दिन-रात्रि लगा रहकर विषय-भोग रूपी विष (जहर) खाता है जिस कारण सारी सुधि-बुधी (बुद्धि-विवेक) नष्ट हो जाती है और तत्त्व रूपी कुछ भी प्राप्त नहीं होता ॥12॥

कथता वकता तू सदा, और न दूजा कोइ।
मैं मूरख मतिहीन हूँ, सरण पड़्यो अब तोइ ॥13॥

हे परमात्मन्! तू ही कथन करने वाला व बोलने वाला है। तेरे अतिरिक्त और कोई दूसरा तत्त्व नहीं है। मैं मूर्ख व बुद्धिहीन हूँ। तेरी शरण में आकर पड़ गया हूँ ॥13॥

तू दातार जगतगुरु, मांगूँ दान जुगास।
रोहल कूँ अब राखलो, चरण कमल के पास ॥14॥

हे जगद्गुरु! तू दानी है। मैं जिज्ञासु बनकर तेरे से मांग रहा हूँ। अब रोहल को अपने चरण-कमलों की संनिधि में रख ले ॥14॥

तू सागर मैं डेडरी, बेहद अगम अगाध।
तुमै भरोसा मैं किया, मन चित का संवाध ॥15॥

तू निस्सीम, अगम्य व अगाध सागर है, मैं मेंढक के समान हूँ। मैंने तेरा ही विश्वास किया है और इस मन व चित्त के संवाद को मूर्तरूप दिया है ॥15॥

तेरी अगम अगाध गति, जिसका आर न पार।
आदि अंति तहाँ मधि नहीं, रह्यो नाम निरधार ॥16॥

तेरी गति अगम्य व निस्सीम है जिसका कोई ओर-छोर नहीं है। तेरी गति का आदि, अंत व मध्य कुछ भी नहीं है। तू व तेरा नाम ही निरधार = सनातन है ॥16॥

तुम बिन अवर न दूसरा, क्या मुख सूँ करिए बात।
ज्यूँ गूंगा सपना लहै, सिमर सिमर पछतात ॥17॥

तेरे अलावा दूसरा कोई तत्त्व ही नहीं है। मुख से तेरे बारे में उसी प्रकार इदमित्थं कुछ भी कह पाना शक्य नहीं, जिस प्रकार स्वप्न में गूंगा कुछ प्राप्त करे और जागने पर उसका स्मरण तो करे किन्तु कह कुछ नहीं सके, कहने के लिए पश्चाताप ही करता रह जाए ॥17॥

कथनी कथै अनेक विधि, जोगी जती संन्यास।
रोहल रहणी रहति बिन, पड़ी काल की फाँस ॥18॥

योगी, यती, संन्यासी अनेक तरह से कथन तो करते हैं किन्तु कथनानुसार आचरण व रहनी के अभाव में ऐसे कथन करने वालों पर काल की चोट पड़ती है ॥18॥

रहति हमारा देव है, अर रहति हमारा ग्यान।
रोहल रहणी रहति में, फूल्यो बिरख विग्यान ॥19॥

रहति = सदाचारी-जीवन ही हमारा देव है, वही हमारा ज्ञान है। रहनी रूप रहति में विज्ञान = विशेष ज्ञान = आत्मसाक्षात्कार रूपी वृक्षोदय होता है ॥19॥

वृख विग्यान जब फूलियो, अर वाणी फूटी वास।
ऊँच नीच घट एक ब्रह्म, सो हूँ पद अविनास ॥20॥

जब विज्ञानी रूपी वृक्ष का उदय जगत में होता है और उसमें सुवास रूपी वाणी का प्रस्फुटन होता है; तब-ऊँच-नीच सभी प्राणियों में एक ही ब्रह्म व्याप्त होता है। वही अविनाशी ब्रह्म मैं हूँ ॥20॥

ओऽहं सोऽहं भी थका, अजपा जाप प्रकास।
अंतर धुनि लगि आतमा, निहचै भयो विसास ॥21॥

ओऽहं व सोऽहं दोनों थक गये। अजपा-जाप का प्रकाश हो गया। आत्मा में अंदर ही ध्वनि लग गई। निश्चित ही विश्वास हो गया कि मैं ही ब्रह्म हूँ। (ब्रह्माकर-वृत्ति होने पर अहमाकार-वृत्ति (ओऽहं)व अन्याकारवृत्ति (सोऽहं) दोनों विलीन हो गईं और 'अहं-ब्रह्मास्मि' नामक चिंतन अपने आप होने लग गया। ब्रह्माकार-वृत्ति की ध्वनि अंतर में अनवरत होने लगी है। ऐसा होने से यह निश्चित् विश्वास हो गया कि मैं ही ब्रह्म हूँ, 'अहम्-ब्रह्मास्मि') ॥21॥

कीर्तन

मिलना है तो मिल लेवौ संतौ, ए मिलने की बेरा।
मनख जनम फिर हाथ न आवै, चौरासी लख फेरा ॥रहाउ॥
शाम घट्या सिर सेत भया है, अजहू न आवै लाजा।

जे नर तरिया से करनी सूँ तरिया, पूरण ताका काजा ॥1॥
ग्यान कथै नर रहणि न रहता, बिन करणी कैसा ग्याना।
मन परबोध सकै नहिं अपना, औराँ झगड़ा साना ॥2॥
हँसला होवै जो हंस गति चालै, छीलर पाँव न मेलै।
साध जो जाके घट उजवाला, अकळ कळा मूँ खेलै ॥3॥
सीस उतार धर्या गुरु आगै, अब कुछ संसा नाहीं।
पाँचौं उलट एक घर आणै, अनुभव आतम माहीं ॥4॥
भई कृपा तब सौदा बणिया, भगति भेद नहिं हाँसी।
रोहल रतन अमोलक मिलिया, सिर साँटै अविनासी ॥5॥22॥

हे संतो! यदि मिलना है तो मिल लो; मिलने का यही समय है। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते रहने तक मनुष्य-जन्म फिर मिलने वाला नहीं ॥रहाउ॥ मस्तक के काले केश कम होकर सफेद हो गये हैं, फिर भी तुझे लज्जा नहीं आती। जो भी प्राणी संसार-सागर से पार हुए हैं, वे सदाचरण व साधना के बल से पार हुए हैं और उनका कार्य पूरा हुआ है ॥1॥ प्राणी कथनी तो कथते हैं किन्तु तदनुसार रहनी नहीं रहते। बिना करनी (रहनी) के ज्ञान किस मूल्य का? स्वयं के मन को तो प्रबोधित कर नहीं पाते जबकि अन्यों के मन को प्रबोधित करने का उद्यम करते हैं ॥2॥ जो हंस (क्षीर-नीर-विवेकी) होते हैं, वे हंस की गति चलते हैं, छोटी-मोटी ताल-तलैया (क्षुद्र देवादि की उपासना नहीं करते) में पैर तक नहीं डालते। साधु वह है, जिसके अंतर में आत्मा का प्रकाश हो जाता है और अकल (कला विभाग रहित) की कला में विलास करते हैं ॥3॥ साधक जब शीश=अभिमान का परित्याग करके गुरु के शरणागत हो जाता है, तब किंचित् भी संशय शेष नहीं रहता। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को संसार की ओर से मोड़कर एक परब्रह्म-परमात्मा की ओर लगा देता है। फलस्वरूप अन्तर में ही आत्मानुभव करता है ॥4॥ जब सद्गुरु महाराज की कृपा हो जाती है, तब आत्मा-साक्षात्कार रूपी कार्य हो जाता है। भक्ति-तत्त्व गुह्य-तत्त्व है, यह कोई हँसी-खेल नहीं है। शीश समर्पित करने पर अविनाशी परब्रह्म-परमात्मा रूप अनमोल रत्न मिल गया ॥5॥22॥

अथ उत्पति के अंग का दृष्टांत

बारह पंथ हिन्दू सकल, बहतर मूसलमान।
जहिं जिस पद पिय पाइयो, सो ताकी करै बखान ॥23॥

हिन्दुओं के समस्त पंथ बारह माने जाते हैं जबकि मुसलमानों के बहतर। जिसने जिस मार्ग से प्रियतम को प्राप्त किया, वह उसी का वर्णन करता है ॥23॥

केवल गहर गँभीर है, जो कहण सुणण सूँ पार।
रोहल अटल अडोल है, निरदावै निरधार ॥24॥

परमात्म-तत्त्व केवल, गहरा और गंभीर है जो कहने व सुनने की सीमा से परे है। वह परमात्म-तत्त्व अटल, अडोल, निरदावा व निराधार है ॥24॥

ताका अंस परमातमा, इच्छा रूपी नाम।
औंकार ताते प्रगट, सो हउँ आतमराम ॥25॥

उस परम-तत्त्व का अंश ही परमात्मा है जिसका नाम इच्छा है। इससे ओमकार का प्राकट्य होता है। वही मैं आत्माराम हूँ ॥25॥

परमातम सुत आतमा, आतम सुत मन चित्त।
माया को अँस मन भयो, भगती को अँस नित्त ॥26॥

आत्मा, परमात्मा का पुत्र है। आत्मा के पुत्र, मन व चित हैं। माया का अंश मन है। भक्ति का अंश नित्य है ॥26॥

चौरासी लख जूण में, वस्तु विराजै एक।
जगत भूल संसै पड़्यो, बिना विचार विवेक ॥27॥

चौरासी लाख योनियों के जीवों में वस्तु रूप परमतत्त्व एक ही विराजता है। बिना विचार व विवेक के जगत् के प्राणी भ्रमित होकर संशय-ग्रस्त हो जाते हैं ॥27॥

पिंड ब्रह्मँड रचना रची, पाँच तत्त्व का मेल।
समझैगा को संत जन, ये अकळ कळा को खेल ॥28॥

पाँच तत्त्वों को मिलाकर पिंड व ब्रह्मांड की रचना रची। इसका रहस्य वही संत समझेगा जो अकल परमात्मा की कला के खेल को जानता है ॥28॥

अथ मन को कुटुम्ब

ममता माता मंन की, कुबुध्या दुरमति भैन।
तृष्णा राणी सूँ सदा, रिलमिल करता चैन ॥29॥

ममता, मन की माता है। कुबुद्धि व दुर्मति, बहिन हैं। तृष्णा उसकी रानी =पत्नी है जिससे सदा रमण करता हुआ आनन्दोपभोग करता है ॥29॥

काम क्रोध बलवान है, अर लोभ मोह अभिमान।
मन राजा के मंतरी, पाँय भए परधान ॥30॥

मन रूपी राजा के काम, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान बलवान मंत्री हैं और पाँव प्रधान हैं ॥30॥

पाप पुंन दरवान है, लालच मोह फरास।
हर्ष सोग दोइ खिदमती, अहनिस रहते पास ॥31॥

पाप व पुण्य द्वारपाल हैं। लालच व मोह, कर्मचारी हैं। हर्ष व शोक दोनों सेवाधारी हैं जो रात्रि-दिवस साथ में रहते हैं ॥31॥

अग्यान घोड़े पर चढ्यो, विसर्‌यो नाम अरूप।
रोहल रहणी रहति बिन, पड़्यो काल के कूप ॥32॥

मन, अज्ञान रूपी घोड़े पर आरूढ़ होकर अरूप-निराकार परमात्मा का नाम भूल जाता है। रोहल कहते हैं- आचरण व रहति के बिना जीव काल के कुएँ में गिरता है ॥32॥

करमन के मन बस पड़्यो, नाना रस के भोग।
सुधी बुधी सभ भुल गई, दिन दिन उपजै रोग ॥33॥

नाना विषय-रसों को भोगने के कारण मन कर्मों के अधीन हो जाता है। फलतः समस्त प्रकार की सुधि-बुधि भूल जाता है और दिनानुदिन नाना रोग (जन्म मरण रूपी रोग) बारंबार होते रहते हैं ॥33॥

जाके संगी ए सदा, सो मन अंध निरंध।
आप न चीन्है आप को, पड़्यो माया के फंध ॥34॥

जिसके संगी-साथी उक्त नाना विषय-रस-भोग हैं, वह मन निरंध=पूरा अंधा अर्थात् ज्ञान-हीन है। माया के फंदे में जकड़ हुआ है, वह अपने आपको को नहीं जानता ॥34॥

राम रतन धन छोडि कर, मूरख मेलै माल।
अँधला सौदा हारिया, कौडी बदले लाल ॥35॥

मूर्ख, राम जैसे रत्न रूपी धन का छोडकर माया रूपी माल का संचय करता है। अंधा, लाल के बदले में कौड़ी लेकर सौदा हारता है ॥35॥

अथ चित्त को कुटुम्ब

चित की माता बुद्धि है, रहणी करणी भैन।
सुरति सुहागण सूँ सदा, रिलमिल करता चैन ॥36॥

बुद्धि, चित्त की माता है। रहनी और करनी बहिन हैं। सुरति रूपी सौभाग्यवती से हिल-मिल-कर आनन्दोपभोग करता है ॥36॥

सील सँतोष र प्रेम सुधि, और विवेक विचार।
जाँके एह प्रधान है, सो कबहुँ न आवै हार ॥37॥

जिसके यहाँ शील, संतोष, प्रेम, बुद्धि, विवेक और विचार रूपी प्रधान मंत्री हैं, उसके राज्य को कभी भी हार का सामना नहीं करना पड़ता ॥37॥

दया धरम दरवान है, जप तप दोइ फरास।
भाव भगति दोइ खिजमती, निस दिन रहते पास ॥38॥

दया और धर्म द्वारपाल हैं। जप व तप दोनों कर्मचारी हैं। भाव व भक्ति दोनों खिदमत करने वाले हैं। ये सभी रात्रि-दिवस सन्निकट रहने वाले हैं ॥38॥

ग्यान घोड़े पर चढ्यो, सुरति निरति है पास।
अपरम पद के कारणै, अह निस फिरै उदास॥ 39॥

चित्त, ज्ञान रूपी घोड़े पर सवार है। सुरति व निरति दोनों उसके पास हैं। अपरम=अपरम्पार रूपी पद=परमात्मा को पाने के लिए रात्रि-दिवस संसार से उदासीन हुआ यत्र-तत्र-सर्वत्र भ्रमण करता है ॥39॥

जाके सँग में ये सदा, सो कहिए बड भाग।
रोहल ताकौं ना लगै, मन ममता को दाग ॥40॥

जिसके संग में उक्त सदैव रहते हैं, उसको महान् भाग्यशाली कहा जाता है। रोहल कहता है- इन भाग्यशालियों के ऊपर मन व ममता का दाग नहीं लगता ॥40॥

जामें राजा दो भया, काया नगरी एक।
सुख के रंजक ना रहै, पावै दुक्ख अनेक ॥41॥

जिस काया रूपी एक नगर में मन व चित्त रूपी दो राजा हो जाते हैं, उस नगर में रंचमात्र भी सुख का निवास नहीं रहता। उस नगर के वासी अनेक दुःख पाते हैं ॥41॥

अपनी सँवारत खैंचते, कोइ न मानें हार।
रोहल झगड़ा किम मिटै, दो पुरुषा इक नार॥ 42॥

अपने स्वार्थ की पूर्ति करने में दोनों में से कोई एक भी हार नहीं मानता। रोहल कहता है, वहाँ झगड़ा कैसे मिट सकता है जहाँ काया-पत्नी रूपी नगर एक हो जबकि उसके मन व चित्त रूपी दो पुरुष=पति हों ॥42॥

अथ कीर्तन

मानसरोवर मोती मुकता, गुरु गम बिन नहिं पावै।
पूरण पदवी प्रापत परखी, फिर नहिं गोता खावै ॥रहाउ॥
काया बाड़ी एकै तरवर, ऊगा तहाँ अमर फल लागा।
सिर साँटे को सूरा चाखै, कायर सुन सुन भागा ॥1॥
भँवर गुफा इक मन भरमेला, जोत जुगत की जागी।
पाँच सखा मिल साखी गावै, तत्त ताल धुनि लागी ॥2॥
जल भीतर एक अगनि जलत है, उजवाला बिन दीवै।
अंमृत धारा इमै पड़त है, को मन बिरला पीवै ॥3॥
प्रेम प्यास लागी उर अंतर, और कछू नहिं भावै।
देही भीतर अलख विराजै, जो खोजै सो पावै ॥4॥
अमरापुर में आसन कीना, दुरजन मार हटाया।
रोहल रात गई दिन पाया, मंछा मंगल गाया ॥5॥43॥

मानसरोवर में मोती रूपी मुक्ति है किन्तु बिना गुरु के मार्गदर्शन के उसको प्राप्त नहीं किया जा सकता किन्तु जो साधक पूर्ण-पद=पूर्ण परब्रह्म-परमात्मा का अपरोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, वे जन्म-मरण रूपी संसार में गोता नहीं खाते, संसार-सागर में पुनः नहीं आते ॥रहाउ॥ काया रूपी बगीचे में एक वृक्ष उत्पन्न हुआ जिसमें अमरता रूपी फल लगा। कोई शूरवीर साधक ही सर्वात्म-समर्पण रूपी शिर समर्पण करके उस अमर फल को चाख पाता है जबकि कायर साधक सर्वात्म-समर्पण की कठिनता व दुस्साध्यता को सुन-कर ही दूर हट जाता है ॥1॥ अनन्य-मन (इक-मन) वाला साधक भँवरगुफा=ब्रह्मरंध्र में योग की युक्ति को जगाकर

भ्रमण करता है। पाँच मित्र मिलकर इसकी साक्षी कहकर बताते हैं व तत्ता-थेई ताल की ध्वनि लग जाती है ॥2॥ जल के अंदर अग्नि जलती है। बिना दीपक के ही उजाला होता है। इस प्रकार अमृत की धारा प्रवाहित होती है जिसको कोई बिरला साधक-मन ही पीता है ॥3॥ हृदय में प्रेम की प्यास जाग जाती है जिस कारण इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता। देह के भीतर ही अलख परमात्मा विराजता है। उसको जो खोजता है, वही उसको पाता है ॥4॥ अब अमरपुर में आसन स्थिर कर लिया है। समस्त दुर्जनों को मार कर भगा दिया है। रोहल कहता है- अज्ञान रूपी रात्रि चली गई, आत्म-साक्षात्कार रूपी दिवस का उदय हो गया। मन की वृत्ति (मंशा) मंगल गाने लगी ॥5॥43॥

चित को कह्यो न मन करै, मन को कह्यो न चित्त।
काया नगरी गाम महिं, दोनों झगड़त नित्त ॥44॥

चित्त के आदेश का पालन मन नहीं करता। मन का कहना चित्त नहीं मानता। काया नगर रूपी ग्राम में दोनों नित्य ही झगड़ते हैं ॥44॥

चित्त चुपाता हो रह्या, देखिया मन में जोर।
ताका बल लागै नहीं, ओ बहुता भरिया जोर ॥45॥

मन के बल को देखकर चित्त चुप हो गया। चित्त का जोर चलता नहीं क्योंकि मन में बहुत भारी बल भरा हुआ है ॥45॥

चित पूछत है बुधी सूँ, सुन माता एक बात।
मेरौ कह्यो न मन करै, ए काहे की कुसलात ॥46॥

चित्त, बुद्धि से पूछता है। हे माता! मेरी एक बात सुन कि मन मेरा कहना नहीं मानता है। ऐसी स्थिति में मेरी कुशलता कैसे संभव है ॥46॥

तब बुद्धि कह्यो चित्त कूँ, जे तुम पूछो मोहि।
बिना सतगुरु ना मिटै, जो दुख लागो तोहि ॥47॥

तब बुद्धि ने चित्त से कहा- तुमने मेरे से जो पूछा है, उसका उत्तर सुन। तुझे जो दुःख सता रहा है, वह बिना सद्गुरु के मार्गदर्शन के मिटना संभव नहीं ॥47॥

तब चित कहियो बुद्धि कूँ, तुम हो मेरी मात।
बहुत दिनाँ को मैं दुखी, आगै करी न बात ॥48॥

तब चित्त ने बुद्धि से कहा- तुम मेरी माता हो। मैं बहुत दिनों से दुखी था किन्तु फिर भी मैंने दुःख भरी बात को पूर्ववर्ती समय में प्रकट नहीं की ॥48॥

तब बुद्धी कह्यो चित्त कूँ, मैं हूँ तुमरी मात।
तू हम सूँ अंतर किया, आगै पूछि न बात ॥49॥

तब बुद्धि ने चित्त से कहा- मैं तेरी माता हूँ। तुमने मेरे से मन का भेद छिपाया और भूतकाल में मेरे से तुमने अपने मन की बात का समाधान नहीं पूछा ॥49॥

तब चित कह्यो बुद्धि कूँ, अब मैं पूछूँ तोहि।
जाके परस्याँ दुख मिटै, सो गुरू बतावौ मोहि ॥50॥

तब चित्त ने बुद्धि से कहा- मैं तेरे से अब उपाय पूछ रहा हूँ। जिस गुरु के दर्श-स्पर्श से दुःख का समूल नाश हो जाए, ऐसा गुरु कौन है, उसको मुझे बता ॥50॥

बुद्धि-वाच

तुरियातीत ऊपर बसै, अमरापुर को गाम।
तहाँ विराजै देवता, साखी ताको नाम ॥51॥

अमरापुरा नामक ग्राम तुरियातीतावस्था के ऊपर बसता है। वहाँ एक देवता विराजता है जिसका नाम साखी=साक्षी है ॥51॥

जाग्रत स्वप्न सुखोपती, ताका साखी एक।
जाके भेट्याँ सुख मिलै, भाजै दुक्ख अनेक ॥52॥

जाग्रतावस्था, स्वप्नावस्था व सुषुप्तावस्था इन तीनों का एक ही साक्षी है। साक्षी से भेंट होने पर सुख मिलता है व अनेक दुःख नष्ट हो जाते हैं ॥52॥

तब बुधि चित दोनों चल्या, साखी गुरु के पास।
एही निहचै जानिया, तजि औराँ की आस ॥53॥

तब बुद्धि और चित्त दोनों साक्षी नामक गुरु के पास जाने को उद्यत हुए। अन्यों की आशा छोड़कर इन दोनों ने साक्षी के पास जाना ही निर्णीत तथ्य जाना ॥53॥

तबै चित्त साखी अगै, जाई करी पुकार।
तुमरी किरपा सूँ मिटै, मन ममता की मार ॥54॥

तब चित्त ने साक्षी के समक्ष जाकर निवेदन किया- हे साक्षी! आपकी कृपा से ही मन व ममता की मार मिटेगी ॥54॥

साखी-वाच

तब साखी कह्यो चित्त कूँ, जे तुमरे भाग लिलाट।
भजन करौ भगवान का, ताते खुलै कपाट ॥55॥

तब साक्षी ने चित्त से कहा- यदि तेरे मस्तक पर अच्छा भाग्य लिखा है तो तू भगवान् का भजन कर जिससे तेरे ज्ञान के किंवाड़ खुल जाएँ ॥55॥

चित-वाच

तब चित कह्यो गुरु आगै, सो भजन किस विधि होइ।
मस्तक ऊपर हाथ धरि, सो पंथ बतावौ मोइ ॥56॥

तब चित्त ने गुरु के समक्ष कहा- भजन कौनसी विधि से होता है? मेरे मस्तक पर हस्तकमल रखकर मुझको वह विधि बता दो ॥56॥

साखी-वाच

मस्तक ऊपर हाथ धरि, गुरु दीनी चित सीख।
मन मारे पीछै मिलै, नाम निरंजण भीख ॥57॥

साक्षी रूपी गुरु ने मस्तक के ऊपर हाथ रखकर चित्त को शिक्षा दी। मन को वशीकृत कर लेने के पश्चात् ही निरंजन परमात्मा के नाम की भीख=शिक्षा=विधि मिलती है ॥57॥

पहले मन कूँ वस करौ, पीछे वाँकौ संग।
काया नगरी गाम में, कोइ न लागै डंग ॥58॥

सर्वप्रथम मन को वश में करो। तत्पश्चात् उसका संग करो। ऐसा करने से काया नगर रूपी गाँव में कोई डंग=दोष नहीं लगता ॥58॥

चित-वाच

मेरौ कह्यौ न को मनै, मन को मनै अनेक।
कारज मेरौ किम सरै, ऊ बहुता में एक ॥59॥

चित्त कहता है- मेरे आदेश को कोई नहीं मानता जबकि मन के आदेशों को मानने वाले बहुत हैं। वे बहुत हैं, मैं एक हूँ। मेरा कार्य कैसे सिद्ध हो सकता है?॥59॥

मेरे बेली बहुत थे, पड़े मंन के वस।
जब एकौ एक मैं रह्या, उहाँ सूँ भागौ नस ॥60॥

मेरे सहायक, साथी अनेक थे किन्तु वे सभी मन के वशवर्ती हो गये हैं। जब मैं अकेला रह गया, तब मैं वहाँ से भागने में भी समर्थ न रह सका ॥60॥

साखी-वाच

मन के संगी कौन हैं, एक एक कह मोहि।
ताका औषध कीजिए, विघ्न न लागै तोहि ॥61॥

साक्षी पूछता है- मन के संगी-साथी कौन-कौन हैं, एक-एक करके मुझको बता ताकि उनको वश में करने का उपाय किया जाए और तुझको कोई विघ्न भी न व्यापे ॥61॥

चित-वाच

काम क्रोध परधान है, लोभ मोह अहँकार।
पाँच ठगौं के बस पड़्यो, अहनिसि मारउ मार ॥62॥

काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार ये पाँच प्रधान हैं। मन इन पाँच ठगों के वश में पड़ा हुआ है जो रात-दिन मार मारते हैं ॥62॥

अग्यान घोड़े पर चढे, करम करै बहु भात।
ऐसी रहणी मंन की, सुनौ गुरूजी बात ॥62॥

मन अज्ञान रूपी घोड़े पर सवारी करता हुआ नाना प्रकार के कर्मों को करता है। हे गुरुजी! मेरी बात सुनो, मन की उक्त प्रकार की रहनी है ॥63॥

कीर्तन

समझ चलौ मन माहला, ले पूरण परतीत।
काया का कसमल हरौ, ए संतन की रीत ॥रहाउ॥
धन धन साधू सूरमा, जाँके ब्रह्म अग्नि घट माहिं।
सीस उतार दिया परब्रह्म नू, बिन दीने कुछ नाहिं ॥1॥
दिल दरियाह में पैसिकै, नाम नीर अँग धोइ।
ग्यान अँजन जाके नेत्र में, ताकुँ कबहूँ न दरसै दोइ ॥2॥
अचरज खेल अरूप है, अकळ कळ्यो नहिं जाइ।
सुर नर मुनि जन थक रह्या, विन प्रापत नहिं पाइ ॥3॥

चित चेतन सूँ जाइ लगा, अब कुछ बिछड़ै नाहिं।
रोहल सरणै आइ पड़ौ, जिम बूंद मिलै जल माहिं ॥4॥64॥

हे मेरे अन्तः करण रूपी मन! परब्रह्म-परमात्मा का पूर्ण विश्वास धारण करके विवेकपूर्ण आचरण कर। संतों का उपदेश है कि देह के समस्त पापों को नाश कर ॥रहाउ॥ वे शूरवीर साधु धन्य-धन्य हैं जिनके हृदय में ब्रह्म रूपी अग्नि विद्यमान है। जिन्होंने अपना मस्तक=अहंकार काटकर परब्रह्म-परमात्मा को समर्पित कर दिया है। वस्तुतः बिना सर्वात्म-समर्पण के कुछ भी सिद्ध नहीं होता ॥1॥ दिल रूपी समुद्र में प्रविष्ट होकर भगवन्नाम रूपी जल से समस्त अंगों को धो डाल। जिसके नेत्रों में ज्ञान रूपी काजल लगा है, उसको कभी भी द्वैत-भाव का दर्शन नहीं होता अर्थात् वह सर्वत्र अद्वैत रूप स्वात्म-तत्त्व का ही दर्शन करता है ॥2॥ यह आश्चर्यमय खेल नीरूप है, अकल है जो कभी भी कलता नहीं है। सुर, नर, मुनिजन उसको प्राप्त करने को, प्रयत्न करते-करते थक गये किन्तु वे उसको प्राप्त नहीं कर सके ॥3॥ (वेदान्तशास्त्र मानता है कि स्वात्मा सभी को सदैव प्राप्त है किन्तु भ्रम के कारण जीव, सदैव प्राप्त आत्मा को अप्राप्त मानता है। बोधानन्तर भ्रम का बाध हो जाने पर पूर्व से ही प्राप्त वस्तु प्राप्त रूप आत्मा हुई अनुभूत होने लगती है। यही प्राप्त का प्राप्त होना है।) अब चित्त, चेतन आत्मा से जाकर मिल गया, फलतः अब उसका कुछ बिगड़ने वाला नहीं। रोहल कहता है, चित्त उसी प्रकार आकर शरण में पड़ गया, जैसे बूंद जल में गिरकर जल में मिल जाती है ॥4॥64॥

रे चित भूला मत फिरौ, तू ही है चेतंन।
जाइ मिलौ परिवार सूँ, क्याह करैगा मंन ॥65॥

साक्षी रूपी गुरु कहता है- हे चित्त! अपने वास्तविक स्वरूप सच्चिदानंद को भूलकर इधर-उधर मत भ्रम। वस्तुतः तू ही चेतन=सच्चिदानंद रूप है। अपने परिवार में जा मिल। मन तेरा क्या कर करेगा?॥65॥

चित-वाच

करि किरपा मूँ पै कहौ, मिलन किसी विधि होइ।
बहुत दिनन को मैं दुखी, सरण पड़्यो अब तोइ ॥66॥

चित्त कहता है, आप मेरे ऊपर कृपा करके, सच्चिदानन्द रूप परब्रह्म-परमात्मा की प्राप्ति कैसे होती है, कहो। मैं बहुत दिनों=जन्मों-जन्मों से दुखी हूँ, अब मैं तेरी शरण में आ पड़ा हूँ ॥66॥

पाँच तत्त गुण तीन मँह, सभ जग भूल्यो जाइ।
जिस पँथ मूँ प्रभ पाइए, सो पँथ मोहि बताइ ॥67॥

सारा ही जगत् पाँच तत्त्व व तीन गुणों में भूला पड़ा है। जिस पंथ से मैं परमप्रभु को पा सकूँ, वह पंथ मुझे बताइये ॥67॥

गुरु-वाच

निराकार आकार नहिं, किस विधि भाखूँ वैन।
जे तुमरे भाग लिलाट है, ताँ समझ लेवेगा सैन ॥68॥

गुरु कहते हैं- वह परमात्मा आकार-हीन निराकार है। उसका वर्णन किस प्रकार कौन-से शब्दों से करूँ। यदि तेरे कपाल पर सौभाग्य लिखा है तो तू संकेत को समझ लेगा ॥68॥

रोहल रमै जहाज जल, तीर न दरसै ताहिं।
चार खूँट में फिरत है, दृष्टी दिखह माहिं ॥69॥

रोहल कहता है- जब जहाज जल पर चलता है, तब उसको तीर नहीं दिखता है। चारों कोनों में वह चलता है फिर भी उसकी दृष्टि उस समय दिखह=ध्रुवतारे की ओर होती है ॥69॥

जाकी दृष्टी दिखह में, ताका पैंडा सुद्ध।
जाके हिरदै आतमा, ताकी निरमल बुद्ध ॥70॥

जिसकी दृष्टि ध्रुवतारे की ओर होती है, उसका पंथ सही होता है। जिसकी बुद्धि निर्मल होती है, उसके ही हृदय-देश में आत्मा होती है ॥70॥

चित-वाच

किस विधि भेटूँ आतमा, भाखौ अमिरत वैन।
सभ घट आतम राम है, किस विधि समझूँ सैन ॥71॥

चित्त कहता है- अमृत वचन कहकर बताइए कि मैं किस प्रकार आत्मा का साक्षात्कार कर सकता हूँ। यद्यपि समस्त प्राणधारियों में आत्माराम विद्यमान है तथापि उसका संकेत=अनुभव किस विधि से करूँ, बताइए ॥71॥

करि किरपा मूँपै कहौ, मिलण अणांगा होइ।
कहौ तैसी होवै जिसी, बात बतावौ मोइ ॥72॥

कृपा करके मुझे बताइये क्योंकि मिलने=साक्षात्कार करने के मार्ग में अनेक अणांगा=अडंगे=विघ्न-बाधाएँ होती हैं। जैसी स्थिति हो, वैसी कहो। मुझे यह बात=विधि, रहस्य बताइये ॥72॥

गुरु-वाच

आतम भेष अनेक है, सभ घट एकौ नाम।
जो तेरे दिल में बसै, सो जप आतम राम ॥73॥

साक्षी गुरु कहते हैं- आत्मा के शरीर अनेक हैं किन्तु सभी शरीरों में एक ही नाम वाला तत्त्व है जिसका नाम आत्मा है। तेरे मन में=भीतर जो आत्मा रूप रामजी निवास कर रहा है, उसका जप कर ॥73॥

और देव सभ छाड दे, पहलै सुमरौ आप।
पाँच तत्त गुण तीन की, तब मिट जाइ सँताप ॥74॥

अन्य समस्त देवों को त्याग दे। सर्वप्रथम अपने भीतर विद्यमान आत्मदेव का स्मरण कर। तब पाँच तत्त्वों व तीन गुणों का संताप मिट जाएगा ॥74॥

पाँच तत्त गुण तीन में, जब लग तुमरे दौर।
तब लग संसा ना मिटै, कबहु न पावै ठौर ॥75॥

जब तक पाँच तत्त्व व तीन गुणों में तुम्हारी दौड़ रहेगी, (जब तक पाँच तत्त्व व तीन गुणात्मक देह में अपनत्व रहेगा) तब तक संशय का नाश नहीं होगा और निज ठौर=स्वात्मा का साक्षात्कार कभी भी नहीं होगा ॥75॥

जब लग आतम ना मिलै, तब लग सरै न काज।
चलौ त भेटौ आतमा, अवसर बीत्यो आज ॥76॥

जब तक आत्म-साक्षात्कार नहीं होता, तब तक काज=मनुष्य-जन्म प्राप्त होना व आत्म-साक्षात्कार रूप कार्य सिद्ध होना नहीं माना जाता। यदि तुम मेरे बताये रास्ते पर चलोगे तो तुम्हारी भेंट आत्मा रूप परमात्मा से हो जायेगी। अवसर बीता जा रहा है, जल्दी करो ॥76॥

सिष-वाच

आतम को मिलनौ कठिन है, हम सूँ होवै न बात।
तुम साखी सर्व जीव का, सभ कुछ तुमरे हाथ ॥77॥

चित्त रूपी शिष्य कहता है- आत्मा का प्राप्त होना कठिन है, अतः मुझसे यह कठिन कार्य होना संभव नहीं। आप तो सर्व जीवों के साक्षी हैं। सब कुछ आपके हाथ में है ॥77॥

हम कँगाल आ गिर पड़्यो, तुम सतगुरु के द्वार।
हम कीटी कुछ बल नहीं, तुम साखी रूप सँवार ॥78॥

आप सद्‌गुरु के द्वार पर मैं कंगाल शरणागत आकर गिर पड़ा हूँ। मैं कीड़े के समान सर्वथा निर्बल हूँ। आप साक्षी सर्वसमर्थ रूप हैं ॥78॥

सुनौ सिष्य तुम कूँ कहूँ, षट चक्कर की बात।
बिना जोग पावै नहीं, अकळ कळ्यो नहिं जात ॥79॥

हे शिष्य! षड्‌चक्र की बात सुनो। मैं तुमसे इनके बारे में कहता हूँ। बिना योग साधे षड्‌चक्रों का भेदन होकर परब्रह्म-परमात्मा का साक्षात्कार प्राप्त नहीं होता और अकल परमात्मा को कला नहीं जा सकता। (वस्तुतः अकल अर्थात् कला विभाग रहित एक निर्गुण-निराकार ब्रह्म ही होता है। अवतारी तो कला अंशधारी होते हैं। कोई षोडस-कला पूर्ण, कोई द्वादश-कला पूर्ण आदि-आदि) ॥79॥

षट चक्कर षट देव हैं, रहते आपो आप।
बिन पूजा छाडै नहीं, मांगै अजपा जाप ॥80॥

षड्‌चक्रों के षड्‌देव हैं। वे अपने-अपने नियत स्थान पर रहते हैं। वे बिना पूजा लिये छोड़ते नहीं। अजपा-जाप मांगते हैं ॥80॥

तब साखी चित कूँ ले गयो, आतम पुर के देस।
जहाँ निरंजन आतमा, सुर नर मुनी नरेस ॥81॥

तब साक्षी रूपी गुरु, चित्त रूपी शिष्य को आत्मा के पुर व देश में ले गया जहाँ सुर, नर, मुनियों का राजा निरंजन आत्मा है ॥81॥

चित-वाच

सीस धर्‌यो सतगुरु अगै, और न जानूँ कोइ।
जो तुम कहौ सो हम करूँ, जो होनी सा होइ ॥82॥

चित्त ने सद्‌गुरु के समक्ष अपना मस्तक नँवाया और कहा- मैं और कुछ नहीं जानता। आप जो कहेंगे, मैं वही करूँगा। जो होनी होगी, वह होगी ॥82॥

ना कुछ करनी कर सकूँ, हम सूँ होइ न जोग।
करि किरपा सभ सुख दियो, अमिरत रस के भोग ॥83॥

मैं कुछ भी करनी=साधना नहीं कर सकता। न मेरे से योग की साधना ही होना संभव है। आपने कृपा करके अमृत-रस-भोग के समस्त सुख दिये हैं ॥83॥

तुम जैसो गुरु भेटियो, बडौ हमारौ भाग।
जैसे पारस लोह कूँ, तुरत मिटावै दाग ॥84॥

मेरा भाग्य महान् है कि मैंने आपका जैसा गुरु प्राप्त किया है। जैसे पारस मिलते ही लोहे के सारे दोष=लोहत्व को मिटा देता है, ऐसे ही आपने मेरा जीवत्व मिटाकर मुझे अमृतत्त्व का लाभ प्रदान किया है ॥84॥

अथ कीर्तन

बेलीड़ा अहिड़ौ संग सचोड़ौ, आज कै छडियाँ ॥रहाउ॥
आज मुँहिंजो जीउ जोगी भयो, नाम को नेम लियो।

ब्रह्म ग्यान की गूदड़ी, प्रेम को पतर पियो ॥1॥
विरह भभूत लगायी, सत सेल्ही कीनी।
रहणी करणी आप की, कान पै मुद्रा दीनी ॥2॥
सील सँतोष दोनों ई तूंबड़ा, अमिरत रस भरिया।
जनम मरण का दुक्खड़ा, सहजे ई परहरिया ॥3॥
काया नगरी के अंतरे, निज अलख जगायो।
दिल दरिया में ढूंढ कै, हरि हीरा पायो ॥4॥
अगम अगोचर नीर में, जाइ तीरथ न्हायो।
सुख सागर के सीर में, रोहल सुख पायो ॥5॥85॥

हे साथी! ऐसा यह संग सच्चा है। आज इसको कैसे छोड़ा जा सकता है ॥रहाउ॥ आज मेरा मन योगी बन गया है और भगवन्नाम-जप करने का नियम धारण कर लिया है। मैंने ब्रह्म-ज्ञान की गूदड़ी धारण की है। प्रेम का पात्र हाथ में ले लिया है ॥1॥ विरह रूपी विभूति लगाई है। सत की सेली धारण की है। निजत्व रूपी रहनी च करनी की दो मुद्राएँ कान में पहन ली हैं ॥2॥ शील व संतोष दोनों तूम्बे हैं जिनमें अमृत-रस भरा है। जन्म व मरण का दुःख सहज ही में छूट गया है ॥3॥ काया रूपी नगरी के अंदर निज=निरंजन परमात्मा का अलख जगाया है और दिल रूपी समुद्र में ढूंढकर हरि रूपी हीरा प्राप्त कर लिया है ॥4॥ अगम्य व अगोचर परमात्मा रूपी तीर्थ के जल में जाकर मैंने स्नान किया है।

सुख-सागर के साझे में (सीरस्रोत में) रोहल ने सुख प्राप्त किया है ॥5॥85॥

अथ षट-चक्र

षट चक्कर षट देव हैं, एक एक करि जान।
ताकी महिमा कहत हूँ, उलटी सुलटी आन ॥86॥

षड्चक्रों के षड्देव हैं। एक चक्र का एक देव है। उनकी महिमा को उल्टे व सीधे दोनों प्रकारों से वर्णन करता हूँ ॥86॥

मूल अगोचर के तलै, चढियो उलटी बाट।
चौकी तहाँ गणेस की, अकल कला के घाट ॥87॥

मूलाधार-चक्र अगोचर नीचे है। वहीं से उल्टे रास्ते होकर ऊपर चढ़ा जाता है, अकल की कला के घाट को पाने के लिये। मूलाधार-चक्र में गणेश का राज्य है ॥87॥

मूक चक्र के अंत्र में, बसियो देव दुवार।
ताही सूँ सन्मुख मिलौ, पीछै उतरौ पार ॥88॥

मूलाधार-चक्र के अंतर में देव-द्वार है। उसी से जाकर सामने-सामने मिलो, तत्पश्चात् पार उतरो ॥88॥

साखी चित कूँ ले गयो, सुर नर मुनी नरेस।
चार पाँखड़ी को कमल, वासा तहाँ गणेस ॥89॥

साक्षी रूपी गुरु चित्त रूपी शिष्य को वहाँ ले गया जहाँ सुर, नर व मुनियों का नरेश है। यहाँ चार पंखुडियों का कमल है और गणेश का निवास स्थान है ॥89॥

साखी चित्त गणेस कूँ, कीनों नमो नराण।
अंमर पद किमि पाइए, ताका करौ बखाण ॥90॥

साक्षी व चित्त ने जाकर गणेश को नमो-नारायण कहकर नमस्कार किया और निवेदन किया, अमर-पद किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है, इसका वर्णन करो ॥90॥

अंमर पद तो कठिन है, पहुँचै बिरला कोइ।
एकोतर सौ परे रहै, जो हम जैसा होइ ॥91॥

अमर-पद प्राप्त होना कठिन है। अमर-पद तक कोई बिरला ही पहुँचता है। वह एक सौ एक से दूर रहता है, वह हमारा जैसा है ॥91॥

इतनी हमरी पहुँच है, और न दूजी होइ।
पीछै फेरा ना मिटै, साँच कहत हूँ तोइ ॥92॥

गणेश ने कहा- मेरी इतनी ही, यहीं तक गति है। इसके आगे मेरी गति नहीं। इतने से आवागमन का चक्र मिटता नहीं। मैं तुझसे यह सच्ची बात कहता हूँ ॥92॥

साखी-वाच

साखी कहियो चित्त कूँ, यहाँ सुँ एक गुन लेह।
आसन दृढ़ धरणी धर्‍या, ताते बधै सनेह ॥93॥

तब साक्षी ने चित्त से कहा- यहाँ से एक गुण ले लो; वह है, पृथ्वी पर दृढ़ासन लगाने का। इससे स्नेह-भाव बढ़ता रहेगा ॥93॥

दो कर जोड़ गणेस कूँ, करै चित्त अरदास।
आसन दृढ़ कर दीजिये, हम तेरा हूँ दास ॥94॥

गणेश के प्रति दोनों हाथ जोड़कर चित्त प्रार्थना करता है। मैं आपका दास हूँ, आप मेरा आसन दृढ़ कर दीजिये ॥94॥

मस्तक ऊपर हाथ धरि, कह्यो गणेस चित लाइ।
आसन कबहू ना डिगै, ऊलट आप समाइ ॥95॥

मस्तक पर हाथ रखकर गणेश ने चित्त को एकाग्र करके कहा- तेरा आसन कभी भी डिगेगा नहीं, बाह्य-वृत्तियाँ उलट-कर स्वयं में भीतर समाहित हो जाएंगी ॥95॥

नमस्कार कर देव कूँ, चलिया साखी चित्त।
ब्रह्मपुरी के देस कूँ, जहाँ भांज घड़त है नित्त ॥96॥

गणेश देव को नमस्कार करके साक्षी व चित्त दोनों वहाँ से ब्रह्मा के लोक को चले जहाँ नित्य ही नष्ट करने व बनाने की क्रिया चलती रहती है ॥96॥

साखी चित दोनों चल्या, लिंग दुवारे ठाम।
षष्ट पाँखड़ी को कमल, ब्रह्मा को विसराम ॥97॥

लिंग-स्थान के लिए साक्षी व चित्त दोनों चल दिये। जहाँ षड् पङ्खुड़ी का कमल व ब्रह्मा का निवास है ॥97॥

नमस्कार करि ब्रह्म कूँ, कहियो साखी चित्त।
करि किरपा मूँ पै कहौ, जीउँ अमर कह नित्त ॥98॥

ब्रह्मा को नमस्कार करके साक्षी व चित्त ने कहा- मुझे कृपा करके वह तत्त्व, उपदेश बताइये जिससे कि मैं नित्य अमर रहूँ ॥98॥

ब्रह्मा-वाच

सुनौ सिष्य ब्रह्मा कहै, जब लग हमरी देह।
तब लगि कबहू ना मरै, जो हमरी सीख लेह ॥99॥

ब्रह्मा ने कहा- हे शिष्य! सुनो; जब तक मेरी देह रहेगी, तब तक तू कभी नहीं मरेगा, यदि तू मेरी शिक्षा को मान लेगा ॥99॥

जेते जीव जहान में, चौरासी लख जात।
उपत खपत कुल की सकल, सा सभ हमरे हात ॥100॥

चौरासी लाख जाति के जितने भी प्राणी ब्रह्मांड में हैं, उन सभी की उत्पत्ति व उनका विनाश, वह सब कुछ मेरे हाथ में है ॥100॥

जे तुम चाहौ जनम सुख, तो कहौ अब मोहि।
जैसी तेरी भावना, तैसा बखसूँ तोहि ॥101॥

यदि तुम जन्म-सुख चाहते हो तो, अभी मुझसे कहो। तेरी जैसी इच्छा है, मैं वैसी ही बक्षीश तूझे दूंगा ॥101॥

चित-वाच

आत्म जनम को क्या करूँ, जो पीछै मरि जाइ।
कर किरपा सो जनम दो, जाकूँ काल न खाइ ॥102॥

चित्त कहता है- आत्मा के पुनर्जन्म को प्राप्त करके मैं क्या करूँ? क्योंकि जन्मने के पश्चात्, समय पूरा होने पर मरना पड़ता है। कृपा करके ऐसा जन्म दो जिसको काल न खा सके ॥102॥

जो जो जनमे सो मरे, ताकूँ कीजत काहि।
जो जनम मरण सूँ रहित है, सो पद मोहि बताहि ॥103॥

जो-जो जनमे, वे-वे मरे हैं। उनको लेकर मैं क्या करूँ? जो पद स्वरूप परमात्मानुभूति जन्म मरणातीत है, उसको मुझे बताओ ॥103॥

ब्रह्म-वाच

अमर पद के पहुँच की, हमरी समरथ नाहिं।
बार बार क्या पूछते, समझि रहौ मन माहिं ॥104॥

ब्रह्मा ने कहा- अमर-पद तक पहुँचाने की सामर्थ्य मुझ में नहीं है। बार-बार क्यों पूछते हो। मन में इस सत्य को समझ लो ॥104॥

अथ कीर्तन

दिल वापारी मोरा वीरा, भूलि जनम मति हारौ ॥रहाउ॥
माँगु लेउ प्रभु सभ कुछ देइ, भूल भटक मति धारौ।
ये अवसर फिर हाथ न आवै, तुम समझौ आप उधारौ ॥1॥
ग्यान करि घोड़ा प्रतीत पलाणी, सुरति सवारी कीजे।
भँवर गुफा एक अंमृत बेरी, तहाँ अमी रस पीजे ॥2॥
पाँचौं मेरा भाइड़ा उलट समाओ, प्रभ चरनै चित राखौ।
दे टुबकी घट सूझ निहारौ, फल अमिरत का चाखौ ॥3॥
रहति बिना कोइ पार न पावै, मोह अगनि नहिं बूझै।
सहसै भानु उगै सिर ऊपरि, अंधले कूँ नहिं सूझै ॥4॥
चित करि चंदन फूल भाव का, सेहरा सहज गुँथावौ।
काया भीतर अलख विराजै, आतम पूज चढावौ ॥5॥
हिन्दू तुरक सभी मैं देख्या, बडा बडा भेषधारी।
प्रभ तेरी माया सूँ कोइक छूटा, रोहल सरन तुमारी ॥6॥105॥

हे भाई! मेरा मन व्यापारी है। भूल-कर भी मनुष्य-जन्म के अवसर को खोओ मत॥ रहाउ॥ प्रभु से मांग लो, वह सब कुछ देता है। भ्रम के कारण भटकन का आश्रय मत लो। मनुष्य-जन्म जैसा अपूर्व अवसर पुनः मिलने वाला नहीं; अतः तू विवेकवान बन-कर अपना उद्धार कर ॥1॥ ज्ञान को घोड़ा व विश्वास को (चारजामा-जीन) बनाकर नियंत्रित सुरति=चित्त-वृत्ति की सवारी कर। सहस्रार में अमृत का एक कुआ है, वहाँ अमृत-रस का पान कर ॥2॥ पाँचौं=पाँचों ज्ञानेन्द्रिय रूपी भाइयों! संसाराभिमुखता से हटकर प्रभु के चरणों में चित-वृत्ति के संयोजित करो। ब्रह्मरन्ध्र के कुएँ में डुबकी लगाकर विवेक का आश्रय लो। फलतः साक्षात्कार रूपी अमृत-फल का पान करो ॥3॥ बिना सदाचरण के कोई भी भव-सागर से पार नहीं हो सकता और मोह रूपी अग्नि भी बुझती नहीं है। उसी प्रकार जिस प्रकार अंधे के सिर पर हजारों सूर्य उदय हों, फिर भी उसको कुछ दिखता नहीं ॥4॥ चित्त का चन्दन, भाव का फूल और सहज का हार गुँथावो। देह के भीतर ही अलक्ष्य परमात्मा

विराजता है, उस आत्मा के समक्ष पूजा चढ़ावो ॥5॥ बड़े-बड़े वेश-धारी हिन्दू व मुसलमान दोनों को मैंने देखा है। हे प्रभु! तेरी माया से इनमें से कोई-कोई ही छूट सका है। अतः रोहल तो तेरा शरणागत बन गया है ॥6॥105॥

साखी-वाच

सुनौ सिष्य साखी कहै, ब्रह्मा सूँ इक गुन लेह।
अहनिसि रहणि विचारमै, भांज घड़त को भेह ॥106॥

साक्षी ने चित्त रूपी शिष्य से कहा- ब्रह्मा से भी एक गुण ग्रहण करो। निशि-दिन विचारमय रहनी रहो और नाश तथा सृजन के रहस्य को जानो ॥106॥

चित-वाच

कौन भाउ तुम कहत हो, कर किरपा कह मोहि।
जो तुम कहौ सो हउ करूँ, अब मैं पूछूँ तोहि ॥107॥

चित्त कहता है- हे गुरुदेव! आप कौनसा भाव बता रहे हो, कृपा करके मुझसे कहो। आप जो कहेंगे, मैं वही करूँगा। अब मैं आपके समक्ष जिज्ञासा प्रस्तुत कर रहा हूँ ॥107॥

साखी-वाच

येहि भाउ तुम सीख ले, सतसँग करौ विचार।
कर्म विकार जो दुष्ट हैं, ताकूँ भांज विडार ॥108॥

साक्षी ने कहा- सत्संग में बैठकर विचार-चिंतन करो, इसी भाव को तुम अंगीकार कर लो। कर्म व कर्मजन्य विकार रूपी दुष्टों को नष्ट-करके बाहर निकाल फेंको ॥108॥

नमस्कार करि ब्रह्म कूँ, चलिया साखी चित्त।
नाभि कमल के देस कूँ, जहाँ स्वांत बसत है नित्त ॥109॥

ब्रह्मा को नमस्कार करके साक्षी व चित्त दोनों नाभि-कमल देश, जहाँ नित्त ही शांति विराजती है की ओर चल दिये ॥109॥

लिंग चक्र कूँ छाडि करि, चलिया नाभि समान।
जहाँ अष्ट पाँखड़ी को कमल, नीर वर्ण रँग जान ॥110॥

लिंग-चक्र को छोड़कर नाभि-चक्र की ओर चले। जहाँ आठ पंखुड़ी का कमल होता है और जिसका रंग जल जैसा नीला होता है ॥110॥

सब्द उठै तहाँ नाभि सूँ, जैसी मनसा होइ।
चौकी देवै विष्नु तहाँ, पहुँचौ बिरला कोइ ॥111॥

वहाँ मनसा = मन की वृत्ति के अनुसार नाभि (मणिपुर-चक्र) से शब्द की ध्वनि होती है। वहाँ विष्णु चौकीदारी करते हैं। वहाँ कोई बिरला ही पहुँचता है ॥111॥

बंकनाल धमधम धमै, पलटै पवन अपार।
तासूँ बिछयाली चलै, तीन साठ सौ नार ॥112॥

बंकनाल=सुषुम्ना-नाड़ी में धम-धम की ध्वनि, अपरिमित पवन के पलटने के कारण होती है। इससे बिछियों जैसी छल्लेदार सुषुम्ना-नाड़ी सहित अन्यान्य तीन सौ साठ नाड़ियाँ जाग्रत हो उठती हैं ॥112॥

रोम रोम रस लेत है, पवन पुरुष को वास।
काया बाड़ी तब हरी, हाड चाम अर माँस ॥113॥

रोम-रोम अमृत-रस का पान करती है। पवन पुरुष का यहाँ निवास होता है। तब काया रूपी बगीची की हाड़, चाम, मांस रूपी समस्त वनस्पति हरी-भरी हो जाती है ॥113॥

साखी चित तहँ विष्णु को, जाइ कियो परनाम।
जासूँ जीउ अमर रहै, सो भाखौ निज नाम ॥114॥

साक्षी और चित्त ने वहाँ विद्यमान विष्णु के समक्ष जाकर प्रणाम किया। निवेदन किया, जिससे मेरा जीव अमर हो जाए,ऐसे निज नाम का व्याख्यान करो ॥114॥

विष्णु-वाच

अमर नाम प्रभ आप है, वे सभ परलै जाइ।
अमर नाम के कारनै, किते रहे बल लाइ ॥115॥

विष्णु ने कहा- स्वयम् प्रभु का नाम अमर है। अन्यान्य सभी नष्ट होते हैं। अमर नाम के कारण कितने ही प्रभु-नाम के बल पर आश्रित है ॥115॥

साखी-वाच

तब साखी कह्यो चित्त कूँ, तुम एक प्रश्न पूछ लेह।

चित-वाच

करि किरपा तब चित कहै, गुरु बतावौ भेह ॥116॥

तब साक्षी ने चित्त से कहा- तुम एक प्रश्न पूछ लो। तब चित्त ने कहा- हे गुरु! कृपा करके मुझे भेद=रहस्य बताओ ॥116॥

साखी-वाच

तब साखी कह चित्त कूँ, तुम सांति गुन सुख जानि।
जिसके घट में सांति है, वाकूँ कैसी हानि ॥117॥

तब साक्षी ने चित्त से कहा- तुम शांति गुण को ही सुख जानो। जिसके हृदय में शांति निवास करती है, उसको किसी भी प्रकार की हानि उठानी नहीं पड़ती ॥117॥

दो कर जोड़े विषनू आगै, करी वीनती चित्त।
माथे ऊपरि हाथि धरि, सांती देवौ नित्त ॥118॥

विष्णु के समक्ष चित्त ने दोनों हाथ जोड़-कर विनती की; प्रभो! मेरे मस्तक पर हाथ रख-कर मुझे नित्य-शांति प्रदान करिये ॥118॥

विष्णु-वाच

सुनौ चित्त विषनू कहै, सांति उसी के हाथ।
बिना रहति पावै नहीं, जब कृपा करै निज नाथ ॥119॥

विष्णु ने कहा- हे चित्त! सुनो, शांति उसको मिलती है जिसके ऊपर निज नाथ विष्णु कृपा करते हैं। साथ ही शांति, बिना रहति=सदाचरण के नहीं मिलती ॥119॥

जाके घटि में रहति है, तिस लागै निज प्रेम।
ओही मानै सांति सुख, सदा कुसल अर खेम ॥120॥

जिसके घट में सदाचरण है, उसके हृदय में परमात्मा के प्रति अनन्य-प्रेम उदय होता है, वही शांति को सुख मानता है; सदैव कुशलता व कल्याण भी मानता है ॥120॥

नमस्कार करि विष्णु कूँ, चलिया दिल के देस।
द्वादस पँखड़ी को कमल, वासा तहाँ महेस ॥121॥

विष्णु के प्रति नमस्कार करके हृदय के देश की ओर चले। वहाँ बारह पंखुड़ी का कमल है तथा महेश का निवास है ॥121॥

दिल दरिया सूभर भर्‍या, हीरा माणिक माहिं।
प्राप्त होवै तो पाइए, बिन प्राप्त कुछ नाहिं ॥122॥

दिल रूपी समुद्र अथाह भरा है जिसके भीतर हीरा, माणिक्यादि रत्न हैं। यदि ढूंढने पर हीरा, माणिक्यादि मिल जाएँ तो प्राप्त करिए। प्राप्त नहीं हों तो समझिए, कुछ नहीं है ॥122॥

दिल दरिया में देखिया, तीन लोक नव खंड।
दह दिसि दरसै आतमा, महा पिंड ब्रह्मंड ॥123॥

दिल रूपी समुद्र में तीनों लोकों व नवों खंडों को देखा। पिंड, ब्रह्मांड, दसों दिशाओं में आत्मा के ही दर्शन होते हैं ॥123॥

दिल दरिया में बहुत सुख, जे को देखै माहिं।
जिन देख्य सो बिलमिया, निकसन की गम नाहिं ॥124॥

यदि कोई दिल रूपी दरियाव के भीतर देखे तो उसमें अखंडानन्द है। जिन्होंने देख लिया,वे उसी में अटक गए और उनके वापिस वहाँ से निकलने का कोई ठिकाना नहीं ॥124॥

अथ कीर्तन

पिया हिक प्रेम पियाला।
अन्तरजामी भर दिया, घट भया उजवाला ॥रहाउ॥
अधिक अमीरस चाखिया, तृष्ना सब भागी।
सुरति समाई सुन्य में, अनहद धुनि लागी ॥1॥
जैसी चाह चकोर की, चँद विसरत नाहीं।
तैसा मेरे मंन का, चित चेतन माहीं ॥2॥
ग्यान कुंडे में पाइ करि, तत अमिरत तोल्या।
सेझड़िया सुख पाइया, पिय अंतर खोल्या ॥3॥
अणभै आतम औलखिया, भ्रमना विसराई।
प्रीति लगी उनमंन सूँ, नाम की निधि पाई ॥4॥
दिल दरिया मँह ढूँढ करि, हरि हीरा लाधो।
रोहल रतन अमोल है, ग्रहि ने गाँठि बाँधो ॥5॥125॥

प्रेम रूपी एक प्याला पिया। अन्तर्यामी परमात्मा ने उसको भरा जिससे हृदय में प्रकाश हो गया ॥रहाउ॥ अत्यधिक (उत्तम) अमृत-रस का पान किया जिससे समस्त तृष्णाएँ नष्ट हो गईं। सुरति=चित की वृत्ति शून्य स्वरूप सहस्रार-चक्र में समाहित हो गई। अनहद-ध्वनि होने लगी ॥1॥ जिस प्रकार चकोर के मन में चन्द्रमा की उत्कट चाह होती है, वह एक क्षण के लिए भी उसको विस्मृत नहीं करता, उसी प्रकार मेरे मन की चित्त-वृत्ति चेतन=परब्रह्म-परमात्मा में एकरस लगी हुई है ॥2॥ मैंने ज्ञान रूपी तराजू में रखकर परमात्मा

रूपी अमृत-तत्त्व को तौला। शैया पर प्रियतम के साथ अखंडानन्द सुख पाया और प्रियतम ने अपना अन्तर=सब कुछ मेरे सामने खोल कर रख दिया ॥3॥ आत्मा का अणभै औलखिया=अपरोक्षानुभव किया। समस्त भ्रम नष्ट हो गये। उन्मनी-अवस्था= निःमनावस्था=परमात्मा से एकान्तिकी-प्रीति लग गई व भगवन्नाम-निधि को प्राप्त किया ॥4॥ दिल रूपी दरियाव में खोज की जिसमें हरि रूपी हीरे की प्राप्ति हुई। रोहल कहता है- हरि रूपी हीरा अमूल्य हीरा है; इसको प्राप्त करके गाँठ में बाँध लो ॥5॥125॥

साखी चित्त महेस कूँ, जाइ कियो परणाम।
करि किरपा मूँ पै कहौ, जींउ अमर विसराम ॥126॥

साक्षी और चित्त ने जाकर महेश को प्रणाम किया। जिस प्रकार अमरता में अखंड विश्राम हो सके, कृपा करके वह मुझसे कहो ॥126॥

महादेव-वाच

महादेव तब बोलिया, सुनिहो साखी चित्त।
अमर पद तब पाइए, जब जीवत मरना नित्त ॥127॥

तब महादेव ने कहा- हे साक्षी व चित्त! सुनो। अमर-पद तब मिलेगा, जब जीते-जी नित्य-प्रति मरना आ जायेगा ॥127॥

चित्त-वाच

किस विधि जीवत मरन है, करि किरपा कह मोहि।
तुम जैसा कोइ देवता, और न दूसर कोहि ॥128॥

चित्त ने कहा- जीते-जी मरना किस विधि से संभव है, कृपा करके मुझसे कहो। आप जैसा देवता और कोइ दूसरा नहीं है ॥128॥

महादेव-वाच

अमर पंथ हम कहत हूँ, सुन तू साखी चित्त।
ओऽहं सोऽहं समझ ले, पीछै नित्त अनित्त ॥129॥

पाठांतर : आनँद नित्त

महादेव ने कहा- मैं अमर-पंथ का वर्णन करता हूँ, हे साक्षी व चित्त! तुम सुनो। सर्व प्रथम ओऽहं व सोऽहं को समझ-लो, तत्पश्चात् नित्य व अनित्य को॥ 129॥

चित्त-वाच

ओऽहं सोऽहं तब लगै, जब लगि जिंउ घटि माहिं।
देह पड़ी पवना थका, पीछै सिमरूँ काहिं ॥130॥

चित्त ने कहा- जब तक शरीर में प्राण है, तब तक ही ओऽहं व सोऽहं संभव है। जब देह नष्ट हो जाती है, प्राण निकल जाते हैं, तब किससे किसका स्मरण करूँ ॥130॥

महादेव-वाच

जितनी हमरी पहुँच थी, सकल कही अब तोहि।
अमर सदा प्रभु आप है, जे तुम पूछौ मोहि ॥131॥

महादेव ने कहा- मेरी जितनी जानकारी थी, वह सारी की सारी मैंने कह दी है। यदि तुम मेरे से पूछते हो तो मैं बताना चाहूँगा कि अमर तो एक सनातन परमप्रभु-परमात्मा स्वयं ही है ॥131॥

साखी-वाच

इहाँ सूँ इक गुन सीख ले, सिव सकती वीचार।
जनम मरण का भेद यह, कह साखी निज सार ॥132॥

साक्षी ने परम सार-स्वरूप कहा- यहाँ से शिव व शक्ति के ऐक्य के विचार का एक गुण सीख ले। जन्म-मरण का रहस्य यही है ॥132॥

चित-वाच

तब चित कह्यो महेस कूँ, सिव सकती वीचार।
करि किरपा मूँ पै कहौ, जाते उतरौं पार ॥133॥

तब चित्त ने महेश से कहा- आप कृपा करके शिव-शक्ति का तत्त्व रूप विचार मुझसे कहो जिससे कि मैं भव-सागर से पार उतर जाऊँ ॥133॥

महादेव-वाच

तब सिव कहियो चित्त कूँ, ये सक्ती बनी अनेक।
सोही कर ले आरसी, जा महिं दरसै एक ॥134॥

तब महादेव ने कहा चित्त से कहा- यह शक्ति ही अनेक रूपा बनती है। उसी शक्तिरूपी दर्पण को हाथ में ले। जिसमें एक अद्वैत परब्रह्म-परमात्मा का दर्शन होगा ॥134॥

करि परनाम महेस कूँ, चलिया साखी चित्त।
कंठ चक्र वाँकूँ कहै, जासूँ वाणी उचरत नित्त ॥135॥

महेश को प्रणाम करके साक्षी और चित्त यहाँ से, जिसको कंठ-चक्र कहते हैं, की ओर चले जिससे नित्य=हमेशा वाणी का उच्चारण होता है ॥135॥

तीन षट पाँखड़ी को कमल, कंठ चक्र है नाम।
सब्द उहाँ सूँ नीसरै, सरस्वती को ठाम ॥136॥

वहाँ अठारह पंखुड़ी का कमल है, उसका नाम कंठ-चक्र है। वहाँ से शब्दों का निर्गमन होता है, वह सरस्वती का स्थान है ॥136॥

भाँति भाँति की वाच है, अर भाँति भाँति के राग।
कब ही उठ वाणी करै, कब ही जोग विराग ॥137॥

वहाँ अलग-अलग तरह की वाणी हैं और अलग-अलग तरह की रागें हैं। कभी तो कंठ वाणी का उच्चारण करता है और कभी योग तथा वियोग की बात करता है ॥137॥

साखी चित सरस्वती कूँ, कह्यो मात सुन बात।
जीउ अमरपद ना लहै, काहे की कुसलात ॥138॥

साक्षी और चित्त ने सरस्वती से कहा- हे माता! हमारी बात सुन। हमारी आत्मा अमर-पद प्राप्त नहीं कर पा रही है, हमारी कुशलता किस प्रकार हो सकती है ॥138॥

साखी-चित-वाच

अंमर पद में बहुत दुख, जब लगि मिलै न आप।
तब लगि संसा ना मिटै, अहनिसि रहै सँताप ॥139॥

जब तक अमर-पद रूपी परब्रह्म-परमात्मा नहीं मिलता, तब तक उसको प्राप्त करने में अत्यधिक कष्ट प्राप्त होते हैं और तब तक उभय-कोट्यात्मक संशय भी नष्ट नहीं होता जिस कारण अहर्निशि संताप=दुःख रहता है ॥139॥

अंमर पद जन आ मिलै, पीछै बहुत अनंद।
टूटै फासी काल की, पड़ै न माया फंद ॥140॥

जब साधक-जन अमर-पद प्राप्त कर लेते हैं, उसके पश्चात् उनको अखंडानंद प्राप्त हो जाता है। काल की फाँसी टूट जाती है और वे माया के फँदे में फँसते नहीं हैं ॥140॥

सरस्वती-वाच

जे तुम चाहौ नित सिधी, अर जे चाहौ रस भोग।
ए सभै तुमको मैं दिऊँ, जे छोडौ तुम जोग ॥141॥

सरस्वती ने कहा- यदि तुम नित्य-सिद्धि चाहते हो और रसानन्द का भोग चाहते हो तो तुम योग को छोड़ दो; मैं तुमको ये सब कुछ दे दूंगी ॥141॥

चित-वाच

जोग हमारा जीउ है, सो किमि छोड्यो जाइ।
जामें संतन सुख लियो, सहजे रह्यो समाइ ॥142॥

चित्त ने कहा- योग तो मेरा जीव=प्राण है। उसको कैसे छोड़ा जा सकता है। जिस योग से संतों ने सुख प्राप्त किया; उसमें मैं सहज रूप से समाहित हूँ ॥142॥

साखी-वाच

इयाँ सूँ इक गुन सीख ले, सकल वाणी को भेद।
गावौ गुण गोविन्द का, कबहू पड़ै न खेद ॥143॥

साक्षी ने कहा- यहाँ से एक गुण की शिक्षा ले लो, वाणी के समस्त भेदों को जानने की। गोविन्द के गुणों का गान करो जिससे कि कभी दुःख न भोगने पड़ें ॥143॥

कह्यो चित्त सरस्वती कूँ, दे वाणी को भेद।
अह निसि सुमरूँ आतमा, दिन दिन बधै सनेह ॥144॥

चित्त ने सरस्वती से कहा- मुझको वाणी के भेद को बता दो जिससे कि मैं अहर्निशि आत्मा रूप परमात्मा का स्मरण कर सकूँ और दिनानुदिन स्मरण के प्रति स्नेह बढ़ता रहे ॥144॥

एक गुण ले सरसती सूँ, चलिया त्रिकुटी तीर।
भँवर गुफा के घाट में, जहाँ बरसै अंमृत नीर ॥145॥

सरस्वती से एक गुण लेकर त्रिकूटी-तीर की ओर चले जो भँवरगुफा= सहस्रार-चक्र के रास्ते में है और जहाँ अमृत-नीर की वर्षा होती है ॥145॥

अथ कीर्तन

अच्छी नीकी धुन सुनी, गगन मँडल मधि,
बाजों की झकोर लगी, जैसे घोर घन की।

प्रेम पिचकारी मारी, भीनी पिया संग प्यारी,
कबहु न होवै न्यारी, ऐसी प्रीति जन की॥
ग्यान को उड्यो गुलाल, होली खेलै मेरौ लाल,
सुनकै अनोखे ख्याल, सुधि भूली तन की।
रस को बाजै मृदंग, कबहु न पड़ै भंग,
रोहल कूँ लागो रंग, आसा पूरी मन की ॥1॥146॥

गगन-मंडल = सहस्रार-चक्र में अच्छी व सुमधुर ध्वनि सुनी। वहाँ नाना नाद युक्त बाजों की टंकार (ध्वनि) वैसी ही होती है जैसे बादलों के गर्जने की घोर गर्जना होती है। प्रियतम ने प्रेम रूपी पिचकारी से रंग उँड़ेला जिससे प्रियतमा प्रिय के संग सराबोर हो गई। वे कभी भी न्यारे नहीं होते। भक्त की भगवान् के प्रति प्रीति ऐसी ही होती है। वहाँ ज्ञान रूपी गुलाल उड़ती है। मेरा प्रियतम होली खेलता है। अद्भुत ख्यालों को देख व सुनकर प्रियतमा शरीर की सुधि-बुधि तक भूल गई। रस का मृदंग बजता है जिसका बजना कभी भी भंग नहीं होता। रोहल को इसका रंग लग गया है जिसने मन की आशा को पूरी कर दी है ॥1॥146॥

सहस पाँखड़ी को कमल, तहाँ परमहंस को वास।
पहुँचैगा को संत जन, आवागमन निवार ॥147॥

सहस्रार-चक्र में सहस्र पंखुड़ी का कमल है जहाँ परमहंस का निवास है। वहाँ कोई संतजन ही आवागमन के चक्र से छुटकारा पाकर पहुँचते हैं ॥147॥

गंगा जमुना सरसती, बहै त्रिवेणी तीर।
जाइ स्नान कीयो तहाँ, ऊजल भयो सरीर ॥148॥

वहाँ गंगा, यमुना व सरस्वती की त्रिवेणी बहती है। वहाँ जाकर स्नान किया जिससे शरीर=आत्मा उज्जवल=निर्मल हो गई ॥148॥

उसी कमल के पेट मँह, देख्या सुरति समाइ।
बाजा अनहद बाजिया, अखँड धुनी लिव लाइ ॥149॥

सहस्त्र पंखुड़ी के कमल को देखते ही उसके उदर में सुरति=चित्तवृत्ति समाहित हो जाती है। अनहद=निस्सीम बाजे बजते है और अखंडित ध्वनि होती है ॥149॥

पूरन पदवी जोग की, कह साखी चित जान।
बाजा अनहद बाजिया, निहचै करौ पिछान ॥150॥

साक्षी चित्त से कहता है- इसी को योग की पूर्ण पदवी जान। यहाँ अनहद-नाद बजता है। इसको पक्का निश्चय पहचानो ॥150॥

बैठा सुक्ख समाधि में, सतगुरु वचन विचार।
बिना मुरलिया बाजट बजिया, जिभ बिन भई पुकार ॥151॥

सद्गुरु के उपदेश पर अमल करके चित्त समाधि के सुख में स्थित हो गया। वहाँ बिना मुरली के ही बाजे बजे व बिना जिह्वा के ही शब्द का निर्गमन हुआ ॥151॥

केता ताल मृदंग है, अर केता दादर मोर।
किती नटपिया मुरलिया, बाजै अनहद घोर ॥152॥

पाठांतर : केती तंत्री

वहाँ कितने ही ताल-मृदंग हैं तो कितने ही ध्वनि करने वाले दादुर-मोर हैं। कितने ही नाचने वाले व मुरली हैं जिनसे अनहद-नाद=निस्सीम ध्वनि होती है ॥152॥

बाजों की जब धुनि सुनी, भयो चित्त लवलीन।
जाइ तहाँ रिलमिल गयो, ज्यूँ जल मध्ये मीन ॥153॥

चित्त ने जब नाना वाद्य-यंत्रों की ध्वनि सुनी तब वह उसमें निमग्न हो गया। वह वहाँ जाकर उसमें उसी प्रकार घुल-मिल गया जिस प्रकार मछली जल के साथ घुली-मिली रहती है ॥153॥

चित-वाच

तब चित आँख उघाड़ि कै, करी साखि सूँ बात।
अनहद बाजा बाजिया, सतगुरु के परसात ॥154॥

तब आँख खोलकर चित्त ने साक्षी से बातचीत की; कहा- सद्गुरु महाराज की कृपा से अनहद-नाद बजा ॥154॥

पुहुप पछिम सर भौंर है, सेत न कारौ होत।
ताके अरधै मुख में अमी झरै, उरधै मुख में जोत ॥155॥

पुष्प के पश्चिमी सर में भ्रमर है जो न श्वेत है, न काला है। उसके अधो-मुख में अमृत झरता है और ऊर्ध्व-मुख में प्रकाश है ॥155॥

साखी चित तहाँ जा कियो, परमहंस दीदार।
अमी रस्स किमि पीजिए, कह हम कूँ निज सार ॥156॥

साक्षी और चित्त ने वहाँ जाकर परमहंस का साक्षात्कार किया। निवेदन किया- अमृत-रस का पान किस प्रकार किया जाता है, उसका रहस्य (सार) हमसे कहो ॥156॥

परमहंस-वाच

जे हमसे तुम पूछियो, विष रस कूँ तुम त्याग।
कुबुधि सर्पणी मार करि, पिवो अमी रस जाग ॥157॥

परमहंस ने कहा- तुमने जो हमसे पूछा है, उसके लिये सर्वप्रथम तुम विषयानन्द का त्याग करो। कुबुद्धि रूपी सर्पणी को मार-कर चैतन्य हो-कर अमृत-रस का पान करो ॥157॥

परमहंस परबोध सुन, चलिया उलटी बाट।
जहाँ सही निरंजन आतमा, लिखिया भाग लिलाट ॥158॥

परमहंस द्वारा प्रदत्त प्रबोध को सुनकर चित्त उलटी वाट=सुषुम्ना-मार्ग से ऊपर की ओर चला। जहाँ पर निरंजन आत्मा विराजित है। ललाट पर सौभाग्य लिखा है ॥158॥

बंकनाळ के आँतरै, पच्छिम दिस के द्वार।
उलटी अंटी खोलकर, पायो दुरस दीदार ॥159॥

बंकनाळ= सुषुम्ना के निचले मुँह के सन्निकट पश्चिम की ओर के द्वार पर कुंडलिनी की उल्टी पड़ी हुई साढ़े तीन ग्रंथियों को खोल-कर परब्रह्म-परमात्मा का दुरुस्त=प्रत्यक्ष साक्षात्कार प्राप्त किया ॥159॥

मेरु सिखर आसन किया, जहाँ बैठो आतमराम।
तहाँ ससि सूरज दोनों नहीं, नहिं छाया नहिं धाम ॥160॥

मेरु-शिखर=सहस्रार-चक्र में जाकर आसन लगाया जहाँ आत्मा-राम विराजमान है। वहाँ सूर्य व चन्द्रमा दोनों नहीं हैं। वहाँ छाया व धूप भी नहीं हैं ॥160॥

तहाँ जन्म मरण को भै नहीं, अर नहीं करम की हान।
हद जोई बेहद पड़्या, नूर माहिं निरवान ॥161॥

वहाँ जन्म व मरण का भय नहीं है और कर्मों का हान=प्रभाव भी वहाँ नहीं है। जो हद=सीमा में था, वह निस्सीम में हो गया। प्रकाश में निर्वाण है॥ 161॥

गगन मँडल भट्टी चढी, निकसै अमिरत सार।
बाल कुँवारी भर दिया, चाख्या पाँच कुँवार ॥162॥

गगन-मंडल (सहस्रार-चक्र) में भट्टी चढ़ी हुई है जिसमें से अमृत रूपी सार=शराब निकलती है। बाल-कुँवारी=बाल-ब्रह्मचारिणी ने प्याला भर-कर दिया और पाँच कुमारों ने उसका पान किया ॥162॥

झिलमिल जोती जळहळी, छिप्पा चंद अर सूर।
गगन मँडल के महल मूँ, बरसै अमिरत नूर ॥163॥

परब्रह्म-परमात्मा रूपी ज्योति वहाँ झिलमिल-झिलमिल प्रकाशित होती है, जिससे चन्द्रमा व सूर्य के प्रकाश भी मंद पड़ गये, छिप गये। गगन-मंडल के महल से अमृत (ऐसा प्रकाश जो कभी भी न कम होता है और न मंद पड़ता है। एक रस रहता है।), प्रकाश प्रसारित होता है ॥163॥

आतम के उजवाल की, मुख सूँ बनै न बात।
ज्यूं गूंगा सपना लहै, समझ समझ पछतात ॥164॥

आत्मा के इस अप्रतिम प्रकाश का वर्णन मुख से करना शक्य नहीं। यह बात वैसी ही है, जैसे गूंगे को स्वप्न आया हो, वह उसको समझता तो है किन्तु कह नहीं सकने के कारण पश्चाताप करता है ॥164॥

आतम अणभै औलखिया, थाकी मंछा बाण।
जैसा था तैसा भया, पाया पद निरवाण ॥165॥

आत्मा ने अणभै=परब्रह्म-परमात्मा का साक्षात्कार किया जिससे बुद्धि-वृत्ति व वाणी दोनों ने काम करना बंद कर दिया। जैसा था, वैसा हो गया, निर्वाण पद प्राप्त करके। (आत्मा, परमात्मा ही था, वाण=माया के कारण अपने आपको परमात्मा से भिन्न मानने लगा। ब्रह्म-साक्षात्कारोपरान्त आत्मा, परमात्मा के रूप में ही अनुभव करने लगा। यही 'जैसा था, वैसा हो गया' है) ॥165॥

आतम राम बुलाइ करि, साखी चित्त हजूर।
किया नजारा नूर का, होइ रह्या भरपूर ॥166॥

स्वयं के हजूर=सन्मुख आत्माराम ने साक्षी व चित्त को बुलाया। उन्होंने परम प्रकाश रूप परमात्मा का साक्षात्कार किया और एकमेक हो गये ॥166॥

अथ कीर्तन

प्रभुजी मैं सरन तुम्हारी आया।
मन में ममता रही न काई, दर्द मिट्या सुख पाया ॥रहाउ॥
ग्यान सुरज घट भीतर उगिया, अखँड जोति रँग लाया।
जिस कारण जग फिरत उदासी, सो घट भीतर पाया ॥1॥
काम क्रोध का डंक न लागै, मोह न व्यापै माया।
काया कलह कलेस लेस नहिं लागै, सोई सहर बसाया ॥2॥
जनम मरण का साँसा भागा, चेतन सूँ चित लाया।
पारस सूँ जब परचा लागा, लाल अमर भइ काया ॥3॥
अगम भेद अनड़ को मारग, सतगुरु मोहि बताया।
रोहल रतन अमोलक मिलिया, भागहि प्रापत पाया ॥4॥167॥

हे प्रभो! मैं आपकी शरण में आया हूँ। अब मन में किसी भी प्रकार की ममता का लेश भी नहीं रहा। जन्म-मरण का दर्द मिट गया। अखंडानन्द का अनुभव होने लगा ॥रहाउ॥ हृदय में ज्ञान-सूर्य का उदय हो गया जो अखंड ज्योति स्वरूप आनन्द को देने वाला सिद्ध हुआ। जिस आत्म-साक्षात्कार को पाने को मैं उदासीन होकर इधर-उधर घूमा-फिरता था, वह इस शरीर के भीतर ही मिल गया ॥1॥ अब काम व क्रोध का डंक लगने वाला नहीं, मोह व माया का प्रभाव भी पड़ने वाला नहीं। जिस शहर को मैंने बसाया है, उसमें काया-जन्य कलह व क्लेश का लेशमात्र भी व्यापता नहीं ॥2॥ जन्म व मरण होगा या नहीं, इस प्रकार का जो उभय-कोट्यात्मक संशय था, वह नष्ट हो गया और चित्त का सामरस्य चैतन्य-तत्त्व से हो गया। अब, जब पारस रूपी लाल=परमात्मा से साक्षात्कार हो गया, तब काया अमर हो गई ॥3॥ अगम=अगम्य परमात्मा का ज्ञान, साक्षात्कार अनड़=अलंघ्य पर्वत को लंघन करने का मार्ग है जिसको मुझे सद्गुरु महाराज ने बता दिया। रोहल कहता है- मुझे अमूल्य रत्न मिल गया है जो भाग्य से प्राप्त हुआ है ॥4॥167॥

जनम जनम का दुःख मिट्या, अर जनम जनम के पाप।
सभ तन पावन हो रह्यो, जब दरस्यो आतम आप ॥168॥

जन्म-जन्मान्तरों के दुख नष्ट हो गये, जन्म-जन्मान्तरों के पाप भी विनष्ट हो गये। अब जब स्वयं आत्माराम का साक्षात्कार हो गया, तब समस्त शरीर पावन=निर्मल हो गया ॥168॥

साखी चित्त बुलाइ करि, आतम पूछी बात।
ये पद किमि तुम पाइयो, जो अकळ कळ्यो नहिं जात ॥169॥

आत्मा ने साक्षी व चित्त को बुलाकर पूछा, जो कलता नहीं, ऐसा अकल पद तुमने किस प्रकार प्राप्त किया॥ 169॥

चित-वाच

जाँ पर किरपा तुमारी, अर दया करी गुरुदेव।
पूरन पदवी तब मिलै, चरन कमल की सेव ॥170॥

चित्त ने कहा- जिस पर आपकी कृपा हो और गुरुदेव ने कृपा कर दी हो, तब ही पूर्ण पद की प्राप्ति होती है और चरण-कमलों की सेवा करने का अवसर मिलता है ॥170॥

जेते दुख चित कूँ लगे, अर मन ममता की मार।
से सभ आतमराम कूँ, जाए करी पुकार ॥171॥

जितने भी दुःख चित्त को दुखित करते थे, मन व ममता की चित्त पर मार पड़ती थी, उन सभी ने आत्माराम से जाकर पुकार की ॥171॥

जहाँ दुख मूँ सुख पाइए, सोई दुख सुख जान।
बिना दुक्ख सुख किमि मिलै, किस विधि पड़ै पिछान ॥172॥

जिस दुःख में सुख मिलता है, उस दुःख को सुख ही मानना चाहिए। बिना दुःख पाये, सुख कैसे मिल सकता है और किस प्रकार 'यह सुख है' जाना जा सकता है। (जैसे रात्रि की सापेक्षता से दिन जाना जाता है, ऐसे ही दुख की सापेक्षता से सुख जाना जाता है) ॥172॥

रे चित चिंता मत करौ, चेतन तुमरौ नाम।
राम दुहाई फेर ले, काया नगरी गाम ॥173॥

हे चित! चिंता मत कर। तेरा नाम चैतन्य है। काया रूपी नगर के गाँव में राम-नाम की दुहाइ फेर ले ॥173॥ (दुहाई=घोषणा, राजाज्ञा, प्रताप, तेज, पुकार, आन की स्थापना करना, दुहाई फेरना कहा जाता है।)

दिल के देस डेरा करौ, साखी तुमरे साथ।
दुरजन सकल हटाइ करि, मन कूँ पकड़ौ हाथ ॥174॥

हृदय-देश में निवास करो। साक्षी तुम्हारे साथ है। समस्त दुर्जन=विकारों=काम क्रोधादि षड्-विकारों को भगाकर मन को हाथ में पकड़ लो अर्थात् मन को नियंत्रित कर लो ॥174॥

ग्यान घोड़ा प्रतीत पलाणी, तत दीनी तलवार।
खम्या गरीबी कापड़ा, सँयम सील हथियार ॥175॥

ज्ञान का घोड़ा, विश्वास का चारजामा व तत्त्व की तलवार ले लो। क्षमा व नम्रता के कपड़े पहन-कर संयम व शील के हथियार धारण करो ॥175॥

करणी का कंगन दिया, अर रहणी के सुखपाल।
चेतन कूँ आतम कियो, काया को रखपाल ॥176॥

करणी=उत्तम साधना का कंगन पहनो। उत्तम आचरण की पालकी में बैठो। आत्मा ने चेतन=चित्त को शरीर का रक्षक बना लिया ॥176॥

चेतन कूँ पहराइ करि, साखी दीनों साथ।
कायागढ़ के कोट की, कुंजी दीनी हाथ ॥177॥

चैतन्य (चित्त) को पहरायत=द्वारपाल बनाकर साक्षी को साथ में कर दिया। काया रूपी किले की चाबी हाथ में दी ॥177॥

नमस्कार कर जोड़ करि, चेतन कियो सलाम।
आतम तब आग्या दीनी, जाइ करौ विसराम ॥178॥

चेतन (चित्त) ने दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया व प्रणाम किया। तब आत्माराम ने आज्ञा दी कि जाओ और विश्राम करो ॥178॥

आतम कूँ परनाम करि, चलिया चेतन संग।
साखी गुरु आगे गया, प्रगट भयो निकलंक ॥179॥

आत्मा को प्रणाम करके चित्त साथ में चला। साक्षी गुरु पहले ही चला गया। निष्कलंक रूप में प्रकट हुए ॥179॥

देस देस में धूम पड़ी, अर वाणी फूटी वास।
चढियो चेतन चाहि करि, मारूँ मन मेवास ॥180॥

देश-देशान्तर में समाचारों की धूम आग की तरह फैल गई। सुमधुर वाणी का प्रस्फुटन हुआ। आनन्दित होकर चैतन्य युद्धार्थ तैयार हुआ और संकल्प किया कि मन रूपी मेवासा=लुटेरे को मारूंगा ॥180॥

चेतन को परिवार सभ, आगे मिलियो आइ।
एक एक कूँ सभ देवुँ, घोड़ा अर सिरपाइ ॥181॥

चैतन्य (चित्त) का समस्त परिवार आगे=सन्मुख में ही आ मिला। तब चैतन्य ने कहा- मैं आप सभी को घोड़े और सिरोपाव=चोटी से लेकर एडी तक युद्ध में जाने वाले योद्धा द्वारा पहने जाने वाले कवचादि, देता दूँ ॥181॥

सिव नगरी आसन किया, निरभय वाणी बात।
भजन बिना भगवान का, और न बोली बात ॥182॥

शिव की नगरी में आसन लगाया। निर्भय वाणी में बातें करने लगा। भगवद्‌भजन के अलावा और कोई दूसरी बात बोलता ही नहीं ॥182॥

जिस घट नौबत राम की, बाजै अनहद घोर।
रोहल रल बिछड़ै नहीं, जैसे चंद चकोर ॥183॥

जिस शरीर में राम-नाम की नौबत से अनहद-ध्वनि बजती है, वह परमात्मा से मिलकर उसी प्रकार बिछुड़ता नहीं, जिस प्रकार रात्रि में चन्द्रमा से चकोर नहीं बिछुड़ता ॥183॥

चेतन चिट्‌ठी लिक्ख कर, मेली मन के पास।
अब तुम आ पागै पड़ौ, तज ममता की आस ॥184॥

चैतन्य ने चिट्‌ठी लिखकर मन के पास भेजी। समाचार लिखा, अब तुम ममता की आशा को त्याग-कर हमारे पैरों में आकर नत-मस्तक हो जाओ॥ 184॥

रे मन मूरख समझ ले, तजि झूठौ अभिमान।
नहिं तो मैं अैसे करूँ, जो देखै जुमल जहान ॥185॥

झूठा अभिमान त्यागकर, हे मूर्ख मन! समझ जा। अन्यथा मैं तेरे साथ ऐसा करूंगा कि उसको सारा संसार देखेगा ॥185॥

जा चिट्‌ठी चेतन लिखी, सा पहुँती मन कूँ जाइ।
जे अपने उमराइ थे, लीए सकल बुलाइ ॥186॥

जो चिट्‌ठी चेतन ने लिखी, वह मन के पास जाकर पहुँच गई। उसके (मन के) जो-जो सामंत थे, उन सभी को उसने बुला लिये ॥186॥

मन-वाच

एक एक सूँ पूछिया, अब लड़ूँ कि मिलूँ जाइ।
चिट्‌ठी वाँची चित्त की, कहो मुझे समझाइ ॥187॥

मन ने अपने प्रत्येक सामंत से पूछा- अब लड़ना चाहिए अथवा अधीनता स्वीकार करके मिल जाना चाहिए। मैंने चित्त द्वारा भेजी चिट्‌ठी पढ़ी है। मुझको समझाकर कहो, उचित सलाह दो ॥187॥

अथ कीर्तन

अपना रूप पिछान। समझ मन दरसन एही है,
पिंड ब्रह्मँड कुल रास तुमारी, काहे कूँ करत गुमान ॥रहाउ॥
जैसे सिंघ अजिया मूँ डोला, आप न चीन्है भरमै भोला।
जानत होय अजान ॥1॥
कस्तूरी बसै मृघ के माहीं, वनखँड ढूँढै सूंघै जाई,
होइ रहिया हैरान ॥2॥
जिन तुम कूँ निहचै करि जान्या, रमता राम सकल घट मान्या,
सेई साधु प्रमान ॥3॥
तीन लोक मँह तुमरा वासा, काहे कूँ तू निरत उदासा,
जान सकौ तो जान ॥4॥

जब मेरी प्रीति साहिब सूँ लागी, रोहल रैन भरम की भागी,
आतम मूँ गलतान ॥5॥188॥

अपने वास्तविक स्वरूप को जान। हे मन! समझ। आत्मा के वास्तविक स्वरूप का अनुभव कर लेना ही दर्शन है। समस्त पिंड व ब्रह्मांड में तेरी ही राशि =आत्मा अथवा सत्ता है। क्यों, नाहक ही गर्व-गुमान करता है ॥रहाउ॥ जिस प्रकार सिंह बकरियों के झुंड में रहने से अपने सिंहत्व को नहीं पहचानता और भ्रम के कारण अपने आप से अनजान होकर बकरियों के साथ घूमता-फिरता है ॥1॥ कस्तूरी मृग की नाभि में रहती है किन्तु भ्रम-वश वह वनखंड में सूंघ-सूंघकर कस्तूरी को ढूंढता है। हैरान होता है (किन्तु कस्तूरी जंगल में नहीं मिलती) ॥2॥ जिसने तुझको निश्चय-पूर्वक जाना है, समस्त सचराचार-मात्र में तुमको रमताराम करके जाना है, वे ही प्रामाणिक साधुजन हैं ॥3॥ तीनों लोकों में तू ही व्याप्त है, फिर भी क्यों उदासीन होकर घूमता-फिरता है। अपने असली स्वरूप को जान सके तो जान ले ॥4॥ रोहल कहता है- जब से मेरी एकान्तिकी प्रीति प्रियतम से लगी है, तब से भ्रम की अंधेरी रात्रि भाग गई है और मैं आत्मतत्त्व में एकाकार हो गया हूँ ॥5॥188॥

प्रधान-वाच

तब बोल्यो परधान सभ, मन राजा के साथ।
चित्त विचारा क्या करै, चलौ त पकड़ूँ हाथ ॥189॥

तब प्रधान ने मन से कहा- हम सभी राजा-मन के साथ हैं। बेचारा चित्त क्या करेगा? यदि आप मेरे साथ चलो, तो मैं चित्त का हाथ पकड़ लूँ, (गिरफ्तार कर लूँ) ॥189॥

हम तुमरे दरबार का, खाया सेर अनाज।
तुम निहचै करि जानियो, सकल मल्हाऊँ आज ॥190॥

मैंने तुम्हारे दरबार में रहकर तुम्हारा अनाज खाया है, अतः आप निश्चित जानिये कि मैं आज ही सभी को मार डालूँगा ॥190॥

जो आगै हम नीकालिया, ओही है अब चित्त।
पकड़ तुमारे हाथ देउँ, घास कटाऊँ नित्त ॥191॥

पूर्व में हमने जिसको निकाल-कर भगा दिया था, वही चित्त अब है। उसको पकड़-कर मैं आपके हाथों में दे दूंगा और उससे रोजाना घास कटवाऊँगा ॥191॥

मन सूँ मिल अम्मल पियो, उठै हलामा खाए।
अब नहिं छोड़ूँ चित्त कूँ, जो कुछ करै खुदाए ॥192॥

प्रधान ने मन से मिलकर=एकमत होकर अमल-पान किया, कलमा पढ़ा और युद्धार्थ तैयार हुए। कहा- अब चित्त को छोड़ूँगा नहीं, खुदा जो भी=अच्छा या बुरा करे ॥192॥

चिट्ठी भेजी चित्त कूँ, अब भाजी मत जाइ।
सिर के सौदे देस है, जो खाटै सो खाइ ॥193॥

चित्त के पास चिट्ठी भेजी। लिखा, अब युद्ध-क्षेत्र से भाग मत जाना। देश या राज्य सिर के बदले में मिलता है, जो श्रम करता है, वही प्राप्त करता है॥ 193॥

चढिया मन मेवास जब, बजे दमामे घोर।
जाइ कहूँ अब चित्त कूँ, जो भाजै सो चोर ॥194॥

जब लुटेरा, रणोत्सुक मन युद्धार्थ तैयार होकर चला, तब युद्ध के नगारों की गंभीर ध्वनि हुई। अब चित्त से जाकर कहूंगा कि जो रणक्षेत्र से पीठ दिखाकर भागता है, वह चोर है ॥194॥

जितनी बात मन सूँ सुनी, सभ कहि चित सूँ जाइ।
साखी चित दोनों चढ्या, बेली सकल बुलाइ ॥195॥

प्रधान ने जितनी व जैसी बातें मन से सुनीं, वे सभी चित्त से जाकर कही। सुन-कर चित्त व साक्षी दोनों युद्धार्थ तैयार होकर चले। इन्होंने भी अपने साथी बुला लिये ॥195॥

चेतन दल है ब्रह्म का, मन माया दल जान।
अरध उरध के बीच में, सूराँ का घमसान ॥196॥

चेतन, ब्रह्म के दल का है। मन, माया के दल का है। अधः (नीचे) और ऊर्ध्व (ऊपर) के मध्य शूरवीरों का युद्ध है, यह ॥196॥

अड़ै उड़ै सूँ जा लगी, अर सूर मिल्या जा सूर।
मन चेतन के बीच में, बाजै अनहद तूर ॥197॥

इधर के योद्धा उधर जा पहुँचे। (यहाँ अड़ै=अर्ध और उड़ै=ऊर्ध्व का वाचक भी है। अमर होने का अमृत ऊर्ध्व में है जिसको मूलाधार-चक्रस्थ सूर्य सोख लेता है और अमरत्व प्राप्त नहीं होता। अतः लड़ाई का तात्पर्य इस अमृत को नीचे की ओर न आने देने से है।) शूरवीर, शूरवीर से जा मिले। मन और चैतन्य के मध्य लड़ाई के निस्सीम नगाड़े बजने लगे ॥197॥

प्रथम कह्यो मन काम कूँ, जाइ करौ तुम जंग।
अर्ध दलाँ के बीच में, मारी घात निसंग ॥198॥

मन ने सर्वप्रथम काम से कहा- जाओ और युद्ध करो। नीचे वाले दलों पर निश्शंक होकर मार मारो ॥198॥ (पुरुषेन्द्रिय व नारीन्द्रिय दोनों शरीर के निचले भाग में है। अतः काम से नीचे के भाग में प्रहार करने को कहा।)

चढ्यो काम अभिमान करि, आइ खडौ मैदान।
अति अहँकार करि कल्पना, बक बक भयो हैरान ॥199॥

काम अभिमान में भरकर लड़ने को तैयार हो मैदान में आ खड़ा हुआ। अति अहंकार के वशवर्ती होकर कल्पना में डूबकर कि मैं चेतन को अपने वश में कर लूंगा, नाना प्रलाप करने लगा किन्तु थक गया, कर कुछ नहीं सका ॥199॥

तब चित कहियो सील कूँ, तृष्णा काम मिटाइ।
लिंग वासना देह की, देवौ सकल हटाइ ॥200॥

तब चित्त ने शील से कहा कि तुम काम की तृष्णा को मिटा डालो। देह में जो लिंग-भोग की वासना है, उस समस्त काम-तृष्णा को हटा दो ॥200॥

गुरु के चरणै लागि करि,चलियो सील सुजान।
हाथ जोड़ि पागै पड़्यो, भयो काम हैरान ॥201॥

गुरु के चरणों में प्रणाम करके विवेकी शील चला। शील को देखते ही हाथ जोड़कर हैरान काम, शील के चरणों में झुक गया ॥201॥

कहाँ गई ओ कल्पना, अर कहाँ गई ओ खीज।
जब देख्यो मुख सील को, भयो काम निरहीज ॥202॥

जब शील का मुख देखा, तब काम निरीह=चेष्टाहीन=निर्वीय हो गया। कहाँ तो उसकी कल्पना चली गई व कहाँ उसका गुस्सा चला गया ॥202॥

काम सरूपी मिरघली, सील सिंघ है सूर।
एकौ हाथ लगाइ करि, मारि गयो चकचूर ॥203॥

काम मृगी के समान है। शील शूरवीर सिंह के समान है जिसने एक ही हाथ की मार से काम रूपी मृगी को चकनाचूर=सर्वथा नष्ट कर दिया ॥203॥

काम कह्यो तब सील कूँ, राम दुहाई तोहि।
तुम जीत्यो हम हारियो, अब मत मारौ मोहि ॥204॥

तब काम ने शील से कहा- तुझे रामजी की सौगंध है। तुम जीत गये, मैं हार गया हूँ। अब मुझे मारो मत ॥204॥

काम गले में जेवड़ी, बाँधी सील सुजान।
ले आयो चेतन अगै, आइ कियो उनमान ॥205॥

शील सुजान ने काम के गले में रस्सी बांधी और उसको चेतन के आगे ले आया तथा पूछा, इस काम का उनमान=क्या करूँ?॥205॥

तब चेतन कह्यो सील कूँ, बाँध कैद में डार।
ऐसे ही कर राखलो, जो अहनिसि खावै मार ॥206॥

तब चैतन्य ने शील से कहा- बाँध-कर इसको कैदखाने में डाल दो। इसको रात-दिन ऐसे ही करके रखना ताकि यह मार खाता रहे॥ 206॥

तब काम कह्यो चेतन अगै, तुम कीनौं बडौ सँताप।
काम रूप मुझ प्रभु कियो, तुम कूँ लगै सराप ॥207॥

तब काम ने चेतन के सामने निवेदन किया, आपने तो बड़ा संताप=दुःख दे दिया है। परमात्मा ने मुझको काम के रूप में बनाया है। यदि मुझे कारागार में डालोगे तो आपको श्राप लगेगा ॥207॥

एक साधनी देत हूँ, ओहि बहुत करि जान।
और आस तुम मत करौ, नहिं तो काटूँ कान ॥208॥

तब चेतन ने कहा- तुझे मैं एक साध्वी देता हूँ; तू इसी को बहुत=पर्याप्त मान। और स्त्री पाने की कामना मत करना। करेगा तो मैं तेरे कान काट लूंगा ॥208॥

अथ कीर्तन

प्रेमी भल्यू भया रे भाई, ऐसौ प्रेम पियालौ पीधौ ॥रहाउ॥
प्रेम पियासी रिधि सिधि दासी, जोग जाग नहिं कीधौ।
भई कृपा तब अलख लखायो, सतगुरु वचनन सीधौ ॥1॥
प्रेम पियालौ अजर अमर है, गहला लोक न जाणैं।
जो रस था देवतिया नु दुर्लभ, सो रस प्रेमी माणैं ॥2॥
प्रेम बिना कोइ पार न पावै, बात करै जिमि सूवा।
मोह माया के पिंजरे पड़िया, कथनी कथ कथ मूवा ॥3॥
प्रेम हमारे सिर का साँई, मैं ताँ प्रेम की दासी।
प्रेम कला सूँ नैनन निरख्या, आतम मैं अविनासी ॥4॥
प्रेम प्रकास भयो उजवाला, जोग जुगति के जागे।
रोहल पिय कूँ प्रेमिन पायो, प्रेम बडौ है पागे ॥5॥209॥

हे भाई! मैंने प्रेम का ऐसा प्याला पिया है कि मैं अच्छा प्रेमी हो गया हूँ ॥रहाउ॥ मैंने कोई योग अथवा यज्ञ नहीं किया अपितु प्रेम का प्याला पिया जिससे रिद्धि व सिद्धि मेरी दासी हो गईं। जब प्रेमास्पद की कृपा हुई तब उस अलक्ष्य के दर्शन हुए, यह सब सद्गुरु महाराज के वचनों का पालन करने के कारण सिद्ध हो सका ॥1॥ प्रेम का प्याला अजर-अमर है किन्तु मूर्ख लोग इसको सही रूप से नहीं जानते। जो प्रेमानंद देवताओं को भी दुर्लभ है, वह आनंद प्रेमीजन पाते हैं ॥2॥ बिना प्रेम के कोई भी परमात्मा का पूरा रहस्य नहीं जान सकता, जैसे तोता पिंजरे में रटाई हुई बातें तो बोलता है किन्तु उनका रहस्य नहीं जानता। वह शुक माया-मोह में पिंजरे में बंद हो जाता है जिस कारण कह-कह कर, थक-कर मर जाता है, हाथ कुछ नहीं आता ॥3॥ प्रेम मेरे सिर का मोड़ है, स्वामी है, मैं उस प्रेम की दासी हूँ। मैंने प्रेम की कला से आत्मा में ही अविनाशी को नेत्रों से देख लिया है ॥4॥ योग युक्ति के जागने=सिद्ध हो जाने से प्रेम के प्रकाश का उजाला हो गया। रोहल कहता है- प्रियतम को प्रेमियों ने प्राप्त किया है। प्रेम प्रियतम का पाने का बहुत बड़ा सोपान है, बहुत बड़ी सीढ़ी है ॥5॥209॥

फतह हुई चेतंन की, जो सुर नर धीर गँभीर।
मिटी काम की कलपना, जब डाल्यो सील जँजीर ॥210॥

जो सुर व नर के समान धीर एवं गंभीर है उस चेतन की जीत हो गई। जब शील

ने काम को जंजीर से जकड़ लिया तब काम का उद्रेक मिट गया, काम शांत हो गया ॥210॥

सील काम कूँ मारियो, जब सुनी मंन ये बात।
लागौ दुख तब गिर पड़ो, सिर पर मारे हात ॥211॥

जब मन ने यह बात सुनी कि शील ने काम को मार डाला है, तब वह दुःखी होकर जमीन पर गिर पड़ा और माथे पर हाथ मारने लगा अर्थात् पछताने लगा ॥211॥

बहुत काल मन कूँ चढ्‌यो, लीयो क्रोध बुलाइ।
काम कछू सत ना कियो, तुम करौ लड़ाई जाइ ॥212॥

मन को बहुत भारी काल=युद्धोन्मादजन्य संहारक-भाव चढ़ आया, उसने तत्काल क्रोध को बुलाया। कहा- युद्ध में काम ने कुछ भी शूरवीरता का कार्य नहीं किया। अब तुम जाकर लड़ाई करो ॥212॥

चढ्यो क्रोध मैदान मँह, कियो बहुत उदमाद।
तब चित कह्यो सँतोष कूँ, अब करौ क्रोध कूँ माद ॥213॥

क्रोध रणक्षेत्र में युद्धार्थ आया और बहुत ही उत्साह दिखाया। तब चित्त ने संतोष से कहा- अब क्रोध को मंद (नष्ट) कर दो ॥213॥

चेतन के चरणै लाग करि, चल्यो सँतोष सुजान।
सतगुरु वचन विचार करि, जाइ खडौ मैदान ॥214॥

संतोष सुजान चैतन्य के चरणों में प्रणाम करके चला। सद्‌गुरु के वचनों को शिरोधार्य-कर रणक्षेत्र में जाकर खड़ा हो गया ॥214॥

कह्यो क्रोध संतोष कूँ, सीस काटूँ तुझे मार।
कह्यो संतोष क्रोध कूँ, अंत चलैगा हार ॥215॥

क्रोध ने संतोष से कहा- तेरे सिर को काट-कर तुझे मारूँगा। इस पर संतोष ने क्रोध से कहा- अंत में तू ही हार-कर पलायन करेगा ॥215॥

क्रोध कियो बकवाद तब, उनमन भयो संतोष।
खायो काल किरोध कूँ, सँतोष पायो पद मोख ॥216॥

तब क्रोध ने बकवास की। संतोष उन्मन=चुप हो गया। उसने कराल काल के समान सन्मुख मिले क्रोध को खा डाला। संतोष ने मोक्ष पद प्राप्त किया ॥216॥

अगनि रूप है क्रोध का, सँतोष रूप है जल।
जब दोनों भेड़ा भया, गयो अगनि को बल ॥217॥

क्रोध का स्वरूप अग्नि के समान है जबकि संतोष जल के समान है। जब दोनों एक साथ मिले तब अग्नि रूपी क्रोध का बल शांत हो गया ॥217॥

सँतोष सुत सत सार है, क्रोध कूड़ अर कच।
नहीं ठौर तहाँ कूड़ की, जब प्रगट्यो पूरन सच ॥218॥

संतोष स्वतः सत का सार है। क्रोध कूड़=झूठा और कच=असत्य है। जब पूर्ण सच प्रकट हो गया, तब वहाँ झूठ का कोई स्थान न बचा ॥218॥

क्रोध ऊभौ मैदान में, जैसो कागज कोट।
जब पड़ी बूंद संतोष की, कोट पड़ो भू लोट ॥219॥

क्रोध रणक्षेत्र में वैसे ही खड़ा है जैसे कि कोई कागज का बना किला खड़ा हो। जब संतोष रूपी जल की बूंद क्रोध रूपी कोट पर पड़ी, तब कोट (किला) भूशायी हो गया ॥219॥

कान पकड़ जब क्रोध कूँ, ले आयो सूर सँतोष।
चेतन के दरबार में, वहु पायो पद मोष ॥220॥

शूरवीर संतोष कान पकड़कर क्रोध को जब चैतन्य के दरबार में ले आया, तब उसने भी मोक्ष पद प्राप्त किया ॥220॥

क्रोध मिल्यो संतोष कूँ, निहचै लीयो भाव।
गई कलपना करम की, सीतल सदा सुभाव ॥221॥

क्रोध जब संतोष से मिला तब क्रोध ने निश्चय का भाव धारण कर लिया। उसकी नाना दुष्कर्म करने की कल्पनाएँ=भंगिमाएँ नष्ट हो गईं और उसका स्वभाव सदैव के लिए शीतल हो गया ॥221॥

साँभर में जो गिर पड़ै, सकल लूण हो जाइ।
क्रोध पड़्यो संतोष मँह, एकमेक हो जाइ ॥222॥

जो जल सांभर-सर में गिर जाता है, वह लवण रूप हो जाता है। इसी प्रकार क्रोध संतोष रूपी जल के सर में गिरकर एक-मेक हो गया ॥222॥

क्रोध हार्‌यो संतोष सूँ, सुनी मंन एह बात।
पड़्यो अंत अंदोह में, लगी जिगर में घात ॥223॥

क्रोध संतोष से हार गया, यह बात मन ने सुनी। वह अत्यन्त दुःखी हुआ और हृदय में गहरी चोट लगी ॥223॥

तब मन कह्यो अहँकार कूँ, जाइ करौ तुम जुद्ध।
चेतन को दल मार कर, पकड़ ले आओ बद्ध ॥224॥

तब मन ने अहंकार से कहा- जाकर तुम युद्ध करो। चेतन के दल को मार-कर चैतन्य को बांधो और पकड़-कर ले आओ ॥224॥

अहँकार चढ्यो अति गर्व सूँ, दो दल के रण माहिं।
चेतन कह्यो तब प्रेम कूँ, पकड़ ले आवौ बाँहिं ॥225॥

अति गर्व धारण करके अहंकार रणक्षेत्र के दोनों दलों के मध्य पहुँचा। तब चैतन्य ने प्रेम से कहा- बाँह पकड़-कर अहंकार को ले आओ ॥225॥

चढ्यो प्रेम मैदान में, जिम हाथी रण मस्त।
पहले ही अहँकार कूँ, मार्‌यो सिर पर दस्त ॥226॥

प्रेम रणक्षेत्र में वैसे ही पहुँचा जैसे रण-मस्त हाथी रण में जाता है। जाते ही सर्वप्रथम अहंकार के माथे पर प्रेम ने अपने हाथ की थाप मारी ॥226॥

लगो हाथ अहंकार कूँ, पड़्यो भूमि परि लेट।
गीदड़ होई सेर की, किस विधि झेलै चपेट ॥227॥

जैसे ही अहंकार के हाथ की लगी, वह भूमि पर गिरकर लोट-पोट हो गया। गीदड़ हुआ अहंकार प्रेम रूपी सिंह की मार कैसे सहन कर सकता है?॥227॥

अहँकार कह्यो तब प्रेम कूँ, बहुरि न मारौ बाण।
तुम जीत्या हम हारिया, अब छोड़्या तीर कमाण ॥228॥

तब अहंकार ने प्रेम से कहा- अब और बाणों का प्रहार मत करो। हम हार गये, तुम जीत गये। अब मैंने तीर-कमान छोड़ दिये हैं ॥227॥

भुजा पकड़ अहँकार की, केस ले आयो प्रेम।
चेतन के दरबार में, जाइ लियो निज नेम ॥229॥

अहंकार को भुजा व केशों के द्वारा पकड़-कर, चैतन्य के दरबार में प्रेम खींच-कर ले आया। अपना नेम=कर्तव्य पूरा किया ॥229॥

तब लोभ मोह कूँ मन कह्यो, जा लड़ौ विवेक विचार।
लोभ मोह दोनों कह्यो, ए बाजी कूड़ पसार ॥230॥

तब मन ने लोभ व मोह से कहा- जाकर विचार व विवेक पूर्ण होकर लड़ो। तब लोभ व मोह दोनों ने कहा- यह युद्ध झूठ का विस्तार मात्र है ॥230॥

ऊवाँ को बल बहुत है, साहिब इसके माहिं।
भाजन एही बार है, पीछै निकसन नाहिं ॥231॥

उनकी ताकत अपरिमित है। भगवान् भी उनके साथ है। यह समय तो लड़ने का नहीं, भागने का है क्योंकि बाद में युद्ध क्षेत्र में से निकलना भी संभव नहीं होगा ॥231॥

मंन उहाँ सूँ भाग कर, जा पड़्यो घर अभिमान।
चेतन चढियो चाह सूँ, गढ कूँ रोक्यो आन ॥232॥

मन वहाँ से भाग-कर अभिमान के घर में जा छिपा। उत्साह सहित चैतन्य ने अभिमान के गढ़ पर चढ़ाई कर दी और गढ़ को चारों ओर से घेर लिया ॥232॥

सुरँग लगाई सास की, अर दारू कीनौं दंम।
जब लगा पलीता प्रेम का, ना को तुम ना हंम ॥233॥

श्वास की सुरंग बनाई। दम=प्राणवायु=श्वास को काष्ठ व बारूद बनाया। जब प्रेम रूपी पलीता (अग्नि) लग गया तब न तुम न हम, सभी जलने लगे ॥233॥

पकड़ उहाँ सूँ मंन कूँ, ले आयो चेतन पास।
हाथ जोड़ पागै पड़्यो, मुख में पायो घास ॥234॥

मन को पकड़-कर वहाँ से चैतन्य के पास ले आया। मन ने हाथ जोड़े, मुख में दीनता सूचक घास रखी और पैरों में पड़ गया ॥234॥

चेतन कूँ परणाम करि, धर्‌यो पगाँ पर सीस।
मैं चेला तुम सतगुरू, नाम करौ बखसीस ॥235॥

चेतन को प्रणाम करके मन ने चेतन के पैरों में अपना मस्तक झुका दिया। कहा- मैं शिष्य व आप सतगुरु हो। अब मुझे नाम-दान=दीक्षा प्रदान करो ॥235॥

चेतन-वाच, सवैया

प्रीति की रीति कहूँ तुमको चित, लाइ सुनौ भोरा मन मेरा।
ये जग जान जिसौ सुपनौ तजि, झूठ की ओट नहीं कछु तेरा ॥

ताहि सुँ नेह करौ अधिकौ जाके, संग तरो भव जल्ल का घेरा।
साँइ के नाम को नीर पिवौ रुच, रोहल तोहि मिटै जम फेरा ॥236॥

चित्त लगाकर सुनो- हे मेरे भोले मन! मैं तुमसे प्रीति की रीति कहता हूँ। इस जगत् को स्वप्न के समान जानो। इस झूठे जगत् का आश्रय त्याग दो। यहाँ तेरा कुछ नहीं है। उसी से अत्यधिक=अनन्य प्रेम करो जिसके संग से भव-जल के घेरा=समुद्र को पार कर सको। रोहल कहता है- रुचि-पूर्वक परमात्मा के नाम रूपी जल का पान करो जिसके कि यमराज के यहाँ जाने का चक्र रुक जाए ॥236॥

मानव को अवतार भलो निज, नाम बिना कह नाम किसी को।
जिमि कामिणि हार सिंगार करै, भरतार बिना सभ लागत फीको ॥
चेत अचेत कहूँ तुम कूँ दिल, भीतर नूर बसै प्रभुजी को।
तत जोति सरूप बसै उर अंतर, रोहल रंग लगौ तहँ नीको ॥237॥

मनुष्य जन्म भला है किन्तु भगवन्नाम के बिना किसका नाम स्थायी रहा है। जिस प्रकार कामिनी हार पहनती व शृंगार करती है किन्तु बिना पति के सारा हार-शृंगार रस-हीन लगता है। हे अचेत=असावधान! चैतन्य हो जा। मैं तुझसे कहता हूँ। दिल के भीतर ही प्रभुजी का प्रकाश=अंश बसता है। ज्योतिस्वरूप तत्त्व अन्तर्हृदय में बसता है। रोहल को उसी का श्रेष्ठतम= अनन्य रंग लग गया है ॥237॥

एक अखंडित ब्रह्म विराजत, ऊँच र नीच नहीं कुछ ताहीं।
चौरासी लख जून उपाइ कै, आप बसै सभ ही घट माहीं ॥
एक है रूप अनेक धर्‌या जग, भूल पड्यो जिन कौं गम नाहीं।
रोहल रंग लगौ जिन कूँ सोइ, एक अलक्ख देखै सभ माहीं ॥238॥

अखंडित एक ही ब्रह्म समानरूपेण विराजमान है। उसके लिये ऊँच-नीच कुछ भी नहीं है। वही चौरासी लाख जीवा-जोनियों को रचकर, उन सभी में स्वयं ही निवास करता है। वह एक है किन्तु उसी ने जगत् में अनेक रूप धारण किये हैं। जो भ्रम में पड़े हैं उनको उक्त की जानकारी नहीं है। रोहल कहता है- जिनको उस एक ब्रह्म का रंग-चस्का लग गया है, वे उस एक अलख ब्रह्म को ही सचराचर में देखते हैं ॥238॥

एक सज्जन नहीं दुरजन कहुँ, तुम निज मंन सुनो मत मेरी।
जान अजान तजौ अभिमान, करौ न गुमान नहीं कोइ बैरी ॥
आदि अरूप धर्‌यो अब रूप, पड़ौ मत कूप लहौ सुध सेरी।
रोहल रंग लगौ पिय संग, पड़ौ नहिं भंग मिटै जम फेरी ॥239॥

हे निज मन! तुम मेरी सलाह सुनो। समस्त सचराचर में एक ही सजन=प्रियतम है, दुर्जन कोई है ही नहीं। जान में अथवा अनजान में, अभिमान करना छोड़ दो। गुमान (गर्व) मत करो। कोई भी शत्रु नहीं है। आदि में वह परमात्मा नीरूप था। अब उसी ने रूप धारण किया है। कुएँ में मत पड़ो। विवेक रूपी सही रास्ते को पकड़ो। रोहल कहता है, प्रियतम के संग में लगकर उसी के रंग में रंग जाओ। भंग होने वाली माया के चक्र में मत उलझो ताकि यमराज के यहाँ बार-बार जाने का चक्र मिट जाए ॥239॥

जब आप हि आप को चीन लियो, उर अंतर जोत जगी पिय पायो।
ग्यान की गम्म पड़ी जब ही तब, जीव ज सीव में उल्ट समायो ॥
चेतन चन्द्र उग्यो घट भीतरि, जोति सरूप ने जोति मिलाओ।
रोहल राति गई दिन पायो, पाँच सखी मिल मंगल गायो ॥240॥

जब स्वयं ने स्वयं को पहचान लिया तब अन्तर्हृदय में प्राप्त किये हुए प्रियतम की ज्योति द्योतित हो गई। जब ज्ञान का उदय हो गया तब जीव शिव में समाहित हो गया। घट के अंदर ही चैतन्य रूपी चन्द्र का उदय हो गया। ज्योति स्वरूप आत्मा, ज्योति स्वरूप परमात्मा हो गया। रोहल कहता है- रात्रि व्यतीत हो गई, दिवसोदय हो गया। पाँच सखी रूप पाँचों ज्ञानेन्द्रियों ने मंगल गान किया ॥240॥

सबद

राती माती प्रेम प्यासी मिट गइ ममता, टूटी जम फासी ॥रहाउ॥
चेतन चन्द्र दहूँ दिसि झलकै, पिंड ब्रह्मंड में सकल चुरासी।
कहाँ रस-अंमृत भोजन खावै, कहाँ व्रत दँडवत सदा उपवासी ॥1॥
अजब लीला तेरी रंग रचायो, कहुँ भयो चोर कहूँ सँत दासी।
क्याह कहूँ कछु कह्यो न जावै, देख अचँभ आवत मोहि हाँसी ॥2॥
भाँति भाँति के रंग रचाए, केता भेष किया अविनासी।
था नूर जंगम सकल सृष्टि में, अलख निरंजन जोति प्रकासी ॥3॥
ज्ञान भँडार खुल्यो दिल भीतर, सदा सीतल मन वैकुँठ वासी।
सुरति सुहागण सनमुख पिय सूँ, रोहल रंग लगो अविनासी ॥4॥241॥

प्रेम की प्यासी प्रेम में अनुरक्त व मस्त है। उसकी सांसारिक ममता मिट गई। यम की फाँसी टूट गई ॥रहाउ॥ चैतन्य रूपी चन्द्रमा दशों-दिशाओं में झिल-मिलता है। पिंड में, ब्रह्मांड में व समस्त चौरासी लाख जीवा-जोनियों में वही प्रकाशित है। कहीं तो अमृत सदृश रसान्वित भोजन खाते हैं, कहीं दंड स्वरूप (सीधी लकड़ी के समान अर्थात् खाने-पीने को कुछ नहीं मिलता) सदा व्रत व उपवास करना पड़ता है ॥1॥ हे परमात्मा! तेरी लीला अजब

है। तेरा रचा हुआ रंग भी अजब हैकहीं तो तू चोर हो जाता है, कहीं संतों का दास बन जाता है। क्या कहूँ, कुछ कहा नहीं जाता। तेरे आश्चर्य-मय रंगों=लीलाओं को देखकर मुझको हँसी आती है ॥2॥ हे अविनाशी! तू ने कितने वेश=कितने प्रकार की आकृतियाँ बनाई हैं। भाँति-भाँति के रंग रचे हैं। समस्त सृष्टि में परमात्मा का जंगम=चल नूर था जो अलख निरंजन परमात्मा की ज्योति का प्रकाश है ॥3॥ दिल के अंदर ज्ञान का भंडार खुल गया। मन सदा शीतल रहता है वैकुंठ निवासी के निवास करने के कारण। सुरति रूपी सौभाग्यवती प्रियतम के सम्मुख है क्योंकि उसको अविनाशी प्रियतम का रंग लग गया है ॥4॥241॥

झूलना

मन चेत सचेत सँभाल चलीं ओखी, इश्क अड़ाँगे दी राह साँई।
तिल की तिल जितनी फिर ठौर है उथाँ, पैर टिकावण दी जाइ साँई ॥
कूड़ी काया दिती जे तू लाल लहीं, दीदे आह कढी मताँ आह साँई।
रोहल रख रजाइते दम कदम, दिलवर डाढा है बेपरवाह साँई ॥242॥

हे मन! सावधान हो जा। सावधान होकर चल। साँई से इश्क की राह अटपटी व मुश्किलों से भरी है। साँई से मिलने को जाने के लिये तिल को तिल भर जगह मिले, पैर टेकने को, वहाँ इतनी सी ही जगह है। झूठी काया यदि तुझे दी है परमात्मा ने तो, उससे उस लाल के दीदार कर और उस साँई के प्रति झूठी काया देने के लिये तनिक भी आह मत निकाल। रोहल कहता है- प्रभु की आज्ञा से प्रत्येक दम व कदम रख, वह दिलवर बेपरवाह परमात्मा तेरे से मिलने को खड़ा है ॥242॥ ओखी=अटपटी। अड़ांगे=मुश्किल, अटपटी, विघ्नों से भरी। उथाँ= वहाँ। कूड़ी=झूठी। दीदे=दीदार, दर्शन। कढ़ी मत=निकाल मत। रजाइते=आज्ञा।

जिन्हाँ इश्क की चासनी चक्ख दिढी, पीती प्रेम पियाली से जाणदे नी।
नेही नेह सजन्न दे राती दिहाँ, जेहि दे तांघे तिथाँ दिल ताणदे नी ॥
जिन्हाँ दिल अंदर दीदार कीता, नाल यार सदा सुख माणदे नी।
रोहल रंग गूढे रच लाल थई, वञु मिलइ असल जिहँ खाणदे नी ॥243॥

जिन्होंने इश्क की मिष्ठता को चाखकर देखा और उस प्रेम की पियाली को पी, वे ही उसका स्वाद जानते हैं। प्रेमी, प्रियतम के प्रेम में रात-दिन अनुरक्त रहते हैं। जिसके वे प्रेमी हैं अपने दिल को उसी प्रियतम में एकमेक कर देते हैं। जिन्होंने दिल के अंदर ही दर्शन किये हैं, वे प्रियतम के साथ सदा सुख मानते हैं। रोहल गूढ़ रंग में रच-वश कर लाल हो गई। वही असल आस्वाद मिला जिसको खाने की चाहत थी ॥243॥

इस दार दरूनी दे अँदर मिंया, अजीब खेल दिठा यार आपणे दा।
सब घट में घूंघट कर चले खाली, थान नहीं कोइ थापणे दा ॥
देखौ हद बेहद की आरसी है, बिना हद बेहद न जाणणे दा।
रोहल रंग लगा गुरु ग्यान दियाँ, सोहूँ सबद है राह सुणीपणे दा ॥244॥

हे मिंया! इस दुष्ट दुनिया के ही अन्दर अपने प्रियतम की अजीब (अद्‌भुत) लीलाएँ देखने को मिलीं। वह प्रियतम सभी शरीरों में घूंघट=पर्दे में रहता है। उसको स्थापित करने के लिए कोई भी स्थान खाली नहीं है। ससीम व निस्सीम को देखने का दर्पण हृदय है। बिना हृदय के ससीम व निस्सीम परमात्मा को जानना संभव नहीं। रोहल कहता है- गुरु ने ज्ञान दिया, उसका रंग लगा। सोऽहं शब्द परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग हैं किम्वा परमात्मा को सुनने (जानने) का मार्ग है ॥244॥

दिल तख्त हजारे दा राँझौ मेंडा, माहीं जाल मोहब्बत अटकी है।
छोडूँ छुटै नहीं मन मीठी लगै, पाइ पेच चोखी चित चटकी है ॥
दे गलबाँह मैं सुती सुख सेज इतै, छाती नाल पियारे लग लटकी है।
रोहल रात हिजर दी हट गई, जागी जोत दिठी महाँ घटकी है ॥245॥

हे प्रेमियों! मेरा हृदय हजारे का तख्त है। उसी के प्रति मेरी मोहब्बत अटक गई है। छोड़ता हूँ, किन्तु छूटती नहीं क्योंकि मीठी लगती है। दोनों के मध्य अच्छा पेच=जोड़ बन गया है और वह मोहब्बत चित्त में अच्छी तरह चटक=खिल गयी है। गलबाहीं देकर मैं सुख-सेज पर सोई हूँ। प्रियतम की छाती पर लगकर मैं लटक (छाती से लगकर सो रही हूँ) रही हूँ। रोहल कहता है, हिजर=पर्दे की रात्रि मिट गई है और हृदय में ही प्रियतम की महती ज्योति जाग गई है ॥245॥

रेखता

सजन तुझ इश्क ने मुझ कूँ, किया मद होश दोई सूँ।
रह्या इक नक्श दिल ऊपर, ख्याल उस यार जानी का ॥रहाउ॥
विरह की आग मूँ साजन, सूते दिल कूँ जगाना है।
हुआ है रोज रोशन दिन, तुझे दीदार दरसन का ॥1॥
देखी है प्रेम की पोथी, रची है रंग सूँ रोहल।
पढै को संत जन सूरा, जिसे घट सब्द सतगुरु का ॥2॥246॥

हे सजन! तेरे इश्क ने मुझको, द्वैतभाव से पृथक्-कर तेरे ऐक्य में मदहोश कर दिया है। हृदय पर एक चित्र बना, उसी प्राण-प्रियतम का चिन्तन हृदय में है॥ रहाउ॥ विरह की अग्नि ने हे सजन! मेरे सोते हुए दिल को जागृत कर दिया है। तेरे दीदार-दर्शन से मेरा हर

दिन प्रकाशमान हो गया है। रोहल कहता है- मैंने प्रेम की पोथी को देखा है जिसको रंग से रची है रोहल ने। इस पोथी को कोई शूरवीर संत-जन पढता है जिसके हृदय में सद्‌गुरु महाराज का उपदेश विद्यमान है ॥246॥

सबद

अचरज खेल अचंभा देखा। ना कुछ रंग न रूप नहीं कुछ रेखा ॥रहाउ॥
पाँच तत्त गुण तीन पसारा। चेतन एक बहुत विसतारा ॥1॥
सब्द सपर्स रूप रस गंधा। सभ मँह अलख लखै नहिं अंधा ॥2॥
चन्द्र सुरज दिवस नहिं रजनी। नहिं तहाँ भगत नहीं कोइ भजनी ॥3॥
नहिं तहँ काइर नहिं कोइ सूरा। एक अखंडित सभ घट पूरा ॥4॥
नहिं तहाँ सुंन सिखर नहिं गगना। पीवत प्रेम भया मन मगना ॥5॥
तहाँ सब्द न दरसै बुधि नहिं परसै। से स्वाति बूंद जल अहनिसि बरसै ॥6॥
नहिं तहँ ग्यान नहीं को अग्याना। नहिं कोइ मूरख नहिं को सयाना ॥7॥
अपने पेटा आपइ ताना। आप आप में उलट समाना ॥8॥
नहिं तहाँ जन्म मरण कछु नाहीं। जिमि कूप की छाया कूप के माहीं ॥9॥
नहिं कुछ गया नहीं कुछ आया। रोहल रतन अमोलक पाया ॥10॥247॥

अचंभित करने वाला अद्‌भुत खेल देखा। उसका कोई रंग नहीं, रूप नहीं, कोई रेखाचित्र भी नहीं ॥रहाउ॥ संसार रूप प्रसार पाँच तत्त्व व तीन गुण मय है। चेतन ब्रह्म एक है, वही बहुत होता है ॥1॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गंध, इन सभी में अलख ब्रह्म समाया है, किन्तु अंधा=अज्ञानी उसका अनुभव नहीं करता ॥2॥ वहाँ न चन्द्रमा, न सूर्य, न दिवस और न रात्रि है। न ही वहाँ कोई भक्त है और न वहाँ भजन करने वाला है ॥3॥ वहाँ कोई न कायर है और न कोई शूरवीर है। समस्त प्राणियों में एक अखंडित ब्रह्म समाया है ॥4॥ वहाँ न शून्य है, न शिखर है और न गगन है। प्रेम-प्याला पीकर मन मग्न हो जाता है ॥5॥ वहाँ न शब्द का दर्शन है और न बुद्धि का स्पर्श है। वहाँ स्वाति नक्षत्र का जल अहर्निशि बरसता है ॥6॥ वहाँ न ज्ञान है और न अज्ञान है। न कोई मूर्ख है और न कोई सयाना है ॥7॥ वह स्वयं ही बाना तो वह स्वयं ही ताना हैं। वह स्वयं ही उलटकर स्वयं में एकाकार होता है ॥8॥ वहाँ न जन्म-मरण है और न कुछ और है। जिस प्रकार कुएँ की छाया कुएँ में ही रहती है ॥9॥ न कुछ गया और न कुछ आया। रोहल ने अमूल्य रत्न को पाया है ॥10॥247॥

दोहा

ओही मन ओहि चित्त है, ओहि साखि ओहि जीव।
ओहि आत्म परमातमा, ओहि ईश्वर ओहि सीव ॥248॥

वही मन है, वही चित्त है, वही साक्षी है, वही जीव है। वही आत्मा व वही परमात्मा है। वही ईश्वर है, वही शिव है ॥248॥

एक उसी के नूर सूँ, दीसत सारा नूर।
रोहल एको रम रह्या, ठाम ठाम भरपूर ॥249॥

उसी एक के नूर से समस्त ब्रह्मांड में नूर व्याप्त है। रोहल कहता है- स्थान-स्थान पर सर्वत्र एक ही राम रम रहा है ॥249॥

जो को मन परबोध कूँ, पढै सुणै आछी रीति।
मन चित का झगड़ा मिटै, मन आवै परतीति ॥250॥

अच्छी प्रकार से जो कोई मन-प्रबोध ग्रंथ को पढ़ेगा, उसके मन व चित्त का झगड़ा मिट जायेगा तथा मन में परमात्मा के प्रति विश्वास जमेगा ॥250॥

जो को मन परबोध कूँ, सुणै विचारै माँहि।
दिल दरिया भीतर रहै, निकसन की गम नाँहि ॥251॥

॥ इति मन-प्रबोध संपूर्ण समाप्त ॥

जो कोई मन-प्रबोध ग्रंथ को सुनकर मन के भीतर विचारेगा, उसके दिल रूपी दरियाव में यह ग्रंथ सदैव बना रहेगा, निकलेगा नहीं ॥251॥

कुल छंद संख्या : दोहा 229, कीर्तन पद 12, सवैया 5, झूलणा 4, रेखता 1; कुल 251॥

शास्त्र अद्‌भुत -ग्रंथ
अनुभव को अंग

सवैया

जा घट ग्यान प्रकास करै पुनि, सो घट नाहिं पिछै कहुँ छानौ।
ज्यूँ ससि को प्रतिबिम्ब द्रसै जल, त्यूँ प्रभु संतन माहिं समानौ ॥
संत में राम है परगट व्यापक, ताहि न जानत लोक बेगानौ।
रोहल राम दुहाइ कहै सत, ब्रह्म को रूप सही सँत जानौ ॥1॥

जिसके हृदय में ब्रह्मात्मैक्य-ज्ञान स्वरूप परमात्मा का प्रकाश हो जाता है, वह न कहीं छिपता है और न अज्ञात ही रहता है। जिस प्रकार चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जल में दिखता है, वैसे ही परमप्रभु परमात्मा संतों में समाया हुआ है। संतों में राम व्याप्त है और वह राम

संतों के रूप में प्रकट भी है किन्तु अज्ञानी लोग इस तत्त्व को जानते नहीं। रोहल रामजी की सौगंध खाकर कहता है- सत्यस्वरूप ब्रह्म का सही स्वरूप संतों को ही जानो ॥1॥

पाँच ततों की है देह सथूल सो, ब्रह्म को भेद नहीं कछु जानै।
नौइ ततों को सरीर है सूख्यम, आतम अर्थ को नाहिं पिछानै ॥
वेद थके जप जाप थके बिन, ग्यान थके कथ ग्यान लिखानै।
रोहल ब्रह्म कूँ ब्रह्म पिछानत, आतम रूप ता माहिं समानै ॥2॥

स्थूल-देह पाँच तत्त्वों से बनी है। यह ब्रह्म का रहस्य लेशमात्र भी नहीं जानती। सूक्ष्म-शरीर नव तत्त्वात्मक है। यह भी आत्मा के वास्तविक अर्थ को नहीं जानती। बिना ब्रह्म-ज्ञान के वेद थक गये, जप-जाप थक गये, ज्ञान कथन करने वाले भी थक गये तो लिखने वाले लेखक भी थक गये। रोहल कहता है, जो ब्रह्म को ब्रह्म रूप में जानते हैं, वे ही ब्रह्म हैं; आत्मा रूपी ब्रह्म उन्हीं में ही समाहित है ॥2॥

चौपाई

मैं मैं करूँ त तुम सूँ डरूँ। तू तू करूँ त बिछड़ियाँ मरूँ ॥
मैं तू छाडि मुवाहिद थ्यूँ। दे गलबाँह सदा रस पियूँ ॥3॥

यदि मैं, 'मैं' 'मैं' कहता हूँ तो तुझसे से डरता हूँ। यदि 'तूँ' 'तूँ' कहता हूँ तो वियोग के कारण मेरा मरण होता है अर्थात् द्वैत-जन्य भय के कारण जन्म-मरण होते हैं। मैंने 'मैं' और 'तू' दोनों छोड़ दिये हैं, मैं मुवाहिद=अद्वैत हो गया हूँ। तेरे गले में बाहें डालकर सदा अद्वैत-रसानंद का पान करता हूँ ॥3॥

रोहल मैं रुह अल्लह पाया। अपना सौदा आप बनाया ॥
पँगला दौड़ सिखर ते चढिया। अंधे लखिया गूंगे पढिया ॥
दर्द वँदा दी इहिया चाली। समझैगा को मस्त मवाली ॥4॥

रोहल कहता है- मैं आत्मा हूँ, मैंने अल्लाह को पा लिया। मैंने अपना कार्य स्वयं ने ही किया है। अल्लाह को पा लेने पर पंगु दौड़-कर पर्वत के शिखर पर चढ़ जाता है; अंधा देखने लगता है और गूंगा बोलने, पढ़ने लगता है। जो परमात्मा के दर्दबंद=ईश्की हैं, उनका आचरण यही होता है। इसको कोई मस्त-मौला ही समझेगा ॥4॥ (मवाली=मौला)।

प्रश्न, दोहा

शिष्य कह्यो गुरु आपणे, तुम जैसा नहिं और।
हम कुँ एक संसा पड़्या, तुम गुरू बतावौ ठौर ॥5॥

अपने गुरु से शिष्य ने कहा- आप जैसा और कोई नहीं है। मेरे मन में एक संशय उत्पन्न हो गया है। आप गुरु हैं, अतः निश्चय बताइये॥ ठौर=निश्चय, निश्चित् बात ॥5॥

उत्तर, कवित्त

चेतन बहु रूप धर्‌यो, तामें फिर भूल पड़्यो,
आपनौ सरूप देख, आप ही भुलानौ है।
जोग जप तप करै, आपकी न समझ पड़ी,
हीरौ है अमोल सो तो, काच में बिकानौ है ॥
तू केवल अविनासी हरि, मेरे मन संक परी,
तेरौ निरबंध रूप, काहे को बंधानौ है।
मैं तो इक बाजी रची, रोहल मत जान सची,
आप ही सूँ आप खेलूँ, जगत कूँ बहानौ है ॥6॥

चैतन्य परमात्मा ने 'एकोऽहं बहुस्याम' ईक्षण-कर स्वयं को अनेक रूपों में व्यक्त किया। फिर स्वयं ही उन नाना रूपों से भ्रमित हो गया। अपने स्वरूप को देखकर स्वयं ही भ्रमित हो गया। (जैसे कुत्ता अपनी ही परछाँई को शीशे में दूसरा कुत्ता जानकर भौंकने लगता है।) स्वयं को ही पाने के लिये योग, जप, तप करता है क्योंकि स्वयं के नित्य-शुद्ध-बुद्ध स्वरूप का बोध न रह सका। आत्म-तत्त्व अमूल्य हीरे के सदृश है, उसको विषय-भोग रूपी काच के बदले में बेच डाला। तू तो केवल अविनाशी हरि है। निर्बंध रूप है। फिर भी बंधनों में क्यों बँध गया है? यही मेरे मन में शंका उत्पन्न हो गई है। हे रोहल! मैंने संसार रूपी एक खेल रचा है। तू इसको सच्चा मत जान। मैं स्वयं से स्वयं ही खेलता हूँ। मेरे लिये जगत् तो एक बहाना मात्र है ॥6॥

प्रश्न, दोहा

ना कुछ करणी कर सकूँ, हम सुँ न होवै जोग।
करि किरपा अस सीख द्यौ, अंमृत रस को भोग ॥7॥

शिष्य ने निवेदन किया, मैं कुछ भी करनी (साधना) करने में असमर्थ हूँ। मेरे से योग की साधना होना भी संभव नहीं। कृपा करके ऐसी शिक्षा दीजिये, जिसमें अमृत-रस का भोग मिलता है ॥7॥

उत्तर, कुंडलिया

दरपण माहिं न फेर कछु फेर पड़्यो मुख माहिं।
जैसा मुख करि देखिए तिसा दिखावत ताहिं॥

तिसा दिखावत ताहि जिसा है रूप तुम्हारा।
ब्रह्म भाव तो ब्रह्म नहीं तो फिर ता न्यारा॥
रोहल भाव सफल फलै सत कर मानौ ताहिं।
दरपण माहिं न फेर कछु फेर पड़्यो मुख माहिं॥8॥

गुरु उत्तर देते हुए कहते हैं- दर्पण में कोई अंतर नहीं है। अंतर तो मुख में पड़ता है। जैसा मुँह बनाकर देखा जाता है, वैसा ही दर्पण में दिखता है। जैसा तुम्हारा रूप है, वैसा ही दिखता है। यदि ब्रह्म-भाव है तो ब्रह्म दिखता है अन्यथा वह अन्य ही दिखता है। रोहल कहता है- सफल भाव ही फलीभूत होता है, उसी को सत्य करके जानो ॥8॥

उत्तर, कवित्त

केवल निश्चिंत हरि, ताकूँ इक इच्छा परी,
रूप की तो चाह धरी, जक्त कूँ बनायो है।
भूल ते ये बाजी रची, कुबुधि की तो रांध रची,
दुर्मति न मानै सची, झूठ कूँ अघायो है॥
अक्ल कूँ तो गैर कियो, अग्यान तो बजीर दियो,
लोक तासूँ सीख लियो, भरम में भुलायो है।
गुरु ऐसो उपदेस कियो, सिष तासूँ समझ लियो,
रोहल यह भेद जान, आप में समायो है ॥9॥

श्रीहरि केवल व निश्चिंत=निरिच्छ है। उसने एक इच्छा की‘एक हूँ, अनेक रूप हो जाऊँ’ और इस प्रकार उस एक ने जगत् को बनाया। इस जगत् रूपी खेल को भूल-वश बनाया। कुबुद्धि की तो यह रचना आफत ही है। दुर्बुद्धि प्राणी सत्य तत्त्व को मानता नहीं, प्रत्युत् झूठे तत्त्व में ही सराबोर है। बुद्धि को पराया मान लिया। अज्ञान को मंत्री बना लिया। जगत् से शिक्षा ग्रहण की। वस्तुतः ऐसे-ऐसे भ्रमों में प्राणी भूला पड़ा है। गुरु ने उक्तानुसार उपदेश दिया। शिष्य ने इस ज्ञान को भली प्रकार समझ लिया। रोहल उक्त रहस्य को जानकर स्वयं में ही समरस हो गया है ॥9॥

सिख-वाच, कुंडलिया

सतगुरु अंतर खोल कर दिखलाया महबूब।
मनमोहन सोई मिल्यो जो खूबन में खूब॥
जो खूबन में खूब सोहि अब सहजे पायो।
सफल भयो सभ काज मंनछा मंगल गायो॥

रोहल रस रँग रीझि करि आतम कियो सुजूद।
सतगुरु अंतर खोल कर दिखलाया महबूब ॥10॥

शिष्य ने कहा- सद्‌गुरु महाराज ने हृदय के अज्ञानांधकार को हटाकर स्वच्छ कर दिया (खोलकर) और उसमें प्रियतम का दर्शन करा दिया। जो मनमोहन था, वह मिल गया। वह खूबों में खूब है। अब वह मुझे सहज में ही मिल गया। मेरे समस्त कार्य=मनोरथ सफल हो गये। मनसा (मन की वृत्तियाँ) मंगल गाने लगी हैं। रोहल ने रस-रंग (आनंद) में प्रसन्न होकर आत्मा-रूप परमात्मा को सुजूद=सज्दा=प्रणाम किया है ॥10॥

गुरु-वाच, कुंडलिया

जा घटि अनुभव ऊपजै सो कहिए बड भाग।
जैसे पारस लोह कूँ तुरत मिटावै दाग ॥
तुरत मिटावै दाग करै पुनि कंचन जैसो।
सतगुरु वचनन रूप समझि जैसे कूँ तैसो ॥
रोहल इश्क मैदान मँह मरण कनूँ मत भाग।
जा घट अनुभव ऊपजै सो कहिए बड भाग ॥11॥

जिसके अंतर में आत्मानुभव हो जाता है, उसी को सौभाग्यशाली कहा जाता है। जिस प्रकार पारस लोहे के दाग को स्पर्श करते ही तत्काल मिटा देता है और स्वर्ण के समान, जैसा बना देता है। साधक सद्‌गुरु के उपदेश को समझ व आचरित करके जैसा था, वैसा ही हो जाता है। रोहल कहता है- इश्क के मैदान में से मरण के भय से भयभीत होकर भाग मत ॥11॥

सवैया

जा दिन ते पिय को मुख देखियो, वा दिन ते ममता मति भूली।
मस्तक ऊपर हाथ धर्‌यो गुरु, वाणी विचार विवेक की फूली ॥
ग्यान के सूर प्रकास कियो घट, रैणि बिछोड़े की दलदर डोली।
जब आतम माहिं पायो अनुभव पद, रोहल आँख विग्यान की खोली ॥12॥

जिस दिन से प्रियतम के मुँह को देखा है, उस दिन से ममतामयी बुद्धि नष्ट हो गई है। गुरु महाराज ने मस्तक के ऊपर अपना वरद हाथ रखा जिससे वाणी, विचार व विवेक प्रस्फुटित हो उठे। ज्ञान रूपी सूर्य ने हृदय में प्रकाश फैला दिया जिससे रात्रि-वियोग-जन्य दारिद्र्य डुलायमान=नष्ट हो गया। जब आत्मा में परमात्मानुभव रूप पद को प्राप्त कर लिया, तब रोहल की विज्ञान की आँख खुल गईं। (विज्ञान=विशेष ज्ञान। आत्मानुभव ही विशेष ज्ञान है) ॥12॥

षट सास्त्रह वेद पुराण पढे हृदे, वेद पढे बिनि मोछ स नाहीं।
जप तप्प करे पुनि ध्यान धरे बिन, ग्यान मिटे संसा सोक नाहीं ॥
राम नाम जिसा धन दिल्ल बसै ताकूँ जान सकै अंधा लोक नाहीं।
जाकि सिक्क सोइ रोहल आइ मिल्या अब, चुप्प जैसा कोई झोक नाहीं ॥13॥

षड्शास्त्र, वेद, पुराण हृदय से पढ़े जाएँ क्योंकि बिना वेद पढ़े मोक्ष नहीं मिलती। जप, तप किये बिना, ध्यान धरे बिना, बिना ज्ञान के संशय और शोक मिटते नहीं। जिसके दिल में राम-नाम जैसा धन निवास करता है, उसको अज्ञानांधकार- ग्रसित-जन जान नहीं पाते। रोहल कहता है- जिसकी सिक=खोज थी, चाहत थी; वह स्वयं ही आकर मिल गया। अब चुप जैसा कोई झोक=धोखा नहीं रह गया ॥13॥

झूलना

लख वेद पुरान अनेक पढै, सतसंग बिना रँग लागै नाहीं।
महबूब का मुक्ख न देख सकै जो, दोइ की नींद सूँ जागै नाहीं ॥
नाल यार विसाल न थीवै तहाँ, ममता मोह के रोग कूँ त्यागै नाहीं।
रोहल इश्क मैदान मुहब्बत दे, सूरा सोहि पीछै मुड़ भागै नाहीं ॥14॥

लाखों वेद, अनेकों पुराण पढ़ने पर भी सत्संग के बिना परमात्मा का रंग लगता नहीं है। जो द्वैत-जन्य निद्रा से जागते नहीं, वे महबूब का मुख नहीं देख पाते हैं। प्रियतम के साथ वहाँ एकाकार नहीं होता, जहाँ ममता व मोह रूपी रोग को त्यागा नहीं जाता। रोहल कहता है- शूरवीर वह है जो इश्क-मोहब्बत के मैदान में से मुड़कर=उलटकर भागता नहीं है ॥14॥

सिष-वाच, दोहा

चेतन कहीं अरूप है, रूप धर्यो सो कौन।
मोकउँ तो संसा पड़्या, यह सीहा है की सौन ॥15॥

चैतन्य अरूप=नीरूप कहा जाता है। फिर जिसने रूप धारण किया, वह कौन है? मुझे संशय उत्पन्न हो गया है कि यह शीशा है या स्वर्ण है ॥15॥

गुरु-वाच, झूलना

चेतन अरूप कूँ न्यारा कहै लख, जाति चुरासी में कौन है जी।
कहाँ साँच बन्या कहाँ काच दिसै, कहाँ सीहा भया कहाँ सौन है जी ॥
कहाँ आग बन्या कहाँ खाक बन्या, कहाँ पानी भया कहाँ पौन है जी।
रोहल देख अचंभा हैरान हुआ, कैणा कुच्छ नहीं ममी मौन है जी ॥16॥

यदि चैतन्य को नीरूप बताकर सबसे न्यारा बताया जाता है तो चौरासी लाख जीवा-जोनियों में कौन है? कहीं सत्य के रूप में है। कहीं काँच के रूप में है। कहीं शीशा है। कहीं स्वर्ण है। कहीं अग्नि बना हुआ है। कहीं राख बना हुआ है। कहीं जल बना हुआ है। कहीं पवन बना हुआ है। रोहल इस आश्चर्य को देखकर हैरान=अचंभित हो गया। कहना कुछ नहीं, बस मम=चुप व मौन होना ही उचित है ॥16॥

अखंड अगंम अगाध कहै ताका, अंत किसी नहिं पाया है जी।
पढि सास्त्रह वेद पुरान थके इक, ठौर किसी न बताया है जी ॥
जाकूँ साँच कहूँ मानै कोइ नहीं, जग मोह सर्पणी खाया है जी।
सुक्ष्म वेद सकल्ल कूँ खारा लगै, रोहल ग्यानी के मन मौन भाया है जी ॥17॥

परमात्मा को अखंडित, अगम्य, अगाध कहा जाता है; उसका किसी ने भी अंत नहीं पाया है। वेद, शास्त्र, पुराण पढ़-पढ़कर थक गये किन्तु किसी ने भी एक ऐसी ठौर नहीं बताई है जहाँ उक्त परब्रह्म-परमात्मा मिलता है। जिसको भी सच्ची बात कहता हूँ, कोई भी मेरी बात मानता नहीं है, क्योंकि जगत् को मोह रूपी सर्पिणी ने डँस रखा है। समस्त जगत को सूक्ष्म-वेद रस-हीन लगता है। रोहल कहता है- इसीलिए रोहल ज्ञानी के मन को मौन भा गया है ॥17॥

सिष-वाच, दोहा

खोजूँ मैं सो कौन कूँ, काको धरूँ धियान।
कहौ तैसी होवै जिसी, मैं हूँ अती अजान ॥18॥

शिष्य कहता है- वह कौन है, जिसको मैं खोजूँ? किसका ध्यान करूँ। वही कहो, जो वास्तविकता है क्योंकि मैं बहुत बड़ा अज्ञानी हूँ ॥18॥

गुरु-वाच, झूलना

पर रूप के आसिक बहु देखे, अपने रूप के आसिक कोइ है जी।
जासुँ पिंड ब्रह्मँड प्रकास हुवा, सारी सृष्टि रची जग जोइ है जी ॥
चार कूँट में होइ तपास देख्या, जहाँ जाउँ तहाँ सागी सोइ है जी।
और राम सेती रोहल काम केहा, आतमराम मेरे दिल माहीं है जी ॥19॥

दूसरे के रूप के आशिक तो बहुत देखे गये हैं किन्तु स्वयं के रूप के आशिक कोई-कोई हैं। जिससे समस्त पिंड व ब्रह्मांड प्रकाशित हुए, जिसने समस्त सृष्टि की रचना की, वही स्वयं का रूप (स्वरूप) परब्रह्म-परमात्मा है। चारों कोनों में घूमकर, ढूँढकर देखा, जहाँ जाता हूँ वहाँ सघनता-पूर्वक, पूर्णतः वही है। आत्माराम मेरे दिल के भीतर ही है, तब अन्य राम से मुझ रोहल को कौनसा काम है?॥19॥

सिख-वाच, दोहा

तुम जैसा गुरु भेटिया, बडौ हमारौ भाग।
जैसे पारस लोह कूँ, तुरत मिटावै दाग ॥20॥

हे गुरु-महाराज! आपका जैसा गुरु हमको मिला, यह हमारा परम सौभाग्य है। जिस प्रकार पारस लोहे के लोहत्व रूपी दोष को तत्काल मिटा देता है ॥20॥

इंदव, गुरु-वाच

एक सजंनहि दुर्जन है कहुँ, कहुँ तुम मन्न सुनौ मति मेरी।
जान अजान तजौ अभिमान, करौ न गुमान नहीं कोइ बेरी ॥

आदि अरूप धर्यो अब रूप, पड़ौ मत कूप लहौ सुध सेरी।
रोहल रंग लगौ पिय संग, पड़ै नहिं भंग मिटै जम फेरी ॥21॥

कहीं जो सज्जन है, वही अन्यत्र दुर्जन है। हे मन! मैं कहता हूँ कि तुम मेरी सलाह को सुनो। ज्ञात-अज्ञात जिस भी तरह का अभिमान है, उसको तज दो। गर्व मत करो। कोई भी शत्रु नहीं है। आदि-अनादि अरूप परमात्मा ने ही रूप धारण किया है अर्थात् वही सचराचर में परिव्याप्त है। हे प्राणियों! अज्ञान रूपी कुएँ में मत गिरो। विवेक रूपी रास्ता अंगीकार करो। रोहल कहता है, प्रियतम के रंग में लग जाओ अर्थात् सदैव प्रियतम का स्मरण, चिंतन, मनन-कर चित्त-वृत्ति को उसी में आरोपित रखो। ऐसा चिंतन, मनन खंडित नहीं होना चाहिए ताकि यमराज के यहाँ आने-जाने का फेरा मिट जाए ॥21॥

झूलना

अगम अखंड अगाध बेअंत सो, वेद पुराण मूँ लिखिया है जी।
अलख अरूप बिचून कहैं ताकौं, कहौ किनि कुछ पेखिया है जी ॥
जोगी जती सभ थाकि रहे आगे, दादु कबीरै देखिया है जी।
जब ग्यान चख्यु गुरु खोल दिया, रोहल रंग बेरंग में देखिया है जी ॥22॥

परब्रह्म-परमात्मा अगम्य, अखंड, अगाध, अंतहीन-अनंत है। निर्विशेष ब्रह्म के ये सब लक्षण वेद-पुराणों में लिखे हैं। परमात्मा अलक्ष्य, अरूप व बिचून कहा जाता है। बताइये कौन ने उसको किस प्रकार देखा है। योगी, यती सभी थक गये हैं, ऐसे परमात्मा को जानने का प्रयत्न करते-करते। हाँ, पूर्वकाल में दादू, कबीर ने उसको देखा है। जब गुरु महाराज ने ज्ञान रूपी आँखें खोल दी हैं तब रोहल ने बेरंग में रंग को देखा है (सचराचर में व्याप्त परब्रह्म को देखा है।) ॥22॥

दोहा

मन मोहन के रूप की, बात न बरणी जाइ।
ज्यूँ गूंगा सपना लहै, सुमरि सुमरि पछिताइ ॥23॥

मनमोहन के रूप का वर्णन करना संभव नहीं। जिस प्रकार गूंगा स्वप्न देखता है किन्तु उसको कहकर बता नहीं सकता; केवल स्मरण कर-करके ही पश्चाताप करता रहता है ॥23॥

झूलना

अख्यर लिख रखौ अणपढिइ अगूँ, पढ्या नसीं कहा ऊ जानती है।
वर की बात कुँवारी सूँ पूछ देखौ, कंत पाया नसीं कहा ऊ मानती है ॥

जाँ कूँ साँच कहूँ मानै कोइ नहीं, गुरु गंम नसीं लख लानती है।
रोहल रंग रती जाँ का राँझू सेती, इस बात कूँ साई पछानती है ॥24॥

अनपढ़ के सामने अक्षर लिखकर रखो, वह पढ़ नहीं सकती तो वह उसमें लिखे के बारे में क्या जान सकती है। कुँवारी कन्या से पति के बारे में पूछ-कर देखो, उसने कंत को अभी तक प्राप्त किया ही नहीं है तो पति-जन्य सुख को वह कैसे जान सकती है। जिससे भी सच कहता हूँ, कोई मानता ही नहीं है। उनको गुरु का ज्ञान प्राप्त नहीं है, ऐसों को लाखों लानत हैं। रोहल कहता है- जिसका प्रेम रांझे (प्रियतम) से लेश मात्र भी है, वही, प्रियतम की इस बात को जानती है ॥24॥

मन कूँ उपदेस को अंग

गुरु-वाच, इंदव

प्रीति की रीति कहूँ तुम कूँ, चित लाइ सुनौ भोरा मन मेरा।
ए जग जान जिसो सपनौ तजि, झूठ की ओट नहीं कछु तेरा ॥
ताहि सूँ नेह करौ अधिकौ जाके, संग तरौ भव जल्ल का धेरा।
साँई के नाम को नीर पियो रुच, रोहल तोहि मिटै जम फेरा ॥25॥

हे मेरे भोले मन! मैं तुमसे प्रीति की रीति कहता हूँ, चित्त लगाकर सुनो। इस जगत् को स्वप्न जैसा जान। इस झूठे का आश्रय छोड़ दे। इसमें तेरा कुछ भी नहीं है। उसी से अधिकतम स्नेह करो, जिसके संग से भव-जल-समुद्र को पार कर सको। रुचिपूर्वक प्रियतम के नाम का जल-पान करो, तब ही तेरा यमराज के यहाँ का आवागमन का फेरा मिटेगा ॥25॥

मानव को अवतार भलौ निज, नाम बिना कहि काम किसी को।
जिमि कामणि हार सिंगार करै, भरतार बिना सभ लागत फीको ॥

चेत अचेत कहूँ तुम कूँ दिल, भीतर नूर बसै प्रभुजी को।
तत ज्योति सरूप बसै उर अंतर, रोहल रंग लगौ तहँ नीको ॥26॥

मनुष्य-योनी में जन्म लेना बहुत अच्छा है किन्तु बिना भगवन्नाम-जप के यह किसी भी काम का नहीं है। जिस प्रकार कामिनी हार पहनती व शृंगार करती है किन्तु बिना पति के सब कुछ रस-हीन लगता है। हे अचेत=असावधान! मैं तुझसे कहता हूँ कि सावधान हो जा। तेरे दिल के भीतर ही परमप्रभु-परमात्मा का प्रकाश बसता है। तत्त्व=परमब्रह्म-परमात्मा ज्योति के रूप में निवास करता है। उसी के रंग में अच्छी तरह रंग जाओ ॥26॥

एक अखंडित ब्रह्म विराजित, ऊँच र नीच नहीं कुछ ताहीं।
चौरासी लख जूण उपाइ कै, आप बसै सब ही घट माहीं ॥

तहँ एकहि रूप अनेक किया जग, भूल पड़ौ जिन को गम नाहीं।
रोहल रंग लगो जिनकूँ सोइ, एक अलख्य देखै सभ माहीं ॥27॥

ब्रह्म एक=अद्वैत व अखंड रूप में विराजित है, जिसमें ऊँचत्व अथवा नीचत्व कुछ भी नहीं है। वह चौरासी लाख जीवा-जोनियों को उत्पन्न-कर उन सभी में स्वयं ही निवास भी करता है। उस एक ने ही अनेक रूप में अपने आपको प्रकट किया है। जो भ्रम में पड़े हुए हैं उनको इसकी कोई जानकारी नहीं है। रोहल कहता है- जिनको उस एक अद्वैत परमात्मा का रंग लग गया है, वे ही उस एक अलक्ष्य ब्रह्म को सभी में देखते हैं ॥27॥

जब आपहि आप कूँ चीन लियो उर, अंतर जोति जगी पिय पायो।
ग्यान की गम्म पड़ी जब ही तब, जीउ हि सीउ में उलट समायो ॥
चेतन चन्द्र उग्यो घट भीतर, जोति सरूप ने जोति मिलायो।
रोहल राति गई दिन पायो, पाँच सखी मिलि मंगल गायो ॥28॥

जब स्वयं को स्वयं ने, स्वयं के असली रूप में पहचान लिया, तब उसके हृदय में ब्रह्म-ज्योति का प्रकाश हो गया और उसने प्रियतम का अपरोक्षानुभव कर लिया। जब ज्ञानोदय हो गया, तब जीव जीवत्व-भाव को छोड़कर अपने निज स्वरूपभूत ब्रह्म-रूप में समाहित हो गया। हृदय में चैतन्य रूपी चंद्रोदय होने पर ज्योति स्वरूप आत्मा को परमज्योति रूप ब्रह्म में मिला लिया। रोहल कहता है, अज्ञान रूपी रात्रि चली गई। दिन रूपी ज्ञानोदय हो गया। पाँचों सखियों ने मिलकर मंगल-गान किया ॥28॥

गुरु का उपदेस को अंग

झूलणा

मन चेत सचेत सँभाल चली, ओखी इश्क अड़ाँगे दी राह साँई।
तिल की तिल जितनी फिर ठौर नहीं, उथाँ पैर टिकावण दी जाइ साँई ॥
कूड़ी काया दिती जे तू लाल लही, दीदे आह कढी मताँ आइ साँई।
रोहल रख रजाइते दम कदम, दिलवर डाढा है बेपरवाह साँई ॥29॥

हे मन! सावधान हो जा। सावधान होकर चल। साँई से इश्क की राह अटपटी व मुश्किलों से भरी है। साँई से मिलने को जाने के लिये तिल को तिल भर जगह मिले, पैर टेकने को, वहाँ इतनी सी ही जगह है। झूठी काया यदि तुझे दी है परमात्मा ने तो, उससे उस लाल के दीदार कर और उस साँई के प्रति झूठी काया देने के लिये तनिक भी आह मत निकाल। रोहल कहता है- प्रभु की आज्ञा से प्रत्येक दम व कदम रख, वह दिलवर बेपरवाह परमात्मा तेरे से मिलने को खड़ा है ॥29॥ ओखी=अटपटी। अड़ाँगे=मुश्किल, अटपटी, विघ्नों से भरी। उथाँ= वहाँ। कूड़ी=झूठी। दीदे=दीदार, दर्शन। कढ़ी मत=निकाल मत। रजाइते=आज्ञा।

जिन्हाँ इश्क की चासनी चक्ख दिढी, पीती प्रेम पियाली से जाणदे नी।
नेही नेह सजन्न दे राति दिहाँ, जेहि दे तांघ तिथाँ दिल ताणदे नी ॥

जिन्हाँ दिल अंदर दीदार कीता, नाल यार सदा सुख माणदे नी।
रोहल रंग गूढे रच लाल थई, वञु मिलइ असल जिहँ खाणदे नी ॥30॥

जिन्होंने इश्क की मिष्ठता को चाखकर देखा और उस प्रेम की पियाली को पी वे ही उसका स्वाद जानते हैं। प्रेमी प्रियतम के प्रेम में रात-दिन अनुरक्त रहते हैं। जिसके वे प्रेम हैं अपने दिल को उसी प्रियतम में एकमेक कर देते हैं। जिन्होंने दिल के अंदर ही दर्शन किये हैं, वे प्रियतम के साथ सदा सुख मानते हैं। रोहल गूढ़ रंग में रच-वश कर लाल हो गई। वही असल आस्वाद मिला जिसको खाने की चाहत थी ॥30॥

इस दार दरूनी दे अँदर मिंया, अजीब खेल दिठा यार आपणे दा।
सब घट में घूंघट कर चले खाली, थान नहीं कोइ थापणे दा ॥
देखौ हद बेहद की आरसी है, बिना हद बेहद न जाणणे दा।
रोहल रंग लगा गुरु ग्यान दियाँ, सोहूँ सबद है राह सुणीपणे दा ॥31॥

हे मिंया! इस दुष्ट दुनिया के ही अन्दर अपने प्रियतम की अजीब (अद्‌भुत) लीलाएँ देखने को मिलीं। वह प्रियतम सभी शरीरों में घूंघट=पर्दे में रहता है। उसको स्थापित करने के लिए कोई भी स्थान खाली नहीं है। ससीम व निस्सीम को देखने का दर्पण हृदय है।

बिना हृदय के ससीम व निस्सीम परमात्मा को जानना संभव नहीं। रोहल कहता है- गुरु ने ज्ञान दिया, उसका रंग लगा। सोऽहं शब्द परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग हैं किम्वा परमात्मा को सुनने (जानने) का मार्ग है ॥31॥

दिल तख्त हजारे दा राँझौ मेंडा, माहीं जाल मोहब्बत अटकी है।
छोडूँ छुटै नहीं मन मीठी लगै, पाइ पेच चोखी चित चटकी है ॥
दे गलबाँह मैं सुती सुख सेज इतै, छाती नाल पियारे लग लटकी है।
रोहल रात हिजर दी हट गई, जागी जोत दिठी महाँ घटकी है ॥32॥

हे प्रेमियों! मेरा हृदय हजारे का तख्त है। उसी के प्रति मेरी मोहब्बत अटक गई है। छोड़ता हूँ, किन्तु छूटती नहीं क्योंकि मीठी लगती है। दोनों के मध्य अच्छा पेच=जोड़ बन गया है और वह मोहब्बत चित्त में अच्छी तरह चटक=खिल गयी है। गलबाहीं देकर मैं सुख-सेज पर सोई हूँ। प्रियतम की छाती पर लगकर मैं लटक (छाती से लगकर सो रही हूँ) रही हूँ। रोहल कहता है- हिजर=पर्दे की रात्रि मिट गई है और हृदय में ही प्रियतम की महती ज्योति जाग गई है॥ 32॥

प्रश्न, दोहा

सिष्य कह्यो गुरु आपने, मैं हूँ अती अजान।
आतम कूँ किमि जाणिए, किस विधि पड़ै पिछान ॥33॥

शिष्य ने अपने गुरु से कहा- मैं अति अज्ञानी हूँ। आत्म-तत्त्व को कैसे जाना जा सकता है; तथा उसका साक्षात्कार कैसे होता है (कहिये) ॥33॥

गुरु-वाच, चौपाई

सुन तू सिष यह बात हमारी। आपै जानत मिलै मुरारी ॥
आप जानिए बिन नहिं मोख। ताते मिटै न संसा सोक ॥34॥

गुरु-महाराज ने कहा- मेरी बात सुन। स्वयं को जानते ही परब्रह्म-परमात्मा मिल जाता है। स्वयं को जाने बिना मोक्ष नहीं होती और संशय व शोक भी मिटते नहीं हैं ॥34॥

सिष-वाच, दोहा

किस विधि जानूँ आपकूँ, कर किरपा कहौ मोहि।
होवै जिसी कहौ तिसी, सरण पड़्यो अब तोहि ॥35॥

शिष्य ने निवेदन किया-कृपा करके मुझसे कहो कि मैं अपने आपको किस प्रकार जानूँ? बात जैसी हो, वैसी कहो। अब मैं आपका शरणागत हूँ ॥35॥

गुरु-वाच, चौपाई

पूरन ब्रह्म कहै तू सोई। तुझ बिन दूसर नाहीं कोई ॥
काहे कूँ तू भरम भुलाना। देह जोग से आप न जाना ॥36॥

गुरु ने उत्तर दिया- जिसको पूर्ण ब्रह्म कहा जाता है, वही तू है। तेरे अलावा दूसरा कोई ब्रह्म-तत्त्व नहीं है। क्यों तू भ्रमों में भूला पड़ा है। देह को आत्मा से सम्बद्ध कर देने के कारण तूने अपने आपको नहीं जाना ॥36॥

सिष-वाच, दोहा

जिंह समझ्या सो कौन है, अर ना समझ्या सो कौन।
मोकूँ तो अचरज भया, ताते पकड़ी मौन ॥37॥

शिष्य का निवेदन, जो समझ गये हैं, वे कौन हैं तथा जो नहीं समझे, वे कौन हैं? मुझे आश्चर्य हो रहा है, इसलिए मैंने मौन धारण कर लिया है ॥37॥

गुरु-वाच, सवैया

बकवाद करै भावै मौन गहै तत, चीने बिना सुख पावै न भोरा।
आप कूँ खोज संताप फिटाकर, है तुझ पास लखै नहिं दोरा ॥
हाथी की देह में हाथी सो दीसत, घोड़े की देह में दीसत घोड़ा।
रोहल रूप किए सभ आतम, बहुत में बहुता थोरे में थोरा ॥38॥

गुरुजी का उत्तर- हे भोले शिष्य! चाहे खूब बातचीत करो, चाहे मौन रहो; बिना तत्त्व स्वरूप ब्रह्म को जाने, सुख मिलता नहीं। संताप को मिटाकर स्वयं को खोज। तेरा स्वरूप, स्वरूपानन्द तेरे ही पास है, तू दौड़-कर=तत्काल प्रयत्न करके देखता क्यों नहीं। स्वयं का स्वरूपभूत ब्रह्म, हाथी की देह में हाथी जैसा व घोड़े की देह में घोड़ा जैसा दीखता है। सारे रूप आत्मा के बनाये हुए हैं, थोड़े में थोड़ा रूप व ज्यादा में ज्यादा रूपवान है वह ॥38॥

ब्रह्म चख्यूँ सो तो ब्रह्म ही देखत, माया चख्यू सो तो देखत माया।
साधु को संग सो पार लगावत, दुष्ट के संग सूँ पार न पाया ॥
आतम ग्यान बिना सभ मूँझत, भेष बनाइ सँवारत काया।
रोहल राम बसै सब ही घट, ताहि को देख सो नेह लगाया ॥39॥

जिसके पास ब्रह्म-चक्षु हैं, वह सर्वत्र ब्रह्म का ही दर्शन करता है। जिसके माया के चक्षु हैं, वे माया का ही दर्शन करते हैं। साधु की संगति भव-सागर से पार करवा देती है जबकि दुष्ट की संगति से भव-सागर पार नहीं किया जा सकता है। आत्मज्ञान बिना सभी ठगे जाते हैं। शरीर के ऊपर वेश बनाकर शरीर को सुंदर बनाते हैं। रोहल कहता है- रामजी सभी प्राणधारियों में बसता है, उसको प्रेम के द्वारा प्राप्त करो ॥39॥

सिष-वाच, चौपाई

वेद को मत्त भलौ की जोग। जासूँ सब जग करता भोग।
मेरे तुझ बिन और न कोई। जो तुम कहौ करूँ मैं सोई ॥40॥

शिष्य निवेदन करता है, वेद का मार्ग अच्छा है या योग का; जिनके बताये मार्ग से समस्त जगत भोग भोगता है। मेरा आपके बिना और कोई दूसरा नहीं है। आप जो कहेंगे, मैं वही करूँगा ॥40॥

गुरु-वाच, चौपाई

वेदों के मत जगत भुलाया। जोग साधना छीजत काया ॥
अनुभव भगति बिना नहिं मोख। ओ बिन मिटै न संसै सोग ॥41॥

गुरुजी उत्तर देते हैं, वेद-मार्ग में जगत् भूला पड़ा है, योग साधना करने से शरीर क्षीण होता है। बिना भक्ति व आत्मानुभव के मोक्ष नहीं होती और इनके बिना संशय और शोक भी नष्ट नहीं होते ॥41॥

सुन रे चेला बात हमारी। जे चाहौ तुम मिले मुरारी ॥
आप कूँ जान और कूँ त्याग। आत्म राम के चरणौं लाग ॥42॥

हे शिष्य! मेरी बात सुन, यदि तू परब्रह्म-परमात्मा से मिलना चाहता है तो स्वस्वरूप को जान; तदतिरिक्त को त्याग। आत्माराम के चरण-शरणापन्न हो जा ॥42॥

सिष-वाच, दोहा

आतम का अस्थान कहाँ, जहाँ विराजै आप।
मुझ कूँ सूझी ना पड़ै, किस विधि मिटै सँताप ॥43॥

शिष्य ने पूछा- आत्मा का स्थान कहाँ है, जहाँ वह विराजमान रहता है। मुझे कुछ भी समझ नहीं आ रहा है। बताइये, मेरे संताप किस प्रकार मिटेंगे ॥43॥

गुरु-वाच, झूलना

ओ जो सब के नैनाँ सूँ देखता है, बिन आतम देखै सो कौन है जी।
ओ जो सबके मुख सूँ बोलता है, बिन आतम बोलै सो कौन है जी ॥
ओ जो सबके पाँवौ सूँ चालता है, बिन आतम चालै सो कौन है जी।
सब घट में हँसता खेलता है, बिन आतम खेलै सो कौन है जी ॥44॥

यह जो समस्त प्राणियों के नेत्रों के द्वारा देखता है, वह बिना आत्मा के देखने वाला और कौन है? यह जो समस्त प्राणियों के मुँह से बोलता है, वह बिना आत्मा के बोलने वाला और कौन है। यह जो समस्त प्राणियों के पैरों से चलता है, वह बिना आत्मा के, चलने वाला और कौन है? समस्त शरीरों में जो हँसता-खेलता है, बिना आत्मा के जो खेलता है, वह और कौन है?॥44॥

गुरु-वाच, दोहा

सभ घट आतम राम है, अंधिया सूझत नाहिं।
रोहल सूझी तब पड़ै, जब सतगुरु पकड़ै बाँहिं ॥45॥

समस्त शरीरों में (सचराचर में) आत्माराम विराजमान है किन्तु अज्ञान रूपी अंधों को अनुभव होता नहीं है। परमात्मा का ज्ञान तब होता है, जब सद्गुरु महाराज हाथ पकड़ते हैं (ज्ञानाश्रय प्रदान करते हैं) ॥45॥

सतगुरु काया फेरि करि, घड़्या घाट कछु और।
चंचल मन निहचल भयो, अब चल न सकै बेठौर ॥46॥

सद्गुरु महाराज ने काया-कल्प करके नया ही शरीर निर्मित कर दिया अर्थात् ज्ञानोपदेश द्वारा संसारी से अध्यात्म-मार्गी बना दिया। चंचल मन निश्चल हो गया। अब मन बेठौर=बुरी जगह अर्थात् संसार की ओर आकर्षित हो नहीं सकता ॥46॥

चौपाई

जा घट अणभै उपजै आइ। ताकूँ करम न लागै काँइ ॥
जा घट अणभै परगट होइ। ता समान और नहिं कोइ ॥47॥

जिसके अंतर्हदय में आत्मानुभव उदय हो जाता है, उसको कर्मों का बंधन बाँधता नहीं है। जिसके भीतर आत्मानुभव का प्राकट्य हो जाता है, उसके समान और कोई दूसरा नहीं ॥47॥

जा घट अणभै सो बडभागी। आतम बाझ और सभ त्यागी ॥
सब घट देखै आतम राम। मन में मगन सफल भए काम ॥48॥

जिसके घट में आत्मानुभव है, वह बड़ा ही सौभाग्यशाली है। आत्मा के अलावा और सभी का त्यागी है। समस्त प्राणधारियों किंवा सचराचर में आत्माराम को देखता है। मन में ही आनंदित रहता है क्योंकि उसकी समस्त मनोकामनाएँ सफल हो गई होती हैं (आप्तकाम हो गया होता है) ॥48॥

जा घट अणभै पूरन सोइ। ताहि समान और नहिं कोइ ॥
जा घट अणभै सो बादशाह। रोहल सो साहन को साह ॥49॥

जिसको अंतर्हृदय में आत्मानुभव हो गया, वही पूर्ण पुरुष है। उसके समान और कोई दूसरा नहीं है। जिसके अंतर में आत्मानुभव है, वह बादशाह है। रोहल कहता है- वह शाहों का शाह है ॥49॥

आत्म-दर्शी को अंग

चौपाई

आतम दरसै आतम देखै। वा बिन और न कोई पेखै ॥
सभ मँह देखै अपना रूप। ताके मत है अनत अनूप ॥50॥

आत्मदर्शी आत्मा का ही दर्शन करता है। आत्मा के अलावा अन्य को नहीं देखता। समस्त सचराचर में अपना ही रूप देखता है। उस आत्मदर्शी का मत अनंत व अनुपम है ॥50॥

दोहा

ग्यानी देखै आतमा, देखै नहिं अस्थूल।
सब पाकन में पाक सो, जिंह निज कर पकड़्या मूल ॥51॥

ज्ञानी आत्म-तत्त्व का विचार करता है, स्थूल-शरीर का विचार नहीं करता। समस्त पवित्रों में वही पवित्र है। उसने मूल आत्मतत्त्व को हस्तामलकवत् कर लिया है ॥51॥

सवैया

आतम ग्यान भयो जिन कूँ घट, वा बिन और न देखत दूजा।
आप में आप हि लीन भयो पुनि, आपनि सेवा हि आपनि पूजा ॥
काहु कूँ राग न दोष करै पुनि, आप में अलख निरंजन सूझा।
रोहल राम बसै जिनके दिल, ताहि सूँ नेह करै नित तूजा ॥52॥

जिनके घट में आत्म-ज्ञान हो गया है, वे आत्म-दर्शन के अलावा अन्य किसी और का दर्शन नहीं करते। स्वयं, स्वयं में ही तल्लीन रहते हैं। स्वात्मतत्त्व की ही सेवा व उसी की

पूजा करते हैं। न किसी से राग करते हैं न किसी से द्वेष करते हैं। स्वयं में ही अलख निरंजन ब्रह्म सूझता=अनुभव होता है उन्हें। रोहल कहता है- जिनके दिल में रामजी बसते हैं, उसी से आत्मदर्शी नित्य ही ताजा प्रेम करता है ॥52॥

चौपई

आतमदरसी आपहि आप। मिट गई ममता तीनों ताप ॥
छोड्या जप तप सेवा पूजा। आतम बाझि न जानें पूजा ॥53॥

आत्मदर्शी सर्वत्र आप ही आप है। उसकी ममता और तीनों ताप मिट गये होते हैं। आत्मदर्शी जप, तप, सेवा, पूजा छोड़ देता है। आत्मा के अलावा अन्य सेवा-पूजा वह नहीं जानता ॥53॥

ऊँच नीच में आतम देखै। आपहि आप और नहिं लेखै ॥
आपै ठाकुर आपै चेला। ना सो बिछड़्या ना सो मेला ॥54॥

ऊँच-नीच सभी में आत्मा का दर्शन करते हैं। आप, आप में ही रमण करता है। दूसरे, किसी को नहीं देखता। स्वयं ही ठाकुर व स्वयं ही चेला है। न वह किसी से बिछुड़ता है और न किसी से मिलता है ॥54॥

सिख-वाच, कुंडलिया

आतम जानन कठिन है बिरला लखै जो कोइ।
सेवा मत जानूँ नहीं सरण पड़्यो अब तोइ ॥
सरन पड़्यो अब तोहि मेरा कुछ नाहीं दूजा।
मैं हूँ अती अजान करूँ किनकी अब पूजा ॥
होवै जिसी कहौ तिसी जा होवै सा होइ।
आतम जानन कठिन है बिरला लखै जो कोइ ॥55॥

आत्मतत्त्व का जानना किम्वा अनुभव करना कठिन है। जो कोई बिरला होता है, वही आत्मा का दर्शन करता है। सेवा के सिद्धान्त व पद्धतियों को मैं जानता नहीं। अतः मैं आपकी शरण में आ पड़ा हूँ। मेरा दूसरा कोई आश्रय नहीं है। मैं अतीव अज्ञानी हूँ। मैं अब किसकी सेवा-पूजा करूँ। जैसी हो, वैसी मेरे से कहो। जो होनी होगी, वही होगी ॥55॥

गुरु-वाच, सवैया

क्या कहिए कथते न बनें अब, कैसे कहूँ तुम सूँ मुख बातें।
जाहि कूँ चाहत हो तुम सो पुनि, औरों को संग तजौ दिन रातें ॥

है तुझ पास तू जान सकै नहिं, आप कूँ खोज मिले पुनि जाहीं।
रोहल राम बसै उर अन्तर, ताही कूँ जान तजौ और ताहीं ॥56॥

मैं क्या कहूँ, कहते बनता नहीं है। अब कैसे कहूँ तुमसे मुख के द्वारा बातों को। जिसको तुम चाहते हो, वह तुम ही हो। तदतिरिक्त अन्यों की संगति को रात दिन= हमेशा के लिये छोड़ दो। ब्रह्म-तत्त्व तेरे पास ही है किन्तु तू उसको जान नहीं पा रहा। तू अपने आप को खोज, जिससे कि वह ब्रह्म-तत्त्व तुझ स्वयं में ही मिल जाये। रोहल कहता है- रामजी हृदय-अंतर में बसता है, उसी को जानों और अन्यों को त्याग दो ॥56॥

आपके जाने बिना नहिं सूझत, आप कूँ जान सदा सुख पावै।
आप विचार करै नहिं मूरख, और के संग सदा दिल लावै ॥
कौन सी मत्ति भई तुम कूँ अब, आप सूँ आप न नेह लगावै।
रोहल राम दुहाई कहै सत, आतम बाझि तू मोख न पावै ॥57॥

स्वयं को जाने बिना स्वयं का अपरोक्षानुभव नहीं होता। आप स्वयं को जानने पर ही सदा-सर्वदा आनंद प्राप्त होता रहता है। मूर्ख अपने आपका चिंतन, मनन व निदिध्यासन करता नहीं प्रत्युत् अन्यों के साथ मन को संयोजित करता है। ऐसी कौन-सी बुद्धि का आश्रय तूने ले लिया है कि तू स्वयं ही स्वयं से प्रेम नहीं करता। रोहल रामजी की सौगंध खाकर कहता है कि सत्य केवल आत्माराम नामक तत्त्व है। अन्य तत्त्वों से तू मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता ॥57॥

सिख-वाच, चौपाई

आतम को अब कैसे जानूँ। देखे बिन सो कैसे मानूँ ॥
करि किरपा अब भाखौ वैन। आतम मिल पाऊँ सुख चैन ॥58॥

शिष्य पूछता है- आत्मा को मैं अब कैसे जानूँ। बिना उसको देखे, उसको कैसे मानूँ कि आत्मतत्त्व भी जानने योग्य कुछ है। कृपा करके अब अपने वचन कहो जिससे कि आत्मा के मिलने से सुख-शांति प्राप्त करूँ ॥58॥

सतगुरु सो सत भाव बतावै। सिष्य समझ अपरम पद पावै ॥
मैं मूरख हूँ अती अजान। करि किरपा समझावौ स्यान ॥59॥

सद्गुरु वह है जो सत्य-भाव का उपदेश देता है। शिष्य उसको समझकर अपरम=परमोच्च पद को पाता है। मैं मूर्ख व अति अज्ञानी हूँ। कृपा करके सयान=सयानापन (ज्ञानोपदेश) का उपदेश करो ॥59॥

गुरु-वाच, दोहा

जिस पद में जप तप नहीं, अरु नहीं हार नहिं जीत।
सो पद पूरण तब मिलै, जब ले पूर्ण परतीत ॥60॥

जिस परमपद में न कोई जप, न कोई तप है और कोई न हार अथवा जीत है। वह पूर्ण परमपद तब मिलता है जब पूर्ण प्रतीति=पूर्ण विश्वास होता है ॥60॥

चौपाई

सुन रे चेला अकथ कहानी। पूरण पद कहूँ ब्रह्म वाणी ॥
हित चित सूँ सुन अंतर खोल। सिर देवौ तन मन सूँ तोल ॥61॥

गुरु कहते हैं- हे शिष्य! परमपद=ब्रह्म-पद की अकथ कहानी सुन। पूर्णपद ब्रह्मवाणी है। अन्तर्हृदय को खोलकर श्रद्धा सहित सुन कि यह उपदेश मेरे लिए हितकारी है। तन-मन सहित अपना सिर भी=सर्वस्व समर्पण कर ॥61॥

सिष-वाच, दोहा

किस विधि तन मन दीजिए, अर किस विधि दीजे सीस।
कर किरपा सरणै पड़्यो, नाम करौ बख्सीस ॥62॥

शिष्य ने पूछा- किस प्रकार तन व मन तथा किस प्रकार मस्तक समर्पित करूँ। कृपा करो। मैं शरण में आ पड़ा हूँ। मुझे भगवन्नाम बक्षीश करो ॥62॥

गुरु-वाच, कवित

बार बार कहूँ तोहि, सावधान क्यूँ न होइ,
झूठे परपंच मँह, काहे दिल बांधी है।
आप कूँ पिछाण देखि, कैसी तो है जात तेरी,
अग्यानि होकै फाँसि पड़्यो, संसै बुद्धि खाधी है ॥
समझ कै विचारि देखि, जीवन के चारि दिन,
सोई पहुँचौ सत कहूँ, मुक्ति गुन लाधी है।
आतमा के जाने बिना, अनेकहूँ फाँसी पड़ी,
जाके कटे बंध सो तो, रोहल घर हादी है ॥63॥

पाठांतर : मुए पीछै सत्य कहूँ मुक्ति कौन लाधी है।

गुरुजी चेताते हुए कहते हैं- तेरे से बार-बार कहता हूँ, क्यों सावधान होता नहीं।

झूठे प्रपंच से दिल को क्यों बाँध रखा है? अपने आपको पहचान कर देख कि तेरी जाति कौनसी है (आत्मा है, अथवा देह है)। तू अज्ञानी होकर फाँसी में फँस गया है क्योंकि तुझको संशयात्मक बुद्धि ने खा रखा है। तू समझकर विचार और देख कि जगत् में जीवन सीमित समय के लिए है। सत्य कहता हूँ, मरने के पश्चात् वही परब्रह्म-परमात्मा तक पहुँचता है जिसको मुक्ति रूपी गुण प्राप्त हो गया है। बिना आत्मानुभव के अनेक प्रकार के फाँसी के फँदे हैं। जिसके बंधन कट गये हैं, वही रोहल के घर का पथ-प्रदर्शक है ॥63॥

सिष-वाच, दोहा

किस विधि ए बंधन कटै, फाँसी टूटै किमि।
मैं तो अति अग्यान हूँ, तुम कह समझावौ हमि ॥64॥

शिष्य ने प्रश्न किया, यह बंधन किस प्रकार कट सकता है? फाँसी किस प्रकार कट सकती है? मैं अतीव अज्ञानी हूँ। अतः आप मुझको समझाकर कहो ॥64॥

गुरु-वाच, सवैया

केते प्रकार कह्यो तुम कूँ, समझाइ रह्यो समझै नहिं भोरा।
आतम तत्त बसै उर अंतर, ताहि पिछान सकै नहिं ढोरा ॥
कौन सी बुद्धि भई तुमरी अब, आप न जानैं करै नित झोरा।
आतम ग्यान बिना नहिं सूझत, रोहल भागि रहै अति कोरा ॥65॥

हे भोले! मैंने तुमको कितने ही प्रकार से कहा है, समझाता रहा हूँ किन्तु तुम समझते ही नहीं हो। आत्म-तत्त्व हृदय के अन्दर ही बसता है किन्तु ढोर=पशु तुल्य मूर्ख! तुम इस आत्म-तत्त्व को पहचान नहीं पाते हो। अब तुम्हारी बुद्धि किस प्रकार की हो गई है कि स्वयं के स्वरूप को तो पहचानते नहीं, ऊपर से नित्य ही प्रपंच करते हो। बिना ज्ञान के आत्मा का अनुभव होता नहीं और अन्त समय में बिना ज्ञान के कोरा का कोरा गमन करता है ॥65॥

उपदेस किये कितने तुम कूँ सुन मूरख तू खिन भी नहिं जान्यो।
मेरौ कह्यो तुम कान सुन्यो नहिं, झूठों की बात सेती मन मान्यो ॥
और उपाइ तजौ सभ ही तुम, आतम ग्यान जानौं उर आन्यो।
रोहल राम बसै तिनके घट, जिन निज आतम तत्त पिछान्यो ॥66॥

हे मूर्ख! सुन, तेरे को मैंने कितने ही उपदेश सुनाये किन्तु तू ने लेशमात्र ज्ञान भी नहीं सीखा। मेरे उपदेश को तू ने कान लगाकर सुना नहीं जबकि जो झूठे तत्त्व के उपदेशक थे उनकी बातों को मन से मानी। तुम अन्य सभी उपायों को त्याग दो और हृदय में ज्ञान को

धारण करके आत्मज्ञान को जानो। जिन्होंने निज-आत्मतत्त्व को जान लिया है, रोहल कहता है- रामजी उनके ही घट में बसता है ॥66॥

सिष-वाच, सवैया

और उपाइ तजे सब ही अर, तेरौ कह्यो सिर ऊपर मानूँ।
और को संग तजूँ अब ही सब, तेरौ कह्यो उर अंतर आनूँ ॥
तुम हो दयाल करौ किरपा मुझ, अंतर आतम तत्त पिछानूँ।
अब काट के सीस धरूँ चरणों पर, रोहल और कछू नहिं जानूँ ॥67॥

शिष्य ने निवेदन किया- मैंने अन्यान्य सभी उपायों को त्याग दिया है और आपके उपदेश को सिर-माथे पर ले लिया है। अब अन्यों की सभी संगति को त्याग-कर आपका उपदेश हृदय में धारण करता हूँ। आप दयालु हैं, मेरे ऊपर कृपा करो ताकि अन्तर में विराजित आत्म-तत्त्व को जान सकूँ। अब अपना मस्तक काट-कर आपके चरणों में धरता हूँ अर्थात् सर्वात्म-समर्पण करता हूँ। रोहल कहता है- इसके अलावा और कुछ भी मैं नहीं जानता ॥67॥

गुरु-वाच, कवित्त

आतमा कूँ जान भावै, बैठ भावै रटन कर,
निर्भय को ग्यान जानै, ताकूँ कैसी हानी है।
आप ही कूँ आप जान, और की तू बात छाडि,
आप कूँ विचारि देखि, तेरौ सब जानी है ॥
छाडि दे अनर्थ अब, अर्थ कूँ पिछानौ तुम,
तोहि माहीं ठाकुर अर, तोही माहीं ग्यानी है।
काहे कूँ तू मूझ पर्‌यो, आप कूँ विचार रोहल,
तेरौ निरबंध रूप, खानन की खान है ॥68॥

आत्मा-तत्त्व के बोधानन्तर चाहो तो बैठ जाओ, चाहो तो आत्म-तत्त्व का मुहुर्मुहु रटन=चिंतन-मनन करो। जो निर्भय तत्त्व आत्म-ज्ञान को जानता है, (बोध सम्पन्न है) उसको किसी प्रकार की कोई हानि नहीं है। तू स्वयं को ही स्वयं जान। अन्यों की बात=चिंता को छोड दे। अपने आपका विचार करके देख, सब कुछ तेरी ही जानी जान=निज-आत्मा है। अब अनर्थों को त्याग दे। अर्थ को पहचान। तेरे भीतर ही ठाकुर है और तेरे अंदर ही ज्ञानी है। तू क्यों मूझ=भ्रम में फँसा पड़ा है। अपने आप का विचार कर। तेरा स्वरूप तो निर्बंध है जो खानों की खान=भंडार है ॥68॥

सिष-वाच, चौपाई

जो गुरु कह्यो सगल सो मान्यो। ब्रह्म स्रूप मैं सब घट जान्यो ॥
मम मति तजि चेतन मति आई। किस विधि सभ में रहूँ समाई ॥69॥

आप गुरु ने जो कुछ कहा- उस समस्त को मान लिया। 'समस्त प्राणियों में ब्रह्म है', मैंने इसको जान लिया। 'मैं कार' बुद्धि को त्यागकर चैतन्य='आत्माकार-मति' धारण कर ली है। और यह भी अनुभव परिपक्व हो गया कि ब्रह्म रूप मैं किस प्रकार समस्त सचराचर में समाया हुआ हूँ ॥69॥

गुरु-वाच, कवित्त

आतम ही तेरौ बाप, काहे कूँ तू करत जाप,
ब्रह्म ही सरूप तेरौ, काहे कूँ भुलानौ है।
आप ही यह बाजी रची, ताही कूँ तू जान कची,
आपै पुरुष आपै नारी, आप सूँ खिलानौ है ॥
आपने कियोड़े काम, तामें परफूल पड़्यो,
जानबूझ भयो जड़, भूल को बहानौ है।
समझ कै विचारि देखि, भूल ते यह मंड मांड,
रोहल सो जानै भेद, जो ग्यान में झुलानौ है ॥70॥

गुरु ने कहा- आत्मा ही तेरा पिता है। क्यों तू जाप करता है। तेरा असली स्वरूप ब्रह्म है। तू क्यों अपने असली स्वरूप को भूला पड़ा है। यह संसार रूपी बाजी तू ने ही रची है फिर भी तू इसको मिथ्या ही जान। तू स्वयं ही पुरुष तथा स्वयं ही नारी है और तू स्वयं ही इस जगत् में व्यवहार करता है। अपने किये हुए कर्मों में ही तू प्रफुल्लित हुआ पड़ा है। जान-बूझकर मूर्ख बना हुआ है और बहाना भूल का बनाता है। समझ व विचार कर देख। भूल के कारण ही इस ब्रह्मांड का मंडान दिखता है। रोहल कहता है- जो इस रहस्य को जानता है, वह ज्ञान रूपी झूले में झूलता है ॥70॥

सिष-वाच, चौपाई

सुनौ गुरुजी मेरी बात। तुझ बिन मेरा तात न मात ॥
जो तुम कह्यो सो निहचौ आयो। जिसको ढूंढत सो फल पायो ॥71॥

शिष्य ने कहा- गुरुजी! मेरी बात सुनो। आपके अलावा मेरे और कोई माता-पिता नहीं है। आपने जो कुछ कहा है, उसका निश्चय मेरे मन में स्थिर हो गया है। जिसको मैं ढूंढता था, वह फल मुझको मिल गया है ॥71॥

बडौ हमारो भाग सो तबही। तुम जैसो गुरु भेट्यो जबही ॥
अब कुछ संक रही मन माँह। सगल मिटाओ पकड़ौ बाँह ॥72॥

हमारा बडा भाग्योदय तब हुआ, जब आप जैसे गुरु से भेंट हुई। अब भी मन में जो शंकाएँ रह गई हैं, उन सभी को मिटाकर मेरी बाँह पकड़ लो, अर्थात् मुझे शरणाश्रय प्रदान करो ॥72॥

गुरु-वाच, सवैया

जो कुछ संक रही तुम कूँ अब, कह समझाउँ सुनौ अब कैसी।
ताका सो औषध बेग करूँ सुन, जैसी है बात बताउँगा तैसी ॥
काहे कूँ सोक करै अब मूरख, आपनि जात पिछानहु जैसी।
जे तुम ब्रह्म मिल्यौ अब चाहत, रोहल राम मिलै दिल वैसी ॥73॥

गुरु उत्तर देते हुए कहते हैं- तुम्हारे मन में अब भी जिस प्रकार की जो भी शंका रह गई है, उसको अब कहकर समझा देता हूँ; सुनो उसका उपाय (औषध) मैं शीघ्रतापूर्वक करूँगा। सुन, तेरी जैसी शंका है, तदनुकूल ही उत्तर दूंगा। हे मूर्ख! अब भी शोक क्यों कर रहा है। तू अपनी जाति=वास्तविक स्वरूप को वैसा ही पहचान, जैसा वह है। यदि तू अब ब्रह्म से मिलना चाहता है तो दिल में वैसा ही राम मिल जायेगा ॥73॥

सिष-वाच, दोहा

सभ को कह ब्रह्म एक है, मोकूँ कहि समझाइ।
एक ऊँच इक नीच है, सगल बराबर नाँइ ॥74॥

शिष्य पूछता है, सभी कहते हैं, ब्रह्म एक है। यह मुझ को कहकर समझा दो। कोई ऊँचा है, कोई नीचा है, सभी बराबर नहीं है॥ (फिर, एक ब्रह्म कैसे सिद्ध होता है) ॥74॥

गुरु-वाच, दोहा

ना कुछ ऊँच न नीच है, सम करि जानैं एक।
रोहल सूझी तब पड़ै, जब खुलै विचार विवेक ॥75॥

न कोई ऊँच है, न नीच है। सभी को समान जानकर एक मानो। रोहल कहता है- तब ही जानने में आता है कि ब्रह्म एक है जब विवेक तथा विचार का उदय होता है ॥75॥

सिष-वाच, चौपाई

इक कहिए जोरू इक कहिए मात। सम करि जाने बनैं न बात ॥
इसी बात में संसा जानूँ। कह सतगुरु मैं कैसे जानूँ ॥76॥

शिष्य प्रश्न करता है, एक स्त्री पत्नी कहलाती है, दूसरी माता कहलाती है। यदि दोनों को एक करके मानूँ तो बात बनती नहीं, उनसे पृथक्-पृथक् व्यवहार होना संभव नहीं। इसी तरह की बातों को लेकर मन में संशय है। हे सद्गुरु महराज! कहो, मैं कैसे इस तत्त्व को जानूँ ॥76॥

गुरु-वाच, कवित्त

हद में तो कहिए भाई भैन, ताकूँ मानै लोक सभ,
बेहदी में जोरू मात, एक ब्रह्म जानिए।
ग्यानी सो जो ग्यान के, प्रकास ते विचार देखै,
हद की जो बात सो तो, हद में ही मानिए ॥
भैन कूँ तो भैन जानै, मात कूँ तो मात मानै,
जोरू सूँ तो करत भोग, संत सो बखानिए।
ग्यानी के अनेक लोचन, भली बुरी सभ जानै,
रोहल यह रमज समझ, हिरदै माँह आनिए ॥77॥

हद=संसार में तो भाई-बहिन कहलाते हैं, समस्त लोक व्यवहारतः ऐसा ही मानता है, किन्तु बेहद=परमार्थ में पत्नी व माता में विद्यमान आत्म-तत्त्व तो एक ब्रह्म ही है। ज्ञानी, ज्ञान के प्रकाश में विचार करके देखते हैं। हद=व्यावहारिक जगत् में व्यावहारिक बातें ही मानी जाती हैं। (केवलाद्वैत-सिद्धांत में पारमार्थिक, व्यावहारिक व प्रातिभासिक तीन सत्ताएँ मानी गई हैं। यहाँ हद को व्यावहारिक व बेहद को पारमार्थिक सत्ताएँ मानी गई हैं।) व्यवहार में बहिन को बहिन, माता को माता माना जाता है। पत्नी को पत्नी मानकर भोग भोगा जाता है, वह संत=सज्जन=ज्ञानी कहलाता है। ज्ञानी के पास एक नहीं, अनेक दृष्टियाँ= अन्तर्दृष्टि होती हैं जिनसे भली-बुरी सभी को भली-प्रकार जानता है। रोहल कहता है- इस रहस्य को जानकर हृदय में स्थापित कर लीजिये ॥77॥

सिख-वाच, दोहा

जो उत्तर सतगुरु दियो, सो फल प्रगट्यो आइ।
जैसा था तैसा भया, अब कछु कह्यो न जाइ ॥78॥

सद्गुरु ने जो उत्तर दिया, वह फल अब आकर प्रकट हो गया। जैसा था, वैसा ही आत्मस्वरूप हो गया। अब कुछ कहते बनता नहीं ॥78॥

क्या कहिए कासूँ कहूँ, मुख सूँ बनै न बात।
जहाँ देखूँ तहाँ आतमा, सभ साहब की जात ॥79॥

क्या कहूँ, किससे कहूँ, मुँह से बात कहते बनती नहीं। जहाँ देखता हूँ, वहाँ आत्मा ही आत्मा का दर्शन होता है, सब ही परब्रह्म-परमात्मा के अंश या स्वरूपभूत हैं। (इस्लाम में अल्लाह की जात का तात्पर्य, केवलाद्वैत-सिद्धान्त में 'ब्रह्म का ही स्वरूपभूत' होता है ॥79॥

चौपाई

जो गुरु कह्यो सो निश्चै आयो। आप आप को दरसन पायो ॥
जहाँ देखूँ तहाँ निरमल नूर। सर्व वियापी है भरपूर ॥80॥

गुरु महाराज ने जो कुछ कहा, वह मेरे मन में निश्चय हो गया। मैं स्वयं ने मेरा अपरोक्षानुभव स्वयं के रूप में कर लिया। जहाँ देखता हूँ, वहाँ निर्मल नूर ही दिखता है। वह सर्व व्यापक है, सचराचर में भरपूर है ॥80॥

गुरु-वाच, दोहा

गुरू कह्यो सिष धन्य तू, भली समझ तुम कीन।
आतम सूँ ऐसे मिल्यो, ज्यूँ जल मध्ये मीन ॥81॥

गुरुजी ने कहा- हे शिष्य! तू धन्य है। तू ने भलीप्रकार ज्ञान का अनुभव कर लिया है। आत्मतत्त्व से मिलकर तू उसी प्रकार एकाकार हो गया, जैसे जल में मीन मिली रहती है ॥81॥

सिष-वाच, सवैया

जा दिन ते गुरु सर्ण पर्यो तब, ता दिन ते ममता मति भागी।
मस्तक ऊपरि हाथ धर्यो जब, केती प्रकार भली बुधि जागी ॥

ज्यूँ रोगी प्रगटे सुनि जात, उपाव किये हरि सूँ लिव लागी।
रोहल राम रह्यो उर अंतर, औराँ के संग की बात है त्यागी ॥82॥

शिष्य कहता है- जिस दिन से मैं गुरु की शरण में आया हूँ उस दिन से ममता-मयी बुद्धि नष्ट हो गई। जबसे मस्तक पर हाथ रखा, तबसे कितनी ही प्रकार की भली बुद्धि जागृत हो गई। जिस प्रकार रोग के होने व उपाय करने से उसका शमन हो जाता है, ऐसे ही राम-नाम-स्मरण रूपी उपाय से हरि के प्रति चित्त-वृत्ति लग जाती है। रोहल कहता है- मेरे हृदय में रामजी विराजमान हो गया है। अतः मैंने औरों के संग की बात को त्याग दी है ॥82॥

गुरु-वाच, दोहा

जाकूँ कहता और तू, सो तो तेरौ रूप।
ग्यान कँडे में तोलिए, तू एक हि अलख अनूप ॥83॥

गुरुजी कहते हैंहे शिष्य! जिसको तू अन्य कहता है, वह तत रूप ब्रह्म ही त्वम् रूप तेरा वास्तविक स्वरूप है। यदि ज्ञान रूपी तराजू में तोला जाए तो तू ही एक, अलख अनुपम ब्रह्म है ॥83॥

झूलना

एक अलख्य अनेक किया रँग, केते प्रकार के रूप धरे हैं।
चोर बन्या कहुँ साधु बन्या कहुँ, डूबत है कहुँ पार परे हैं ॥
जाँ पै कृपाल भयो गुरु पूरन, आप सूँ आप में जात जरे हैं।
रोहल रूप अरूप धर्‍या बहु, किन जानिया के मुज्झ खरे हैं ॥84॥

एक अलक्ष्य ब्रह्म ने ही अनेक रंग उत्पन्न किये और कितने ही प्रकार के रूप धारण किये हैं। कहीं चोर बना है। कहीं साधु बना है। कहीं डूबता है। कहीं दूसरी ओर पार होता है। जिसके ऊपर गुरु पूर्णरूपेण कृपालु है। वे स्वयं में स्वयं जर (जर=जरणा का लघु रूप। जरणा सहनशीलता, क्षमा, एकरसता, एकरूपता आदि कई अर्थों में प्रयुक्त होने वाला शब्द है। संत साहित्य का सुपरिचित शब्द है।) जाते हैं=स्वयं में स्वयं समरस=एकाकार हो जाते हैं। रोहल कहता है- अरूप ब्रह्म ने अनेक रूप धारण किये। किसी ने तत्त्व से जान लिया, कोई निरा मूर्ख का मूर्ख ही बना हुआ है ॥84॥

सिख-वाच, सवैया

जो उपदेस कियो गुरु पूरण, सो अपने दिल लागि रह्यो है।
जैसे चकोर के चाँद बसै मन, और की प्रीति कूँ त्यागि रह्यो है ॥

ग्यान को दीप प्रगास भयो जब, अग्यान अँधेरौ सो भाग रह्यो है।
रोहल राम बसै जिनके घट, दोइ की नींद सूँ जाग रह्यो है ॥85॥

पूर्ण गुरु ने जो उपदेश दिया, वह अपने दिल में वैसे ही धारण कर लिया है जैसे चकोर के मन में चन्द्रमा बसता है। चकोर चन्द्रमा के अलावा अन्यों के प्रति प्रीति को त्याग देता है। जब ज्ञान रूपी दीपक का प्रकाश हो गया, तब अज्ञान रूपी अँधेरा भाग जाता है। रोहल कहता है- जिसके हृदय में रामजी बसता है, वे द्वैत रूपी रात्रि से जाग जाते ॥85॥

गुरु-वाच, दोहा

एक कहाँ ते दो दिसै, अर दो कहाँ तो झूठ।
इन दोनों के बीच में, उलटी समझ अपूठ ॥86॥

यदि एक कहता हूँ तो दो ही दिखते हैं और दो कहता हूँ तो वह झूठ है। इन दोनों के मध्यम में विवेक उलटकर वापिस आ गया ॥86॥

उलटी आँटी फेर करि, जिन जान्यो निज नाम।
रोहल ताके चरन वँद, सफल होत सभ काम ॥87॥

ग्रंथी को उल्टी घुमाकर जिन्होंने निज नाम-तत्त्व को जाना, उनके चरणों की वन्दना करने से सारे कार्य सफल होते हैं ॥87॥

कुंडलिया

रोहल अदभुत ग्रंथ में उलटे वचन अनेक।
समझैगा को संतजन जाँ घट खुल्यो विवेक ॥
जाँ घट खुल्यो विवेक सुनौ वाँकी गति न्यारी।
पिया पियाला प्रेम चढ्या तहि इश्क खुमारी ॥
ग्यान कला में उलट सुलट जाइ मिल्यो रब एक।
रोहल अदभुत ग्रंथ में उलटे वचन अनेक ॥88॥

रोहल कहता है- अद्‍भुत ग्रंथ में अनेक वचन उलटे हैं। इनको कोई संत-जन ही समझेगा जिसके घट में विवेक जागृत हो गया है। जिसके घट में विवेक जागृत हो गया है, उसकी चाल-चलगत विलक्षण होती है। उन्होंने प्रेम का प्याला पी लिया होता है जिससे उन पर इश्क का नशा चढ़ जाता है। ज्ञान-कला में उलट-पलट होकर एक परमात्मा में जाकर समरस हो जाता है ॥88॥

दोहा

आतम दरसी आतमा, सहजे रह्यो समाइ।
रोहल रँग लागो तहाँ, बाहर पैर न पाइ ॥89॥

आत्मदर्शी आत्मा सहज-भाव में समाहित रहती है। वहीं का रंग उसको लगा हुआ है जिस कारण वह अपना पैर बाहर तक नहीं रखती ॥89॥

बाहर अंतर एक है, पिंड ब्रह्मँड के पास।
सर्व वियापी आतमा, ज्यूँ घट माहिं अकास ॥90॥

बाहर, भीतर सर्वत्र पिंड, ब्रह्मांड में एक ही तत्त्व है। आत्मा उसी प्रकार सर्वव्यापी है जैसे घड़े में आकाश समाहित हुआ रहता है ॥90॥

झूलना

मिल्या आप सूँ आप तज्यो जप जाप न, पुण्य न पाप जो सोहं विचारी।
आदि अरूप धर्यो अब रूप, सँसै पड़ कूप भया ब्रह्मचारी ॥
आगै अलेख किये अब भेष, सही ब्रह्म एक हुआ घट धारी।
अब रोहल काँह सही ब्रह्म माँह सो, दूसरौ नाहिं पड़ी सुध सारी ॥91॥

अब स्वयं में स्वयं मिल गया। जप-जाप को त्याग दिया। न पुण्य, न पाप ही शेष रहे। केवल सोऽहं का विचार=चिंतन-मनन शेष रहा। आदि अरूप ब्रह्म ने रूप धारण किया। संशय के कूप में गिरा भी किन्तु अब ब्रह्मचारी=ब्रह्मरूप हो गया है। पहले अलक्ष्य था। अब शरीर धारण करके प्रत्यक्ष हो गया। एक ब्रह्म ही शरीरधारी हो गया। अब रोहल कहाँ है? वस्तुतः ब्रह्म-मय है। ब्रह्म से भिन्न, दूसरा नहीं। अब समस्त ज्ञान=अद्वैत रूप होने का पूर्ण ज्ञान हो गया ॥91॥

दोहा

रोहल रसना राम की, खुलिया अनुभव अर्थ।
अपने मुख सूँ आप ही, रचियो अदभुत ग्रंथ ॥92॥

रोहल की रसना पर रामजी के अनुभव का अर्थ प्रकट हो गया। अपने स्वयं के मुख से स्वयं ने ही अद्‌भुत ग्रंथ की रचना की ॥92॥

रहि ध्याता दुइ इति किया, पोथी है निज सार।
रोहल रसना क्या कहै, जो थागे सकल विचार ॥93॥

ध्याता व ध्येय के रूप में रहने वाले द्वैत को नष्ट कर डाला। यह ग्रंथ उसी ज्ञान का सार तत्त्व है। रोहल अब जिह्वा से क्या कहे क्योंकि ब्रह्मानुभूति के पश्चात् समस्त विचारों का प्रवाह रुक गया ॥93॥

रोहल रसना क्या कहै, आतम रस की बात।
बिन जिभ्या कैसे कहै, ज्यूँ गूंगे गुड़ की बात ॥94॥

आत्म-रस की बातें रसना कैसे व क्या क्या कहे। गूंगा गुड़ का स्वाद बिना जिह्वा के कैसे कह सकता है?॥94॥

॥ इति शास्त्र अद्‌भुत ग्रंथ संपूर्ण समाप्त ॥

छन्द विगत : सवैया-इंदव 19 ॥ चौपाई 21 ॥ दोहा 29 ॥ कवित्त-मनहर 6 ॥ कुंडलिया 5 ॥ झूलना 14 ॥ सर्व छंद 94 ॥

शास्त्र सर्वज्ञान निज-मूल ग्रन्थ

दोहा

सब का साहब हम हूँ साधौ, रोहल नाम धराया।
हुता विदेह देह नहिं धारी, जल में वंस पठाया ॥1॥

हे साधो! मैं ही सब का साहिब हूँ। मेरा नाम रोहल है। मैं विदेह था, देहधारी नहीं था। मैंने ही जल में वंश को भेजा ॥1॥

अविगत धाम बना जाइ बैठा, हुकम रचना का दीना।
ओही है सो वंस हमारा, जिस विसतारा कीना ॥2॥

अविगत-धाम बना-कर जा बैठा। सृष्टि रचने का आदेश दिया। वही हमारा वंश है, जिसने समस्त रचना का विस्तार किया ॥2॥

अखै महल बनिया चौबारा, सेत सेज गढ़ भारा।
झिलमिल जोति अखंडी जागी, उचर्‌या सब्द ओंकारा ॥3॥

अक्षय नामक महल पर चौबारा बना है। श्वेत शैया व विशाल गढ है। वहाँ अखंडित झिलमिल ज्योति प्रकाशित हो रही है और ओमकार शब्द का उच्चारण होता है ॥3॥

चौपाई

सोइ मेरा वंस नाम अविनासी। होइ रह्या ॐ गंगा वासी ॥
अविनासी मुँ निरंजन काल। काल माहिं परकृति बरहाल ॥4॥

जिसका नाम अविनाशी है, वही मेरा वंश है। वह ॐ गंगा-वासी है। उस अविनाशी से निरंजन काल व काल में से प्रकृति का प्राकट्य हुआ ॥4॥

परकीरति मूँ महतत कीया। महतत मूँ तामस थीया ॥
तामस मूँ सकती होई। सकती मूँ अकास तत सोई ॥5॥

प्रकृति में से महतत्त्व किया। महतत्त्व (बुद्धि) में से तामस को किया। तामस में से शक्ति होती है। शक्ति में से आकाश तत्त्व होता है ॥5॥

आकास मूँ सपरस परकास्या। सपरस मूँ पवन उपास्या ॥
पवन मूँ जोती प्रगटानी। जोत मूँ भइ तेज निसानी ॥6॥

आकाश से स्पर्श तत्त्व का प्रकाश हुआ। स्पर्श में से पवन उत्पन्न हुआ। पवन में से ज्योति का प्राकट्य हुआ। ज्योति में से तेज उत्पन्न हुआ ॥6॥

तेज मूँ सुखम रस उपाया। सुखम रस मूँ जल तत ठहाया ॥
जल मूँ होई पैदा गंध। गंध मूँ भूमी तत्त बनंत ॥7॥

तेज में से सूक्ष्म रस उत्पन्न हुआ। सूक्ष्म रस में से जल-तत्त्व उत्पन्न हुआ। जल में से गंध पैदा हुई। गंध में से पृथिवी-तत्त्व बना ॥7॥

भूमी तत मूँ ईश्वर होया। ईश्वर मूँ जड़ चेतन उपजोया ॥
इन दोनाँ ते तीन गुण कीना। तीन गुण मूँ पाप छोत लीना ॥8॥

भूमि से ईश्वर तत्त्व हुआ। ईश्वर में से जड़ व चेतन उत्पन्न हुए। इन दोनों से तीन गुणों को बनाया। तीन गुणों में से पाप व स्पर्शास्पर्श विचार उत्पन्न हुआ ॥8॥

सुखम नव तत का भया सरीरा। जिस मूँ इंद्रिय रंग धीरा ॥
तमो सतो रजो मूँ मन राजा। इन स्रब ही मिल कीना अंड समाजा ॥9॥

नव-तत्त्वों का सूक्ष्म शरीर बना। जिसमें से इंद्रियादि के रंग=प्रकार निर्धारित हुए। सत्त्व, रज व तम गुण में राजा मन है। इन सभी ने मिलकर अंड (शरीर) निर्मित किया ॥9॥

अंड माहिं निज अंस समाया। उन्हा आदी पुरुष उपाया ॥
उपज्या आदि पुरुष मूँ पदम। जिस मूँ सगल भवन को सदम ॥10॥

अंडे में मैंने अपना अंश समाहित किया। उसने फिर आदि-पुरुष को बनाया। आदि-पुरुष में से पद्म की उत्पत्ति हुई जिसमें से समस्त ब्रह्मांड का सदम हुआ ॥10॥

सदम मूँ ब्रह्मा देह धारी। ब्रह्मा मूँ सिव ब्रह्मचारी ॥
सिव मूँ विष्णु 'सदा तप कीनी'। अन्तर सर्व अगम धर लीनी ॥11॥

पाठांतर : जिस उतपति कीनी

सदम से ब्रह्मा ने देह धारण की। ब्रह्मा में से ब्रह्म में रमण करने वाले शिव उत्पन्न हुए। शिव में से विष्णु की उत्पत्ति हुई जो सदा तप करने वाले हैं और जिसने अंतर में सर्व अगम्य को धर लिया ॥11॥

राजस मूँ भई आदी माया। आदि माया सूँ सर्व बीज उपजाया ॥
तीन भव लोक तीन का कीना। स्वर्ग लोक देवता कूँ दीना ॥12॥

राजस में से आदि माया हुई। आदि माया से समस्त बीज उत्पन्न हुए। तीन अलग-अलग के लिये तीन लोक बनाये। स्वर्ग-लोक देवताओं को दिया ॥12॥

अंत दिग लोक भूतन कौं सौंप्या। भूमि लोक माहिं मानवै जौंप्या ॥
असुर लोक दूजी भूमि माहिं राख्या। महरलोक मँह जन चोखे बाख्या ॥13॥

अंतिम दिक्लोक भूतों को दिया। भूलोक मानवों को दिया। असुरों का लोक अन्य भूमि में रखा। महर्लोक में अच्छे लोगों को रखा ॥13॥

सतलोक मँह तप करने वारा। वैकुंठ लोक मँह भगती करने वारा ॥
सुर असुर जोगी संन्यासी तपसी। रिखीसर जती सिद्ध खट दरसी ॥14॥

सतलोक में तप करने वालो को व वैकुंठ-लोक में भक्ति करने वालों को रखा। सुर, असुर, योगी, संन्यासी, तपसी, ऋषीश्वर, यती, सिद्ध, षड्दर्शनी (इन सभी को वैकुंठ में रखा)॥14॥

छतीस पाखंड महिं बरतै लोक। बारह बहतर पंथ हिन्दू तुरक ॥
ए सर्व लोक चारों लोक माहीं वासा है। ए काल का एक गिरासा है ॥15॥

लोक में छत्तीस पाखंड प्रवर्तमान हैं। हिन्दुओं के बारह व तुर्कों के बहत्तर पंथ हैं। इन सभी लोगों का निवास चारों लोकों में है और ये सभी काल के एक ग्रास के बराबर हैं ॥15॥

जे कोई अवतार लोक है। सोई सर्व काल सरूप है ॥
आकार जे कोई है। नाम रूपी बंधन है ॥16॥

जो भी कोई अवतार लोक हैं, वे भी सभी काल के ग्रास हैं। जो भी कोई आकारवान हैं, वे नाम व रूप धारी सभी बन्धन में ही हैं ॥16॥

इकीस ब्रह्मांड है। ए तो जम काल विणासी है ॥
जे कोई पुरुष लोक है। संत फकीर बसत है ॥17॥

इकीस ब्रह्मांड कहे जाते हैं। ये समस्त विनाशी यम-काल के खाद्य हैं। जो कोई भी पुरुष लोक हैं, उनमें संत, फकीर निवास करते हैं ॥17॥

हमारा रूही तो जम काल सूँ जोरावर है।
इनके चोदह लोकाँ सूँ धाम न्यारा है ॥18॥

मेरी आत्मा वाले तो यमकाल से भी बलिष्ठ हैं। मेरी आत्मा वालों का धाम चौदहों लोकों से विलक्षण है ॥18॥

ओहू साहब हम हैं साधू, रोहल नाम हमारा।
अदबुद अजर पियाला प्याऊँ, कोइ होवै हंस पियारा ॥19॥

वे साहिब हैं। हम उसके साधु हैं। हमारा नाम रोहल है। मैं अद्‌भुत अजर प्याला पिलाता हूँ जिसको पीकर कोई-कोई प्यारा हंस होता है ॥19॥

अगम लोक की बात सुनाऊँ, सबका मेटूँ भरम अंधेरा।
जावै अग्यान सुध ग्यान पावै, कूड़ साँच का करूँ निवेरा ॥20॥

मैं अगम-लोक की वार्ता सुनाता हूँ और सभी के भ्रम रूपी अंधेरे को मिटाता हूँ। सुनने वालों का अज्ञान नष्ट होता है। शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता है। झूठ व सच का निर्णय करता हूँ ॥20॥

अनुभव राह इण भूमि निरभय का, समझ देवूँ बताइ।
बेतलबाँ वहाँ पहुँचे नाहीं, तलब धरै सो पाइ ॥21॥

इस निर्भय-भूमि तक पहुँचने का रास्ता अनुभव है। इसको समझने की विधि मैं बताता हूँ। बिना ख्वाहिश वाले वहाँ नहीं पहुँचते किन्तु जिनमें वहाँ पहुँचने की चाहत है, वे उसको पाते हैं ॥21॥

वेद कतेब की काण न राखूँ, नहिं जाणूँ जगत मरजाता।
सर्व जगत का हम हूँ साहब, सर्व सकल का दाता ॥22॥

मैं वेद व कुरान की मर्यादा नहीं मानता। जगत् की मर्यादा=विधि-निषेध को नहीं जानता। समस्त जगत् का मैं साहिब हूँ। समस्त सचराचर को देने वाला दाता हूँ ॥22॥

उलटा राह हमारा साधौ, किसकूँ हाथ न आया।
कथनी कर ग्यान ध्यान करि थाके, भटकत फिरत अजकाया ॥23॥

हे साधो! मेरा राह उल्टा है। मैं अथवा मेरा राह किसी के भी हाथ नहीं आता अर्थात् मैं किसी के भी अधीन नहीं हूँ। अनेक ज्ञान कह-कह कर, व ध्यान कर-करके थक गये। अशांत हुए भटकते फिरते हैं ॥23॥

किन्हीं एक मेरा महरम जानिया, भई उलूझण भारी।
असंख जुगाँ के पचि पचि मरि गए, नहिं किन्हीं लाधी धाम हमारी ॥24॥

किसी एकाध ने मेरा मर्म जाना है। अन्यथा अन्यों को तो बड़ी भारी उलझनें हुई हैं। असंख्य युगों के अनेक पच-पच कर मर गए किन्तु किसी ने भी मेरी धाम को नहीं पाया ॥24॥

अविगत का अविनासी भूला, जम भूला काल कसाई।
भूला अवतार चौबीस जगत का, सवा लख पैगंबर खबर न पाई ॥25॥

अविगत-देश का अविनाशी भूल गया। यम-काल रूपी कसाई भी भूल गया। जगत् में अवतरित होने वाले चौबीस अवतार भूल गये। सवा लाख पैगम्बरों ने भी मेरी खबर तक नहीं पाई ॥25॥

तेतीस करोड़ देवता भूला, स्वर्ग लोक में वासा कीया।
कितना बार कोटि कोटि मर गया, पयाणा तीन लोक महिं दीया ॥26॥

तेतीस करोड़ देवता भूल गये जिन्होंने स्वर्गलोक में निवास किया। कितनी ही बार कोटि-कोटि मर गये, तीनों लोकों में प्रयाण कर-करके ॥26॥

सैसर नाम धरा के भूला, काल पकड़ ले जावै।
घरमराइ कर अदालत भूला, भूठी अदल हलावै ॥27॥

सहस्रनाम धारण कराकर भूल गये, अंत में काल पकड़कर ले जाता है। धर्मराज अदालत की कार्यवाही कर-करके भूल गया। वह झूठी न्याय-प्रणाली चलाता है ॥27॥

भूला इन्द्र तामें गाजै, करता पवन असवारी।
छपन करोड़ मेघ बस कीया, तो भी नहिं निज वस्तु विचारी ॥28॥

इन्द्र भी भूला हुआ है। स्वर्ग-लोक में अमर होने की बात की गर्जना करता है। पवन पर बैठकर सवारी करता है। छप्पन कोटि मेघों को वश में कर रखा है। फिर भी निज वस्तु रूप ब्रह्म का विचार=चिंतन-मनन नहीं किया ॥28॥

अनंत कोटि आदि पुरुष होइ भूला, जल में जोति जगाई।
बुझ गई जोति सूक गया पाणी, मिट गई आदि पुरुषाई ॥29॥

अनन्तानन्त कोटि आदिपुरुष होकर भूल गये जिन्होंने ज्योति को जल में उत्पन्न की। ज्योति बुझ गई, जल सूक गया। फलतः आदि-पुरुषत्व मिट गया ॥29॥

अनंत कोटि ब्रह्मा होइ भूला, बक बक वेद सुनाया।
अनंत कोटि वेद कथ मूवा, फिर फिर जनम धराया ॥30॥

अनंत कोटि ब्रह्मा बनकर भूल गये जिन्होंने बोल-बोलकर वेदों को सुनाया। अनंत कोटि वेदों का कथन कर-करके मर गये और बार-बार जन्म धारण किया ॥30॥

अनंत कोटि संभू सिव भूला, जटा जुगति नहिं आई।
असल बात की खबर न पाई, झूठी नकल हलाई ॥31॥

अनन्त कोटि शंभु व शिव भी भूल में पड़ गये। माथे पर जटा बनाई किन्तु जटा बनाने की युक्ति नहीं जानी। असली तत्त्व की जानकारी तो हासिल की नहीं, उल्टे नकली तत्त्वों में ही अपने आपको उलझा-कर रखा ॥31॥

अनंत कोटि विष्णू होइ भूला, अणहोती उतपत कीनी।
असंख बार गया परलय भीड़ा, मेरा धाम न चीनी ॥32॥

विष्णु बनकर अनन्तानंत कोटि बार भ्रमित हुआ और न हो सकने योग्य की भी उत्पत्ति की। असंख्य दफा प्रलय को प्राप्त हुआ; फिर भी मेरे असली धाम की पहचान नहीं कर सका ॥32॥

अनंत कोटि आदि माया होइ भूला, कीना बीज पसारा।
षट दरसन छतीस पाखंड, माया छल छल मारा ॥33॥

अनन्त कोटि बार आदि माया होकर भ्रमित हुए जिसने बीज बनकर सारे ब्रह्मांड का प्रसार किया। षड्दर्शनी बनकर छत्तीस प्रकार के पाखंडों व माया जन्य छल-बल के द्वारा मारा ॥33॥

अनंत कोटि कूरम होइ भूला, मिट गया दस दिग्पाल का फेरा।
अनंत कोटि सीस अर्ध होइ भूला, लूटि लिया दे जम घेरा ॥34॥

अनंत कोटि बार कूर्म बनकर भूल में पड़ा। दसों दिग्पालों का फेरा मिट गया। अनंत कोटि बार सिर नीचे करके भूल में पड़ गया। यम ने घेरा डालकर लूट लिया ॥34॥

अनंत कोटि ईश्वर होइ आया, ईस थाप करि थाका।
असंख बार मेदनी होई पलटी, चल्या सभ पर जम का साका ॥35॥

अनंत कोटि ईश्वर के रूप में भूतल पर आये। ईश्वर स्थापना=पालन करता-करता थक गया। अनंत बार मेदनी बनकर पलटे। यमराज का मारने का सिक्का इन सभी पर चला ॥35॥

अनंत कोटि कासब होइ चलिया, अनंत भोग मुवराणी।
अनंत कोटि चंद सूर तारा, अनंत बार होइ सृष्टि रचाणी ॥36॥

अनंत कोटि बार कासव = सूर्य बनकर अहर्निश गतिमान रहे, जिससे अनंत कोटि भोग प्रकाशित हुए। अनंत बार अनंत कोटि चन्द्रमा, सूर्य व तारागण होकर सृष्टि की रचना की ॥36॥

ध्रुव प्रहलाद हरीचन्द राजा भूल्या, पांडव भूल्या बड राजा।
तीन लोक की पदवी पाई, सब औलिया कमतर राजा ॥37॥

ध्रुव, प्रहलाद, हरिश्चंद्र राजा भूल में पड़े। बड़े राजा पांडव भी भूल में पड़े। तीनों लोकों में उच्च स्थान प्राप्त किया। फिर भी ये अवलिया-राज समस्त क्षुद्रों में क्षुद्र थे ॥37॥

अनंत बार भए मेरु सुमेरा, अनंत बार भए कुबेर मुनी।
अनंत बार असंख्य बड़ ऊगा, अनंत बार ले प्रलै कीनी ॥38॥

अनंत बार मेरु व सुमेरु बने। अनंत बार कुबेर मुनि हुए। अनंत बार अक्षय बट के रूप में उत्पन्न हुए फिर भी अनंत बार प्रलय प्राप्त की ॥38॥

अनंत बार ले उतपति कीनी, अनंत बार होइ खर मति जाई।
अनंत जुग भया प्रलय भेड़ा, अनंत बार फिर सृष्टि रचाई ॥39॥

अनंत बार उत्पत्ति की। अनंत बार गधे जैसी बुद्धि धारण की। अनंत युग प्रलय में नष्ट हुए। फिर अनंत बार सृष्टि की रचना की ॥39॥

अनंत कोटि रिषि तपसी भूला, तप कर रह गया ऊणा।
असल ठिकाणा हाथ न आया, आधा रह्या अलूणा ॥40॥

अनंत कोटि ऋषि, तपस्वी भूल में पड़े। तप करके भी अपूर्ण रह गये। असली ठिकाना=परमपद प्राप्त न हो सका। महत्वहीन व आधे ही रह गये ॥40॥

अनंत कोटि पीर औलिया भूला, करामाति कर दिखलावै।
असल अरूप अपना नहिं जान्या, होइ मगरूर अर आप बुडावै ॥41॥

करामात दिखा-दिखाकर अनंत कोटि पीर, औलिया भूल में पड़ गये। अपने असली नीरूपत्व को नहीं जाना। घमंडी बनकर अपने आप को भव-सागर में डुबोते रहे ॥41॥

जोगी जती अनंत कोटि भूला, स्वामी सिद्ध संन्यासी।
माद पात खटपट मँह भूला, आखिर पाई अंत चौरासी ॥42॥

अनंत कोटि योगी, यती, स्वामी, सिद्ध, संन्यासी भूल में पड़ गये। दुनियादारी की खान-पान व खट-पट=उठा-पटक में ही भूले पड़े रहे जिस कारण अंत में चौरासी लाख योनी प्राप्त की ॥42॥

अनंत कोटि नाथ बन भूला, जंगम सेवड़ा खाके।
कर्मकांड में सभ जग बांधा, विषनू लागे विख के फाके ॥43॥

अनंत कोटि नाथ-योगी बन-कर भूल में पड़ गये। जंगम, सेवड़ा (जैन मुनि), खाकी भी भूल में पड़ गये। सारा जगत् कर्मकांड में अटका पड़ा है। विषय-भोग रूपी विष खाकर व्यसनों में लग गये ॥43॥

अनंत कोटि वैरागी भूला, झूठी घंटी सेवा बजाई।
सीताराम का नाम कह भूला, असल नाम बिन परलै जाई ॥44॥

अनंत कोटि वैरागी भूल में पड़ गये। उन्होंने झूठी घंटी सेवा करते समय बजाई। सीताराम का नाम कह-कह-कर वे भूले रहे। वस्तुतः असली नाम के बिना मरते हैं ॥44॥

रामापंथी अर रामसनेही, सुद्ध सनेह न राख्या।
राम राम कह उहाँ नहिं पहुँचे, एही ओली बाख्या ॥45॥

रामदासजी (खेड़ापा वाले) के पंथ वाले और रामस्नेहियों ने रामजी से शुद्ध स्नेह नहीं किया। राम-राम कहने मात्र से रामजी तक नहीं पहुँच सके। यह उनकी सब उल्टी व्याख्या है ॥45॥

रोहल उलटा नाम हमारा, जे कोइ उलट विचारै।
पिंड ब्रह्मंड सूँ होइंगे न्यारा, पूगै नगर हमारै ॥46॥

हमारा रोहल नाम उल्टा है, यदि कोई उल्टा विचार करे तो ऐसे विचार करने वाले पिंड=शरीर व ब्रह्मांड दोनों से न्यारे हो जायेंगे और हमारे नगर में पहुँच जायेंगे ॥46॥

और लोग सब ऊरा रह गया, हिन्दू तुरक भुलाणा।
असंख जुगाँ का बिछड़्या रहिया, तीन लोक मँह दिया पयाणा ॥47॥

और सब लोग यहीं के यहीं रह गये, हिन्दू और तुर्क भी भूल में पड़कर असंख्य युगों से अपने अंशी रूपी ब्रह्म से बिछुड़े हुए हैं। तीनों लोकों में आवागमन होता रहा ॥47॥

बारह पँथ हिन्दू का झूठा, उलटे औली इष्ट विलूधा।
धाम हमारी पूगा नाहीं, जम के फंद अलूधा ॥48॥

हिन्दुओं के बारह पंथ झूठे हैं। उल्टे सांसारिक इष्टों (तुच्छ देवी-देवताओं की सेवा-पूजा) में उलझे रहते हैं। हमारी धाम तक पहुँचते नहीं। अंततः यम के फंदे में फँदते हैं ॥48॥

बहतर पंथ तुरकाँ का झूठा, न्यारा न्यारा राह बनाया।
असल वचन बिन बिच में टूटा, काल पकड़ जर खाया ॥49॥

तुर्कों के बहत्तर पंथ झूठे हैं जिन्होंने अलग-अलग रास्ते निर्मित कर रखे हैं। असली वचनों के बिना, बीच में ही टूट गये और काल ने पकड़कर जड़ सहित खा लिया ॥49॥

अणअच्छर ही सबद हमारा, अनासुरति की डोर लगावै।
असल नकल की करै पारखा, छिन में पूग नगर उस जावै ॥50॥

हमारा शब्द=वचन अन-अक्षर (अक्षरातीत) है। उस अक्षरातीत शब्द में यदि अनन्य सुरति=व्यभिचार-रहित चित्तवृत्ति को लगावे तो असली व नकली की परीक्षा हो जाये तथा एक क्षण में ही उस नगर=हमारे नगर ये पहुँच जाये ॥50॥

और सबद सभ रड़वा जैसा, पच पच रटि मरि जाई।
अण अच्छर तो सार सबद है, दोइ अच्छर है बाई ॥51॥

अन-अक्षर ही सार शब्द है, इसके अलावा और सब शब्द निरर्थक हैं (अन्य शब्द रड़वा=रटने जैसे हैं)। उनका रटन करके पच-पच कर मर जाते हैं। अन-अक्षर ही सार शब्द है जो दो अक्षर 'सोऽहं' है। (रोहलसाहब का गुरु मंत्र 'सोऽहं' है जो उनको उनके गुरु साँईनाथजी से मिला था। वे इसी मंत्र का उपदेश दिया करते थे, ऐसा मुझे महंत अचलरामजी ने वार्तालाप के मध्य बताया।)॥51॥

अणअच्छर तो सबद नियारा, अनासुरति के डोरी।
जो कोइ हालै नगर हमारे, मौज पकड़ ले मेरी ॥52॥

अन-अक्षर=अक्षरातीत शब्द सर्वथा विलक्षण है। उसमें अनन्य चित्तवृत्ति की लय को लगाकर जो कोई भी हमारे नगर की ओर चलता है तो वह मेरी जैसी मौज=मेरी जैसी आनन्दावस्था प्राप्त कर लेता है ॥52॥

सब कोइ लेसी नाम हमारा, और सब नाम बिगूता।
बिन सत नाम कोइ दूजा सब्द बतावै, उसकूँ मारूँ जूता ॥53॥

सभी मेरा ही नाम जपेंगे, अन्य सब नाम विनष्ट होने वाले हैं। सत्य नाम के अलावा यदि कोई दूसरा शब्द बताता है तो मैं उसको जूतों से मार मारूँगा ॥53॥

अनुभव कथै ग्यान बहु भाखै, झूठा जगत रिझावै।
बग ज्युँ ध्यान दुनिया में राखै, जे कोइ दाम चढावै ॥54॥

पाखंडियों का आचरण बताते हैं, अनुभव का कथन करते हैं, नाना तरह का ज्ञान कहते हैं और जागतिक लोगों को झूठ के द्वारा प्रसन्न करते हैं। बगुला जैसा ध्यान जगत् में बैठकर लगाते हैं, उनके सामने, जो उनकी सेवा में धन भेंट करते हैं ॥54॥

दामाँ की सब करत मजूरी, गुरु सूँ बेमुख जाई।
करम जाल के माहिं अलूधा, किस विधि करै कमाई ॥55॥

सभी धन-रुपयों की मजदूरी करते हैं, गुरवाम्नाय से विमुख आचरण करके। कर्मों के फंदे में उलझे रहते हैं। ऐसे लोग कैसे साधना रूपी कमाई कर सकते हैं ॥55॥

मेरा राह कमाण का साधौ, बिन कमाण नहिं सूझै।
बिना कमाण कुलछ नहिं पलटै, बिन बुधि नाहीं बूझै ॥56॥

हे साधो! मेरा मार्ग कमाण=कमाई=साधना करने का है और बिना साधना के परमात्म-दर्शन नहीं होते। बिना साधना के कुलक्षण, सुलक्षण में परिवर्तित नहीं होते और बिना विवेक के ज्ञान नहीं होता ॥56॥

कान सूँ सुणै जिभ्या सूँ सीखै, सुण्या सीख्या सब झूठा।
दुख गह तोड़ै तिनका नहिं तूटै, चौका आरती क्या कढ त्रूटा ॥57॥

कानों से सुनते हैं, जिह्वा से सीखते हैं। ऐसा सीखा व सुना हुआ सब झूठा है। दुःख अंगीकार करके तोड़ना चाहते हैं किन्तु एक तिनका भी टूटता नहीं है। चौका व आरती करके कौनसा कूड़ा निकाला जा सकता है। (कबीर-पंथ की धर्मदासी-शाखा में चौका-आरती का भारी महत्व है। रोहल-साहब का कहना है, चौका-आरती के द्वारा कौन से कूड़े रूपी पापों को बाहर निकाला जा सकता है?) ॥57॥

मँडप माँड करि सेत अधराती, अविगत का उनमान बतावै।
कर दीपक आटे की मूरति पुजोवै, जमग्रास बरतावै ॥58॥

मंडप बनाकर अर्ध-रात्रि में सेवा करते हैं और अविगत का अनुमान बताते हैं। आटे का दीपक बनाकर मूर्ति-पूजा करते हैं और यम-ग्रास वितरित करते हैं ॥58॥

ऐसा लटका करै हुल कोइ लाखै, तोइ अविगत नहिं जासी।
बिना कमाण कोइ पहुँचै नाहीं, काल पकड़ ले खासी ॥59॥

चाहे कोई ऐसे लाखों लटके-झटके करता है, तब भी अविगत की प्राप्ति नहीं कर पाता। वस्तुतः बिना साधना के कोई भी परमपद में पहुँचता नहीं। ऐसों को काल पकड़ कर खा जाता है ॥59॥

सब्द प्रवाणा काल कद मानै, कद मानै आन बडाई।
डंडा मार बांध ले जासी, धर्मराइ के द्वारै भाई ॥60॥

शब्द के परवाने को काल कब मानता है और कब अन्यों की मर्यादा को मानता है। काल डंडा मारकर बांध-कर यमद्वारे ले जाता है ॥60॥

बिना कमाइ पैंडा नहिं खूटै, मन जाण्या कद हूवा।
जे जानै धनवंते होसाँ, नाम बिन निर्धन होइ मूवा ॥61॥

बिना साधना के मेरे धाम में आने का रास्ता खुलता नहीं। मनःसंकल्पित पूरा कब होता है? यदि कोई यह माने कि हम धनवान होंगे तो बिना भगवन्नाम के वह निर्धन के रूप में मरता है ॥61॥

नाम हमारा तो निज धन है, भाग बडा जिस पाया।
अनासुरति की डोर लगाकर, धाम अदीठ अरूप समाया ॥62॥

हमारा तो निज नाम ही धन है। जिसका बड़ा भाग्य है, उसने वह नाम प्राप्त किया है। अनन्य-चित्तवृत्ति की लय लगाकर ही अदृष्ट व अरूप धाम में समाहित होता है ॥62॥

एका बीह लख सुन है बेली, इक इक न्यारी न्यारी।
बयासी लख सुन अभै पद कहिए, इत उत भारी भारी ॥63॥

(यहाँ से अदीठ व अरूप धाम, कहाँ है, का वर्णन करते हैं) इकीस लाख शून्य वेली हैं जो एक-एक अलग-अलग हैं। बयासी लाख शून्य अभय पद हैं जो इधर-उधर भारी-भारी हैं ॥63॥

चौबिस लख सुन सेत वरन है, चौदह लख रवि सूरा।
दस लख सुन ओ इनके ऊपर, रंकार सब्द धुन तूरा ॥64॥

चौबीस लाख शून्य श्वेतवर्ण वाली हैं। चौदह लाख शूरवीर रवि हैं। दस लाख शून्य इनके ऊपर हैं जहाँ ररंकार शब्द की ध्वनि तुरही जैसी होती है ॥64॥

अविगत के ऊपर है अविनासी, अविगत का गढ़धारी।
अटल कोट की थाणेदारी, इसकी है कामदारी ॥65॥

अविगत से ऊपर अविनाशी है जो अविगत के गढ़ का धारणकर्त्ता है। अटल किले की थानेदारी करता है और जहाँ इसकी कामदारी है ॥65॥

ऊहाँ मानसरोवर हंसा, मुझ मूँ बीछुड़ आया।
इस अभ्यासी के फरमाणे, मानव देह समाया ॥66॥

वहाँ मानसरोवर के हंस हैं जो मुझसे वियुक्त होकर इस अभ्यासी के आदेशानुसार मानव देह में अवतरित हुए हैं ॥66॥

कोइ इक साध फकीर विरागी, अविगत कूँ ले ध्यावै।
मेरा स्रूप अरूप है न्यारा, उसकी खबर न पावै ॥67॥

कोई-एक साधु, फकीर, वैरागी अविगत की साधना करता है किन्तु मेरा स्वरूप तो अरूप है, विलक्षण है, उस अरूप का बोध प्राप्त नहीं कर पाते ॥67॥

ररंकार अटल कोटि बसै औलिया, अविगत का अविनासी ओला।
जिस घर सूँ बिछुड़ के आया, उस घर का पड़ गया झोला ॥68॥

अटल किले में ररंकार अवलिया बसता है जहाँ अविगत का अविनाशी पर्दा है। जिस घर से वियुक्त होकर यहाँ आया, अब उस घर से दूरी हो गई है ॥68॥

सब्द प्रवाणा पहुँचे नाहीं, सुरति निरति थक जासी।
अगला देह सुभाव न जावै, गर्क पड़्या माहिं चौरासी ॥69॥

शब्द का परवाना वहाँ पहुँचता नहीं। सुरति व निरति भी थक जाती हैं। पिछले जन्म के स्वभाव=संस्कार नष्ट नहीं होते। चौरासी-लाख योनियों में आकंठ डूब जाता है ॥69॥

अविगत सूँ पैंडा है ओखा, उसका किस कूँ नाहिं विचारा।
जो कोइ होवै हंस हमारा, खोज कहूँ मैं सारा ॥70॥

अविगत से आगे का रास्ता दुर्गम है। उसका किसी को भी बोध नहीं है। जो भी कोई हमारा हंस=मुक्तात्मा है, उसको मैं, उसका पूरा खोज=बोध करा देता हूँ ॥70॥

अविगत की सेत सुंन सूँ, चार करोड़ सुन आगै।
बिना आवाज न आवाज होवत है, लोप जावै नर पागै ॥71॥

अविगत की श्वेत शून्य से चार करोड़ शून्य आगे, बिना आवाज, जहाँ आवाज नहीं होती है और नर के पैर (चिह्न) लुप्त हो जाते हैं ॥71॥

फिर उसके आगै चार करोड़ गूंगी सुन है, गूंगा होइ गम जानै।
अचरज खेल अचंभा परसै, ऐसा देस पिछानै ॥72॥

उसके आगे चार करोड़ मूक शून्य का देश है जिसका मर्म गूंगा होकर ही पाया जा सकता है। वहाँ आश्चर्य-मय अचंभित करने वाले खेल का दर्शन होता है; उसको ऐसा देश जानो ॥72॥

फिर उसके आगै चार करोड़ सुंन है, अदीठ की दीठ बिना ऊ देखै।
ध्यानन ग्यान विग्यान सूँ लोपै, प्रेम डोर सूँ पेखै ॥73॥

उसके आगे चार करोड़ शून्य हैं। अदृष्टि की दृष्टि बिना ही वह देख जाता है। वह ध्यान, ज्ञान, विज्ञान से लुप्त हो जाता है किन्तु प्रेम की डोर से देखने में आता है ॥73॥

फिर उसके आगै चार करोड़ सुंन है, अंमृत की चढी हंस खुमारी।
मगन होइ मस्ती सूँ लोपी, बेखुद बेअखत्यारी ॥74॥

उसके आगे चार करोड़ शून्य हैं। वहाँ अमृत की खुमारी (नशा) हंस पर चढ़ती है। मस्ती में मग्न होकर बेखुद=अहंकार-हीनता व बेअखत्यारी अधिकार-हीनता में निमग्न हो जाता है ॥74॥

फिर उसके आगे चार करोड़ सुंन है सुगंध अरूपी बिना नासिका लपट आवै।
लपट लोप घन घेर सब अघाए, नर को लँघ जावै ॥75॥

इसके आगे चार करोड़ शून्य हैं। वहाँ अरूपी सुगंध की बिना नासिका के गंध आती है। उस घनघोर गंध में निमग्न होकर सब तृप्त होते हैं, कोई-कोई साधक ही इनको पार करता है ॥75॥

फिर उस आगै पाँच करोड़ सुन है, उनमन सहजे लोपै सूरा।
कोइ ऐसा होवै हंस हमारा, पूरव देस का पूरा ॥76॥

पुनः उसके आगे पाँच करोड़ शून्य हैं। वहाँ शूरवीर सहज उन्मन में लुप्त होते हैं। कोई-कोई पूर्व देश का हमारा ऐसा पूर्ण हंस होता है ॥76॥

फिर उसके आगै पाँच करोड़ सुन अचरंगी, एक अचरंगी सूँ चालै।
हिमत बांध कै हंस हजूरी, पैंडे कूँ पुण सालै ॥77॥

पुनः उसके आगे पाँच करोड़ अचरंगी शून्य हैं। एक अचरंगी से चलते हैं। हिम्मत के साथ हजूरी हंस लक्ष्य की ओर चलता है, लक्ष्य को पाता है ॥77॥

फिर उसके आगै पाँच करोड़ सुन है, मौजी मौज माहीं जाई।
ह्याँ सूँ निकल हुवा जब न्यारा, सोइ हंस बलवंता भाई ॥78॥

पुनः इसके आगे पाँच करोड़ शून्य हैं। मौज करने वाला मौज (आनंद) में निमग्न होता है। वहाँ से निकल-कर जब हंस न्यारा हो जाता है, वही हंस बलवान है ॥78॥

फिर उसके आगै पाँच करोड़ सुन, प्रतिबिंब कोई लोपै हंस निरधारा।
उसके आगै देस चांदणा, पाँच करोड़ सुन भारा ॥79॥

फिर उसके आगे पाँच करोड़ प्रतिबिंब शून्य हैं, कोई निराधार हंस ही लुपता है। उसके आगे प्रकाश-युक्त देश है वहाँ विशाल पाँच करोड़ शून्य हैं ॥79॥

फिर उसके आगै पाँच करोड़ सुन पर, महा चांदणा जिसका छेह न आवै।
उस उजवारे के मध्य माहीं, निज अरूप हमारा पावै ॥80॥

फिर उसके आगे पाँच करोड़ शून्य पर महा-प्रकाश है जिसका कहीं अन्तिम बिन्दु नहीं है। उस प्रकाश के मध्य ही मेरा निज स्वरूप अरूप प्राप्त होता है ॥80॥

भेष भी उरला भजन भी उरला, अजपा उरला थक जावै।
अर्ध नाम उरला चेतन ब्रह्म उरला, आतम कला भुलाए ॥81॥

वेश भी उरला=ससीम, भजन भी समीम और अजपाजाप भी ससीम (हद में) है, जो थकते हैं (जिनका अंत आता है)। अर्धनाम ससीम है। चेतन ब्रह्म भी ससीम में है जो आत्म-कला में भूले पड़े हैं ॥81॥

रंग बेरंग उरला हद बेहद सूँ न्यारा, आपो हि आप अकेला।
सोई पूगा मेरा हंस सनेही, उसका हम सूँ होवै मेला ॥82॥

रंग, बेरंग ससीम हैं। जो हद, बेहद से न्यारा है, वह स्वयं ही स्वयं अकेला है, अद्वैत है। वही मेरा स्नेही हंस हम तक पहुँचता है और उसी का हमसे मिलन होता है ॥82॥

मिल्या मिल्याँ होवै नहिं न्यारा, लागी डोर बांधा पतियारा।
तारों तार गई मिल ताते, इथ उथ भया इकसारा ॥83॥

एक बार मिलने पर, मिले हुए ही रहते हैं, पृथक् नहीं होते। लय लग गई, विश्वास जम गया। तारों-तार=महीन से महीन भाग भी आपस में मिल गये, सर्वांश में मिल गये। इधर-उधर सर्वत्र मिलकर एक हो गये ॥83॥

छूटी बंदूक भयो ठकाऊ, पाछै कला समाणी।
आवण जावण का संसा मिट गया, पाया पद निरवाणी ॥84॥

अनहद-नाद की बंदूक छूटने पर ठौकारा (टंकारा अर्थात् बंदूक की गर्जनात्मक ध्वनि) हुआ। तत्पश्चात् कला समा गई। आने-जाने का संशय मिट गया क्योंकि निर्वाण पद की प्राप्ति हो गई ॥84॥

साहब मिलकर साहब हूवा, कौन कहै फिर वंदा।
असंख जुगाँ सूँ अगम अगोचर, आदि जुगादी हंता ॥85॥

साहब से मिलकर साहब हो गया। अब कौन उसको सेवक कहे। असंख्य युगों से अगम्य, अगोचर आदि युगादि जो साहब था, वह साहब हो गया ॥85॥

और जगत झूठा नहिं जानै, क्या बाना क्या घर बारी।
धरमराव सर्व का राजा, क्या पुरखा क्या नारी ॥86॥

और चाहे वह वेशधारी हैं, चाहे गृहस्थ हैं जगत को झूठा नहीं जानते; चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष हो, धर्मराज तो सभी का राजा है ॥86॥

काल पकड़ बांध ले जासी, इक इक न्यारा न्यारा।
दूत भूत दानव गण गंध्रव, कूटणवाला सारा ॥87॥

काल सभी को एक-एक न्यारे-न्यारे करके बांधकर पकड़ ले जायेगा। दैत्य, भूत, दानव, गंधर्वगण सभी मार खाते हैं ॥87॥

नरक भुगत चौरासी पावै, गया सभ परलै माहीं।
असंख जुगाँ का जीव बीछड़्या, मुकती लाधी नाहीं ॥88॥

नरकों के दुःख भोगकर पुनः चौरासी लाख योनियों में आते हैं। सभी प्रलय=नाश को प्राप्त होते हैं। असंख्य युगों से बिछुड़े हुए जीव को मुक्ति की प्राप्ति नहीं हुई ॥88॥

रोहल साहब नाम कहाया, देह धार कर आया।
सर्व जगत के जीवन कारण, सत नाम मैं सब्द सुनाया ॥89॥

मैं देह धारण करके भूतल पर आया और मेरा नाम रोहल-साहब हुआ। जगत् के समस्त जीवों के हितार्थ मैंने 'सत-नाम' शब्द का उपेदश दिया ॥89॥

निरगुण निरबँध भजन हमारा, निरपख निरभै है निरवाणी।
वंस हंस जे कोइ है मेरा, हंस परमहंस निरवाणी ॥90॥

मेरा भजन निर्गुण, निर्बंध, निष्पक्ष, निर्भय व निर्वाणी है। जो भी कोई हंस मेरा वंश=अंश है, वही हंस निर्वाणी परमहंस है ॥90॥

जो परम धरम की पूछै बाता, सेज सिंघासण चढै सुहागी।
जिंह सत नाम का मरम न जाण्या, सोई फिरता दुखिया दुहागी ॥91॥

जो परम-धर्म की बात पूछता है, वही सौभाग्यवान सेज-सिंहासन पर चढ़ने का अधिकारी होता है। जिन्होंने सत-नाम का मर्म नहीं जाना, वे ही दुर्भाग्यशाली हुए दुखित होकर डोलते-फिरते हैं ॥91॥

जिस कूँ बाण सबद का लागा, पूरे सतगुरु पाया।
सोइ जगत सूँ न्यारा हूवा, घाव वचन के धाया ॥92॥

पूर्ण सद्गुरु प्राप्त करने के उपरान्त जिसके शब्द रूपी बाण लग गया, वही जगत् से अलिप्त हो गया क्योंकि वह वचन के द्वारा हुए घाव के प्रभाव से साधना में प्रवृत्त हुआ किम्वा भगवदुन्मुख हुआ ॥92॥

उस मान्या फरमान हमारा, जिस वचन ग्रहण कर लीया।
सत्त नाम का बेड़ा झेल्या, प्रेम पियाला पीया ॥93॥

उसने मेरा आदेश माना। जिसने हमारा वचन धारण कर लिया; जिस सत्त-नाम का बीड़ा हमने दिया, उसको उसने ग्रहण कर लिया और प्रेम रूपी प्याला पिया ॥93॥

पूगा अमरलोक मृत नहिं आवै, अजर बजर होइ जावै।
आगे होता हंस बीछड़्या, मिल साहब नाम कहावै ॥94॥

वह अमरलोक में पहुँच गया, मृत्युलोक में नहीं आता क्योंकि वह वज्र जैसा अमर हो जाता है। पहले वह हंस स्वरूप था किन्तु अज्ञानवश साहिब हंस से बिछुड़ गया था। वापिस मिल गया और साहब ही हो गया ॥94॥

मुझ में समाइ मेरा होइ रहिया, फेरै सत नाम दुहाई।
रोहल नाम धराया जबही, आइ सभ का फंद छुड़ाई ॥95॥

मुझमें समरस होकर मेरा होकर रहता है और सत्त नाम की दुहाई फेरता है। मैं तब ही रोहल नाम धारण कराके जगत् में आकर सभी के बन्धनों से छुड़ाता हूँ ॥95॥

काटूँ फंद जगत का सारा, बंदीछोड़ है नाम हमारा।
उस कूँ हम तो कबु नहिं छोडूँ, जे कोइ करसी भजन हमारा ॥96॥

मैं जगत के सारे बंधनों को काटता हूँ। मेरा नाम बंदी-छोड़ है। उसको मैं कभी भी बंधन में रहने नहीं देता जो हमारा भजन करता है, करेगा ॥96॥

हिन्दू तुरक दोउँ घर ऊपर, लागी छाप हमारी।
सत नाम का बेड़ा साथ लीया, क्या त्यागी घर बारी ॥97॥

हिन्दू और तुर्क दोनों घरों के ऊपर हमारी छाप लग गई है। मैंने सत-नाम का जहाज साथ में ले रखा है जिसमें सभी चढ़ सकते हैं, चाहे त्यागी हो, चाहे घर गृहस्थी हो ॥97॥

मेरी पूनम की जोई राखै व्रती, कर सत्संग अर भाव बरतावै।
रटै सत नाम अंतर में राखै, अनासुरत की डोर लगावै ॥98॥

मेरे जन्म-दिन पूर्णमासी का जो व्रत रखता है, सत्संग करता है, श्रद्धा रखता है, अन्तर (हृदय) में धारण करके सत-नाम का स्मरण करता है और अनन्य चित्त होकर लय लगाता है ॥98॥

तिसका हंसा पूगा पल माहीं, जे कोइ ऐसी सहज समावै।
उहि कदे हम कूँ नहिं बिसरै, मेरे निज सरूप समावै ॥99॥

जो भी उक्त प्रकार की सहज में समरस होता है उसका हंस एक पल में ही मेरे पास पहुँच जाता है। वह कभी भी मुझे विस्मृत नहीं करता, मेरे निज स्वरूप में समरस हो जाता है ॥99॥

इसका हमको बडा वसीला, सिर चोटी का मालिक।
रोहल साहब नाम कहाया, खुद खाँवद मैं खालिक ॥100॥

जो ऐसी श्रद्धा रखता है कि इसका=ये ही (रोहल-साहब) मेरा सबसे बड़ा आश्रय है (वसीला= आश्रय, सहायक, मार्गदर्शक आदि) ये ही मेरे आपाद-मस्तक के स्वामी हैं। जो रोहल साहब के नाम से कहे जाते हैं। रोहल साहब कहते हैं- ऐसे मेरे स्वामी हैं, मैं उसका सेवक हूँ ॥100॥

ओही मैं हंसा अमरलोक ले जाऊँ, जिस पर छाप लगाणी।
दृढ़ निहचा करि अडिग होइ रहिया, उन मेरी निज धाम पिछाणी ॥101॥

ऐसे हंसों का मैं अमरलोक में ले जाता हूँ, जिन पर मैंने मेरी छाप लगा दी है। जो दृढ़ निश्चय धारण-कर उस पर अडिग रहते हैं, उन्होंने मेरे निज-धाम को पहचान लिया है ॥101॥

रोहल साहब वचन उचारै, है कोइ संत हमारा।
जो कोइ वाख्या समझै हंसा, विधि विधि प्रगट कहूँ ततसारा ॥102॥

रोहल-साहब कहते हैं- क्या कोई संत हमारा है, जो हमारे वचनों (व्याख्या) को समझने का प्रयत्न करे जिसके प्रति मैं भाँति-भाँति से समस्त प्रकार से तत्त्व का सार प्रकट करता हूँ ॥102॥

सोइ सतगुरु जिसकूँ सभ गम होवै, इक छिन माहीं करम कटावै।
ऊणे गुरु सूँ रहै अडोरा, सार सब्द के गम नहिं पावै ॥103॥

सद्‌गुरु वह है, जिसको पूर्ण ज्ञान होता है। एक क्षण में ही समस्त कर्मों को कटवा देता है। साधक को अपूर्ण गुरु से पृथक् रहना चाहिए क्योंकि उनकी सानिध्य में सार शब्द का रहस्य ज्ञात नहीं हो सकता ॥103॥

अणअच्छर निज सार सबद है, और सबद है रांधौ।
दुविध्या दुरमति भरम मिट्या नहिं, भटकत मूवा ज्यूँ आंधौ ॥104॥

निजसार-शब्द अनक्षर=अक्षरातीत है। निज शब्द के अलावा अन्य शब्द कीचड़ के समान हैं। अन्य शब्दों से दुविधा, दुर्मति व भ्रम मिटते नहीं, उल्टे अंधे की भाँति भटकते हुए मरते हैं ॥104॥

रोहल साहब साँच कहत है, सुण ल्यो हंस विचारौ।
नौखँड चौदह लोक सात दीप सूँ, भाखूँ मैं न्यारौ ॥105॥

मैं रोहल-साहब सत्य कहता हूँ- हे हंसो! सुनो और विचार करो। नौखंड, चौदह-लोक और सात द्वीप के ज्ञान से मैं विलक्षण ज्ञान बताता हूँ ॥105॥

सती पुरा सत लोक स्वर्ग भी ओला, अमरापुर ओला वैकुंठा।
राम भी ओला रहीम भी ओला, सभ गाडर का पूछ ले जूटा ॥106॥

सतीपुर, सत्तलोक, स्वर्गलोक, अमरपुर, वैकुंठ, राम, रहीम ये सभी ओला=इसी ओर के लोक हैं। ये सभी वैसे ही हैं, जैसे कोई भेड़ की पूंछ पकड़कर सागर से पार होने को जुटे हों ॥106॥

चढी खुमारी भइ सुध सारी, परस्या आरँभ पारा।
भया गलतान गरक गम जाणैं, लहरि माहिं उलट्या सिंध सारा ॥107॥

नशा चढ़ा, सारा ज्ञान प्राप्त हो गया, आरंभ=ब्रह्मांड के पार का तत्त्व=परब्रह्म-परमात्मा का स्पर्श=दर्शन हो गया। ब्रह्म में निमग्न हो गया, समरस होकर ब्रह्म का रहस्य जान गया। फलतः लहर=आत्मा में सिंध=ब्रह्म उलटकर एकरस हो गया ॥107॥

सिंध लहर हो गया इकसारा, सूभर भर्‌या भरपूरा।
दहुँ दिस भिन भिन चमकै चांदणा, नैन वैन मँह सरूप निज नूरा ॥108॥

लहर व सिंधु एक समान हो गये और सूभर=इस छोर से उस छोर तक व नीचे से

ऊपर तक भर गया। दसों दिशाओं में नाना भाँति का प्रकाश प्रकाशित होता है। यह निज नूर का स्वरूप नयन व वचन में समा गया ॥108॥

ऐसा अरूप हमारा साधौ, मानव देह धारि करि आए।
सर्व सगल का हम हूँ साहब, रोहल नाम कहाए ॥109॥

हे साधुओं! हमारा इस प्रकार का अरूप स्वरूप है और मैं मानव देह धारण करके भूतल पर आया। सर्व समस्त का मैं साहिब हूँ और रोहल के नाम से कहलाता हूँ ॥109॥

हिन्दू तुरक दुहाँ कूँ परगट, कह समझाइ बुलाऊँ।
जे कोइ आवै मेरी राह माहीं, तो अमरलोक ले जाऊँ ॥110॥

मैं हिन्दुओं व तुर्कों दोनों का बुलाकर प्रकट में समझाकर कहता हूँ। जो भी कोई मेरे मार्ग पर आकर आरूढ़ हो जाता है तो मैं उसको अमरलोक में ले जाता हूँ ॥110॥

राजा होवै परजा होवै, ऊँच नीच नहिं कोई।
मेरे नाम सूँ हेत लगावै, तुरत ले जाऊँ सोई ॥111॥

चाहे राजा व प्रजा को, चाहे ऊँच व नीच कोई भी हो, जो भी कोई मेरे नाम से प्रीति जोड़ता है, उसको तुरंत ही मैं अपने धाम में ले जाता हूँ ॥111॥

ए अवसर फिर हाथ न आवै, मानव देह पिराई।
अब ऐसो तेरौ दाव बन्यो है, कुछ कर ले मेरे भाई ॥112॥

मानव देह नष्ट होने वाली है, ऐसा अवसर दुबारा हाथ में आने वाला नहीं। हे भाई! अब ऐसा सुअवसर तेरे को मिला है, अब कुछ कर ले ॥112॥

हिमत बाँध करि नाम सम्हावौ, अपना कीजे भला।
नहिं तो जूण चुरासी पासी, दर दर खासी खला ॥113॥

हिम्मत के साथ नाम का आश्रय लेकर अपना कल्याण कर। अन्यथा चौरासी लाख योनियाँ प्राप्त करेगा और द्वार-द्वार पर जूता खायेगा ॥113॥

मनखा पद गफिल होइ खोया, जूणि सँकट भुगतावै।
चार जुगाँ में खाइ पालटा, परलय भेड़ा जावै ॥114॥

मनुष्य जन्म अज्ञानी होकर नष्ट कर दिया और पुनः-पुनः शरीर धारण करने का कष्ट भुगतता है। मनुष्य जन्म चार युगों के पश्चात् मिलता है और व्यर्थ ही प्रलय में नष्ट होते हैं ॥114॥

प्रलय का जीव सभ डोलत रहिया, पवन पौल में घीसै।
कर गहरी नजर उर्ध बिंब राखै, तो पतंग उडंता दीसै ॥115॥

प्रलय में सभी जीव घूमते=भ्रमण करते रहते हैं और खुले आकाश में घिसते रहते हैं। गंभीर दृष्टि करके ऊपर की ओर देखता रहता है, और अन्यान्य प्राणी भी पतंगे की तरह उड़ते हुए दिखते हैं ॥115॥

जिसमें हांदा बहुता वेली, कुना ढाकण आकास डेराया।
ज्यूँ घूंघड़े सहज सहज भूल जावै, त्यूँ जीव जगत ठहाया ॥116॥

जिसमें बहुत से संगी-साथी थे, वहाँ कौन ने आकाश को आच्छादित करने को ढक्कन लगाया। जिस प्रकार घूँघट के कारण सहज-सहज में देखना भूला जाता है, वैसे ही जगत में जीवात्मा ठगा जाता है॥ 116॥

असंख जुगाँ का जीव अलूधा, उनका नाहिं निबेड़ा।
उर्ध बिंब मँह उड़ता रह गया, फिर फिर परलय भेड़ा ॥117॥

जो प्राणी असंख्य युगों से उलझे हुए हैं, उनका निस्तारा नहीं हुआ। वे ऊपर के आकाश में भ्रमण करते ही रह गये हैं और पुनः-पुनः प्रलय में नष्ट होते हैं ॥117॥

ओही जीव ऊर्ध्व भवंता, जोई देखै बिनछै सारा।
उड उड ऊँचा जाँफा मारै, एक इक न्यारा न्यारा ॥118॥

यही जीव ऊपर भ्रमता है। जिसको देखता है, वे सभी नष्ट होते हैं। उड़-उड़कर एक से एक अलग-अलग ऊँचे से ऊँचा झपट्टा मारता है ॥118॥

कोइ एक साध आवै पतंग बताऊँ, नवे चेले कूँ बतलावै।
ऐसे इष्ट जे कोई झाले, अंत प्रलय में जावै ॥119॥

कोई एक साधु आकर नये शिष्य को कहता है- आओ, तुम्हें पतंग बताता हूँ। जो कोई भी ऐसे इष्ट को धारण करते हैं, वे अंत में प्रलय=नष्ट होते हैं ॥119॥

ओही दीसै इन अँखियाँ सूँ नाहीं, दरसै जो दीसै आकारा।
ओही लोचन लखिए होई विवेकी, जिसका संताँ पास विचारा ॥120॥

यह इन आँखों से नहीं दीखता। जो दीखता है, वह आकार है। इन्हीं आँखों से विवेकवान होकर देखिये जिसका संतों के पास विचार है ॥120॥

इस जग में ऐसा गुरु चेला, जूठा बैराठ बतावै।
जूठा उर्ध्व बिंब का निसाना, गुरु चेला बहु गोता खावै ॥121॥

इस जगत् में ऐसे गुरु व चेले हैं जो ब्रह्मांड को झूठा बताते हैं। ऊर्ध्व बिम्ब का निशान झूठा है; ऐसे गुरु व चेले भव-सागर में गोता खाते हैं ॥121॥

मत है ओछी करै बहुत ग्याना, सीखै साख उधारी।
सतसंग में वाद विवाद करै, करमाँ के अधिकारी ॥122॥

बुद्धि तुच्छ है जबकि ज्ञान ऊँचा बघारते हैं, अन्यों की साखियाँ सीखकर उनका कथन करते हैं, (स्वानुभव बिल्कुल नहीं है) ऐसे कर्मों के अधिकारी सत्संग में वाद-विवाद करते हैं ॥122॥

ज्यूँ ढूढे ऊपर स्वान होइ भेड़ा, भुस भुस करत लड़ाई।
दावौ बांधै अग्यानी अंधा, काचौ ताण माहिं मर जाई ॥123॥

जिस प्रकार कंकाल पर कुत्ते एकत्रित होकर भौं-भौं करके लड़ाई करते हैं। इसी प्रकार जो दावौ=स्वत्वाधिकार जताते हैं, वे अज्ञानी और अंधे हैं और कच्चा सूत पूरकर उसके अंदर मर जाते हैं ॥123॥

सीख्या सुन्या ग्यान बहु भाखै, दाँत कथाली करता।
बिना कमाण भव सागर माहीं, डूब डूब गुरु चेला मरता ॥124॥

सीखा व सुना हुआ ज्ञान ही बहुशः सुनाते हैं, दंत-कथ करते हैं। बिना साधना रूपी कमाई के गुरु व चेले दोनों भव-सागर में डूब-डूब कर मरते हैं ॥124॥

जे कोइ होवै हंस विचारी, जोइ जोइ करै गुरु पूरा।
असल बात की पड़ै पारखा, साँच लखै कोइ सूरा ॥125॥

जो कोई विचारवान हंस होता है, वह देख-देखकर (सोच-समझकर) पूरे को गुरु बनाता है। जिससे, उसको असली शब्द-तत्त्व का बोध हो जाता है और कोई शूरवीर ही सत्य को जान पाता है ॥125॥

साँच लखै सोहि जौहरि कहिए, परखै ओला हीरा।
कागर पत्थर पगाँ सूँ ठेलै, लजावै न उस्ताद अपना गुरु पीरा ॥126॥

जो सच को जानता है, वह जौहरी है। वह छिपे हुए हीरे की परीक्षा करना जानता है। कंकर-पत्थर को ठोकर मार-कर दूर करता है और अपने उस्ताद, गुरु, पीर को लज्जित नहीं करता ॥126॥

मेरा होइ जो नर सचियारा, सिर परि छाप डेराए।
नाम हमारा अंतै में राखै, उसका हंस अमरलोक ले जाए ॥127॥

जो सच्चा प्राणी मेरा बनकर सिर पर मेरी छाप धरता है, अंतःकरण में मेरा नाम धारण करता है, उसके हंस को मैं अमरलोक में ले जाता हूँ ॥127॥

अमरलोक का देस अगोचर, अगम अगाधी आगा।
कलियुग ही सभ लांदा पंथी, उन्हाँ नहिं लाभै मागा ॥128॥

अमरलोक का देश अगोचर, अगम्य, अगाध व सबसे ऊपर है। कलियुग में सभी लांदा-पंथी=लादने वाले, राह के राहगीर हैं। उनको सच्चा-मार्ग नहीं मिलता ॥128॥

लांदा पंथी लोभ ललचाणा, झूठा जगत भ्रमावै।
झूठा सबद कान में फूँकै, झूठा संख ढुलावै ॥129॥

लादने वाले राह के राहगीर लोभ के ललचाये झूठे जगत में भ्रमते अथवा झूठ का आश्रय लेकर जागतिक-लोगों को भ्रमाते हैं। वे कानों में झूठे शब्द (मंत्र) फूँकते हैं तथा झूठे शंख बजाते हैं ॥129॥

पुतला बांध डाभ का कीया, झूठा कलस ठपाया।
धागा बांध सात फूवा जिबह कीया, जिस पर जीव चढाया ॥130॥

कुशा को बाँधकर पुतला बनाया। झूठा कलश स्थापित किया। रुई के सात फुवों पर धागा बाँधकर उन पर जीव का आरोपण किया और उनका कत्ल किया ॥130॥

यूँ गुरु जीव उहाँ नहिं पूगै, मुद्रा धात अर सींगी बाँधै।
झूठा चीप लगावै झूठे तू, रोटा राडो साँधै ॥131॥

इस प्रकार गुरु व जीव मुद्रा, धातु और सींगी बाँधने से वहाँ नहीं पहुँच सकते। झूठे गुरु व चेले झूठे चीप लगाते हैं और झूठे ही रोटों (मोटी रोटी) को पका-पकाकर बाँटते हैं (रोटा राड़ो सांधे) ॥131॥

बीज सबीज अबीज सूँ न्यारा, जोइ ऊगै सोइ झूठा।
जो सींचै सो वृच्छ विष का, जड़ाँ समेत न राखै बूठा ॥132॥

बीज, सबीज दोनों अबीज से पृथक् हैं, जो उगता है, वह झूठा है। जिसको सींचते हैं, वह विष का वृक्ष है। जड़ सहित उन बूट=पौधों को नहीं रखते ॥132॥

हिन्दू तुरक सूँ हम हूँ न्यारा, राजा परजा देहधारी।
और साध भेष ब्रह्मचारी, दर दर मरै भिखारी ॥133॥

हिन्दू व तुर्क दोनों से मैं विलक्षण हूँ। राजा, प्रजा, देहधारियों से भी पृथक् हूँ और साधु, भेषधारी, ब्रह्मचारी द्वार-द्वार भिखारी बने घूमते हैं ॥133॥

दरसन परसन में हम नाहीं, दरसै परसै सभ सूचा।
कुम्हार काँचा ठीकर काँचा, गद काचा अर घूँचा ॥134॥

दर्शन व स्पर्श के घेरे में मैं नहीं हूँ अर्थात् मैं इनसे न्यारा हूँ जो दर्शते व परसते हैं, वे सभी सूचे हैं। कुम्हार कच्चा है, उसके द्वारा घड़े गये बर्तन भी कच्चे हैं। उनका गद=गधा व धूँचा=ढाँचा भी झूठा ही है ॥134॥

ध्यान भी काचा ज्ञान भी काचा, जख जख मुवा विचारा।
मन मस्ती सूँ सब्द साखी बहु जोड़्या, कर बैत राख अर करी पुकारा ॥135॥

ध्यान व ज्ञान कच्चे हैं। जख=झक अर्थात् झक-झक करके ज्ञान सुनाने वाला बेचारा मर गया। मन की मस्ती में बहुत से साखी व पद आदि का निर्माण किया। ऐसे लोग उनके समान हैं जो हाथ में बैत=लकड़ी की छड़ी या तलवार रखते हैं और मुँह से राम-राम की पुकार लगाते हैं ॥135॥

किरत उपावै जगत भुलावै, अर पाँच नाम का भजन बतावै।
सत सुकृत का सबद सिखावै, लिख परवाना भेला मुख पावै ॥136॥

कृत्य करते हैं, जगत को भ्रमित करते हैं, पाँच नाम के भजन का उपदेश देते हैं। सत-सुकृत=सत्य और पुण्यकर्मों के शब्द सिखाते हैं। परवाना=आदेश लिखकर भेला मुख पाते है ॥136॥

अैसा ग्यान गुरु चेले को देवै, बीच में जावै लूट्या।
सूना खेत मन जाण्या वाही, मांड काल केई कूट्या ॥137॥

इस प्रकार का ज्ञान गुरु, चेले को देते हैं। बीच में ही लूट लिये जाते हैं। मन जान नहीं पाता, खेत सूना है। काल पकड़कर कइयों को मार मारता है ॥137॥

सुरती ऊठै झूठै वैसे, झूठै झूठा धरै धयाना।
सुरति लेइ निरति कूँ मिलावै, हंसै उपजै औलिया ग्याना ॥138॥

चित्तवृत्ति को उठाते हैं, झूठे तत्त्व में समाहित करते हैं। झूठे साधक झूठे तत्त्व का

ध्यान धरते हैं। जो सुरति को निरति से मिलाते हैं, वे अवलिया ज्ञान सम्पन्न हंस बन जाते हैं ॥138॥

जे सत सुकृत की रहणी रहै, तोही अजर अमर नहिं होवै।
जे हंसा नू लाख घाट जेपे तो क्या, जम असंख लाख घाटे पर जोवै ॥139॥

यदि कोई सत व सदाचरण युक्त रहनी रहता है, फिर भी वह अजर, अमर नहीं होता। यदि हंस एक लाख घाटों पर अपने को बचाता है तब भी क्या? काल उसको असंख्य-लाख घाटों पर ताकता रहता है ॥139॥

जे हंसा कष्ट करै बहु केता, ओ सतलोक में जाई।
ऐसा सब्द गुरु चेला ग्रहै, बांध काल पकड़ ले जाई ॥140॥

यदि हंस बहुत से कितने ही कष्ट उठाकर साधना करता है तो वह सतलोक में जाता है। गुरु के ऐसे शब्दों को चेले ग्रहण करते हैं तो उनको काल पकड़कर ले जाता है ॥140॥

अमरपुरी में अंमृत आचरै, तोइ काल कबहू नहिं छोड़ै।
कर ऐसा सुमरन सुकृत कूँ ध्यावै, घाट जाल जम रोड़ै ॥141॥

अमरपुरी (इन्द्रलोक) में जाकर अमृत पान कर लेने पर भी काल उसका पीछा नहीं छोड़ता। ऐसा उत्तम भगवत-स्मरण व सुकृत का आचरण करो कि ये दोनों शरीर धारण करने के फंदे व यम-यातना को नष्ट कर दें ॥141॥

असल धाम पूगा बिन कबहू, अजर अमर नहिं होसी।
सत लोक की नगरी गइ फेरा, चोट काल लूट ले खौंसी ॥142॥

असली धाम तक पहुँचे बिना कभी भी अजर-अमर नहीं हुआ जा सकता। सतलोक की नगरी में जाने से पुनः फिर-कर आना पड़ता है, काल की चोट लूटकर खाती है ॥142॥

रोहल जिस पर गुरु की दिच्छा, उसे झूठा सबद सुनावै।
अै हंसा आध बिच उलझ्या, अमरलोक नहिं जावै ॥143॥

रोहल कहते हैं- जिसने गुरु से दीक्षा प्राप्त कर रखी है, उसको भी यदि कोई झूठा ज्ञान सिखाता है तो ऐसा हंस आधे-बीच में ही उलझकर रह जाता है, अमरलोक में नहीं जाता ॥143॥

आप आप कूँ किस विधि उबारसी, अर हाथ हंस का भेड़ा दिया।
अर हंसा आपके साथ नहिं हालै, बिन कमाण बीच में घर किया ॥144॥

स्वयं, स्वयं का उद्धार किस प्रकार कर सकता है, यदि स्वयं के हाथ से ही अपना बेड़ा=जहाज दूसरे के हाथों में दे दिया है। स्वयं के साथ अन्य हंस चलते नहीं (कि वे कुछ सहायता करके गंतब्य तक पहुँचा दें) ऐसे बिना कमाई (परिपक्व साधना) किये साधक आधे रास्ते में ही घर किया=रुक जाते हैं ॥144॥

काल पुरुष सूँ छूटै नाहीं, गुरु चेले का मन परचावै।
करै व्याख्यान सब्द अपने का, जे सुने जगत सारा तर जावै ॥145॥

गुरु, शिष्य के मन को भ्रमित करते हैं कि बिना उनकी सहायता काल-पुरुष के फंदे से छूटना संभव नहीं। अपने शब्दों का व्याख्यान करते हुए कहते हैं कि जो हमारे वचन सुनेगा, वह भव-सागर से पार हो जायेगा ॥145॥

यूँ कह करै बखिसस चेले पर, ओ मियाँ सिव का सब्द सुनाया।
कलिजुगी गुरु यूँ परबोधे, गुप्ती लांबा रंढो बताया ॥146॥

इस प्रकार कह-कह कर शिष्य के प्रति बक्षीश करते हैं। कहते हैं- मैंने शिवजी व उमा का शब्द तुमको सुनाया है। कलियुग के गुरु इस प्रकार का प्रबोध देते हैं। व्यर्थ का गुप्त व लम्बा उपदेश सुनाते हैं ॥146॥

उजरी भीत नहिं लिपे इन सब्द सूँ, झूठा भेड़ा दाखै।
सतलोक झूठा का सुकृत का, झूठा कर भाव झूठा कह वाखै ॥147॥

उज्जवल भींत इन शब्दों से लिपती=आच्छादित नहीं होती, क्योंकि साथ में झूठ बोलते हैं। सत्यलोक झूठा है, सुकृत को भी झूठ करके कहते हैं, झूठे झूठा कहकर बोलते हैं ॥147॥

जीवत मुकती लाधी नाहीं, मूवाँ पीछै कद पाई।
प्राण पिंजर जद बाहर पड़्या, पीछे किन घर जाई ॥148॥

जीते जी मुक्ति प्राप्त नहीं की, मरने पर मुक्ति कब प्राप्त की जा सकती है? प्राण जब शरीर से बाहर निष्क्रमण कर जायेगा, तब वह किस घर में जायेगा? (पता नहीं) ॥148॥

अंधा लोक समझ नहिं राखै, थिर ईहाँ नहिं रहणा।
घर माया अर्धंग्याँ नारी, सभ छोड अकेला बहणा ॥149॥

सांसारिक अंधे लोग समझते नहीं कि यहाँ स्थायी रूप से रहना नहीं है। घर, माया, अर्धाङ्गिनी नारी, सभी को यहीं छोड़कर अकेले जाना है ॥149॥

इस जग का कोइ किसका नाहीं, राखी झूठी आसा।
ए आसा सभ मन में रहसी, जासी फोक निरासा ॥150॥

इस जगत् में कोई किसी का नहीं है। फिर भी इनके प्रति 'सच्चे सम्बन्ध हैं' ऐसी झूठी आशा पाले रखते हैं। ये आशाएँ मन की मन रह जायेंगी और अंत में निराश होकर नष्ट होंगे ॥150॥

आसा साँची मेरे नाम की, जिस राखी अंती माहिं।
भवसागर की सीर मूँ, पकड़ उतारू बाँहिं ॥151॥

जिसने अपने अंतःकरण में मेरे नाम की सच्ची आशा रखी है, उसको मैं भव-सागर की लहरों में से बाँह पकड़कर बाहर निकाल देता हूँ ॥151॥

वचन हमारा मान लैवे, कोइ सूरा नर सचियारा।
सहज सम्हावौ सत्त नाम का, भजन करौ निरधार ॥152॥

कोई शूरवीर सच्चा साधक मेरे वचनों को मान ले, सत्यस्वरूप परमात्मा का नाम धारण करे और एकरस अनन्य चित्त होकर भजन करे ॥152॥

ए जग सारा झूठ है, आखिर परलै होइ।
अमरलोक पहुँचे नहीं, बिना वसीलै कोइ ॥153॥

यह समस्त ब्रह्मांड झूठा है, अंत में यह नष्ट होगा ही। बिना किसी वशीले (आश्रय, सहायक) के कोई अमरलोक में नहीं जा पाता ॥153॥

वसीला पूरे सतगुरू का, सत नाम सब्द का जोर।
अनासुरत की डोर लगाइ करि, पूगै अमरलोक की ठोर ॥154॥

पूर्ण सद्गुरु का आश्रय व सत्य-नाम शब्द का बल लेकर, परब्रह्म-परमात्मा में अनन्य-वृत्ति की लय लगाकर अमरलोक को पहुँचता है ॥154॥

अमरलोक सुहावणा, कोइ संत लेवै विसराम।
रोहल का ओहि देस है, निरभै अगमगढ गाम ॥155॥

अमरलोक सुहावना=अखंडानन्दात्मक है जिसमें कोई संत ही विश्राम प्राप्त करता है। रोहल का यही देश=वास-स्थान है जो निर्भय, अगम्य गढ़ गाँव है ॥155॥

अथ प्रलै का विचार

अष्ट भौमि माँह खेह हो जासी।
भूमि गंध माँह खेह हो जासी ॥156॥
अर गंध जल माँह खेह हो जासी।
अर जल सूक्ष्म रस माँह खेह हो जासी ॥157॥
अर सूक्ष्म रस तेज माँह खेह हो जासी।
अर तेज जोत माँह खेह हो जासी ॥158॥
अर जोत पवन माँह खेह हो जासी।
अर पवन सपरस माँह खेह हो जासी ॥159॥
सपरस आकास माँह खेह हो जासी।
अर आकास सक्ति माँह खेह हो जासी ॥160॥
अर आदि सक्ति तामस माँह खेह हो जासी।
अर तामस ओंकार माँह खेह हो जासी ॥161॥
अर ओंकार महतत माँह खेह हो जासी।
अर महतत प्रकृति माँह खेह हो जासी ॥162॥
अर प्रकृत काल माँह खेह हो जासी।
अर काल अविगत अविनासी माँह खेह हो जासी ॥163॥
अर अविनासी अरूप बीचों।
गुनागुन माँहे खेह हो जासी ॥164॥

दोहा

रहते आपो आप, रोहल नाम धराया।
सर्व जीव पर छाप, निहकलंक कहाया ॥165॥

॥ इति शास्त्र निज-मूल ग्रंथ जिसकूँ सर्वग्यान भी कहते हैं, सम्पूर्ण समाप्त ॥

॥ दोहा 141, चौपाई 15, छंद 9, सर्व 165 ॥

पाँच तत्त्व व तीन गुण का शरीर भूमि तत्त्व में लय होता है। भूमि गंध में लय होती है ॥156॥ गंध जल में लय होती है। जल सूक्ष्म-रस में लय होता है ॥157॥ सूक्ष्म-रस तेज-तत्त्व में लय होता है और तेज-तत्त्व ज्योति-तत्त्व में लीन होता है॥ 158॥ ज्योति पवन में लय होती है। पवन स्पर्श में लय होता है ॥159॥ स्पर्श आकाश में लय होता है और आकाश शक्ति में लय होता है ॥160॥ आदि-शक्ति तामस-गुण में लीन होती है और तामसगुण ऊँकार में लीन होता है ॥161॥ ऊँकार महतत्त्व में लय हो जाता है और महतत्त्व

प्रकृति में लय होता है ॥162॥ प्रकृति काल में लय होती है, काल अविगत, अविनाशी में लय होता है ॥163॥ और अविनाशी, गुणागुण अरूप में समाहित होते हैं ॥164॥ मैं अपनी ही महिमा में स्थित था, अब मैंने रोहल नाम धारण किया है। सर्व जीवों पर छाप रखकर मैं निष्कलंक कहलाया ॥165॥

अथ अगम-वार्ता

(जिसमें गोष्ठी, रोहल-साहब और विजयसिंह, जोधपुर के राजा की है)

रोहल-वाच

[1]सेली सींगी [2] सतसटी [3], हम हैं प्रगटे आइ।
[4]पूनम तिथि दिन सोम, ले देह घर साहू के पाइ ॥1॥

रोहल-साहब आत्मकथन करते हुए कहते हैं- मैं सेली, सींगी और सतसटी साथ में लेकर प्रकटा हूँ। उस दिन पूनम तिथि, सोमवार का दिन था। मैंने देह साहू के घर में प्राप्त की ॥1॥

ज्यूँ बिजली का भड़का भया, चहुँ दिसि भया उजास।
जिस पल में हम आविए, खोळै पायो निवास ॥2॥

जैसे बिजली की ध्वनि के साथ प्रकाश होता है, ऐसे ही मेरे अवतरित होने पर चारों ओर प्रकाश हुआ। जिस पल मैं आया तब उस समय मैंने शरीर में निवास किया ॥2॥

मैं बालक बन्धन निरमला, लोहू रगत न रेख।
सर्व जीव के कारणै, धरिया मानष भेख ॥3॥

मैं बन्धन-हीन बालक था जिसके न रक्त था न लोहू (खून) और न कोई ढाँचा। सर्व जीवों के हितार्थ मैंने मानव वेश धारण किया ॥3॥

बाप मेरा साहू नहीं, उस घर नाहीं मात।
जननी हम जाया नहीं, कुल वरण नहिं जात ॥4॥

साहू मेरा पिता नहीं है, उसके घर में माता भी नहीं है। माता के उदर से मैं जन्मा नहीं। मेरा कोई कुल, वर्ण और जाति नहीं ॥4॥

पाँच तत का पिंड नहीं, नवाँ तत [5] सूँ न्यारा।
अभय अखय अमर सदा, आपहु अपरम अपारा ॥5॥

मेरा शरीर पाँच तत्त्वों का नहीं, यह नौ-तत्त्वों के शरीर से भी विलक्षण है। मैं अभय, अक्षय, अमर, सनातन, अपरम्पार, अपार और अपनी महिमा में स्थित मैं स्वयं हूँ ॥5॥

मेरा पार पावै नहीं, कोटि भजनीक वीर।
धरमराइ के हुकम सूँ, गए पकड़े दास कबीर[6] ॥6॥

करोड़ों भजनीक भक्त भी मेरा पार नहीं पा सकते। कबीरदास भी धर्मराज के द्वारा पकड़कर ले जाये गये ॥6॥

नाम रखावै साधु कहावै, अंते भीतर चोर।
करम करै संसार में, अन्धा आदमखोर[7] ॥7॥

ऊपर से साधु नाम से कहलाते हैं जबकि अंतःकरण में भीतर से चोर हैं। आदमखोर अंधे संसार में नाना कर्म करते हैं ॥7॥

बाना पहरै भगवा करै, सामी [8] पीर फकीर।
रहति[9] बिना जम ले गया, जड़कर जीव जँजीर ॥8॥

स्वामी, पीर, फकीर भगवा रंग का वेश बनाकर पहनते हैं। बिना सदाचरण व साधना के जीव को जंजीर में जकड़कर यमराज ले जाता है ॥8॥

सवैया

साधु कहाइ कै साधु होवै नहीं, साधना करत तब साधु होवै।
दंम कूँ खोज अदंम में आवना, दम अदम को सहज जोवै ॥

मूरति लेइ अमूरति देख ले, प्रेम का रस्स दिन रात पीवै।
रम रोहल मैदान चौगान की, सेज पर ध्यान के सुख सोवै ॥9॥

साधु कहलाकर वास्तविक साधु बनते नहीं। वस्तुतः साधना करने से ही साधु बनता है। दम (श्वास=प्राण) को खोजकर अदम की स्थिति में आना चाहिए और दम व अदम स्थिति को सहज में देखें। मूर्ति को लेकर अमूर्त को देखे। दिन-रात प्रेम का रस पीवे। रोहल कहते हैं- चौगान=चार अंतःकरण की शैय्या पर रमण करते हुए ध्यानावस्था के सुख में निमग्न होवे ॥9॥

रेखता-सवैया

[10]फकीर सोई पीर[10] पैगंबरी[10] आद का, दम मँह गुम गलतान रहता।
दम का ध्यान हरदम पिछान कर, कुद[11] पतंग परवान[12] रहता ॥
दे सीस तो चीस[13] करता नहीं, सूर में घाव इक ठाव अस्थान रहता।
सोई मिल रोहल दरियाह की मौज चढ़, नाह[14] पर सुरत सरवान[15] रहता ॥10॥

जो अनादि=आदि-काल का पीर पैगम्बर है, वही फकीर है। वह प्राणों को साधकर आत्मा में निमग्न रहता है। प्राण के ध्यान को प्रत्येक क्षण पहचान-कर स्वयं पतंगा रूप होकर अग्नि-पिंड स्वरूप स्वात्मा में रमण करने को तत्पर रहता है। शूरवीर रूपी साधक साधना रूपी रणांगण में शीश समर्पण करते समय विघ्न-बाधा रूपी शत्रुओं के सामने क्रन्दन नहीं करता। साधना रूपी संग्राम में एक ठाँव अस्थान=एक लक्ष्य पर अडिग रहता है। रोहल कहते हैं- दरियाव रूपी परमात्मा का आनंद पाने के लिये साधना रूपी नाव में बैठकर आनन्द लो, वैसे ही जैसे नाह=धनुष के तीर के सिरे पर सरवान=नुकीला लोहा लगा होता है ॥10॥

कौन हिन्दू भया कौन तुरका कहै, तुरक हिन्दू दोइ राह कीया।
दुवीध्या राख ले कूड़[16] की साख ले, ओ कहीं राम अल्लाह कीया ॥
बाद कर संत भेष तुरक भया, जनम मरण इक ठाह कीया।
रहत रोहल हम कहत कोइ जान ले, आप में आन पतसाह कीया ॥11॥

कौन हिन्दू हुआ, कौन तुर्क हुआ; वस्तुतः हिन्दू और तुर्क दो रास्ते हैं। दुविधा धारण करते हैं, झूठ की साक्षी अंगीकार करते हैं और कहते हैं- यह राम व अल्लाह ने किया है। संत वेश को बाद करने से तुर्क होता है किन्तु जन्म व मरण तो परमात्मा ने एक जैसे ही बनाये हैं। रहने वाला रोहल कहता है- सभी कोई जान ले, आप में ही आकर मैंने अपने आपको बादशाह बनाया है ॥11॥

साध सृष्टि महीं संत अनेक हैं औलिया सर्व पर सीस सरदार मैं हूँ।
पीर फकीर केई आप हैं औलिया, सर्व पर सीस सरदार मैं हूँ ॥
मुलके खलके देव हैं देवता, आकास पाताल करतार मैं हूँ।
रोहल ए नाम क्या नाम सूँ काम, सर्व अवतार पर निज निरधार मैं हूँ ॥12॥

सृष्टि में साधु-संत अनेक हैं, सर्व औलियाओं के सिर का मैं सरदार हूँ। कई पीर, फकीर और औलिया हैं; इन सभी के सिर का सरदार मैं हूँ। मुल्क, खलक के देव-देवता हैं जबकि आकाश से पाताल तक का करतार=सृजनकर्ता मैं हूँ। रोहल कहते हैं- ये नाम, इन नामों से क्या काम है। इन सभी अवतारों के ऊपर निज निराधार मैं हूँ ॥12॥

तब राजा विजयसिंहजी ने कहा- ए रोहल-साहब! आप फरमायो, तो इस कलजुग माहीं अवतार[17] धरकै आए हो सो किस विधि, इसका विचार दया कर कहो।

ओहूँ हर हूँ, ओहूँ हर हूँ, ओहूँ हर हूँ, ओहूँ हर हूँ, आदि-जुगादि सूँ, अगम अगोचर, आगे सूँ आगे, परे सूँ परे, दूर सूँ दूर, सुन सूँ सुन, महासुन, असुन सुन, अलह सुन, भूम सुन, अभूम सुन, भव सूँ अभव, निरंतर, निरालंब, निरअहंकार, निराधार, अटल, अडोल, अनिवासी, अनामी, निहनामी, हम हैं। सारी सृष्टि हम ही रचाई। सात दीप, नौ खंड, इक्कीस ब्रह्मांड हम ही कीना। चान्द, सूरज, नौ लख तारा, एही सारा मेरा विस्तारा। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति हम ही पैदा किया। चार वाणी, चार खानी, तेतीस करोड़ देवता, चौबीस अवतार, सवा लाख नवी, हिन्दू, तुर्क, प्रहलाद, राजा हरिश्चंद, पांडव बडा राजा, कुँवेर मुनि, सेवड़ा, संन्यासी, रिषीसर, जती, भगत, संत, साध, पीर, फकीर, औलिया, सामी, सिद्ध, नौ नाथ, दास कबीरा, दादू, नानक, ये सभी हमारा भजन करते हैं। हम तो सर्व की पालना करने वाला हूँ। ये तो सर्व संत हमारे पठाए आए हैं। इन सूँ भगति[18] एकठाँह नहीं हुई। अपना पराया दोइ करि जान्या। यों करि दुविधा मन में आनी। पीछै कलजुग माहीं हम रोहल नाम धराकै आए हूँ। मृत्युलोक में निष्पक्ष भगती हलाई[19] है जिसमें दुरमति दुविधा नहीं है। दोइ राह माहीं एक राह लखाया। अपने रूप का अरूप बताया। जिसने हमारा कह्या मान्या, औरों कूँ त्याग हम कूँ जान्या।

मुझ कूँ जान मुझमें समाया। विकर्म कर्म का भरम मिटाया ॥
निर्मल होइ रह्या निकलंकी। अजर बजर सोइ अमर अभंगी ॥13॥

जो मुझको जानकर मुझमें ही समरस हो गये, उन्होंने कर्म व विकर्म का भ्रम मिटा डाला। वे निष्कलंकी, निर्मल हो गये हैं। वे वज्र अजर, अमर व अभंग हो गये हैं ॥13॥

हम हु अकल मेरी कला पसारा। देख पसार भूला संसारा ॥
भूला होइ सोइ बह जावै। मेरी दरगह पूरा पावै ॥14॥

मैं ही अकल (कला-विभाग रहित, एक अद्वैत) हूँ, सब कुछ मेरी ही कला का विस्तार है। इस पसारे को देखकर संसारी जीव भूल में पड़ जाता है। जो भूला होता है, वही बहता=नष्ट होता है। मेरे धाम को तो पूरे ही प्राप्त करते हैं ॥14॥

मेरी दरगह आवै काल सूँ छूटै। जम जाल जंजाल जिसी का टूटै ॥
जम का हुकम उसी पर नाहीं। मुझमें ओही मैं उस माहीं ॥15॥

जो मेरे धाम में आ जाते हैं, वे काल के चक्र से छूट जाते हैं। उस का यम-जाल-

जंजाल कट जाता है। उस पर यम का आदेश काम नहीं करता। वह मेरे में व मैं उसमें स्थित होता हूँ ॥15॥

और इन्द्र धर्मराइ संग आसन छोड़्या।
मेरे संत के आगल आइ हाथ जोड़्या ॥
गण दूत सभ इन सूँ डरै। होइ अधीन वन्दना करै ॥16॥

और इन्द्र, धर्मराज आसन छोड़ देते हैं तब, जब मेरे संत उनके सामने होते हैं और ये संतों के आगे हाथ जोड़ते हैं। यमदूत के गण व दूत सभी इनसे डरते हैं। अधीन होकर वन्दन करते हैं ॥16॥

जिस पर लागै हमरी छाप। उस पर दोष करम नहिं पाप ॥
इसमें भूला कोइ मत जानै। रोहल श्रीमुख आप बखानै ॥17॥

जिस किसी पर मेरी छाप लग जाती है, उसको दोष, कर्म व पाप नहीं लगते। संतों को कोई भी उक्त दोष, कर्म व पाप में भूला हुआ नहीं जाने। ऐसा रोहल स्वयं अपने मुख से कहते हैं ॥17॥

कोइ इक जानै मरम हमारा। साचा सूरा संत पियारा ॥
वाद करै सोइ वाद विवादी। उसकूँ मैं जानूँ अपराधी ॥18॥

कोई-एक सच्चा शूरवीर, प्यारा संत मेरे मर्म को जानता है। जो वाद-विवाद करता है, वह वाद-विवादी है, उसको मैं अपराधी मानता हूँ ॥18॥

तब राजा विजयसिंहजी पूछा- ए रोहलसाहब! इन भगताँ सूँ भगती इकठाँह[20] क्यों नहीं होई, इसका विचार दया कर कहो।

रोहलसाहब-वाच

एक तो सेस को पूज रहे हैं।[21] जो कहैं, सेस भगवान हैं और विचार की तो खबर ही नाहीं। एक तो ब्रह्मा कूँ पूज रहे हैं जो कहैं, ब्रह्मा चार वेद बनाए हैं। वेद की बात साँची करि बैठे हैं और विचार की तो खबर ही नाहीं। एक तो विष्णु को पूज रहे हैं जो कहैं, विष्णु की उत्पत्ति है। दूसर कोई नाहीं और विचार की तो खबर ही नाहीं। एक तो शिव कूँ पूज रहे हैं, जो कहैं शिव शक्ति का जोड़ा है। सकल बूंद का विस्तार है और विचार की तो खबर ही नाहीं। एक तो गणेश कूँ पूज रहे हैं, जो कहैं, गणेश रिद्धि-सिद्धि का देवता है और विचार की तो खबर ही नाहीं। एक तो अवताराँ कूँ पूज रहे हैं जो कहैं, अवतार धर कै संताँ की सहाइ कीनी है और विचार की तो खबर ही नाहीं। एक तो अखय वृछ कूँ पूज रहे हैं जो

कहैं, अमरफल इसका पसार है और विचार की तो खबर ही नाहीं। एक तो चन्द्रमा, सूरज कूँ पूज रहे हैं जो कहैं चन्द्रमा, सूरज साहब के दो नैना हैं और विचार की तो खबर ही नाहीं। एक तो ध्रुवतारा-मंडल कूँ पूज रहे हैं जो कहैं, ध्रुवतारा मंडल अडिग पदवी है अमरापुरी है, और विचार की तो खबर ही नाहीं। एक तो स्वर्ग कूँ पूज रहे हैं और विचार की तो खबर ही नाहीं। एक तो जल-पानी कूँ पूज रहे हैं जो कहैं जल की पैदा है जल परवीन है। और विचार की तो खबर नाहीं। एक तो पवन कूँ पूज रहे हैं, जो कहैं, पवन प्राण है और विचार की तो खबर ही नाहीं। एक तो निरगुण कूँ पूज रहे हैं, निर्गुण-निर्गुण कर रहै हैं। निर्गुण के विचार की तो खबर ही नाहीं। सब कोई अपने इष्ट में बंध रह्या है। अपणा-अपणा इष्ट कूँ बधाइ बखाण कर रहे हैं, पखापखी लाग रहे हैं, निरपख के विचार की तो खबर ही नाहीं।

इहाँ ही उलझ रहे हैं। एको ही हंस[22] हमारे धाम नहीं पूगा। जब हम सर्व जीवों की पालना करन कूँ आए हूँ, रोहल नाम धराय कै, सुनो राजा विजयसिंहजी इन लोगाँ कूँ तो हमारे तुमारे का विचार नाहीं। तब राजा विजयसिंहजी हाथ जोड़ कै कह्या- ए रोहलसाहब! जगत जब होता नहीं, तब रचना किमी[23] रचानी, दया करि सुनाओ। तब रोहलसाहब-वाचनाहीं धुंधुकार होता, नाहीं सब्द ररंकार होता, नाहीं नामै सहस हजार होता, नाहीं कोई बनावट विस्तार होता, एक हमारा निज स्वरूप होता, इश्क प्रेम की मौज होई; अपने निज स्वरूप नूर का दरिया होता जिस मूँ गर्द गुबार घोर ररंकार ऊठा, चमकार तजला[24] भया, इस मूँ पतंग ज्यूँ चिणगाँ[25] उडिया, उस कतरे कतरे का नाम हंस ठहराया, रूह ठहराया, अर्द्ध नाम ठहराया, आदम ठहराया, आतम बोलता ठहराया, इन सूँ पीछै तीन सफीलाँ[26] कीना, मैं अपने श्रीमुख सूँ वचन फरमाया, इन हंसा कूँ कहिया, तुमरा साहब कौन है, अगली सफील हंसाँ की होती, जिसने कह्या, हमारा साहब जब आप हो; दूसरी सफील सुनिया, पर कह्या नहीं, तीसरी सफील सुनिया भी नहीं, कहिया भी नहीं; पीछै मैं इन हंसाँ का मकान बनाया, मानसरोवर नाम ठहराया, अंमृत रस का हौज बनाया, जिसमें मोती अगम अपारा, ओही हंसा का चारा है। पीछै मैं अपनी कुदरत[27] सूँ अविगत धाम बनाया। चौमुख झरोखा, सेत सेज बिछायी, जिसके ऊपर स्याह काली गादी धराई। उस सेत गादी के ऊपर मेरी नजर का एक वंस विराजमान है। सेत चादर का परदा है। उसी मेरे वंस का नाम अविगत ठहराया। पीछै नह-नह[28] अमर शब्द ऊचरिया। एक अंडा फूटा, रचिया ब्रह्मंड। पहला एक कुर्स बना, दूजा अर्श बनिया, तीसरा आकास बनिया, चौथा आकास बनिया, पाँचवाँ आकास बनिया, छठवाँ आकास बनिया, सातवाँ आकास बनिया, जब सात ही आकास बने, आठवाँ आकास अर्श बना, नवाँ कुर्श बना, ये ही सारा ब्रह्मांड बना और पीतांबर भींत बनाई जिस पर ठहराया। पहली भींत चार सालम[29] सिला जिस पर ठहराई। पहली सिला पर रज-बीरज मिलिया। दूसरी सिला पर तेज ठहराया। तीसरी सिला पर धारा ठहराई, चौथा सिला पर जल थल

अलील[30] पानी ठहराया, पानी माहीं जोत जगाई, इस जोत माहीं एक फूल होया। कुदरत सूँ इसी माहीं एक रूप होया आदि पुरुष का। उस आदि पुरुष की नाभि मूँ पोली[31] नाड़ी निकसी कितना कितना जोजनाँ में लांबी हो गई। जब पानी के ऊपर आइ चढ़ी, माहीं एक फल कमल का लागा, उसी कमल माहीं ब्रह्मा चौमुखा पैदा हुआ, विष्णु हुआ, शिव हुआ, शक्ति होई। चार ही मूरताँ कमल माहीं बैठा। जमीन नाहीं, पाँव कहाँ धरै, पीछै ब्रह्मा बीज पयाल सूँ लेकर पाणी के माहीं बड़्या।[32] जब[33] धुवाँ ज्युँ धक निकली। उन माँ जमीन बणन लागी। रूप सेस का होया। रूप धूल का होया। सींग के ऊपर राई, जिस पर नव खंड धरती ठहराई। पचास[34] करोड़ पृथिवी बन रही। जब दस दिग्पाल[35] होया। तब धरती दाबी है। सूरज चन्द्रमा का परकास होया है। आकाश में नव लख तारा का प्रकास होया है। आकास में जिस कमल पर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति बैठा था, उसी ठौर मेरु सुमेरु हो गया। दस चिणगाँ[36] होइ गइया। मेरु सुमेरु कीया, जिस पर दस पुरिया होया। अवतारा कीया। अखय[37] बड़ होया। तेतीस करोड़ देवता होया। कैलास पर्वत होया। चार वाणी, चार खाणी, सात द्वीप, नौ खंड, इकीस ब्रह्मंड बन रहे हैं। स्वर्ग होइ रहिया, नरक होइ रहिया, पीछै शिव शक्ति कूँ कामना जागी, वृच्छ की डालियों को पकड़्या था, पीछे पटकाए[38], फैंकिया था। एक जाइ पूरव पड़िया, एक जाइ पच्छिम कूँ पड़िया, यूँ कर पुरुष नारी का जोड़ा हुवा। ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, शुद्र हुवा, चार वर्ण हुवा। ब्रह्मा मूँ ब्राह्मण होया, वैश्य मूँ नवी होया, क्षत्रिय मूँ राजपूत होया, अर नवी मूँ मुसलमान होया, सूद्र मूँ कमीन लोक होया। एक राह में दोई राह बनाई है। दुविधा मन में राखै, हिन्दू लोक अवताराँ की मत लेकर ब्राह्मण कूँ पूजते हैं। मुसलमान नवियाँ, पैगंबराँ का मत लेकर काजियाँ मुल्लाँ को पूजते हैं। फकीराँ, सताँ की मत की खबर ही नहीं, कैसा ही विचार है। हमारे विचार की तो किसी बिरले फकीर संत को खबर है, और लोगाँ कूँ तो खबर ही नाहीं, राजा विजयसिंहजी हम कूँ तो बैचून हूँ।[39] तब राजा विजयसिंहजी हाथ जोड़-कर कहा- ए रोहलसाहब! उतपत का विचार दया करके कहो, किस विधि होइ है।

तब रोहलसाहब-वाच आदि पुरुष की नाभि मूँ ब्रह्मा प्रकास होया है। ब्रह्मा का दस लड़का[40] होया, एक लड़को मारीच, दूजौ अत्री, तीजौ अगर, चौथो पुलस्त्य, पाँचवों पीरसत, छठवों बरग, सातवों वशिष्ठ, आठवों नारद, नौवों शम्भुमन, दसमों पीवरदत[41] है। पीवदत को लड़कौ उत्तानपाद, उत्तानपाद को लड़कौ ध्रुव। गोरथ[42] दांगल दवा पुलस्त्य को लड़को वशीअरसर्वा,[43] विसर्वा को लड़को रावण राकसाँ का वंस है। मारीच को लड़को कासब, कासब को लड़कौ [44]कुंभकर्ण है। कुंभकर्ण की तेरह [45]राणियाँ हैं। पहली राणी अदितियाँ जिसका लड़का पियूषमन है। दूजी राणी अदियाँ है जिसका लड़का पैतीस करोड़ दानव है, जिसमूँ दैत्य पैदा हुए हैं। तीजी राणी विदतियाँ जिसका फरजंद नौ कुली नाग[46] होया है।

चौथी राणी विनतियाँ जिसका लड़का गरुड़ होया। पाँचवी राणी सोमियाँ जिसका लड़का सर्व नौ लख तारा नक्षत्र है। छठवीं रानी नमानोती है जिसका लड़का चन्द्रमा है। सातवीं रानी सलकान जिसका लड़का सूरज होया। आठवीं राणी कर्मावंती जिसका लड़का आठ कुली[47] पर्वत पहाड़ है। नवमीं राणी मेघनिद्रा जिसका लड़का छपन करोड़ मेघ होया है। दसवीं रानी दयावंती जिसका लड़का अठासी हजार करोड़ हैं। ग्यारहवीं रानी रूपावंती जिसका लड़का सात धातु है। बारहवीं रानी पावन्ती जिस मूँ अठारह भार वनस्पति पैदा हुई है। तेरहवीं रानी रूपमाला है जिस मूँ चार वाणी चार खाणी होई है।

चार वाणी चार खाणी किस विध कहिजे है, उसका विचार सुनो। ब्रह्मा चार जुगु थापै है। सतजुग प्रमान सतरह लाख अठासी हजार वर्ष होता है जिसमें अवतार चार है। मच्छ, कच्छ, वाराह व नृसिंह। त्रेतायुग प्रमान बारह लाख छियानवें हजार वर्ष होता है जिसमें अवतार तीन है वामन, परसुराम, रामचन्द्र। आगै द्वापरजुग प्रमाण आठ लाख चौसठ हजार वर्ष होता है जिसमें अवतार दो हैं कृष्णावतार व बुद्धावतार। फिर कलजुग प्रमाण चार लाख बतीस हजार वर्ष होता है।[48] साधु, संताँ, फकीराँ पदवी बहुत होसी। ब्रह्मा चार वेद बनाए हैं। अथर्ववेद, सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद ये चार वेद हैं। सुनो राजा विजयसिंह चार वेद, अठारह[49] पुराण, नौ निधि[50], व्याकरण[51], किताब[52] तुरकाँ के जिससूँ हमारे अरूप का विचार न्यारा है। अब चार वाणी का विचार सुनो।

परा-वाणी सूँ प्रीति पड़ जावै सोई परा-वाणी कहिए। परा-वाणी नाभि उचरै, पश्यन्ति-वाणी सूँ परब्रह्म का विचार सरूप का राखै, सोई पश्यन्ति-वाणी कहीजे। पश्यंती-वाणी हिरदै स्थान बसै। मध्यमा-वाणी सूँ गुप्त ग्यान उपजै, सोई विवेकी मध्यमा-वाणी कहीजे, ओ कंठ-स्थान में बसै। बावन अखरे वाणी पोथी, वेद, कुरान, श्लोक, साखी, वचन रेहान (बैखरी) सूँ कह समझवै। सोई बावन अखरे वाणी कहीजे सो मुख स्थान बसै। चार वाणी को विचार संपूर्ण भयो।

अथ चार [53]खाणी को विचार कहत हूँ—जरा-खान गर्भ ठाम मूँ पैदा होवै। जरा-खान का इकीस लाख जीव है। अंड-खान अंडे मूँ पैरा होवै। अंड-खान का इकीस लाख जीव है। स्वेद-खान मूँ पर्वत, पहाड़, पाखान, तारा-मंडल आडोरन, पारस, दागीना लाल, याकूत, नमरूद नग, रतन काहोर और तरह-तरह का पारस दाणा, सोना, रूपौ, अनेक खानाँ, पाखान पैदा होया है जिसका इकीस लाख जीव है। उदमोद (उद्भिज) खान मूँ तो वनस्पति, सर्व वृछ, घास भाँति भाँति के, अर धान पैदा होया है। मक्खी, मच्छर, कीड़ा, कांग जिसका ईकीस लाख जीव है। सुनो राजा विजयसिंहजी चार वाणी चार खाणी का विचार ऐसा होया है। तब राजा विजयसिंहजी हाथ जोड़ कै कहा- ए रोहलसाहब गर्भ के विचार की हम कूँ खबर नाहीं, जिसका विचार दया कर कहो।

तब रोहलसाहब-वाच औराँ कूँ तो हमारे विचार की खबर नाहीं। हंस किस विधि आवै गर्भ माहीं। बालक के अस्थूल माहीं किस विधि आवै और बालक का अस्थूल किस विधि बनता है। लड़के का आकार किस विधि होवै। लड़की का आकार किस विधि होवै। हंस किस द्वार से समावै है अर बालक गर्भ कँवल माहीं सास किस प्रकार से लेता है। अर क्या खावै, क्या पीवै, किस विधि जीवै, अर बाहर गर्भ मूँ आयकर किस विधि मोटा[54] होवै। फिर गुरु के सबद किस विधि कमाण कमावै। अर किस विधि आपके धाम हंसा पहुँचता है। सुनो राजा विजयसिंहजी, इन साधाँ कूँ इस विचार की खबर नाहीं। तुम्हारे गुराँ सूँ पूछौ तो क्या कहते हैं? इस बात की तकरार[55] करो। तब राजा विजयसिंहजी उन साधाँ कूँ कहा- रोहलसाहब प्रश्न पूछा है जिसका जवाब करो। उन साधाँ कहा- हम कूँ मालुम नहीं है।

तब रोहलसाहब-वाच मानुष के त्रिगुणी माहीं एक मूरत है, मर्द माहीं मर्द का आकार है। नारी माहीं नारी का आकार है। जब स्त्री के अंग माहीं रितु आवती है तो पुरुष स्त्री ले भोग कमावै। उसी मूरत की सूँचाँ ऊपर सूँचाँ उतर आवता है। ओही बीज बूंद गर्भ कमल में समावती है। पहले जल समान होती है। पीछै लोही समान होती है। फिर उसका गूँटा[56] होता है। फिर अंडा होता है। अंडा मूँ फिर लोथ[57] होती है। लोथ माहीं फिर बनिया सरीर। जब सरीर बन रह्या तब हंसा मानसरोवर सूँ आयकर बालक की माता के सास में समावती है। बंकनाल लेकर नाड़ी मूँ ढलकर बालक की नाभि में समाइ रहिया। हंसा त्रिगुणी माहिं नाभि सूँ सास लेता है। नाभि-नाड़ी सूँ रस लेकर भूख प्यास मिट जाती है। फिर दसवें मास जब बालक बाहर आवता है, दो विकार लगते हैं, एक लोभ दूजा क्रोध। क्रोध सूँ रोदन करता है, लोभ सूँ आँचल अपनी माता का सरूप जानकर पीछा करता है, तब मोह लगता है। जब मोटा होवै, चौदह वर्ष का तब कामना जागै, अर अहंकार जागै, पीछे गृहचार माहीं फँस जावै अर दूसरी चेत न आवै। सुनो राजा विजयसिंहजी, हमारी खोज कूँ कोई समझै विचारै। इन संताँ सूँ सात पाताल की खोजना पूछो तो क्या कहते हैं।

तब राजा विजयसिंहजी उन संताँ कूँ कहा- रोहलसाहब, प्रश्न पूछा है जिसका जवाब करो। तब उन साधाँ ने कहा- हम कूँ मालूम नहीं।

तब रोहलसाहब-वाच सुनो राजा विजयसिंहजी तिल-तिलकर समझाऊँ। चार तिल बीस बाल है। बीस बाल माहीं सात पाताल के सात पुड़[57] है। पहली पाँखुड़ी के ऊपर चार पाँखुड़ी का कमल है। दूसरे पुड़ के ऊपर खट पाँखुड़ी का कमल है। तीसरे पुड़ के ऊपर अष्ट पाँखुड़ी का कमल है। चौथे पुड़ के ऊपर बारह पाँखुड़ी का कमल है। पाँचवे पुड़ के ऊपर अठारह पाँखुड़ी का कमल है। छठवे पुड़ के ऊपर दो-दो पाँखुड़ी का कमल है। सातवे पुड़ के ऊपर हजार पाँखुड़ी का कमल है। सुनो राजा विजयसिंहजी, इन संताँ सूँ पूछौ तो पिंड की खोजना कैसे है? इस बात की तकरार करो तो देखूँ। क्या कहते हैं?

तब राजा विजयसिंहजी इन साधाँ कूँ कहारोहलसाहब प्रश्न पूछता है, जिसका जवाब करो। तब उन साधाँ ने कहा- हम कूँ मालूम नहीं।

तब रोहलसाहब-वाच पहले मूल[58] के ऊपर चार पाँखुड़ी को कमल है। लिंग के ऊपर खट पाँखुड़ी को कमल है। नाभि के ऊपर अष्ट पाँखुड़ी को कमल है। हृदय के ऊपर बारह पाँखुड़ी को कमल है। कंठ के ऊपर अठारह पाँखुड़ी को कमल है। त्रिकूटी के ऊपर दो-दो पाँखुड़ी को कमल है। भँवर गुफा के ऊपर हजार पाँखुड़ी को कमल है। सुनो राजा विजयसिंहजी, इन संताँ सूँ पूछो तो उन कमल के ऊपर देवता कौन-कौन विराजमान है, तो कैसा जवाब देता है, अर क्या कहता है?

तब राजा विजयसिंह इन साधाँ कूँ कहा- रोहलसाहब प्रश्न पूछा है, जिसका जवाब करो। तब उन साधाँ कहा- हम कूँ मालूम नहीं।

तब रोहल साहब-वाच मूल के ऊपर गणेश विराजमान है। लिंग के ऊपर ब्रह्मा विराजमान है। नाभि के ऊपर विष्णु विराजमान है। हिरदै के ऊपर शिव विराजमान है। कंठ के ऊपर सरस्वती विराजमान है। त्रिकूटी के ऊपर निरंजन विराजमान है। भँवरगुफा के ऊपर परमहंस विराजमान है। दसवे द्वार पर पारहंस विराजमान है। बंकनाल[59] के गैले चले खोज अष्टकमल कूँ हंसा ब्रह्मांड पयाणा करै विधि इन संता सूँ पूछौ, राजा विजयसिंहजी तो क्या कहते हैं। इस बात की तकरार करौ। तब राजा विजयसिंहजी इन साधाँ कूँ कहा- रोहलसाहब प्रश्न पूछा है जिसका जवाब करो। तब उन संताँ कहा- हम कूँ मालूम नहीं।

तब रोहलसाहब-वाच सुनो राजा विजयसिंहजी, तिल-तिल[60] सूँ कर समझाऊँ। चार तिल बिस्वा माहीं। चार विस्वा एक ऊंगली माहीं। चार उंगली मुठ्ठी माहीं। आठ मुट्ठी एक हाथ माहीं। चार हाथ एक पैंडा माहीं। दो हजार पैंडा एक कोस माहीं। चार कोस एक योजन माहीं। चार सौ योजन एक देस माहीं। चार सौ देस एक मंडल माहीं। चार सौ मंडल एक खंड माहीं। ऐसे नौ[61] खंड हुए हैं जिसकूँ एक लोक कहीजे। ऐसे चौदह[62] लोक हैं। उसके आगे मेदिया कितनी है, सुनो। चार करोड़ जोजन सुन हेम वर्ण है। उधर चौकी देव विराजै उसके आगै ऊँचे बीज माहीं पुखलिया फिरता है। फिर उसके आगे सुन तीन करोड़ जोजन है। उसके ऊपर पवन का कोट है जिस माहीं परमलदेव विराजै जिसकी एडी सूँ पवन बांधा है। फिर उसके आगे सुन तीन करोड़ जोजन के ऊपर अखै वृच्छ है। असी हजार जोजन ऊँचा है। असी हजार जोजन चौड़ा है। फिर उसके आगे सुन तीन करोड़ जोजन के ऊपर है। इसके ऊपर अमिय कलश रिद्धि की चौकी है। दीनोदाण चढ्यो निर्वाण। फिर उसके आगे सुन तीन करोड़ जोजन के ऊपर है। उसके ऊपर सिद्ध की चौकी है। फिर उसके आगे सुन तीन करोड़ जोजन के ऊपर है। उसके ऊपर पारस का कोट है। अनादि की चौकी

है। फिर उसके आगे सुन पाँच करोड़ जोजन की है। उसके ऊपर पारस का कोट है। अनादि की चौकी है। फिर उसके आगे सुन पाँच करोड़ जोजन की है। उसके ऊपर हीरा पन्ना का कोट है। ऊपर अरुण की चौकी है। फिर उसके ऊपर सुन पाँच करोड़ जोजन है। इसी के ऊपर अखै मंडल चौमुख झरोखा सेत सेज है। उसके ऊपर मेरी नजर का वंस विराजमान है। उसका नाम अविगत है। ओही अविगत-धाम कहीजे। हमारा मुकाम इस सूँ आगे है। असंख्य सुनाँ के ऊपर है। ऊहाँ कोई नहीं पूगा। सुनो राजा विजयसिंहजी, ऐसी ही खोज है जो हम कह सुनाया है। अर हमारा धाम जो कोई चाहे तो ओही विचार एक और है। सार सबद है। सार सबद लेकर देही माहिं चक्र-चक्र की न्यारी विधि है।

चक्र-चक्र का न्यारा गुण है। अर न्यारी-न्यारी कमाण है। अर न्यारा-न्यारा विचार है। देही सारी खोजकर अपनी कला कूँ लखै। फिर सार सबद कूँ लेकर पीछै आकासाँ का पयाणा करे। फिर मानसरोवर का पयाणा करे। अविगत का पयाणा करे। अविगत के आगे, हमारे धाम का पयाणा करे, हमारा धाम असंख्य सुनाँ के ऊपर है। सुनो राजा विजयसिंहजी, ये साध भेष पहर के संताँ का नाम धराय के बैठे हैं। तोल[63] तो किसी बात का नाहीं। तोल होवै तो कहै क्यों नहीं। इन संताँ सूँ पूछो तो क्या कहते हैं।

तब राजा विजयसिंहजी इन साधाँ कूँ कहा- रोहलसाहब प्रश्न पूछा है, उसका जवाब करो। तब उहाँ साधाँ कहा- हमकूँ मालूम नहीं।

तब रोहलसाहब-वाच होवै कोई ऐसा हंस, हमारा तो अमरलोक पहुँचावाँ। बीच में अनेक दूत भूत हैं। सो लड़ाई करते हैं। किसी को जावण देता नहीं है। अनेक शिकारी बीच में शिकार करते हैं। लूटमार कर हंसाँ पाछा गिरा देते हैं। अनेक मारग पाड़न[64] वाला है। इकीस लोकाँ तक छोड़ै नाहीं। सारे ब्रह्मांड के चौफेर जम का घेरा है। कोई जावण पावै नहीं। उसके ऊपर निरंजन सार इन जमाँ के ऊपर जम है। उसके हाथ में एक जर-जर घंटा है। दूसरा जाल है। तीसरा तो हाथ में डंडा है। चौथे डुगडुगी[65] है। पाँचवा जंजाल है। रन्डोढा[66] जिसकूँ उछलाए फाँसी घात पकड़ ल्येत है। किसी कूँ छाड़ै नाहीं। जो कोई पूरे गुरु का चेला है, उस पर जोर लागै नाहीं। उसके आगे असंख्य संख्या है। असंग पलंग है। असथान उहाँ सूँ आगे है धाम हमारी जिसका किसी ने पार न पाया। मेरा कह्या जो कोई मानै तो पल में देव आन छुड़ावै। सुनो राजा! विजयसिंहजी चार वेद हिन्दुवाँ के अर चार किताब तुरकाँ की है जिसकी मरजाद में सारा संसार उलझ रह्या है। बारह पंथ हिन्दू के और बहत्तर पंथ तुरकाँ के हैं जिसमें खींचातान कर-कर मर गए। कोई परमधाम को पूगा नाहीं। अपने-अपने इष्ट माहीं बांध रह्या। अपने-अपने सबद रान्ढो[67] बनाए रहे हैं। सार सब्द की तो खबर नाहीं। जगत के टुकड़े खाइकै मस्त होइ गये हैं। कोई फकीर कहावै। कोई दरवेश कहावै।

कोई पीर कहावै। कोई साधु कहावै। कोई अतीत कहावै। कोई सामी कहावै। कोई संन्यासी कहावै। कोई जोगी कहावै। कोई नाथ कहावै। कोई मुनी कहावै। कोई धुंधारी कहावै। कोई वैरागी कहावै। कोई जती कहावै। कोई तपस्वी कहावै। कोई नंगा कहावै। कोई औघड़ कहावै। कोई मदारी, कोई देवी कूँ पूजै। कोई भैरव कूँ पूजै। कोई हनुमान कूँ पूजै। कोई खेत्रपाल कूँ पूजै। कोई बालमीत कूँ पूजै। कोई झुझार कूँ पूजै। कोई पितर कूँ पूजै। कोई भाउ सती कूँ पूजै। अंधी दुनिया अपने साहब कूँ छोड़ उलझन माहीं पड़ गई है। बाप कूँ छोड़ माउ के डीकरो हो गये हैं। उन लोकाँ कूँ लाज नहीं आती है। बेफिकरी हो रहे हैं। सुनो राजा विजयसिंहजी हमारा विचार कौन सुनै, कौन पिछानै। कौन अैसा सुजान होवै जो विधि-विधि कर हमसूँ पूछै, देही काया का विचार, कमाण का विचार, बेसताँ का विचार, उठंत का विचार, चालन्त का विचार, सोवंत का विचार, जागत का विचार, चन्द्रमा सूरज का विचार, अंगला पंगला का विचार, गंगा-जमुना का विचार, बंकनाल-सुषमना का विचार, नव सौ नाड़ी बहोतर कोठा का विचार, पाँच तत का विचार, पचीस प्रकृति का विचार, पाँच विकार के सुभाव का विचार, एक एक सोई कह समझाऊँ। सुनो राजा विजयसिंहजी हम तो बार-बार कहत हूँ, जो कोई जाने। तब राजा विजयसिंहजी हाथ जोड़कर कहा- ए रोहलसाहब! कृपा कर हम कूँ विचार पाँच तत का कहो।

तब रोहलसाहब-वाच सुनो राजा विजयसिंहजी! पाँच तत्त का विचार सर्व कहत हूँ जो तुम सुनो अर विचारौ। सरवन एक ठाँह करौ। तो हम कहत हूँ। पाँच तत्त का नाम क्या है। जल, अग्नि, पवन, पृथ्वी, आकास। ये पाँच तत्त हैं। जल तत्त मूँ लोहू अर मास बनिया है। पृथ्वी तत्त मूँ हाड़ बनिया है। अग्नि तत्त मूँ नाड़ी बनी है। पवन तत्त मूँ चाम बनिया है। आकास तत्त मूँ केस अर नैन माहीं स्याही काली टिबती बनी है। सुनो राजा विजयसिंहजी पाँच तत्त का विचार ये है।

तब राजा विजयसिंहजी हाथ जोड़ कै कहा, ए रोहलसाहब! दया करके फरमाओ, पाँच तत्त का वर्ण कैसा है?

तब रोहलसाहब-वाच सुनो राजा विजयसिंहजी जल का वर्ण सेत है। रूप करड़ह। अग्नि का वर्ण राता है, रूप दाहक। पवन का वर्ण लीला है, रूप दूर। पृथिवी का वर्ण पीला है, रूप कठोर। आकास का वर्ण काला है, रूप पुरलाव। नेत्राँ माहिं देखालियो जो पाँच तत्त की क्या रेखिया हैं। चोफेर, गोल, पाँच तत्त बीज है जिसमूँ मानखै का आकार बाछै अर जीव अजुण का आकार बाछत है। ज्यूँ बरसात के दिनाँ माहीं बंकनाल पाताल की खचैनी आकास में बादल बीज है। सुनो राजा विजयसिंहजी, पाँच तत्त का रूप वर्ण कहा है।

तब राजा विजयसिंहजी हाथ जोड़ कै कहा- ए रोहलसाहब! दया करके पच्चीस प्रकृति का विचार हम कूँ सुनाओ।

तब रोहलसाहब-वाच सुनो राजा विजयसिंहजी! पचीस प्रकृति का विचार कह सुनाऊँ। पृथिव तत्त की प्रकृति अस्थि, माँस, त्वचा, नाड़ी रोमावली कहीजे। जल की प्रकृति बिन्दु, मूत, पसेव, लाल, लीद[68] कहीजे। तेज की प्रकृति भूख, त्रिखा, निद्रा, आलस, क्रिया[69] कहीजे। आकास[70] की प्रकृति लजा, माया, मोह, राग, दुःख कहीजे। पवन-तत की प्रकृति गावणा, बिलखणा, सुणना, अगोचरी, अर धावणा कहीजे।[71] सुनो राजा, विजयसिंहजी, ये पचीस प्रकृति का विचार कह्या।

तब राजा विजयसिंहजी हाथ जोड़ कै कहा- ए रोहलसाहब! दया करके कहो, पाँच विकार के स्वभाव कैसे हैं।

तब रोहलसाहब-वाच सुनो राजा विजयसिंहजी पाँच विकार का सुभाउ कहता हूँ। तुम सर्व चित्त लगाइ कै सुनो। विचार हमारा मड़द[72] सचारा[72]। काम का यही सुभाउ है जो कामना जागी। पर नारी की आसा रहै। मन में क्रोध का यही सुभाउ है। जो जे कोई थोड़ा बोलै उस पर लड़ाई करै। अहंकार का यही सुभाउ है। जो बैठे बड़ाई करै, लोभ का यही सुभाउ है जो जाने तो माया धन बैठा एकठा कराँ और के घराँ का धन अपने घर माहिं घराँ लेकर निसदिन दे-दे करता रहे, मोह का यही सुभाउ है। जो कहै तो माता, पिता, भाई, सुत, नारी, कुटुम्ब परिवार सभ हमारा है। अर आसा, तृष्ण, ममता, चिंता ये तो सर्व मनख का कबीला है। जब इस कूँ कोई त्यागै तब चेतन होइ जागै। सुनो राजा विजयसिंहजी, सर्व विकार की बात आप कूँ कह सुनाई है।

तब राजा विजयसिंहजी हाथ जोड़ कर कहा- ए रोहलसाहब! शुद्ध लच्छण कैसे होते हैं, सो दया करके कहो।

तब रोहलसाहब-वाच सुनो राजा विजयसिंहजी, चेतन के जो संगी हैं, सो तुम कूँ कह सुनाता हूँ। एक-एक न्यारा-न्यारा है। सील, संतोष, प्रेम, विवेक, विचार, सुरति, निरति, दया, धरम, जप, तप, भाव, भगति ये सभ चेतन के परिवार हैं। जब कोई ऐसे संगी राखै, तब हमारे धाम प्राप्त होवै, निर्मल होइ कै भजन करै। सुनो राजा विजयसिंहजी! जो कोई हमारा कह्या मानै तो साँच कहत हूँ ये तो कलजुग का मानवी साँच[73] माथै रहै नाहीं। सदाई कूड़[74] कमावत है। झूठे कूँ साँच नाहीं सुहावती है। खारा लगते हैं।

तब राजा विजयसिंहजी हाथ जोड़ के कहाए रोहलसाहब! हे मेरे मालिक! हम कूँ जे कोई विचार होवै सो सभ कहो।

तब रोहलसाहब-वाच सुनो राजा विजयसिंहजी, इन लोगाँ कूँ नींद आती है। जब जागे हैं तो जानते नहीं हैं। नींद मरने की निशानी है। जागण जीवन की निसानी है। जब हमारे नाम सूँ बेमुख हो जावै तब महान जाल में अंधा हो जावै बुरे काम करै। तब उसकूँ मैं बहुत भूख देवाँ अर उसकूँ महान रोग देवाँ अर बहुत खराब होवै तोही अंधा कहीजे मेरी रोटी साहब के पास नाहीं, जो ही हम कूँ देवै तो बेराजी होवाँ। नकटा गाली बोलै, तब हम हँसकर राजी होवाँ, उस कूँ माया मुगती देवाँ। जब माया के पेट माहीं आए जावै, भूख भाग जावै, तब रस भोग स्वादाँ माहिं पड़ जावै, फेर हमारा नाम विसार कै बैठ जावै। ऐसा माया का मद है। इसलिए इस माया सूँ मैं अपने संताँ कूँ न्यारा ही राखिया है। उहाँ कूँ इतना देवूँ जितना हलावत[75] है। भीड़[76] पड़ै तो उसका कारज कराय देवाँ। संत फकीर साँचे निरपख हम कूँ प्यारे हैं। सुनो राजा विजयसिंहजी! हम तो सर्व विचार कहिया है। तब राजा विजयसिंहजी परिक्रमा देकर अर हाथ जोड़कर दंडवत् करके वंदना करी। अर रोहलसाहब के चरण-कमल पर सीस नमाया। अर कहा, ए महाराज! मेरे सीस पर हाथ[77] धरौ। हम तो आपके बन्दे अर चेले हैं। आप हमारे साहब हो। अर जे कोई साधु उमराव, सरदार और लोक लाखाँ होते हैं सभ पगाँ पड़ गए।

तब रोहलसाहब राजा विजयसिंह कूँ उपदेस दिया, सीस के ऊपर हाथ धरिया। सर्व बात का विचार जो कोई हुता, सभ सुना दिया। सार सबद का सुमरन बता दिया। देस काल बता दिया। अपना निज सरूप लखाय दिया। आप माहिं समा दिया। दूसरे साध जे कोई होते। कई फकीर होते। कई कबीर-पंथी होते। कई नाथ होते। कई सामी, सिद्ध, संन्यासी होते। कई तपसी होते, कई नागे होते। कई रूँखड़े होते, कई वैरागी होते। कई मदारी होते, कई दूधाधारी होते। कई ब्रह्मचारी होते, कई पंडित होते। कई ज्योतिषी होते, कई खाकी होते। कई ब्राह्मण होते और हजाराँ-हजाराँ लोक लाखों लोक होते और सरदार, उमराव होते, जे कोई सर्व लोक होता, रोहलसाहब सूँ उपदेस लिया। सब रोहलसाहब की दरगाह के चेले हो गए। भजन माहिं लग रहिए। रोहलसाहब सर्वलोक का तोल बताइ दिया। सार सबद का सुमरण कराइ दिया। निरपख नाम सुनाइ दिया। बुद्धि सतसंग लाग रही। आठ पहर निवपल अर विलास होइ रहिया। आनन्द उच्छव होइ रहिया। अचरंग[78] होइ रहिया। एक पासे[79] ग्यान चर्चा होई रही, एक पासे कथा कीर्तन होइ रहिया, एक पासे तन्दूरा सितारा बाज रहे हैं। एक पासे कथा-कीर्तन होइ रहिया। एक पासे ढाढी गाइ रहे, यूँ सतसंग करते-करते एक मास सात दिन गुजर गए। गुलाब-सागर के ऊपर, महलात के माहीं रोहलसाहब सभी के रह्या था। राजा विजयसिंहजी राखा था। अर चाकरी करता था। सरव राय सेवा करते थे। रोहलसाहब के अर्ज मुख भेला होता। रोहलसाहब के भेला पीछै राजा विजयसिंहजी चढ़ावा किया। कड़ा, कंठी जड़ाऊ अर नाला बंध पागाँ का दुपटा, नररीदार

धोतियाँ, किनारदार चकोरा तलवार, कांघी, बागा, पोसाकाँ चमर चूनर घोड़ा सजाया केअड़ो ऊँट को, केअड़ो हाथी अम्बारी रथ, दागा, छकड़ा, म्याना, पालकी, नगारा, झंडा, गायाँ हजार, सवा लाख रुपया थेलियाँ में, दस हीरा का नग, बीस लाल, दस पन्ना, दो हजार मोहराँ, तम्बू कनात, ये सब वस्तुवाँ राजा विजयसिंहजी रोहलसाहब कूँ नजराणा किया, चढ़ावा किया, पर रोहलसाहब वस्तु को लिया नहीं। कह्या हम क्या करूँ। हम कूँ परवाह इन वस्तुवाँ की नाहीं। क्या लेवाँ। राजा विजयसिंहजी इन बात का हर्ष सोक कोई नाहीं। तब राजा विजयसिंहजी बेराजी होवणा लागा। तब रोहलसाहब पाँच हजार रुपया धरम कराइ दिया। ब्राह्मणाँ के लार गरीब लोकाँ कूँ राजा के धरम वास्ते राजा सारी वस्तुवाँ पाछा राज दे दिया। आप रोहलसाहब एक वस्तु भी नहीं ली। पीछै रोहलसाहब सिंध की तरफ तैयार करी। तब राजा विजयसिंहजी असवारी कर बालोतरा लगै भेड़ा[80] आया। पीछै सीख[81] लेकर पाछा गढद्य दाखिल हुवा। पीछे रोहलसाहब उमरकोट के पासै बहीर[82] हुआ।
॥ इति वार्ता रोहलसाहब की संपूर्ण होई सैर जोधपुर का करके पाछे पधार्‌या ॥

॥ इति अगम-वार्ता रोहलसाहब की संपूर्ण समाप्त ॥

टिप्पणियाँ

प्रारंभ में 18 छंद हैं। उनका अर्थ उनके साथ दे दिया है। शेष गद्य है। गद्य में जहाँ-जहाँ टिप्पणी की आवश्यकता है, वहाँ-वहाँ लिखी हैं।

1. सेली : नाथपंथी साधुओं द्वारा ऊन से निर्मित काला धागा जिसको वे गले में धारण करते हैं। 2. सींगी : शृंगी, सीटी। पोले सींग से निर्मित शृंगी अथवा सीटी को उक्त काले ऊनी धागे में पो कर रखते हैं जो नाद करने में काम आती है। 3. सतसटी : इसका अर्थ हमको स्पष्ट नहीं। हो सकता है, सतसटी, अधारी का समानार्थक शब्द हो। अधारी लकड़ी की बनी वह आश्रय होती है जो अंग्रेजी के 'टी' के आकार की होती है जिसका सहारा योगी ध्यान के समय लेता है जिससे रीढ़ की हड्डी सीधी रहती है। 4. पूनम : रोहलसाहब ने अपना जन्मदिन पूर्णिमा तिथि व वार सोम बताया है। इसमें मास व वर्ष का कोई उल्लेख नहीं है। हमने रोहलसाहब का जन्मवर्ष सन् 1726 ईस्वी सिद्ध किया है। 5. नव तत : स्थूल, सूक्ष्म व कारण तीन प्रकार की देह मानी गई है। सूक्ष्म देह को कई संतों ने नवतत्त्वात्मक मानी है। यही भोग-देह तथा लिंग-देह मानी गई है। सांख्यादि-दर्शनशास्त्र सूक्ष्म-देह को सत्रह तत्त्वात्मक मानते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण, मन और बुद्धि ये सत्रह तत्त्व हैं। संतों के मत में लिंग-देह के नौ तत्त्व हैं—श्रोत्र, त्वक, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार। 6. दासकबीर : रोहलसाहब कहते हैं- कबीरसाहब भी काल द्वारा पकड़-कर ले जाये गये। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि कबीरसाहब महान् मुक्तात्मा नहीं थे। वस्तुतः शरीर नाशवान है और कबीरसाहब की भी देह विनाश को प्राप्त हुई। 7.

आदमखोर : आदमी को या उसके मांस को खाने वाला; नर-भक्षी। 8. सामी : स्वामी। दशनामी संन्यासी से तात्पर्य है। वैसे 'सामी' शब्द निहंग साधु-संतों, संन्यासियों, सभी को कहा जाता है। कभी-कभी खल्वाट माथे वाले साधु-संतों को भी सामी कहते हैं। 9. रहति : 'रहति' शब्द का प्रयोग सिख-धर्म सहित सभी निर्गुणी संत-सम्प्रदायों के साहित्य में अत्यधिक मात्रा में किया गया मिलता है। रोहलसाहब ने इस शब्द का प्रयोग उसी अर्थ में किया है जिसमें सिख-धर्म-गुरुओं सहित अनेक निर्गुण-संतों ने किया है। स्वामी रामचरणजी की अनुभववाणी में भी रहति शब्द का प्रयोग मिलता है। मूलतः 'रहति' 'आचरण' का समानार्थक है किन्तु मैंने सर्वत्र इसको सदाचरण का समानार्थक माना है। संतों का उपदेश सदाचरण अपनाने के लिये होता है। किसी भी तरह के कोई से भी आचरण को आचरित करने का परामर्श संत नहीं देते हैं। अतः मैं रहति को सदाचरण का ही समानार्थक मानता हूँ। 10. फकीर, पीर पैगंबर : त्यागी महात्मा, निर्धन या कंगाल व्यक्ति, भीख मांगकर निर्वाह करने वाला व्यक्ति फकीर कहलाता है। मुसलमानों के धर्मगुरु को पीर कहा जाता है। इस्माल-धर्म, ईसाई-धर्म, मूसाई-धर्म आदि में पैगंबर उसको कहा जाता है जो ईश्वर का संदेश सुनाता है। प्रायः यह नये धर्म का प्रवर्तक भी होता है। अंग्रेजी में पैगंबर को 'प्राफेट' कहते हैं। 11. कुद : खुद, स्वयं। 12. परवान : परवाना, पतंगा। 13. चीस=चीत्कार। 14. नाह=तीर के सिरे पर लगा जाल या फंदा। 15. सरवान : यहाँ नुकीला लोहा, प्रायः झंडा, तंबू आदि को भी सरवान कहा जाता है। 16. कूड़ : झूठ। 17. अवतार : रोहलसाहब अवतार धारण करके आये, यह कहने से रोहलसाहब के वैचारिक रूप से हिन्दू होने में कोई शंका नहीं। 18. एकठाँह : एक स्थान पर। यहाँ किसी निश्चित मुकाम तक भक्ति को पहुँचाने से मतलब है। इस निर्णय से यह भी सिद्ध होता है कि रोहलसाहब योगाभ्यासी होने पर भी भक्तिमार्गी थे। 19. हलाई=चलाई। 20. इकठाँह=निर्विवाद, निष्पक्ष, सभी को समान रूप से स्वीकार्य। 21. और कहते हैं। 22. जीवात्मा। 23. किस प्रकार। 24. चमकार तजला=चमकदार प्रकाश। 25. चिणगाँ=चिनगारियाँ। 26. सफीलाँ=कोटि, श्रेणी (शब्दकोशानुसार दीवार, भींत, ताक आदि)। 27. कुदरत=शक्ति। 28. नह नह='एकोऽहं बहुस्याम', 'मैं एक हूँ, बहुत हो जाऊँ', इस्लाम-धर्मानुसार 'कुन', 'कुन' शब्द के द्वारा अल्लाह सृष्ट्यारंभ करता है। 29. सालम=? 30. अलील=अनील, जल का रंग नीला माना गया है। यहाँ 'नील' में 'अ' का आगम निरर्थक है। 31. पोली=खोखली। 32. बड़्या=घुसे, प्रविष्ट हुए। 33. धक=अग्नि-जन्य धुवाँ प्रकटी। 34. पुराणानुसार समस्त पृथ्वी 49 कोटि योजन है। बोलने में कभी-कभी पचास कोटि योजन भी बोल देते हैं। 35. पुराणानुसार पूर्व के इन्द्र, अग्निकोण के अग्नि, दक्षिण के यम, नैर्ऋत के निर्ऋति, पश्चिम के वरुण, वायुकोण के मारुत, उत्तर के कुबेर, ईशानकोण के ईश, उर्ध्वदिशा के ब्रह्मा, अधोदिशा के अनंत। 36. चिणगाँ=चिनगारी, हिस्से, अंश। 37. अक्षय बट। 38. पटक-कर। 39. बेचून=बेचैन, अशांत। 40. पुराणों में

ब्रह्मा के प्रजापति अनेक पुत्रों का उल्लेख मिलता है। इनका काम सृष्ट्योत्पत्ति करना था। भागवत् के अनुसार मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु और नारद दस प्रजापति हैं। कहीं-कहीं इनकी संख्या 21 भी मिलती है ब्रह्मा, सूर्य, मनु, दक्ष, भृगु, धर्मराज, यमराज, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ, परमेष्ठी, विवस्वान, सोम, कर्दम, क्रोध, अर्वाक् और क्रीत। 41. पीवरदत या पीवदत का सही नाम ऊपर की सूची के अनुसार पुलह होना चाहिए। उत्तानपाद, पुलह के पुत्र न होकर स्वायंभुवमनु के पुत्र तथा ध्रुव के पिता थे। विष्णुपुराण के अनुसार प्रियव्रत इनका छोटा भाई था। 42. 'गोरथ दांगल दवा' का तात्पर्य पता नहीं है। यह किस संस्कृत शब्द का अपभ्रंश है, मैं समझ नहीं सका। 43. बशीअरसर्वा=विश्रवा, जो रावणादि के पिता थे। 44. मरीचि के कश्यप-ऋषि पुत्र थे किन्तु कश्यप के पुत्र कुंभकर्ण पुराणों में पढ़ने में नहीं आये। 45. तेरह पत्नियाँ कश्यप की थीं, न कि कुंभकर्ण की। या तो मूल सिंधी-अरबी के लिपिकार से या सिंधी-अरबी से नागरी में लिप्यंतरित करते समय कुछ भूल हुई है जिसके कारण कश्यप के पुत्र कुंभकर्ण को बताकर उसकी तेरह रानियाँ बताई गई हैं जबकि तेरह रानियाँ स्वयं कश्यप की हैं। इन्हीं से दैत्य व देवताओं की उत्पत्ति हुई है। मार्कण्डेयपुराण तथा हरिवंशपुराण के अनुसार इनकी तेरह पत्नियों के नाम हैं- दिति, अदिति, दनु, विनता, खसा, कद्रू, मुनि, क्रोधा, अरिष्टा, इरा, ताम्रा, इला और प्रधा। भागवत्, वायुपुराण, मत्स्यपुराण आदि के अनुसार अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्ठा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सरमा, तिमि नाम हैं। दिति से दैत्य, अदिति से देवता, विनता से पक्षी, कद्रू से सर्प, सुरभि से गौ, सरमा से कुक्करादि, दनु से दानव पैदा हुए। (ब्रह्मवैवर्तपुराण) 46. नाग कद्रू की सन्तानें हैं। ये कमर से ऊपर मनुष्याकार व नीचे सर्पाकार कहे गये हैं। अनंत, वासुकि, कंबल, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख, कुलिक और अपराजित नामक नवकुली नागों के प्रधान हैं। अन्य मतानुसार अनंत, तक्षक, महापद्म, शंख, कुलिक, कंबल, अश्वतर, धृतराष्ट्र और बलाहक। 47. पर्वत की पुराणों के अनुसार उत्पत्ति वाराहावतार के समय की बताई है। ये कश्यप की संतानें हैं, ऐसा लेख मुझको नहीं मिला। 48. कलियुग में कल्कि भगवान् का अवतार होना माना जाता है। कई पंथों में मान्यता है कि उनके पंथ-प्रवर्तक ही कल्कि के अवतार हैं। जैसे विष्णोईपंथ, जसनाथी-पंथ, मावजी का पंथ आदि। 49. विष्णु, पद्म, ब्रह्म, शिव, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कंद, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़, ब्रह्मांड, भविष्य। 50. पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील व खर्व। 51. ऐन्द्र, चान्द्र, कातंत्र, सारस्वत, हैम, पाणिनी, शाकटायन, सरस्वती-कंठाभरण, जैनेन्द्र, 52. कुरान। 53. अंडज, स्वेदज, उद्भिज व जरायुज। जलजन्तु 9 नौ लाख, स्थावर 20 बीस लाख, कृमि 11 ग्यारह लाख, पक्षी दस लाख, पशु तीस लाख व मनुष्य 4 चार लाख। 54. मोटा=बड़ा। 55. तकरार=बहस, सम्वाद। 56. गूँटा=गूदा, गाढ़ा, लोथ=निर्जीव शरीर। 57. खण्ड 58.

मूल=मूलाधारचक्र। 59. बंकनाल=सुषुम्नामार्ग। 60. तिल-तिल सूँ=अत्यन्त बारीकी से एक-एक तथ्य को स्पष्ट करते हुए। 61. भारतवर्ष, किंपुरुषवर्ष, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, हिरण्मयवर्ष, उत्तरकुरु, इलावृत्त, भद्राश्व और केतुमाल ॥ जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप, पुष्करद्वीप (ब्रह्म॰ 3.72.71)। 62. सात लोक ऊपर, सात नीचे। अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल, नीचे के लोक। भू, भुव, स्व, मह, जन, तप, सत्य लोक ऊपर के। 63. बोध, ज्ञान। 64. पाड़न वाला = दुखी, पतित करने वाले। 65. डुगडुगी=डमरु। 66. रंडोढा=मोटा रस्सा, जो फंदा लगाने में काम आता है। 67. रांढो=घेरा-बंदी, फंदे। 68. जल की पाँच प्रकृतियाँ हैं–शुक्र (विन्दु, वीर्य), शोणित (रुधिर), जिसको रोहलसाहब ने लीद कहा है, (लार जिसको यहाँ लाल कहा गया है), मूत्र (मूत), स्वेद (पसेव)। 69. क्रिया सही न होकर कांति है। 70. आकाश की प्रकृतियाँ हैं काम, क्रोध, शोक, मोह, और भय। 71. वायु की पाँच प्रकृतियाँ हैं, चलन, बलन (बल करना), धावन, प्रसरण, आकुंचन। 72. मड़द सचारा=सच्चा मर्द। 73. साँच माथै=सच के ऊपर। 74. कूड़=झूठ। 75. आवश्यक है। 76. भीड़=विपत्ति। 77. सीस पर हाथ धरो=आशीर्वाद दो। 78. अचरंग=आश्चर्य (?)। 79. पासे=ओर। 80. भेड़ा=जोधपुर से बालोतरा (जिला बाड़मेर, राजस्थान) तक साथ आये। 81. सीख=विदा लेकर। 82. बहीर=प्रस्थान किया।

महाराजा विजयसिंह सम्वत् 1809 में जोधपुर की गद्दी पर बैठे और सम्वत् 1850 तक जीवित रहे। ये अपनी उपपत्नी गुलाब के कारण वल्लभ-सम्प्रदायानुगत परम वैष्णव राजा था। इन्होंने व इनके पिता बख्तसिंह ने मस्जिदों से बांग देना तक बन्द करा दिया। गौ-वध सर्वथा बंद करवा दिया। कसाइयों का व्यवसाय बदलवा-कर उनको अन्य कार्यों में लगा दिया। पोकरण सहित दो और बागी सामंतों के साथ आत्माराम निरंजनी साधु को इन महाराजा ने मरवा दिया। वार्ता के अनुसार महाराजा विजयसिंह व उनके अनेक सामंत रोहलसाहब के अनुगत हुए किंतु यह बात ऐतिहासिक दस्तावेजों से प्रमाणित नहीं होती। यह तो पूरी तरह संभव है कि विजयसिंहजी ने रोहलसाहब का एक महिने सात दिन तक गुलाब-सागर-महल में सत्संग किया हो किन्तु वे रोहलसाहब की दरगाह के अनुगत हो गये, ऐसा उल्लेख ऐतिहासिक ग्रंथों में मुझको अभी तक नहीं मिल सका है। गुलाब को महाराजा ने सम्वत् 1822 में महलों में चढ़ाया। यह गुलाब गोकुलिया गोस्वामियों की कंठीबद्ध सेविका थी और इसीके कारण यह महाराजा वल्लभकुली परम वैष्णव हो गया। इसी महाराजा ने उक्त गोस्वामियों को चौपासनी गाँव भेंट-कर वहाँ बसाया था। महाराजा, सामंत, सरदार, सेठ, साहूकार अनेक संतों का सत्संग करते थे। कभी-कभी संतों को दंडित भी करते थे। इसी महाराजा द्वारा नागौर के प्रसिद्ध रामनामी श्रीहरकारामजी (दरियावसाहब मारवाड़ वालों के शिष्य) व उनके चारों भाइयों को देश निकाला दिया गया जो मेवाड़ के मांडल में जाकर रहे। इसी महाराजा द्वारा खेड़ापा के श्रीरामदासजी महाराज को जिनके पंथ के संतों को इस

अगमवार्ता में 'रामापंथी' कहा है; देश निकाला दिया गया जो लौटकर जोधपुर राज्य में 1849 वि॰सं॰ में वापिस आये। संवत् 1849 में महाराज विजयसिंह को इसी के पौत्र ने इसको भी गढ से बेदखल कर दिया था किन्तु बाद में यह गढ़ में दाखिल हो गया। इसका उत्तराधिकारी महाराजा भीमसिंह हुआ जो 1860 वि॰सं॰ तक गद्दी पर रहा।

अथ सबद

हम हूँ साहब सकल कूँ पालूँ। मैं अविनासी उपावणहारौ ॥थल॥
गिरवर पर पहलाज गड़कायो। हाथ देइ मैं आप बचायो ॥
अगनी माहीं बाग बनायो। तोड़ नाखून से हरनाकुस मार्‌यो ॥1॥
हरिचँद नू वैराग मैं दीनौ। तख्त छडाय कै वैरागी कीनौ ॥
तारा कूँ पकड़ हाथ मैं लीयो। एहड़ौ साँच उबार्‌यो ॥2॥
कौरवन पांडवन का खेल रचायो। द्रोपदि कूँ मैं चीर पहरायो ॥
कर उदमाद मैं बिच में लड़ायो। महा हिमालय युधिष्ठिर तार्‌यो ॥3॥
कलजुग में बलि का सत व्याप्यो। मेरे सत पर अपना तन आप्यो ॥
सत के कारण मैं यह जग थाप्यो। ले कै विमान उहिं स्वर्ग पधार्‌यो ॥4॥
नामदेव की मैं छान छवाई। कर्माबाई की खिचड़ी मैं खाई ॥
नाई होकै मैं कोढ मिटायो। सैन भगत को मैं काज सवार्‌यो ॥5॥
धने भगत का मैं होवा हाली। बांध खेदारा में कीनी नाली ॥
प्रेमि भीलनी सों प्रीत मैं पाल्यो। बेर लिया हाथ सहस पसार्‌यो ॥6॥
साध कबीरा मैं हूवा कासी। मिल पंडिताँ सूँ कीनी हाँसी ॥
एक पल में कबीर भया उदास्यो। देवल में मैं बाळद उतार्‌यो ॥7॥
विष मीराँ को हम है पीयो। असँख संताँ को कारज है कीयो ॥
जिंह जिंह मेरौ सरनौ लीयो। उनकूँ कदे मैं नाहिं विसार्‌यो ॥8॥
सकल सूँ न्यारा सकल के माहीं। भर्‌या भरपूर में जाहीं काहीं ॥
कहत रोहल मैं रोहल भी नाहीं। सोही हौं साहिब जिहिं खेल रचाहीं ॥9॥1॥

मैं साहब हूँ। सभी का पालन करता हूँ। मैं अविनाशी हूँ। सभी को उत्पन्न करने वाला हूँ ॥थल॥ पर्वत से प्रह्लाद को गुड़काया। मैंने हाथ लगा-कर स्वयं उसको बचाया। जब प्रह्लाद को अग्नि में जलाया गया, तब वहाँ मैंने बाग बनाकर शीतलता प्रदान की और

नाखूनों से विदीर्ण करके हिरण्यकशपु को मारा ॥1॥ हरिश्चन्द्र का तख्त छुड़ाकर उसको वैराग्य देकर मैंने ही उसको वैरागी बनाया। बिना कर दिये, पुत्र को जलाने को हुई उद्यत तारामती को मैंने रोका, हाथ में पहले कर लिया, इस प्रकार मैंने सत्य को प्रकट किया ॥2॥ कौरवों व पांडवों के बीच जुवाँ खेलने का खेल रचा और पाण्डवों द्वारा द्रौपदी के हार जाने पर मैंने उसको साड़ी पहनायी। दोनों के मध्य उन्माद फैलाकर दोनों को लड़वाया और अंत में युधिष्ठिर को हिमालय पर भेजकर उसका उद्धार किया ॥3॥ कलियुग में बलिराजा का सत विस्तारित किया। उसने मेरे सत्य पर अपने शरीर को भी मुझको अर्पित कर दिया। सत्य के कारण ही मैंने उसको जगत् में स्थापित किया और उसको लेकर मैं स्वर्ग में आ गया ॥4॥ नामदेव की मैंने छान छवाई। कर्माबाई की मैंने खिचड़ी खाई। नाई बनकर मैंने राजा का कुष्ठ-रोग मिटाया। इसी प्रकार मैंने सेन भक्त का कार्य सिद्ध किया ॥5॥ धन्ना भक्त का मैं हाली (हल चलाने) वाला बना। खेदारा=क्यारी बनाई और उसमें नाली बनाकर पानी चलाया। प्रेमी भक्ता शबरी से मैंने प्रीति की। सहर्ष हाथ पसार-कर उसके बेर खाए ॥6॥ काशी में मैं भक्त-साधु कबीर के रूप में प्रकट हुआ और पंडितों से मिलकर मैंने कबीर की हँसी उडाई। एक ही पल में हँसी उड जाने के कारण कबीर उदास होकर जंगल में जा बैठा। तब मैंने उसके देवल (मकान) में जाकर बालद उतारी जिससे ब्राह्मणों का भोजन सम्पन्न हुआ। कबीर की महिमा बढ़ी ॥7॥ मीरांबाई को दिया गया, विष मैंने ही पान किया। असंख्य संतों के कार्यों को मैंने किया, सँवारा। जिन-जिन ने भी मेरा शरणाश्रय लिया, मैंने उन-उनको कभी भी विस्मृत नहीं किया ॥8॥ मैं सबसे अलग हूँ, तो सभी में व्याप्त भी हूँ। मैं जहाँ-तहाँ अर्थात् सचराचर में भरपूर हूँ। रोहल कहते हैं, मैं रोहल भी नहीं हूँ। मैं वही साहब हूँ जिसने ब्रह्मांड रूपी यह सारा खेल रचा है ॥9॥1॥

भाइ रे तज दे कुसंग, साँचौ संग ले गुराँ को, वंदा झूठ जगत सब जान ॥थल॥
इस जगत में जनम ले आयो, करके निवास बहुत सुख पायो।
सुख माहीं ए तुम कलंक लगायो, अहिड़े सुख में है हान ॥1॥
बालातन तैं रम रम हार्‌यो, पूर्व जनम को बोल विसार्‌यो।
अगलौ कह्यो तैं अग्नि महिं होम्यो, पाछे नाहीं रखी पछान ॥2॥
मात पिता तैं प्रीति लगाई, कुटुँब कबीलौ भावहि भाई।
सँग नहिं चालै लड़का लुगाई, अंधा प्राणी अजाण ॥3॥
मेरे मंदिर महल झरोखा, नाम बिना फीका सब लूखा।
तृष्णा न भागी फिरै उ भूखा, सोइ है स्वान समान ॥4॥
काल पकड़ जब तेरी साँस ताणै, तेलि तेल पीड़ै ज्यूँ घाणी।
दौरो होसी पल में प्राणी, ले पूरौ पूरौ गुरु सनमान ॥5॥
सहज सुभाइ साहिबजी का सूरा, ओ नर कहिए सदा ही संत पूरा।

आयो है दाव बण्यो है जहूरा, जान सकै तो जान ॥6॥
साँचे गुरु सूँ कोइ हेत लगावै, आवागँवन में कबहु न आवै।
कहत रोहल उ अमरलोक जावै, अलख पुरुष की आन ॥7॥2॥

हे भाई! कुसंग का त्याग कर। गुरुदेव का सच्चा संग स्वीकार कर। हे वंदे! सारे जगत् को झूठा जान ॥थल॥ इस जगत में जन्म लेकर आया। इसमें निवास करके तूने खूब सुख प्राप्त किया किन्तु इस सुख में तूने कलंक लगा दिया क्योंकि इस सांसारिक-सुख को सुख मानने में हानि है ॥1॥ बाल्यावस्था तूने खेदकूद में व्यतीत कर दी। पूर्वजन्म का कौल-करार तू भूल गया। अंगलौ=पूर्व में तूने जो कहा था, उसको अग्नि में होम दिया और पाछै=आगे के लिए कोई पहचान शेष नहीं रखी ॥2॥ हे अंधे अज्ञानी प्राणी! तूने माता, पिता, कुटुम्ब कबीला, भाई, भाभी, लड़का, पत्नी से मोह बांध लिया, ये एक भी साथ जाने वाले नहीं ॥3॥ कहता है, मंदिर, महल, झरोखे मेरे हैं किन्तु बिना भगवन्नाम के ये सभी आनंद-हीन व रस-हीन हैं। तू भूखा ही घूमता-फिरता है, तेरी तृष्णा संतुष्ट नहीं हुई। ऐसा तू श्वान के समान है ॥4॥ काल जब पकड़कर तेरा प्राण निकालेगा तब वही स्थिति होगी, जैसे तेली द्वारा तिलों को पेरने पर तिलों की होती है। पल भर में तू दुःखी हो जायेग। अतः पूरे गुरु का पूरा सम्मान कर ॥5॥ जो स्वाभाविकतः सहज व साहिब के शूरवीर हैं, वे ही मनुष्य सदैव पूर्ण संत कहलाते हैं। अवसर प्रत्यक्षतः बनकर सामने आ गया है। इसके महत्व को जान सकता है तो जान ले ॥6॥ जो सच्चे गुरु से प्रेम करता है, वह आवागमन में कभी भी नहीं आता। रोहल कहता है, मैं अलख पुरुष की सौगंध खाकर कहता हूँ कि ऐसा प्रेमी अमरलोक को प्राप्त करता है ॥7॥2॥

अगम पंथ की गुरु महिमा भारी, कबहु न उतरै प्रेम खुमारी ॥थल॥
ग्यानी न ध्यानी जोग न साधना, समझ्या की मति जीत न हारी।
साखी न सब्द न ओऽहं सोऽहं, वेद कतेब सकल सूँ न्यारी ॥1॥
हिन्दु न तुरक जोगी न संन्यासी, रहत अडोल नहीं भेषधारी।
अंतरजामी अंतर खोल्या, ममता मन की सहजे मारी ॥2॥
उनमुन पुरुष मिल्यो घट माहीं, वाँकी प्रीति लगी अति प्यारी।
सूरा होवै सन्मुख जूझै, भीत भरम की गेर बिडारी ॥3॥
जहाँ कुछ नाहीं तहाँ कुछ पाया, सतगुरु साहिब मैं बलिहारी।
रोहल रैन गई दिन पाया, अरस परस सँग मिल्यो मुरारी ॥4॥3॥

गुरु द्वारा उपदिष्ट अगम-पंथ की महिमा बडी भारी है। उस अगम-पंथ के प्रेम का नशा कभी भी उतरता नहीं है॥ थल॥ वहाँ न ज्ञानी है, न ध्यानी है, न योग-साधना है। समझदारों की बुद्धि वहाँ न हारती और न जीतती है। वहाँ साखी व पद नहीं है, सोऽहं,

ओऽहं वहाँ नहीं है। उस प्रेम-नशे व अगम-पंथ की महिमा वेद व कुरान सभी की सीमा के परे है ॥1॥ वहाँ न कोई हिन्दू-तुर्क है, न योगी-संन्यासी है। वहाँ परब्रह्म-परमात्मा अविचल रहता है, वह वेशधारी न होकर अशरीरी है। वह अन्तर्यामी व अन्तर को प्रकाशित करने वाला है। मन की ममता को सहज में ही मारता है ॥2॥ वह उन्मन (निःमन) पुरुष शरीर में ही मिल गया। उसके प्रति प्रीति अत्यंत प्यारी लगती है। जो शूरवीर होता है, वह सन्मुख होकर भ्रम रूपी भींत (परदे) से लड़ता है और उसको नष्ट कर डालता है ॥3॥ जहाँ कुछ नहीं, वहीं कुछ प्राप्त कर लिया। मैं सद्गुरु-साहब पर न्यौछावर होता हूँ। रोहल कहते हैं- भ्रम रूपी रात्रि व्यतीत हो गई, ज्ञान रूपी दिन उदय हो गया और मैं श्रीमुरारी से अर्श-स्पर्श=एकाकार हो गया ॥4॥3॥

बिलावल

मेरा मन मोह लिया जादूगर ने ॥थल॥
ना जाणाँ कहा चेटक लाया, नींद पड़ी नू आइ जगाया।
नजर असाँवल धरने, मन मोह लिया जादूगर ने ॥1॥
विरह बाण अंदर सूँ छूटै, ममता मटकी सिर पर फूटै।
मैं गइ होती जल भरने, मन मोह लिया जादूगर ने ॥2॥
ग्यान गली में दरसन दीया, पाइ दौरी अपना करि लीया।
चित्त लगा जा चरने, मन मोह लिया जादूगर ने ॥3॥
एहि दान मांगै ए जन तेरा, रोहल कूँ कर राखौ चेरा।
आ पड़ा तेरे सरने, मन मोह लिया जादूगर ने ॥4॥4॥

जादूगर ने मेरा मन मोहित कर लिया ॥थल॥ पता नहीं, उसने कौन-सा जादू किया है। मुझ नींद में सोती हुई को आकर जगा लिया। अपनी असाँवल=प्रेम-मयी दृष्टि स्थापित करने के लिए उस जादूगर ने मेरा मन मोहित कर लिया है ॥1॥ विरह रूपी बाण जो अंदर से ही संधान होता है, अन्तर्हृदय रूपी मस्तक पर रखी ममता की मटकी को फोड़ डालता है। मैं जल भरने को गई थी, वहाँ ही जादूगर ने मेरा मन मोहित कर लिया ॥2॥ ज्ञान रूपी गली में जादूगर ने दर्शन दिये। दर्शन पाकर मैं दौड़ी और उसको अपना बना लिया। मेरा मन उसके चरणों में जा लगा। जादूगर ने मेरा मन मोहित कर लिया ॥3॥ रोहल तेरा भक्त यही दान मांगता है कि आप मुझको अपने चरणों का सेवक बना लो। मैं तेरे शरण में आन पड़ा हूँ। जादूगर ने मेरा मन मोहित कर लिया है ॥4॥4॥

कान्हरौ

जेड्यूँ मुंहिंजो जीअड़ो रीझ रह्यो है,

पिया के वदन पर अचानक दृष्टि परी ॥थल॥
किहिं से कहुँ इन सुख की बतियाँ, आसा सगल सरी।
ब्रह्म अग्नि की जब धूणि धुकाई, मन की ममत जरी ॥1॥
रोहल रात गई दिन पाया, लागी प्रीति खरी।
पिया के वदन पर अचानक दृष्टि परी ॥2॥5॥

जेड्यूँ=सखी। मुंहिंजो=मेरा। जीअड़ौ=मन। खरी=सच्ची। वदन=मुख। रीझना=मुग्ध होना।

सखी! मेरा मन प्रियतम के मुख पर, जिस पर मेरी दृष्टि अचानक पड़ी आसक्त हो गया है ॥थल॥ इस सुख की बातें किससे कहूँ अथवा किस प्रकार कहूँ? मेरी समस्त मनोऽभिलाषाएँ सिद्ध हो गयी हैं। जब ब्रह्माग्नि की धूनी को धधकाया, तब उस मन में बसी ममता जल-भुन कर खाक हो गयी ॥1॥ रोहल कहते हैं- अज्ञान रात्रि व्यतीत हो गयी, ज्ञान-दिवस का उदय हो गया और फिर प्रियतम से सच्ची प्रीति लग गयी। हे सखी! प्रियतम के मुख पर अचानक दृष्टि पड़ी ॥2॥5॥

मोहन सूँ प्रीति लगी है मोरी ॥थल॥
ना जाणाँ कहा चेटक लाया, आप कनूचा आप मिलाया।
पाया प्रेम की डोरी, मोहन सूँ प्रीति लगी है मोरी ॥1॥
सुरति निरति की धुनी लगाई, बिन जिभ्या के बात बताई।
खींस लिया दिल जोरी, मोहन सूँ प्रीति लगी है मोरी ॥2॥
अनहद वाणी अखँड धुनि लागी, भया चित चेतन कुबध्या भागी।
त्रोड़ लागी तोरी, मोहन सूँ प्रीति लगी है मोरी ॥3॥
पाँच सखी मिल मंगल गाया, रोहल रात गई दिन पाया।
मिलिया स्याम किसोरी, मोहन सूँ प्रीति लगी है मोरी ॥4॥6॥

मेरी मोहन के प्रति प्रीति लग गयी है ॥थल॥ नहीं जानती, उसने कौनसा जादू किया है, स्वयं कनुचा (कन्हैया) ही आकर मेरे से मिला है। उसने मेरे ऊपर प्रेम की डोरी डाली है। मेरी मोहन से प्रीति लग गयी है ॥1॥ मैंने सुरति व निरति की ध्वनि लगाकर बिना जिह्वा के ही आत्मसाक्षात्कार की बातें बतायीं। जबरदस्ती करके मोहन ने मेरा मन आकर्षित कर लिया है। मेरी मोहन से प्रीति लग गयी है ॥2॥ अनहद वाणी की अखंड ध्वनि शुरू हो गयी। कुबुद्धि नष्ट हो जाने से चित्त चेतन हो गया। हे मोहन! तेरी लगन लग गयी है। मेरी मोहन के प्रति प्रीति लग गयी है ॥3॥ रोहल कहते हैं- पाँच सखियों (पंच ज्ञानेन्द्रियों) ने मिलकर मंगल गान किया। अब अज्ञान-रात्रि व्यतीत हो गयी तथा ज्ञान-दिन का उदय हो गया। मोहन व किशोरीजी मिल गये। मेरी मोहन से प्रीति लग गयी है ॥4॥6॥

कनूचा=कन्हैया। संभव है, इसका अर्थ 'चा' = उठाकर, कनू=स्वयं हो, किन्तु पदांश में 'आप' शब्द की तीन बार आवृत्ति होने व अर्थ की संगति न बैठने से हमने कनूचा=कृष्ण का वाचक माना है। पाया=डाला (पंजाबी प्रयोग)। सुरति=चित की वृत्ति। निरति=नेत्रों के द्वार से बाह्य विषयों को विषय करने वाली वृत्ति। चेतन=आत्माराम होना। त्रोड़=लगन, गाढ़ी तृष्णा, राग।

वसंत धमाल

मेरे हिरदै फूल्यो विरह बाग। मिल स्याम सुंदरी खेलै फाग ॥थाल॥
सुभर सुराही राम रस पाया। पीवत प्रेम विसर गई काया।
अंमर प्याला पीया छाणा। कबहु न लागै जम को बाण ॥1॥
तत्त ताल धुन अनहद बाजा। पाँच सखी मिलि नाचन लागा।
उलट सुलट जब मिलिया एक। भूलि गयो सभ भरम र भेख ॥2॥
छुटी अमीरस की पिचकारी। भीज रही पिय के सँग प्यारी।
बरसत बूंद अबीर गुलाल। अंदर बाहर देख्या लाल ॥3॥
बडा पसारा एकै मूल। चौरासी लख लागा फूल।
मन भँवरा तहाँ करै गुँजार। चीन्ह लिया निज तत्त हि सार ॥4॥
ग्यान दीप घट भयो प्रकास। रैन अंधेरौ सकल सो नास।
करि कृपा ऐसो दीनो संग। रोहल अह निस रातौ रंग ॥5॥7॥

मेरे हृदय में विरह रूपी बाग फल-फूल गया है। सुंदरी (आत्मा) श्याम (परब्रह्म-परमात्मा) से मिलकर होली खेलती है ॥थल॥ राम-रस से आकंठ भरी सुराही प्राप्त की है। उसको प्रेमपूर्वक पीकर मैं देह की स्मृति तक भूल गयी। मैंने अमरता रूपी प्याले को छानकर पी लिया है। अब कभी भी यमराज के कष्ट नहीं भुगतने पड़ेंगे ॥1॥ तत्त्व रूपी ताल की ध्वनि और अनहदनाद का बाजा बजता है। पाँच ज्ञानेन्द्रिय रूपी सखियाँ मिलकर नाचने लगीं। आत्मा परमात्मा उलट-पलटकरमिलकर एक हो गये। अब द्वैतजन्य सारे भ्रमात्मक वेश (भिन्नत्व) को भूल गये ॥2॥ अमृत रस से भरी पिचकारी छूट रही है जिससे प्रियतम के साथ प्रियतमा भीग रही है। वर्षा बरस रही है। अबीर, गुलाल उड़ रही है। प्रियतम को बाहर-भीतर सर्वत्र देखा ॥3॥ ब्रह्मांड रूपी वृक्ष का फैलाव बडा है किन्तु इसमें अनुस्यूत मूल=जड़ तत्त्व एक है जिसके चौरासी लाख योनी रूपी फूल लगे हैं। मन रूपी भ्रमर वहाँ गुंजार करता है जिसने सार स्वरूप निज तत्त्व को पहचान लिया है ॥4॥ हृदय में ज्ञान रूपी दीपक का प्रकाश हो गया है और अज्ञान रूपी रात्रि का समूलतः नाश हो गया है। कृपा करके प्रियतम ने मुझको ऐसा संग प्रदान किया है जिससे रोहल रात्रि-दिवस प्रियतम के रंग में निमग्न है ॥5॥7॥

सूभर=आर-पार, हर ओर से भरा हुआ। यहाँ सुराही का आकंठ भरा हुआ होना, हर ओर से भरा होना है। भ्रम भेख=भ्रम रूप शरीर अर्थात् जीव अलग, परमात्मा अलग, द्वैत।

चलो पिया कूँ देवौ मुबारक, आनन्द दिनन की बधाई।
एह अवसर फिर हाथ न आवै, आज वसंत रित आई ॥थल॥
केता भेष किया वनवासी, स्याम सुंदरी संग।
देखत भूल गया संसारा, को हरिजन राता रंग ॥1॥
फूल चमेलि फुले फुलवारी, अर भँवरा करत गुँजार।
है कोइ प्रेमि प्रेम रस रसिया, चीन्ह लहै ततसार ॥2॥
खस चित चंदन इत्र आत्म का, केसर करनी संग।
भरि पिचकारि प्रेम की मारी, भीज रह्यो सब अंग ॥3॥
पाँच सखी मिल होरी खेलै, उड़त अबीर गुलाल।
सुरत निरत दोइ नाचन लागी, बाजै अनहद ताल ॥4॥
ग्यान गली में अखँड धुनि लागी, खेलै स्याम किसोर।
रोहल रिल मिल दरसन दीया, जैसे चाँद चकोर ॥5॥8॥

चलो, प्रियतम को शुभकामना दो। आनन्द के दिनों की बधाई दो। आज वसंत ऋतु आयी है। यह अवसर पुनः मिलने वाला नहीं, (हस्तगत नहीं होगा)॥ थल॥ वनवासी श्यामसुंदर ने राधिका सुंदरी के साथ वसंत मनाने को कितने ही वेश बनाये। उन नाना वेशों को देखकर साधक-भक्त संसार को भूल गया। कोई-कोई हरि-भक्त इस आनन्द में निमग्न है ॥1॥ चमेली के फूलों की फुलवारी फूल रही है। जहाँ भ्रमर गुंजार करता है। प्रेम-रस का रसिक कोई प्रेमी है जिसने सार-तत्त्व को पहचान लिया है ॥2॥ चित्त रूपी चंदन, खस का इत्र रूपी आत्मा (मन), केशर रूपी करणी इन तीनों से निर्मित रंग को प्रेम रूपी पिचकारी में भरकर उंडेला जिससे सारा शरीर भीग गया अर्थात् नख से शिखा तक प्रिया रूपी आत्मा प्रियतम रूपी परमात्मा से सराबोर हो गयी ॥3॥ पाँच सखियाँ मिल-कर होली खेलती हैं। अबीर और गुलाल उड़ती है। सुरति और निरति दोनों नाचने लगीं। अनहदनाद का ताल बजता है ॥4॥ ज्ञान रूपी गली में अखंड-ध्वनि होने लगी, जहाँ श्याम-किशोर खेलते हैं। रोहल कहते हैं- रिलमिल=एकाकार होकर दर्शन दिये, उसी प्रकार जिस प्रकार चन्द्रमा और चकोर में अनन्य-भाव सम्बन्ध होता है ॥5॥8॥

फकीराँ नूँ साहिब लगदा है प्यारा ॥थल॥
घट हि में गंगा घट हि में जमना, घट हि में ठाकुरद्वारा।
घट हि में ब्रह्मा घटि में विष्णू, घट हि में शिव का पसारा ॥1॥

घट हि में चन्द्र घट हि में सूरज, घट हि में नौ लख तारा।
कैहत रोहल सुनौ भइ साधौ, ढूंढ लधा घर सारा ॥2॥9॥

फकीरों को साहब प्यारा लगता है ॥थल॥ शरीर में ही गंगा, शरीर में ही यमुना व शरीर में ही ठाकुरद्वारा है। घट में ही ब्रह्मा तो घट में ही विष्णु है। घट में ही शिव का प्रसार–निवास है ॥1॥ शरीर में ही चन्द्रमा, शरीर में ही सूर्य, और शरीर में ही नौ लाख तारे हैं। रोहल कहता है- हे साधु भाई! सुनो, सारे घर=शरीर को ढूंढकर मैंने इसमें ही परमात्मा को लधा=पा लिया है ॥2॥9॥

ऐसा कोइ हंसा काया गढ जीतै, देस हमारे आवै ॥थल॥
कर्मजाल के माहिं अलूधा, किमि कर फंद कटावै।
पूरे गुरु के चरण कमल पर, अपना सीस नमावै ॥1॥
सत सब्द सत नाम का बेड़ा ले, प्रेम की फौज चढावै।
सुरति निरति का झंडा रोपै, डेरा सो अगम डोरावै ॥2॥
अर्ध उर्ध महिं करत लड़ाई, बावन जोध हटावै।
पाँच पचीस का डेरा लूटै, आगे मँजिल उठावै ॥3॥
मन कूँ मार सभ देखत लोपै, अनिल का खेल समावै।
धाम अदीठ का बाँध मकाना, निरगुण का गुण गावै ॥4॥
हद घर छोड बेहद घर चलिया, फिर पाछा नहिं आवै।
चौथे पद सूँ पद्द अगोचर, पूरा होवै तो पावै ॥5॥
रोहल नाम अनाम अनामी, निज निहनाम कहावै।
अचरज अपरम कह्यो न जावै, गैबी गैब समावै ॥6॥10॥

कर्मों के जाल में फँसा, कैसे भी करके, फंदे को काटकर कोई जीवात्मा, काया रूपी गढ़ को जीतकर हंस बनकर हमारे देश में आता है और पूर्ण गुरु के चरण-कमलों पर अपना मस्तक नमाता है ॥टेक1॥ वह सत्य रूपी उपदेश व सत्य रूपी ही भगवन्नाम का जलपोत बनाकर प्रेम रूपी फौज को उसमें बैठाता है। सुरति व निरति के झंडे को उस जलपोत पर लगता है और अगम-स्थान रूपी डेरे की ओर उसको चलाता है ॥2॥ अर्ध व उर्ध (प्राण व अपान दोनों को मिलाना) दोनों ओर लड़ाई करके बावन योद्धाओं को रणक्षेत्र से हटाता है। पाँच तत्त्व व पचीस प्रकृतियों के डेरे को लूट लेता है और आगे की मंजिल को पाने को उठ खड़ा होता है ॥3॥ सभी के देखते-देखते मन को मार देता है। अनिल=वायु=प्राणों के खेल (प्राण व अपान को एक करने के खेल) में समाता है। अदृष्टधाम का मकान बनाकर निर्गुण परमात्मा का गुणगान करता है ॥4॥ ससीम घर=देह, संसार को छोड़कर

निस्सीम=परमात्मा, सहस्रार के मार्ग पर चल पड़ता है जहाँ से लौटकर वापिस नहीं आता। चौथा पद जो अगोचर (दृष्टि में न आने योग्य) पद है को वही प्राप्त करता है जो पूर्ण होता है ॥5॥ रोहल नाम अनामी का अनाम नाम है जो कि निज निहनाम=परम अनाम कहलाता है। वह आश्चर्य-मय, अपरम्पार है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वस्तुतः गुप्त आत्मा, गुप्त परमात्मा में मिल जाता है ॥6॥10॥

वसंत होरी

लाल गुलाल उडाए, होली खेलै निरंजन ॥थल॥
हाँ रे सखि मेरे काया के मंदिर, अहनिसि मंगल गावै।
हार सिंगार फूलों का सेहरा, आतम राम चढावै ॥1॥
काम किरोध मिटै जब ममता, हर चरनै चित लाए।
ग्यान गुलाल दहौं दिसि बरसै, विरहा बादल लाए ॥2॥
अन्तरजामी सूँ खेलौ होरी, रोहल रंग लगाए ॥3॥11॥

निरंजन (माया-रहित) लाल (श्रीकृष्ण) गुलाल उडाकर होली खेलता है ॥थल॥ हाँ, ए सखी! मेरी काया के भीतर होली खेलता है और रात्रि-दिवस मंगल-गान होता है। आत्मा रूपी रामजी के ऊपर शृंगार हेतु हार व फूलों को सेहरा चढ़ाता है ॥1॥ जब श्रीहरि के चरणों में चित्त को संलग्न किया जाता है तब काम, क्रोध व ममता नष्ट हो जाते हैं। ज्ञान रूपी गुलाल दसों दिशाओं में उड़ती है और विरह के बादल छा जाते हैं ॥2॥ रोहल कहते हैं- रंग लगाकर अन्तर्यामी से होली खेलो ॥3॥11॥

होरी फाग में खेलूँ मैं, अपने पिया संग प्यारी।
आउ री सखी आज सहज सिंगारे, एक एक न्यारी न्यारी ॥थाल॥
अबीर गुलाल की पोट उड़त है, प्रेम भरी पिचकारी।
जल केसर का उठत फुहारा, होइ रही गजकारी ॥1॥
अँगियो भीनौ मेरौ सालूणौ भीनौ, नख सिख रोम रोम सारी।
छुटत फटाका बाजा बाजै, एक धुनि लागी भारी ॥2॥
अमीरस मद पी छाक रही हूँ, नैना चढी है खुमारी।
रोहल सभ घट वसंत बहार्‌यो, चौकूटाँ चौधारी ॥3॥12॥

अपने प्रियतम के साथ मैं प्रियतमा फाल्गुन मास में होली खेलती हूँ। हे सखियों! सहज का शृंगार कर एक-एक करके न्यारी-न्यारी आज आओ ॥थल॥ अबीर व गुलाल की पोटलियाँ उड़ रही हैं, प्रेम रूपी जल से भरी पिचकारियाँ छूट रही हैं। केशर के जल की फुहारें उड़ रही हैं जिससे गजगीरी (कीचड़) हो रहा है ॥1॥ मेरी अंगिया (कंचुकी, चोली) व लाल

रंग की साड़ी भीग गई है। मैं नख से शिखा तक रोम-रोम, सारी की सारी भीग गई हूँ। फटाके छूटते हैं, बाजे बजते हैं और इनकी जोरदार ध्वनि लगातार लग गई है ॥2॥ अमृत-रस रूपी मद पीकर मैं उसमें मदहोश हो गई हूँ जिससे मेरे नेत्रों में नशा चढ़ गया है। रोहल कहते हैं, सारे शरीर में वसंत (आनन्द) छा (बहार्यो) गया और चारों ओर तेज धार युक्त वसंतमयावस्था व्याप्त हो गई है ॥3॥12॥

कल्याण होरी

हरि संग खेलूँ मैं होरी होरी, आज वसंत की रितु आई ॥थल॥
तेल फुलेल लगाइ सखी री, फिर अंग लाज की चोरी चोरी।
सुर्ख हिया की चौंरी सजाई, आज वसंत की रितु आई ॥1॥
अगर चँदन परमल कस्तूरी, घिस घिस भरिए कटोरी कटोरी।
तिलक मांग सिंदूर चढाई, आज वसंत की रितु आई ॥2॥
भाव दया का बूखन भरिया, नाक नथ मोतिन जोरी जोरी।
ग्यान अंजन की रेख लगाई, आज वसंत की रितु आई ॥3॥
प्रेम केसर जल भर पिचकारी, खेलै स्याम किसोर किसोरी।
विरह गुलाल लगी पोट उडाई, आज वसंत की रितु आई ॥4॥
रोहल रिल मिल स्याम सुंदरी, हरष हेत कियो री कियो री।
रसना रतिवँत फाग रचाई, आज वसंत की रितु आई ॥5॥13॥

आज वसंत-ऋतु का आगमन हो गया है, मैं श्रीहरि के साथ होली ही होली खेलती हूँ ॥थल॥ हे सखी! तेल फुलेल लगा रखा है। अंग लाज की=अंग की लज्जा से लज्जित हुई चोरी-चोरी इधर-उधर फिरती हूँ। मैंने सुर्ख हृदय की चँवरी सजाई है। आज वसंत ऋतु का आगमन हुआ है ॥1॥ अगर, चँदन, सुगंधित कस्तूरी को घिस-घिस कर कटोरियों की कटोरियों भर रखी हैं। माथे पर तिलक व मांग में सिन्दूर लगा रखा है। आज वसंत ऋतु आई है ॥2॥ दया-भाव या भाव व दया के आभूषण पहन रखे हैं। नाक में मोतियों से जड़ित नथ पहन रखी है। ज्ञानांजन की रेख लगा रखी है। आज वसंत की ऋतु आई है ॥3॥ पिचकारी में प्रेम रूपी केशर का जल भर रखा है और श्यामकिशोर व किशोरीजी खेलते हैं। विरह रूपी गुलाल पोटलियों की पोटलियों भरकर उड़ रही हैं। आज वसंत की ऋतु आई है ॥4॥ रोहल कहते हैं- हर्ष व प्रेम सहित श्याम व सुंदरी राधिका ने हिल-मिलकर होली का खेल खेला। रसना (जिह्वा) ने रतिवंत (सुंदर) फाग की रचना की। आज वसंत की ऋतु आई है ॥5॥13॥

जाणै नहिं को मरम हमारा।
हम हूँ सरब सरब के माहीं, अंत सकल सूँ न्यारा ॥थल॥
आदि भी हम हूँ अंत भी हम हूँ, मधि मेरा विसतारा।
मेरी वज्री देह अनूपी, निरंतर प्रगट किया आकारा ॥1॥
असंख जुगाँ हउँ गुपता रहिया, आप हि आप निरधारा।
पीछै हम सत सब्द किया परगट, जासूँ भया रणकारा ॥2॥
अनगढ अकल निकलँक निनामी, ज्यूँ एक वृच्छ दस डारा।
इस डार डार माहीं दस धारा, जो छिटकै जिसका पसर्‌या पसारा ॥3॥
गत के कारण अवगत धाम थापियो, अखै मंडल चौबारा।
उहाँ इक मेरा वंस रहत है, कहिए अपरम अपारा ॥4॥
आरँभ महिं इक तेज उपाया, किया वहि पवन का विस्तारा।
इछा मूँ पाँच तत्त किया पैदा, अंडाखान अपारा ॥5॥
एक अंडा फूट पड़्या जल माहीं, बीज हुआ सहस कली पर करतारा।
उसके नाभि मूँ ब्रह्मा पैदा हुवा, ब्रह्मा वेद उचारा ॥6॥
ब्रह्मंड रच्या च्यार जुग थाप्या, भया सिव सक्ति का विस्तारा।
उतपति ले बारह पंथ हलाया, ये सभ उरला व्यवहारा ॥7॥
बिछुड़्या हंस कोइ मूल कूँ पहुचै, ओही मेरा संत सचारा।
असंख भवन वाकूँ देउँ पतसाही, कहै रोहल निरधारा ॥8॥14॥

कोई भी मेरा मर्म नहीं जानता। मैं सर्व सचराचर में परिव्याप्त हूँ, सचराचर मेरे में हैं किन्तु अंततः मैं सबसे न्यारा हूँ ॥थल॥ आदि में मैं हूँ, अंत में मैं हूँ तथा मध्य में भी मेरा ही सारा विस्तार है। मेरी देह वज्र व अनुपम है जिसके माध्यम से मैंने निरंतर आकार प्रकट किया है ॥1॥ असंख्य युगों तक मैं निराधार 'आप में आप' स्थिति के रूप में गुप्त रहा। तत्पश्चात् मैंने सत्य शब्द प्रकट किया जिससे रणकार (ररंकार) की ध्वनि प्रकटी ॥2॥ यह अनगढ़, अकल, निष्कलंक व अनामी है; वैसे ही, जैसे एक वृक्ष में दस डालें होती हैं। (शरीर वृक्ष व दस द्वार ही दस डालें हैं)। इन एक-एक डाल में दस-दस धाराएँ हैं। जो छिटक जाती हैं, उन्हीं का सारा फैलाव फैलता है ॥3॥ ज्ञातव्य (गत) के कारण ही अविगत धाम स्थापित किया जहाँ चार द्वार का अक्षय मंडल है। वह मेरा एक वंश (आत्मा) रहता है जो अपरम-अपार कहा जाता है ॥4॥ सर्वारंभ में एक तेज की उत्पत्ति की, उसीने पवन का विस्तार किया। इच्छा में पाँच तत्त्वों की पैदाइश की जो अपार अंडों के खान (व्यष्टि समूह) है ॥5॥ एक अंडा फूट-कर जल में गिरा जो सहस्रदल कमल पर सृजनकर्त्ता बीज रूप हुआ उस कमल की नाभि से ब्रह्मा पैदा हुआ और ब्रह्मा ने वेद का उच्चारण किया ॥6॥ ब्रह्मा

ने ब्रह्मांड की रचना की, चार युग बनाये और शिव-शक्ति का विस्तार हुआ। उत्पत्ति करके बारहपंथ बनाये। ये सभी माया के व्यवहार हैं ॥7॥ बिछुड़े हुए हंस कोई-कोई ही मूल (अपने अंशी ब्रह्म) से मिलते हैं। जो ब्रह्म से मिलते हैं, वे ही मेरे सच्चे संत हैं। रोहल सच कहता हूँ कि मैं उनको असंख्य भवनों की बादशाहत दे देता हूँ ॥8॥14॥

कहौ तुम ईसरदास वैरागी।
लगन तुमारी किस विधि लागी, क्या देख तुम भयो है त्यागी।
बात बताओ अगम सूँ आगी, तो मैं मानूँ साँची ॥थल॥
सत साहब तुम कहौ किसी को, कैसा साहब तेरा।
नाम र ठाम जिसी का नाहीं, कहाँ उसी का डेरा ॥1॥
सुंन महामुन असुन न हुंती, रूप अरूप न धारा।
निहचिंत अचिंत कूँ चिंता न हुंती, क्योंकर पसर्‌या पसारा ॥2॥
गत अवगत ररँकार न हुंते, सरवर ना को हंसा।
अखै मँडल ना को महल झरोका, सेत सेज वाँ क्यों पंसा ॥3॥
तेज पवन आकास न हुंती, धरती ना को पानी।
पाँच तत मूल माया न हुंती, रचना किमी रचानी ॥4॥
चांद सुरज की उतपति कैसी, और नव लख तारा।
चौदह लोक इकीस ब्रह्मंड, कौन बनावनहारा ॥5॥
कौन देस सूँ अंडा फूटा, बीरज कहाँ ठहराया।
ब्रह्मा बीज पयाल सूँ लाया, पयाल में कहाँ सूँ आया ॥6॥
ग्रभ के माहीं पिंड रचाना, घट महिं घाट घड़ाना।
उस घट माहीं को अवघट आखा, कई घाट का प्राना ॥7॥
जल थल ब्रह्मा विष्णु न हुंता, ना को महेस गणेसा।
दस दिगपाल कुरंम न कासब, कहाँ धवल कहाँ सेसा ॥8॥
अगम सूँ आगै खोज बताओ, तो तेरा गुरु साँचा।
खोज बिना जोइ भेष जो पहरै, सो नटवारा नाचा ॥9॥
सूफी साफ सकल सूँ न्यारा, साहब है सरमस्ता।
कहत रोहल कोइ संत विरागी, रहत हमारा रस्ता ॥10॥15॥

हे ईश्वरदास वैरागी! बताओ कि तुम्हारी लगन किस प्रकार लगी और किसको देखकर त्यागी बने हो। यदि तुम अगम से भी आगे की बात बता सकेगो तब ही मैं सच मानूंगा ॥थल॥ तुम किसको सत्य-साहिब कहते हो और वह साहिब कैसा है? जिसका नाम व स्थान नहीं है तथा उसका रहने का ठिकाना कहाँ है? ॥1॥ शून्य, महाशून्य, अशून्य कुछ

भी नहीं थीं, अरूप परमात्मा ने रूप धारण नहीं किया था। निश्चिंत, अचिन्त्य को कोई चिन्ता नहीं थी, फिर यह पसारा-ब्रह्मांड कैसे हुआ?॥2॥ गत (ज्ञात), अविगत, ररंकार भी नहीं थे, न सरोवर था, न कोई हंस था। अक्षय मंडल, महल, झरोखा कुछ नहीं थे, फिर यह श्वेत शैया का पसारा कैसे हुआ?॥3॥ तेज, पवन, आकाश नहीं थे, भूमि व पानी भी नहीं थे। पाँच तत्त्व, मूल माया नहीं थे, तब रचना को किस प्रकार, कैसे रची?॥4॥ चन्द्रमा, सूर्य की उत्पत्ति कैसे हुई और नौ लाख तारों की भी। चौदह लोक व इकीस ब्रह्मांडों को बनाने वाला कौन है?॥5॥ कौन से देश से अंडा फूटा और उसमें का वीर्य कहाँ ठहरा। ब्रह्मा बीज पाताल से लाया किन्तु वह बीज पाताल में कहाँ से आया ॥6॥ गर्भ में पिंड की रचना होती है, शरीर में ही शरीर की रचना होती है। उस शरीर में किसको अवघट (बिना बना हुआ) कहा गया है जो अनेक घाटों का प्राण है ॥7॥ जल, स्थल, ब्रह्मा, विष्णु नहीं थे, न कोई महेश व गणेश थे। दस दिग्पाल, कूर्म व कच्छप नहीं थे। धवल=श्वेत व शेष कहाँ थे?॥8॥ यदि तू अगम से आगे की खोज का बता देगा तो मैं तेरे गुरु को सच्चा मानूंगा। खोज के बिना जो केवल वेश पहनते हैं वे केवल नट की भाँति नाचते हैं ॥9॥ सूफी साफ होता है। सभी से न्यारा होता है। साहिब के सरमस्त=उन्मत्त, (साहिब की मस्ती में मदमस्त) है। रोहल कहते हैं- कोई संत, वैरागी ही हमारे रास्ते पर चलता है ॥10॥15॥

साधौ मिथ्या मँडप मंडाना।
झूठे इष्ट बांध बैठा सभ कोई, देखत माहिं भुलाना ॥थल॥
ब्रह्मा विष्णु महेस गणेसा, मंडप माहिं बंधाना।
आपा बांधा अब किम छूटे, यह तो चार जुग माहिं अटकाना ॥1॥
कोइ कहै अलील पुरुष है साहब, जल महिं जल्ल मिलाना।
पाणी होवै साहिब तो सूक क्यों जावै, यह तो कूड़ कमाना ॥2॥
केई कहैं सिव सक्ति है साहब, जोड़ी मूँ जरखाणा।
कर कर भोग अहि भोगी मर गए, परलय माहिं समाणा ॥3॥
केई कहतु सेस है साहब, जिस पर भार उठाणा।
कूरम सेस कुंजर भी मर गए, काल की फाँस फिराणा ॥4॥
केई कहतु मंन है साहब, पवंन प्राण कहाणा।
नव तताँ सूँ है साहब न्यारा, ए तो दूसर माँह उलझाणा ॥5॥
केइ कहैं चांद सुरज है साहब, उर्द्ध नाम उलटाणा।
चांद सुरज तारा पतंग जोति का, अकल कला में खिलाणा ॥6॥
आदि भी नाहीं अंत भी नाहीं, मधि ठहरण मुरखाणा।
इकीसी ब्रह्मंड चकर काल का, जम के जर में फँसाणा ॥7॥

अरभ खरभ कोइ करोड़नि सूँ सूरा, अमरलोक पहुँचाणा।
और सर्व चौरासी का वासी, मिट्या नहिं आणा जाणा ॥8॥
ऊँच होवै नीच कोइ आज्ञा पर हालै, क्या राजा क्या राणा।
कहत रोहल कोइ कह्या मेरा मानै, तो बताऊँ असल ठिकाना ॥9॥16॥

साधुओ! मंडप=सृष्टि का मंडान (की रचना) मिथ्या है। सभी कोई झूठे इष्ट से बँधकर बैठे हैं और जो दीखता है, उसमें ही भूल रहे हैं ॥थल॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश सभी इसमें बंधे पड़े हैं। आपा=अहंकार में बंधे हुए हैं, अब कैसे छूट सकते हैं? ये तो चार युगों से ही अटके पड़े हैं ॥1॥ कोई कहते हैं- साहिब अलील=सागर स्वरूप है और जल में जल की भाँति उसमें मिलना संभव है। यदि साहिब जल रूप है तो वह सूक क्यों जाता है? वस्तुतः यह तो झूठी बात है ॥2॥ कोई कहते हैं- साहिब शिव व शक्ति स्वरूप हैं। इनकी जोड़ी में सोने की खान है। भोग भोग-भोगकर ये भोगी मर गये और प्रलय में समाहित हो गये ॥3॥ कोई कहते हैं- शेष ही साहिब है, जिसने सारे ब्रह्मांड का भार उठा रखा है। कूर्म, शेष, कच्छप भी मर गये, सभी काल की फाँसी में फँसते हैं ॥4॥ कोई मन को ही साहिब कहते हैं, कोई पवन प्राण को कहते हैं। साहिब नव तत्त्वों से न्यारा है। (किसी-किसी के मत में, लिंग-देह सांख्यशात्र-सम्मत सत्रह तत्त्वात्मक न होकर, नव तत्त्वात्मक है, यथाश्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार।) ये तो द्वैत में उलझे पड़े है ॥5॥ कोई कहते हैं कि चन्द्रमा व सूर्य साहिब हैं। ये तो ऊपर लटक रहे हैं। चन्द्रमा, सूर्य, तारा तो ज्योति-स्वरूप साहिब के पतंगे समान हैं और अकल साहिब की कला के वशवर्ती होकर खेलते=प्रकाशित होते हैं ॥6॥ आदि में भी नहीं, अंत में भी नहीं, मध्य में ठहरे हुए मानना भी मूर्खता है। इक्कीस ब्रह्मांड काल के चक्र में हैं जो यमराज के जाल में फँसते है ॥7॥ करोड़ों अरब, खर्ब में कोई एक शूरवीर होता है जो अमरलोक में पहुँचता है। अन्यथा और सभी चौरासी में ही पड़े रहने वाले हैं जिनका आना-जाना नहीं मिटता ॥8॥ चाहे कोई उच्च कुल वाला हो, चाहे कोई नीच कुल वाला हो, चाहे कोई राजा-राणा हो, यदि वह मेरी आज्ञानुसार चले, मेरे कहे अनुसार अचारण करे तो मैं उसको असली ठिकाना बता देता हूँ ॥9॥16॥

रेखता

लागी लगन सजन की, किसनूँ कह्यो न जाइ।
छोडाँ तो छूटै नाहीं, लुँव लुँव में रह्यो समाइ ॥थाल॥
बेचून नमूना कहत है, जिसके हथे न पाँइ।
देखन में नहिं आवता, सो विरहै दिया बताइ ॥1॥
तिसके विरहा बिछू का, जिसकूँ जो डंक लगा।

तुझ बिन कोइ न जानै, उस दरद की दवा ॥2॥
एही रेखता रोहल का, कोइ सुनै दिल्ल लगाइ।
जिस तन लगी सो जानहै, ईसक बुरी बलाइ ॥3॥17॥

मेरे मन में प्रियतम की लगन लग गई है, यह बात किसी से भी कहने में नहीं आती। छोड़ना चाहूँ तब भी छूटती नहीं। मेरी रोम-रोम में वह समाया हुआ है ॥थल॥ वह प्रियतम बेचून=बेमिसाल=अद्वितीय नमूना है जिसके हाथ, पाँव नहीं हैं। वह देखने में नहीं आता, किन्तु विरह ने उसका साक्षात्कार करा दिया ॥1॥ उसकी विरह रूपी बिच्छू का डंक जिसके लगा है, उसके दर्द की दवा तेरे अलावा कोई नहीं जानता ॥2॥ रोहल के इस रेखते को काई मन लगाकर सुने। जिसके शरीर में इश्क रूपी डंक लग गया है, वही जानता है कि इश्क बुरी बला है ॥3॥17॥

कल्याण, आरती

आरति कीजे दाता गुरु तेरी। मिट गइ ममता दुरमति मेरी ॥थल॥
पाँच पचीसी सहजेइ मार्या। भव सागर में डूबत तार्या।
सूती हुती अब जागि सवेरी। मिट गइ ममता दुरमति मेरी ॥1॥
तुम मेरे सतगुरु प्रान अधारी। सकल का साहब पर उपगारी।
अनेक समायो थारी धाम बडेरी। मिट गइ ममता दुरमति मेरी ॥2॥
चरण कमल चित मेरौ लागो। भूल भरम दुख सहजेइ भागो।
नजर न आवै कोइ वैर न वैरी। मिट गइ ममता दुरमति मेरी ॥3॥
कैसे बखाण कराँ मैं बड़ाई। एक जीभ सूँ कह्या न जाई।
अधिक ऊपमा उतम उचेरी। मिट गइ ममता दुरमति मेरी ॥4॥
हरष हरष गुन तेरौ गायो। रोहल राह अगम को पायो।
लियो निवास कटी जम फेरी। मिट गइ ममता दुरमति मेरी ॥5॥18॥

हे दाता गुरु! तेरी आरती करते हैं। मेरी ममता व दुर्मति मिट गयी हैं ॥थल॥ पाँच-पचीस (पाँच तत्त्व और उनकी पचीस प्रकृतियों) को सहज में ही मार डाला। भव-सागर में डूबते हुए को तार लिया। अज्ञान-निद्रा में सोई थी, अब ज्ञान रूपी सवेरा होने से जाग गयी। मेरी ममता व दुर्मति मिट गयी हैं ॥1॥ मेरे सद्गुरु! आप मेरे प्राणों के आधार हैं। आप सभी के साहिब व परोपकारी हैं। आप सचराचर में व्याप्त हैं, आप का धाम बड़ा है। मेरी ममता व दुर्मति मिट गयी हैं ॥2॥ मेरा चित्त आपके चरण-कमलों में अनुरक्त हो गया है। भूल व भ्रम, दुःख सहज में ही भाग गये हैं। नजर के सामने न कोई वैरी दिखता है और न वैर ही दिखता है। मेरी ममता व दुर्मति मिट गयी हैं ॥3॥ मैं कैसे तेरी महिमा का

वर्णन करूँ। मेरे पास एक जिह्वा है जिससे वर्णन नहीं हो सकता। तेरी महिमा उत्तम और अत्यधिक बतायी गयी है। मेरी ममता व दुर्मति मिट गयी हैं ॥4॥ रोहल ने हर्षित हो-होकर तेरी महिमा का गुण गान किया है और अगम के राह को पाया है। अगम-स्थान में निवास प्राप्त कर लिया, यमराज के यहाँ जाने का फेरा मिट गया। मेरी ममता व दुर्मति मिट गयी हैं ॥5॥18॥

संझा आरति गुरु की गाऊँ। दया भाव चित अपने लाऊँ ॥थल॥
प्रथम दंडवत करौं लख बारी। ऐसे राखौं प्रीति पियारी।
लगन लगाऊँ तोड़ निभाऊँ। दया भाव चित अपने लाऊँ ॥1॥
सील सँतोष खिम्या अँग जरना। सीस नँवाए चरन पर धरना॥
अपने साहब का मुजरा पाऊँ। दया भाव चित अपने लाऊँ ॥2॥
भाव सुभाव करि राखौं भेला। सुरति निरति ले कीजे मेला।
दम दम ऐसा अचरज उमाऊँ। दया भाव चित अपने लाऊँ ॥3॥
वचने साच सदा निरवाण। पावै आदी असल टिकाण।
मृतू लोक में फिर हि न आऊँ। दया भाव चित अपने लाऊँ ॥4॥
परमानँद सुख ऐसा कहिए। रोहल रम्ज समझ थिर रहिए।
सत सबदाँ सूँ नेह लगाऊँ। दया भाव चित अपने लाऊँ ॥5॥19॥

गुरु-महाराज की सन्ध्या-आरती गाता हूँ। अपने चित्त में दया का भाव लाता हूँ ॥थल॥ सर्वप्रथम लाखों बार प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार प्यारी प्रीति का पालन करता हूँ। लगन लगाता हूँ और तोड़=गाढ़ी तृष्णा का वरण करता हूँ। अपने चित्त में दया-भाव धारण करता हूँ ॥1॥ शील, संतोष, क्षमा, जरणा (सहनशीलता) अंगीकार करता हूँ। माथा झुकाकर चरणों में रखता हूँ। अपने साहिब के दरबार में हाजिर होकर उसके दर्शन प्राप्त करता हूँ। अपने चित्त में दया-भाव धारण करता हूँ ॥2॥ भाव व अच्छे भाव के द्वारा साहिब को साथ में मिलाकर रखता हूँ। सुरति और निरति के द्वारा मेल मिलाता हूँ। श्वास-प्रतिश्वास आश्चर्य-जनक उमंग पाता हूँ। अपने चित्त में दया-भाव धारण करता हूँ ॥3॥ वचनों में मैं सदैव सच्चा व वाण (मिथ्यात्व) रहित रहता हूँ जिससे असली आदि ठिकाणा पाता हूँ। मृत्यु लोक में अब नहीं आऊँगा। दया-भाव अपने चित्त में धारण करता हूँ ॥4॥ परमानन्द सुख कैसा है? रोहल करते हैं, वह रम्ज=रुहानी-अवस्था को समझकर उसीमें सुस्थिर रहना है। सत्य शब्दों से प्रीति लगाता हूँ, अपने चित्त में दया-भाव धारण करता हूँ ॥5॥19॥

आज मोरे संत पधार्‍या।
संत पधार्‍या हरिजन प्यारा, बलि बलि जाऊँ बलिहारा ॥थल॥
आज मोरे आंगण आया, भई है बधाई बरत्या है मंगलचारा ॥1॥

भाव भगति की मैं करूँ रसोई, आनँद करूँ अहारा।
सहज सुख की मैं सेज बिछाऊँ, पाऊँ मोख दुवारा ॥2॥
कहत रोहल संत भले पधार्‍या, पाया दरसन दीदारा ॥3॥20॥

आज मेरे संत पधारे हैं। प्यारे हरि-भक्त संत पधारे हैं। मैं उन पर बार-बार बलिहारी जाता हूँ ॥थल॥ आज मेरे आँगन में आये हैं। बधाई=उत्सव हो रहा है। मंगलाचार बरत रहा है॥ 1॥ भाव-भक्ति की भोजन सामग्री बनता हूँ और आनंदपूर्वक खाता हूँ। सहज सुख की शैया बिछाता हूँ और मोक्षमार्ग प्राप्त करता हूँ ॥2॥ रोहल कहते है- संतों का पधारना अच्छा हुआ। मैंने उनके दर्शन किये ॥3॥20॥

चेतन राजा चढ्यो युध ऊपर, जासूँ बंका गढ लेणा मेरा भाई।
हिमत हथ्यार सत सब्द गुण गुरु का, जासूँ कुद कुद करत लड़ाई ॥थल॥
विरह की फौज चढी अति भारी, जासूँ अनहद बजै नगारा।
झंडा झोली महाबल अगम का, जाँ सूँ किया मैदान में मारा ॥1॥
दोउ दल आणि खड़ा रण माहीं, जाँ सूँ खेह उडी असमाना।
सीस बिना जुध करत है सूरा, लागि रह्या घमसाना ॥2॥
सुरत की सुरँग गगन गढ तोड़्या, जाँ सूँ मँडल पगौं महिं कीया।
तृष्णा हटाइ ममता मन मारी, जाँ सूँ पकड़ जाइ गढ लीया ॥3॥
तेज की तोप छूटा दम दारू, ग्यान का गोला उडाया।
मोह भरम का बिचला बुर्ज भागा, जाँ सूँ मन का बल्ल हटाया ॥4॥
सार जीत बैठा सिंघासण, अटल पाई पतिसाही।
रोहल साहब सगल का करता, जाँ सूँ उलटी अकल चलाई ॥5॥21॥

चेतन राजा युद्ध करने को चढ़ गया है। इस युद्ध से वह बाँके गढ़ को जीतेगा। उसने हिम्मत के हथियार बनाये हैं। गुरु के सत्य शब्द को गुण=धनुष बनाया हैं। (गुण, धनुष की प्रत्यंचा को कहते हैं। यहाँ धनुष मान लिया गया है क्योंकि वर्णन हथियारों का है।) जिससे कूद-कूदकर=उत्साह सहित लड़ाई लड़ता है ॥थल॥ युद्धार्थ उग्र विरह की फौज रणांगण में चढ़ी जिससे अनहद नाद का नगारा बजता है। अगम के महाबल के झंडे-झोलियों से मैदान में मारकाट मचा दी है ॥1॥ रणांगण में दोनों दल (परमात्मभिमुखता व संसाराभिमुखता) सामने-आमने आ खड़े हुए हैं जिसके कारण संसाराभिमुखता रूपी मिट्टी आसमान में उड़ गयी। शूरवीर बिना मस्तक के (अहंकारशून्य होकर साधना करना) युद्ध करता है और घमासान युद्ध होता है ॥2॥ सुरति रूपी सुरंग से प्रवेश करके गगन रूपी गढ़ को तोड़ दिया जिससे शून्य-मंडल रूपी जीत को अपने अधीन कर ली। मन की ममता को मार डाली, तृष्णा को हटा दी और जिनसे गढ़ रूपी सहस्र-मंडल को जाकर प्राप्त कर लिया

॥3॥ तेज की बंदूक में श्वास का बारूद भर-कर ज्ञान रूपी गोले को दागा जिससे मोह व भ्रम का बिचला (बीच का) बुर्ज ढह गया। फलतः मन का बल टूट गया ॥4॥ सार=शत्रु-सेना को जीत-कर सिंहासन पर विराजमान हो गया और न टलने योग्य बादशाहत प्राप्त कर ली। रोहल कहते हैं- साहिब समस्त ब्रह्मांड का अभिन्न-निमित्तोपादान कारण है जिससे उल्टी अक्ल चली (सृष्टि की रचना हुई) ॥5॥21॥

ओ उड कोइ हंसा हमारे देस आवै, करै मानसरोवर डेरा ॥थल॥
भवसागर के काँठे है रूँखड़ा, जामें लिया है बसेरा।
डाल पात वीरा विष माहीं, अलूधा पंख मत कोइ पँखेरा ॥1॥
मृतू लोक में मर मर जासी, खासी चौरासी का फेरा।
चौदह जल थल काल का हेरा, दिया चौफेरा घेरा ॥2॥
अणहोती रैण पड़ गई बीच में, जामें भरम अंधेरा।
ओहि देस हालौ जहाँ सदाई चांदणौ, अनुभव ग्यान उजेरा ॥3॥
ए बगुलाँ को देस है हंसा को नाहीं, उड कर चलणा सवेरा।
पूरण हंस मिलै कोइ हँस कर, तो ले जावै अभेरा ॥4॥
आगै सूँ आगै अविचल नगरी, परमधाम पुर हेरा।
कहत रोहल सुनो भाई साधौ, उहाँ है आसण मेरा ॥5॥22॥

ओह! कोई हंस उड़-कर हमारे देश में आए और मानसरोवर में बसेरा करे ॥थल॥ संसार रूपी सागर के किनारों पर वृक्ष हैं जिन पर हे हंस! तूने अपना वास स्थान बना रखा है। हे भाई! इसके डाल, पत्ते सभी विषयुक्त हैं। किसी भी पक्षी को अपने पंखों को इनमें उलझाना नहीं चाहिए ॥1॥ मृत्युलोक में बार-बार मरोगे और चौरासी लाख योनियों में आते-जाते रहोगे। चौदहों लोक, जल, थल सभी काल का भक्ष्य हैं क्योंकि काल ने चारों ओर घेरा लगा रखा है ॥2॥ रास्ते में अनचाही रात्रि आन पड़ी है जिसमें भ्रम रूपी अंधेरा है। अतः उस देश की ओर प्रयाण करो जहाँ सदैव प्रकाश ही प्रकाश है और अनुभव-ज्ञान का उजाला है ॥3॥ संसार बगुलों का देश है, हंसों का नहीं है। सवेरा होते ही यहाँ से उड़कर चलना है। प्रसन्न होकर यदि कोई पूर्ण हंस मिल जायेगा तो वह अभय स्थान में ले जायेगा ॥4॥ आगे से आगे अर्थात् सबके अंत में अविचल नगरी है जो परमधाम-पुर का स्थान है। पहले कहते हैं- साधु भाइयों! सुनो, वहीं मेरा आसन है ॥5॥22॥

माया के फंद में हंस बँधाना, अमरलोक किम जासी ॥थल॥
औघट छोड़कर घाट में आयो, बण नौ पंच पचीसी।
पाँच पचीस परिवार है वाँ को, जाँ माहीं मन मेवासी ॥1॥
ओही घर अपनौ भूल गयो प्रानी, जिहिं घर को हुतो प्राणी।

हुतो तो निरबंध आइ बंधानौ, पड़्यो काल की फासी ॥2॥
मात पिता भाइ कुटुम कबीलौ, भयो कुल परिवार को प्यासी।
सुत भारजा स्वारथ के संगी, चौकस अंत चौरासी ॥3॥
लोक लाज कुल मरजाद कोइ छोडै, निरभय रहै निरासी।
लगन प्रीति की गुराँ सूँ लगावै, ते पावै पद निरवासी ॥4॥
पूरे गुरु बिन पार न पावै, गंगा न्हावै चाहै कासी।
सिर साँटै कोइ साहब पावै, हंस नहीं कोइ हासी ॥5॥
लगै छाप जब सिर सतगुरु की, मन चित भयो विसासी।
कहत रोहल तब सहजे पावै, निरभय नगर विलासी ॥6॥23॥

हंस (जीव) माया के फंदे में बंध गया है, वह अमरलोक में कैसे जा सकता है ॥थल॥ औघट=घट-रहित परमात्मा को छोड़-कर आत्मा घट=शरीर से प्रविष्ट हुई। यह घट, लिंग-शरीर नौ तत्त्वों का तथा स्थूल-शरीर पाँच महाभूत व पचीस उनकी प्रकृतियों का बना है। इसका परिवार पाँच व पचीस का है जिनमें से मन लुटेरा है ॥1॥ प्राणी उस घर को भूल गया जिस घर का वास्तव में यह प्राणी था। वास्तव में तो यह निर्बंध था किन्तु संसार में आकर बंध गया और काल की फाँसी में फँद गया ॥2॥ माता, पिता, भाई, कुटुंब, कबीला, कुल, परिवार इनका प्यासा हो गया, (इनको चाहने लगा)। पुत्र, पत्नी सभी स्वार्थ के संगी हैं। इनका मोह रखने से अंत में निश्चय ही चौरासी मिलती है ॥3॥ कोई ही लोक-लज्जा, कुल-मर्यादा को छोड़कर निर्आशी बनकर निर्भय रहता है। यदि कोई गुरुजी से प्रीति की लगन लगाता है तो वह निर्आशी पद प्राप्त करता है ॥4॥ चाहे गंगा स्नान करो, चाहे काशी वास करो, बिना पूर्ण गुरु के निर्आशी-पद प्राप्त करना संभव नहीं। सिर समर्पण करने पर=सर्वात्म-समर्पण करने पर ही साहिब मिलता है। हंसत्व दशा को प्राप्त करना कोई हँसी-खेल नहीं है ॥5॥ जब सद्‌गुरु महाराज की सिर पर छाप लग जाती है तब मन व चित्त विश्राम को प्राप्त होता है। रोहल कहते हैं, तब सहज में ही निर्भय नगर का आनंद प्राप्त होता है ॥6॥23॥

साधौ मेरा अंत किसी ने नहिं पाया।
अपनी अपनी बारी सभ कोई, कथ गए ग्यान सवाया ॥थल॥
एको इ एक सकल सूँ न्यारा, नहीं किसी का जाया।
नहिं कोइ मात पिता है मेरा, जोनी गरभ न आया ॥1॥
दृष्टि न आया कोइ मुष्ठि न पकड़ै, वज्र अभंगी काया।
डोर ऊपर मैं पुतलि रमाऊँ, नट ज्यूँ खेल बनाया ॥2॥
नहिं मेरा ठाम ठिकाणा कोई, नहिं कहण सुणण में आया।

ठाम बाँध सभ पचि पचि मरि गए, ठाम किहिं बिरले पाया ॥3॥
चौदह लोक में सभ खोज करंते, गिनते अलख न माया।
देही छूटी पूंजी टूटी, घर का मूल गँवाया ॥4॥
ठौर ठैराइ बाँध बैठे धारा, बँदूक निसाना बनाया।
बन्दूक न छूटी निसान न पाया, पीछै जनम भुलाया ॥5॥
त्रास दे तन कूँ केइ करोड़ मर गए, दो दिन धूत हलाया।
मेरा चाह्या कोइ मुझमें समावै, कहि इक सा समझ समाया ॥6॥
प्रकट होय इस जग में आया, रोहल नाम धराया।
रूप मेरा तो सब कोइ वेखे, मैं अपना सरूप छिपाया ॥7॥24॥

हे साधुओ! मेरा अंत किसी ने नहीं पाया। अपने-अपने समय में सभी कोई ऊँचे से ऊँचा ज्ञान बखान कर चले गये ॥थल॥ मैं एक का एक हूँ। सभी से न्यारा हूँ। मैं किसी के द्वारा उत्पन्न नहीं किया गया हूँ। मेरे कोई माता-पिता नहीं हैं। मैं गर्भ से योनी-मार्ग से बाहर नहीं आया ॥1॥ दृष्टि से कोई देख नहीं सकता। मुट्ठी में कोई पकड़ नहीं सकता। मेरी काया वज्र के समान अभंग है। जैसे नट डोरी के द्वारा पुतली को खिलाता (चलाता) है, ऐसे ही मैं ने नट के रूप में इस संसार रूपी खेल को खेल के रूप में रचा है ॥2॥ मेरा कोई ठौर-ठिकाना नहीं है। न मेरा वर्णन को सकता है और न मैं सुनने में आता हूँ। ठिकाना बांध-बांधकर सभी मर गये, वास्तविकता में ठिकाना किसी बिरले ने ही पाया है ॥3॥ चौदहों लोकों में सभी माया की खोज करते हैं किन्तु अलख की गिनती तक नहीं करते। देह छूटती है, पूंजी टूटती है, परिणामतः स्वयं का जो मूल धन था, वह भी गँवा दिया ॥4॥ स्थान निश्चित करके धारा (तलवार, धनुष, बाण) बांधकर बैठ गये और बन्दूक से निशाना लगाया। न बन्दूक छूटी, न निशाना लगा। इस प्रकार सारा जन्म बर्बाद कर दिया ॥5॥ कई करोड़ शरीर को त्रास दे-देकर मर गये। दो-चार दिन अवधूत अथवा त्यागी वैरागी बनने का प्रयत्न किया। मेरे को चाहने वाला कोई ही मेरे में समरस होता है। एक जैसा कहकर व समझकर मेरे में ही समा गया ॥6॥ प्रकट होकर मैं जगत में आया और मैंने मेरा नाम रोहल रखवाया। मेरे रूप को सभी देखते हैं किन्तु मैंने मेरा स्वरूप गुप्त रखा है ॥7॥24॥

साधौ मैं अनुभव नगरि बसाई। जाँ सूँ आवै नहिं कोई जाई ॥थाल॥
जोगी जोग जुगति नहिं धारा, नहिं कोइ भजन कमाई।
ग्यान न ध्यान नहिं जाप अजपा, नहिं कोइ वस्तु लखाई ॥1॥
नहिं कोइ सब्द नहीं कोइ साखी, नहिं ओऽहं सोऽहं लिव लाई।
जीव न शीव नहीं ब्रह्म चेतन, खैचाताण मिटाई ॥2॥
धरनि अकास पवन नहिं पावक, नहिं पानी नहिं चांद सुरज सितलाई।

रात दींह नहिं नौ लख तारा, नहिं कोइ धूप न छाई ॥3॥
रज न बीरज पाँचौं इ तत नाहीं, नहिं अरध अणधर राई।
चौदह लोक इकीसा नाहिंन, नाद बूंद थक जाई ॥4॥
करता विष्णु महेस गणेसा, ब्रह्मा रह्या बिललाई।
इन पाँचों का डेरा प्रपंच माहीं, खोजत उमर गँवाई ॥5॥
दस नहिं सात नौ भी नाहीं, अठ्यासी उहाँ फनाई।
कूरम सेस कुँजर भी मरसी, ए तो खोज माहिं खप जाई ॥6॥
सात साइर नौ सौ नदिया भी नाहीं, नहिं अधर खंड उभराई।
बज्र सालिम सिलहा चार भी नाहीं, नहिं जल में जोत दरसाई ॥7॥
नरक स्वर्ग वैकुँठ भी नाहीं, एह तो भरम भुलाई।
तेतिस कोड़ देवासुर नाहीं, सभ टोटकी माया बनाई ॥8॥
जोति स्वरूप निरंजन निराकार, एह तो लोकाँ ले ठहराई।
सहसर नाम नहीं कछु मेरा, दुरमति ना दुविधाई ॥9॥
पर्वत मेरु सुमेरा नाहीं, इकीस ब्रह्मंड उठाई।
चार पुरुष चार वीर भी नाहीं, पूंजी मूँ परताई ॥10॥
नहिं कोइ विराट नहिं मूर्त अमूरत, नहिं तेज वायु कहाई।
इछा स्वरूपी आदि माया भी नाहीं, ना अंडे सृष्टी रचाई ॥11॥
हद बेहद दोनों ही नाहीं, ना कोइ पुरुष लुगाई।
नहिं उतपति नहिं भोग संजोगा, जनमा नहिं मर जाई ॥12॥
आप इधरका उधर नहिं पहुँचै, यह तो मन परचाई।
पहुँचै कोइ गुरु ग्यान समझ सूँ, बिन जिभ्या गुण गाई ॥13॥
दोइ नैनाँ सूँ ऊँचा जोवै, राख सुरति निरति इकठाँई।
अधर सरूपी ज्यूँ झाँई दीसै, ओ दीसत सब मिथ्याई ॥14॥
जागृत सुपन सुखोपति नाहीं, ना चौथा पद उलझाई।
नाहीं सोलह हंस अविनासी भी नाहीं, सोलह मुकाम मुरखाई ॥15॥
मोती मानसरोवर नाहीं, ना हंसा चूण कराई।
अखै मंडल नाहीं महल झरोखा, नाहीं सेत की सेज बिछाई ॥16॥
सात सुनाँ पर सेत सुन कहता, मैं तो उह भी गेड़ गड़काई।
इसके आगे असंख सुन है, वहाँ पर एक सुन ठहराई ॥17॥
रोहल साहब सकल को मालिक, देखत सभै उडाई।
अविचल नगर है देस हमारा, क्या कहुँ कुछ कहत न जाई ॥18॥25॥

साधुओ! मैंने अनुभव-नगरी बसाई है जिसमें से न कोई आता है और न जिसमें जाता है ॥थल॥ वहाँ न योगी की युक्ति और न योग की धारा है। वहाँ भजन रूपी कमाई भी नहीं। न ज्ञान-ध्यान है, न अजपा-जाप है। वहाँ कोई वस्तु भी देखने में नहीं आती ॥1॥ वहाँ न कोई शब्द-साखी है और न वहाँ कोई ओऽहं व सोऽहं में चित्तवृत्ति लगाता है। जीव व शीव नहीं, ब्रह्म-चेतन नहीं। वहाँ खैंचातानी मिट जाती है ॥2॥ वहाँ भूमि, आकाश, पवन, जल, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा व शीतलता कुछ भी नहीं है। न रात्रि-दिवस है, न नौ लाख तारे हैं। धूप-छायाँ भी वहाँ नहीं ॥3॥ वहाँ रज-वीर्य नहीं, पाँचों तत्त्व भी नहीं, अर्ध भी नहीं है, अणधरराय नहीं है। चौदह लोक, इकीस ब्रह्मांड व नाद-विन्दु भी वहाँ नहीं हैं ॥4॥ कर्त्ता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश व गणेश इन पाँचों का निवास-स्थान प्रपंच में है; ये यहीं रहकर अनुभव-नगरी को पाने को व्याकुल होते हैं और इन्होंने खोजने में ही पूरी आयु व्यतीत कर दी (भारत में शैव, वैष्णव, शाक्त, वैष्णव व सौर कुल पाँच पद्धतियाँ हैं। रोहलसाहब इनकी ही चर्चा यहाँ कर रहे हैं किन्तु उन्होंने नाम भिन्न व अधूरे लिखे हैं।) ॥5॥ दस दिग्पाल, सप्त ऋषि, नौ नाथ, अट्ठासी हजार शौनकादि ऋषि भी वहाँ नहीं, ये सब यहीं फना=मरते हैं। कूर्म, शेष, कच्छप (कुंजर=हाथी) भी मरणाधर्मा हैं। ये खोज करते-करते ही मर जायेंगे ॥6॥ वहाँ सात सागर व नौ सौ नदियाँ नहीं हैं। वहाँ अधरखंड भी उभार को प्राप्त नहीं होता। वहाँ वज्र, चार सालिम, सिलहा नहीं हैं। जल में ज्योति के दर्शन भी नहीं होते ॥7॥ नर्क, स्वर्ग, वैकुंठ भी नहीं हैं। ये तो भ्रम व भूल रूप हैं। तेतीस करोड़ देवासुर नहीं हैं। इन सभी टोटकों को माया ने बनाया है ॥8॥ ज्योति-स्वरूप निरंजन-निराकार है, जिसने लोकों को ठहराया=स्थिर किया है। मेरी सहस्र नाम की कोई नामावली नहीं है। न दुविधा है, न दुर्मति है ॥9॥ पर्वत, मेरु, सुमेरु नहीं हैं। इक्कीस ब्रह्मांड भी नहीं। चार पुरुष, चार वीर भी नहीं हैं ॥10॥ विराट् नहीं, मूर्त अथवा अमूर्त भी नहीं। वह तेज व वायु भी नहीं कहाता। इच्छा स्वरूपी आदि-माया भी वहाँ नहीं है और नाहीं अंडे (व्यष्टि) की रचना वहाँ होती है ॥11॥ वहाँ हद, बेहद दोनों नहीं हैं। स्त्री अथवा पुरुष का लिंग-भेद भी नहीं। वहाँ न उत्पत्ति, न भोग और न संयोग है। वहाँ न कोई जन्मता और न मरता है ॥12॥ आपा युक्त इधर वाले उधर नहीं पहुँचते। आपा मन की कल्पना है। अनुभव-नगरी में केवल गुरु-ज्ञान के अनुभव से पहुँचता है और वहाँ जाकर बिना जिह्वा के गुण गाता है ॥13॥ सुरति और निरति को एकाग्र करके दोनों नेत्रों को ऊँचा करके जो देखता है, उसको अधर स्वरूपी झाँई (प्रकाश) जैसा दिखता है और सारा जगत् मिथ्या मालूम होता है॥ 14॥ जागृत, स्वप्न व सुषुप्ति तथा चौथा पद तुरीय भी नहीं है। सोलह हंस नहीं हैं, अविनाशी भी नहीं है। सोलह मुकामों की बात भी मूर्खता है ॥15॥ मानसरोवर व उसमें के मोती नहीं हैं। ना ही हंस मोतियों को चुगने का काम करता है। अक्षय-मंडल में महल-झरोखे नहीं और न ही वहाँ श्वेत की शैया बिछी है ॥16॥ सात शून्यों के ऊपर श्वेत शून्य कही जाती है। मैंने तो उसको भी

गेड़ (लकड़ी का डंडा, सोठा) से गुड़का दिया है। इसके आगे असंख्य शून्य हैं जहाँ पर एक शून्य ठहरती है ॥17॥ रोहल कहते हैं- साहिब सभी का स्वामी है। देखते ही सभी उड़ जाते हैं। मेरा देश अविचल है। उसके बारे में क्या कहूँ; कुछ कहते नहीं बनता ॥18॥25॥

पिंड ब्रह्मँड की खोज बिन भाई, साहब की दरगा न पावेगा।
लाख सयाणप करौ चतुराई, हुनर हजार हलावेगा ॥थल॥
पूरे गुरु का दामन पकड़ै, चरनै सीस चढावेगा।
मेहर मौज गुराँ की पावै, ऐसी लगन लगावेगा ॥1॥
सार सब्द मूँ काया पलटै, सहजे धुंन लगावेगा।
दीपक ले मंदिर में आवै, तो खेल अजीब दरसावेगा ॥2॥
चक्कर खोज कला कूँ समझै, अपना हंस उडावेगा।
सुगम छोड अगम घर उलटै, तो अमर ठिकाना पावेगा ॥3॥
पकड़ै डोरी करै निसाणा, सूधी राह चलावेगा।
सात अकास की प्रोल उघाड़ै, जड़ कोतल घोर कुदावेगा ॥4॥
अविचल धाम अविगत सूँ आगै, ऊहाँ जाइ समावेगा।
रोहल खोज मिटै जद सारी, पीछै आवै नहिं जावेगा ॥5॥26॥

हे भाई! पिण्ड-ब्रह्मांड की खोज किये बिना साहिब की दरगाह प्राप्त नहीं हो सकती, चाहे लाखों प्रकार से बुद्धिमानी, चतुराई करो, चाहे हजारों प्रकार के इल्म करो ॥थल॥ जो पूरे गुरु का पल्ला पकड़ता है, उनके चरणों में शीश को चढ़ाता है, वही गुरु की कृपा और प्रसन्नता प्राप्त करेगा। इस प्रकार की लगन लगायेगा ॥1॥ सार शब्द से काया पलट जाती है और सहज में ध्वनि लगेगी। दीपक को लेकर मंदिर में आने से अजीब=आश्चर्यमय खेल का दर्शन होगा ॥2॥ चक्रों (षड्चक्रों) को जानकर कला को समझे तब ही अपने हंस को ऊँचा उठा सकेगा। सुगम को छोड़कर अगम देश की ओर बढ़े तो अमरता रूपी ठिकाना प्राप्त करेगा ॥3॥ डोर को पकड़ कर निशाने पर मार करेगा तब ही सीधी राह पर चलेगा, सात आकाशों का द्वार खोलेगा, और कोतल (राजा का घोड़ा, बिना सज्जित घोड़ा), घोड़े को आगे प्रवेश कराएगा ॥4॥ अविचल धाम, अविगत से भी आगे है, वहाँ जाकर समरस होगा। रोहल कहते हैं, जब सारी खोज पूरी हो जायेगी, तब न वापिस आयेगा, न जायेगा ॥5॥26॥

अमर पुरुष के मारग हालणा।
अगम के देस समावणा, गगन मंडल के मारग चालणा ॥थल॥
सबद सरूप मँह निज काया राखी, सहजे प्रेम लगाया।
मन कूँ फोड़ पटक महिं दीया, द्वारा बूंद हलाया ॥1॥

तीजाँ चौथाँ जब भयो बलवंता, बज्जर प्रोल उघाड़ी।
सूखम सेज पवन की कोठी, पकड़ अकास उडारी ॥2॥
मैं पंछी का सुध मारग लीया, धार मूँ तार मिलाई।
लांबी डोर ज्यूँ हाथ सूँ छूटी, गुड़ी गगन पर उड़ाई ॥3॥
फोड़ इकीस ब्रह्मंड फिर ऊपर जोया, अजब को देस दरसाणा।
अणघड़ देव उहाँ अविनासी का डेरा, हंसा का लोक लखाणा ॥4॥
अखै मंडल झरा चौमुख झरोखा, बैठा अविनासी राजा।
अखंडी जोति जगी उस आगै, गैबी बाजै बाजा ॥5॥
सतगुरु साहब के प्रताप से, भया अमरलोक मँह वासी।
रोहल राह अगम का जान्या, निर्भय नगर विलासी ॥6॥27॥

अमर-पुरुष के मार्ग पर चलना है। अगम-देश में समाहित होना है, गगन मंडल के रास्ते पर चलना है ॥थल॥ शरीर को शब्द के स्वरूप में रखा और सहज प्रेम किया। मन को निष्क्रिय करके जमीन पर पटक दिया, (पछाड़ दिया) द्वारों को रोक-कर (इंन्द्रियाँ, जिनसे भोग भोगे जाते हैं, ही द्वार हैं) मन को हिला डाला ॥1॥ तीसरे तथा चौथे चढ़ाव पर (सीढ़ी पर) जब बलवान होता है यात्री, तब न खुलने वाले वज्र-द्वार को भी खोल देता है। सूक्ष्म शैया व पवन की कोठी है, इनको पकड़-कर आकाश में उड़ायी ॥2॥ मैंने पक्षी का सही मार्ग पकड़ लिया और धार में तार को मिलाया। लंबी डोर की तरह हाथ में से छूटी तो पतंग आकाश में उड़ने लगी ॥3॥ इक्कीस ब्रह्मांडों को पार करके जब ऊपर देखा, तब अजब के देश का दर्शन हुआ। अणघड़ (जिसको कोई बनाता नहीं, जो स्वयंभू हो) देव अविनाशी का वहाँ निवास हैं, वह हंसों का देश है जिसका दर्शन हुआ ॥4॥ अक्षय मंडल जिसमें झरा=सरोवर व चौमुखा झरोखा है, वहाँ अविनाशी राजा विराजता है। उसके समक्ष अखंड ज्योति प्रज्ज्वलित है और गुप्त बाजे बजते हैं ॥5॥ सद्गुरु साहिब के प्रताप से मैं अमर-लोक का निवासी बन गया। रोहल ने अगम का राह जाना और अब निर्भय नगर का विलासी है ॥6॥27॥

हम हूँ साहब सर्व के मालिक, खालिक खलकणहारा।
जात अजात तौं न्यारा खेलूँ, ऐसा सरूप हमारा ॥थल॥
मेरा अवगत सूँ इजहार, नाहीं कोइ रूप अकारा।
ओहि अरूप किसी ने नहिं पाया, भूला देखि पसारा ॥1॥
चौदह लोक इकीसों ब्रह्मंड, एहि तो बन्या विस्तारा।
घड़िया घाट कूँ सत कर मान्या, अवघट लगी रुणकारा ॥2॥
मेरा सरूप अविगत नहिं जानै, भूल गया जग सारा।
सारा संसार है काल का चारा, पकड़ करंत अहारा ॥3॥

जिसने हमारा वचन गह लीया, कर चाल्या खोजनकारा।
नकल कूँ छोड असल घर पावै, उतरै भव जल पारा ॥4॥
भव मिटाइ निर्भइ होइ रहिया, तजी मोह की धारा।
रोहल रहता सदा सुख माहीं, जे कोइ जानै विचारा ॥5॥28॥

सर्व का स्वामी, मैं साहिब हूँ। संसार नष्ट होने वाला है। मेरा ऐसा स्वरूप है कि मैं जाति, अजाति का बिना विचार किये सभी से समान व्यवहार करता हूँ ॥थल॥ मेरा अविगत के नाम से इजहार (प्रकाशन) होता है। मेरा कोई रूप व आकार नहीं है। इसी अरूप को किसी ने नहीं पाया प्रत्युत् संसार वाले सभी (माया के विस्तार) को देखकर भ्रमित हो जाते हैं ॥1॥ चौदह लोक व इकीसों ब्रह्मांडों का इसीसे विस्तार हुआ है। संसारियों ने बने हुए संसार को सत्य करके मान लिया है जबकि अवघट (जो माया-जन्य नहीं है) के प्रति रुणकार (प्रीति) नहीं लगायी है ॥2॥ मेरा स्वरूप अविगत है, उसको जानते नहीं, इस प्रकार सारा जगत ही अविगत रूप मुझको भूल गया है। सारा संसार काल का खाद्य है। काल पकड़कर खा जाता है ॥3॥ जिसने मेरा वचन मान लिया तथा जो खोजने को उद्यत हो गया, वे नकली संसार को छोड़कर असली मेरे घर को प्राप्त करते हैं और संसार सागर को पार कर जाते हैं ॥4॥ मोह की धारा को तजकर संसार को त्यागकर निर्भय होकर रहते हैं। रोहल कहते हैं, ऐसे जो हमारे वचनों को मानने वाले हैं, वे सदैव सुख में रहते है ॥5॥28॥

जिसकी गत मत निर्मल होवै, उसकूँ साहिब कर जाणौ।
त्रिगुण सगुण महिं एक सरीखा, ओहि तो पुरुष पिछाणौ ॥थल॥
सकल सूँ रिलमिल फिरौ जग माहीं, दुविधा मन में न आणौ।
रखौ विचार निरंतर न्यारा, मौज अगम की माणौ ॥1॥
और खोजौ सुद्ध सरूपा, छोड कूड़ किरयाणौ।
अणघड़ अविचल अटल अडोला, वाँ का नाम बखाणौ ॥2॥
पूरा गुरु को भेद जो पायो, बांधी पत पतियाणौ।
रोहल वस्तु गुन मँह जब लाधी, परचौ पाय पिछाणौ ॥3॥29॥

जिसकी गति व मति मलों से रहित, निर्मल हो, उसीको साहिब करके मानो, जानो। निर्गुण व सगुण दोनों ही पक्षों में जो समान हो, उसी को परम-पुरुष परमात्मा जानो ॥थल॥ सभी से मिल-जुलकर जगत में रहो। मन में दुविधा को मत आने दो। सदैव संसार के विचारों से भिन्न विचार रखो और अगम्य के आनंद का लुत्फ उठाओ ॥1॥ कूड़=झूठे किरयाणौ=कर्तृत्त्व (संसार) को त्यागकर शुद्ध स्वरूप की खोज करो। जो अनघड़=किसी द्वारा बनाया न गया है, अविचल है, अटल व अडोल है, उसके नाम का स्मरण करो ॥2॥

मैंने पूर्ण गुरु के भेद को पाकर उनके वचनों पर विश्वास (पत) जमाया जिससे मुझ रोहल ने गुणमयी वस्तु प्राप्त की और साक्षात्कार करके उन का साहचर्य प्राप्त किया, उसको पहचाना ॥3॥29॥

अब क्या डिगूँ मैं अडिग देस पाया। औघट माहीं आकार मिटाया ॥थल॥
सतगुरु साहिब मिलिया मोह पूरा। पुरख प्रवाणी मुख नूर सु पूरा ॥1॥
अंमृत प्याला गुराँ भर दीना। चढी खुमारी अँग अँग भीना ॥2॥
खुल गइ खिड़की मेरा मन पतियाना। जाँ सूँ आया उहाँ उलट समाना ॥3॥
एको हि एक किया है पसारा। रोहल साहब सब सूँ न्यारा ॥4॥30॥

अब मैं कैसे करके विचलित होऊँ, मैंने न डिगने वाला अविचल-देश प्राप्त कर लिया हैं। अवघट (अशरीरी परमात्मा) में शरीर को एकाकार करके अस्तित्त्व मिटा लिया है ॥थल॥ मुझको पूर्ण सद्गुरु साहिब मिले, वे प्रमाणिक पुरुष हैं, उनके मुख पर आत्मसाक्षात्कारजन्य पूर्ण प्रकाश है ॥1॥ गुरुदेव ने अमृत-प्याला भरकर पीने को दिया जिसका मेरे ऊपर नशा चढ़ गया व मेरा अंग-अंग उल्लास से भर गया ॥2॥ सारी खिड़कियाँ (ग्रंथियाँ) खुल गयीं, मन में विश्वास जम गया। जहाँ से आया था, वहीं उल्टा आकर एकरस हो गया ॥3॥ वह अवघट तत्त्व एक ही एक, अकेला है, उसी ने सारा ब्रह्मांड बनाया है। रोहल कहते हैं- साहिब सबसे न्यारा, विलक्षण है ॥4॥30॥

थिर गाँव मेरा थिर नाम हमारा। आपो हि आप रहूँ निरधारा ॥थल॥
नवाँ तताँ के माहीं नहीं मेरी काया। पाँच पचीस नहिं त्रिगुणी माया ॥1॥
कला हमारि सकल के माहीं। हउँ कूँ आधार किसी का नाहीं ॥2॥
सभ कोइ संत मेरा नाम उचारै। हम साधन के साध हमारे ॥3॥
मुझ कूँ तो कोइ मेरा संत जानै। और अंधा लोक नहीं पिछानै ॥4॥
सर्व के माहीं सर्व सूँ न्यारा। कहत रोहल ओ सूप हमारा ॥5॥31॥

मेरा गाँव स्थिर है। मेरा नाम भी स्थिर है। (यहाँ 'थर' 'थरपारकर' देश विदेश का वाचक न होकर 'स्थिरता' का, 'अगम्यदेश' का वाचक है।) मैं स्वयं अपने आप में ही स्थित रहने वाला निराधार (जिसका कोई आधार न हो, किन्तु जो सभी का अधिष्ठान हो) एक, अद्वैत हूँ ॥थल॥ मेरी काया नव-तत्त्वात्मक नहीं है। पाँच तत्त्व, पचीस प्रकृति और त्रिगुणात्मक माया से भी निर्मित नहीं है ॥1॥ मेरी कला (मेरा ही प्रकाश, अंश) सचराचर में है। मेरे लिये, कोई भी, मेरा आधार नहीं है ॥2॥ सभी संत-जन मेरे नाम का उच्चारण करते हैं। मैं साधुओं का व साधु मेरे हैं ॥3॥ मेरे को मेरा कोई संत-जन ही जानता है। उसके अलावा अज्ञानांधकार से ग्रसित अंधे लोग इस सत्य को नहीं जानते। मैं सचराचर में हूँ

तथापि सचराचर से न्यारा हूँ। रोहल कहते हैं- मेरा स्वरूप यही है ॥4॥31॥

ऐसौ अकल कला को खेल है।
साधौ ए तो रूप अरूप को मेल है ॥थल॥
रूप है फूरा अरूप समुद्र है, लहर रूप के माहीं।
लहर समुद्र में समुद्र लहर में, लहर समुद्र बिन नाहीं ॥1॥
रूप है पुतली अरूप सोइ नट है, जिसके हाथ मँह डोर।
रात माहिं हलावै भुलावै, परदे भए हैं चोर ॥2॥
ज्यूँ बड कुँवार व्यौहारी सासरे, काढै घूंघट लावै लाज।
आप छिपाइ औराँ कूँ देखै, मुखौं न आवै अवाज ॥3॥
रूप में रोहल अरूप है कुदरत, कुदरत निर्मल नूर।
गुप्ती नूर परगट नूर, आदि अंत भरपूर ॥4॥32॥

अकल=परमात्मा की कला=माया का यह खेल है। साधुओं! यह अरूप परमात्मा व रूपवान संसार का मेल है ॥थल॥ रूप लहर है। अरूप समुद्र है। लहर रूपात्मक है। लहरें समुद्र में हैं। समुद्र लहरों में है। बिना समुद्र के लहरें नहीं होतीं ॥1॥ रूप पुतली (लकड़ी की बनी कठपुतली) है जबकि अरूप नट (सूत्रधार) है जिसके हाथ में कठपुतली को नचाने की डोर होती है। जब रात्री होती है, तब नट कठपुतलियों को हिलाकर दर्शकों को भुलावे में डालता है क्योंकि परदों को चोर बना रखा है ॥2॥ जिस प्रकार बडी बहु ससुराल के व्यवहार में घूंघट (अवगुंठन) मुँह पर लगा कर लज्जा करती है। स्वयं को छिपाती है किन्तु स्वयं दूसरों को देखती है। ऐसा करने पर भी उसके मुख से आवाज नहीं आती ॥3॥ रोहल कहते हैं- इसी प्रकार कुदरत रूप में अरूप है, कुदरत निर्मल नूर है। गुप्त नूर ही प्रकट नूर है जो आदि-अंत में भरपूर है ॥4॥32॥

साधौ कोइ समझै रमज यूँ जानै।
देखत संत भणण नहिं आवै, ए तो अनुभव मूँ अर्थ पिछानै ॥थल॥
जगत तरंग समँद होइ न्यारा, समँद मूँ तरँग उठावै।
मिट गई तरँग समँद होइ रहिया, पाछै नीर नजर नहिं आवै ॥1॥
ज्यूँ बीज का चांद सुलट सुगम मँह, आपकी कला मँह आवै।
दिन दिन बधता होइ सवाया, पूर्णिमा का घर पावै ॥2॥
ऊगा भान धरणि के ऊपर, नवखंड तेज प्रकासा।
खींच तेज भेला ले जावै, आपहि आप निरासा ॥3॥
कंचन एक अनेक है भूषण, अनंत नाम धराया।

भूषन भांज कंचन कर लीया, अनंत नाम मिटाया ॥4॥
तपस्या करि राजेश्वर होई, तप करि भया नियारा।
कीनी कमाई न्रिफल नहिं जावै, जिसकूँ मानै जग सारा ॥5॥
साँच कहत हूँ कोइ साँचा होवै, सुनै हमारा हेला।
रोहल साहब सकल सूँ न्यारा, आपहि आप अकेला ॥6॥33॥

साधुओ! कोई ही रमज=रुहानी (आत्मिक-अनुभव) को इस प्रकार जानता है। संत आत्मा का अनुभव करते हैं किन्तु वह कहने में नहीं आता। ये तो उसका अर्थ अनुभव करके ही जानते हैं ॥थल॥ जीव तरंग है। ब्रह्म समुद्र है। जब तरंग उठती हैं, तब भिन्न प्रतीत होती हैं, परन्तु तरंगें उठती तो समुद्र में ही हैं। जब तरंग मिट गईं, तब समुद्र मात्र रहता है, पृथक् से नीर नहीं दिखता। जब तक जीव में द्वैत-भाव हैं, तब तक ही भिन्नता मालूम देती है, जब जीवत्व-भाव मिट गया, आत्माकार-स्थिति हो गई, तब केवल आत्मा किंवा ब्रह्म ही शेष रहता है ॥1॥ जैसे दोज का चन्द्रमा सुलटता हुआ, बढ़ता हुआ सुमार्ग में अपनी कला में आता है, अपने पूर्ण स्वरूप की ओर प्रतिदिन बढ़ता है और अंततः पूर्णिमा को अपना पूर्ण घर=पूर्ण स्वरूप पा लेता है, अपनी कला में आ जाता है ॥2॥ पृथिवी पर सूर्योदय होता है, नौ-खंड ब्रह्मांड में प्रकाश होता है। सूर्य का तेजस्वी प्रकाश भेड़ा=अंधकार को नष्ट कर देता है व स्वयं में स्वयं स्थित हो जाता है ॥3॥ कंचन एक है, उससे निर्मित आभूषण अनेक हैं और उनके अनेक नाम रखे जाते हैं। आभूषणों को भंग करके स्वर्ण बना लिया जाता है। उनके जो अनेक नाम रखे गये, वे स्वतः मिट जाते हैं ॥4॥ तपस्या करके राजेश्वर बन जाते हैं, तप करके न्यारे (मोह-माया से) हो जाते हैं। की हुई कमाई निष्फल नहीं जाती, इस बात को सारा जगत् जानता है ॥5॥ मैं सच कहता हूँ। जो कोई सच्चा होगा, वही हमारा हेला (बुलाहट, उपदेश) सुनेगा। रोहल कहते हैं, साहिब समस्त कायिक पदार्थों से न्यारा है। वह आप अकेला, अद्वैत रूप है ॥6॥33॥

साधौ सभ मन का है विस्तारा।
मन की ही उतपत मन की ही परलय, मन हि सकल सूँ न्यारा ॥थल॥
मन हि अकासे मन हि पताले, मन जोड़ा नर नारी।
मन ही राजा मन ही परजा, मन हि बडा अहंकारी ॥1॥
मन ही घाती मन ही पापी, मन बोड़ै मन तारै।
मन हि बिगाड़ै मन हि सुधारै, मन सभ काज सँवारे ॥2॥
मन ही भूला मन ही समझा, मन अग्यानी मन स्याणा।
मन हि गुरुजी मन ही चेला, मन सूँ मनख उलझाणा ॥3॥
मन ही चेतन मन ही साखी, मन आतम ब्रह्म अविनासी।

मन ही मेला मन का खेला, मन अमरलोक का वासी ॥4॥
मन मौजी ऊलट घर आया, आप में आप समाया।
रोहल रूप अरूप सूँ न्यारा, निज नामी नाम कहाया ॥5॥34॥

साधुओ! आपको जो कुछ विस्तार दिखता है, वह सारा का सारा मन का ही विस्तार है। मन के द्वारा उत्पत्ति, मन के द्वारा ही प्रलय है। मन ही सबसे न्यारा है ॥थल॥ मन ही आकाश-पाताल है, मन के ही कारण नारी-पुरुष का जोड़ा है। मन ही राजा व प्रजा है। मन बडा अहंकारी है ॥1॥ मन ही घात करने वाला व पापी है, मन ही डुबोता व तारता है। मन ही बिगाड़ता व सुधारता है तो मन ही समस्त कामों को सँवारने वाला है ॥2॥ मन ही भूलता व मन ही समझता है। मन ही अज्ञानी तो मन ही सयाना है। मन ही गुरु तो मन ही चेला है। मन के कारण ही प्राणी उलझता है ॥3॥ मन ही चेतन तो मन ही साक्षी है, मन ही आत्मा तो मन ही अविनाशी ब्रह्म है। मन ही मिलता है तो मन ही बिछुड़ता है। मन ही अमरलोक का निवासी है ॥4॥ मन ही आनन्दमय है जो उलटकर निज घर में आता है। वह स्वयं में स्वयं ही समरस होता है। रोहल कहते है- रूप, अरूप परमात्मा से न्यारा है। निज नामी ही नाम कहलाता है ॥5॥34॥

चेत सवेरा चलणा राह, बेगि उठ प्राणी मान सलाह ॥थल॥
औघट घाट सूखम गैला, बिन पग पैंडा चलना अकेला।
करत पुकारा सांभल हेला, गाफिल होइ क्यों भयो गुमराह ॥
बेगि उठ प्राणी मान सलाह ॥1॥
तुरत चलण की त्यारी कीजे, घड़ी एक दम ढील न दीजे।
अपना अगम का मारग लीजे, तो पहुँचौ किहिं ठौर ठाह ॥
बेगि उठ प्राणी मान सलाह ॥2॥
जानौ ना दूर रहना ना नेड़ा, कुटुँब कबीला दीसै नहिं तेरा।
करोड़ पुकार्‌यो लेकर भेड़ा, भव सागर का भारी दरियाह ॥
बेगि उठ प्राणी मान सलाह ॥3॥
अब का चूका भव भव भूला, कुबुधि कुमति सँग क्यों नर खेला।
नाम कूँ छोड चौरासी मूँ डोला, हरि बिन कौन तेरा हमराह ॥
बेगि उठ प्राणी मान सलाह ॥4॥
देह मनख तैं अमोलक पाई, भजन किए कुछ होत भलाई।
जान सकै तो जान मेरा भाई, बेर बेर मैं करूँ आगाह ॥
बेगि उठ प्राणी मान सलाह ॥5॥
सार सबद मुँह उलट समाओ, लहर बाहर की मौज मिलाओ।

मृत्युलोक में फिर न आओ, रहत रोहल पीछै बेपरवाह ॥
बेगि उठ प्राणी मान सलाह ॥6॥35॥

ज्ञान रूपी सवेरा हो गया है, जाग, रास्ते पर चलना है, जल्दी उठ, हे प्राणी! मेरी सलाह मान ॥थल॥ रास्ता ऊबड़-खाबड़ और तंग है। बिना पैरों के रास्ते में अकेले चलना है। मैं चिल्लाकर कह रहा हूँ, मेरा हेला (बुलावा, उपदेश, सलाह) सुन। गफलत में पड़कर क्यों गुमराह हो रहा है। हे प्राणी! जल्दी उठ खड़ा हो, मेरी सलाह को मान ले ॥1॥ तुरन्त चलने की तैयारी कर। एक घड़ी तक श्वास लेने की प्रतिक्षा भी मत कर। अपने अगम-धाम का मार्ग पकड़, तब ही जाकर तू कहीं ठौर-ठिकाने पहुँचेगा। हे प्राणी! मेरा परामर्श मान ले, हे प्राणी! चलने को उठ खड़ा हो ॥2॥ मृत्यु को दूर मत मान। कुछ भी पास में नहीं रहेगा। कुटुम्ब-कबीला जो दिखता है, वह तेरा नहीं है। साथ में नाव लेकर मैं करोड़ों बार तेरे को पुकार-कर कह चुका कि भव-सागर भारी दरियाव है, इसको पार करना मुश्किल है। मेरी नौका में चढ़ जा। हे प्राणी! मेरा परामर्श मान ले, शीघ्रतापूर्वक उठ खड़ा हो, सावधान हो जा ॥3॥ हे भोले प्राणी! इस बार चूक गया तो बार-बार जन्मेगा, मरेगा। हे मनुष्य! तू क्यों कुबुद्धि व कुमति के संग खेल रहा है। तू भगवन्नाम को छोड़कर चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर रहा है। बिना हरि के तेरा साथी कौन है। हे प्राणी! मेरी सलाह मानकर शीघ्रतापूर्वक चलने को उठ खड़ा हो ॥4॥ तूने मनुष्य की अमूल्य देह प्राप्त की है। भजन करने से ही कुछ न कुछ कल्याण होता है। हे मेरे भाई! तू जान सकता है तो जान ले। मैं बार-बार सावधान कर रहा हूँ- हे प्राणी! मेरी सलाह मानकर शीघ्रतापूर्वक चलने को उठ खड़ा हो ॥5॥ संसार से उलट-कर सार शब्द में समरस हो। बाह्य लहर=आनन्द को भीतरी मौज में मिला ले। तत्पश्चात् मृत्युलोक में नहीं आओगे। रोहल कहते है- तत्पश्चात् निष्फिक्र रहना होता है। हे प्राणी! शीघ्रतापूर्वक उठ खड़ा हो, मेरी सलाह मान ले ॥6॥35॥

सकल अवतार को एक ही मूल है, साहिब सकल सूँ न्यारा।
नवियाँ तुर्क अर हिन्दुवाँ अवतार, ए तो बन्या पसारा ॥थल॥
सवा लाख नवी है तुरकाँ के माहीं, हिन्दुवाँ चौबीस अवतारा।
चार किताब में तुरक अलूधा, चार वेद हिन्दू वारा ॥1॥
मुसलाँ करत निमाजा रोजा, जिकर फिकर ब्योहारा।
मका मदीना करि करि मरि गए, जन्म गँवाया सारा ॥2॥
व्रत अग्यारस हिन्दवाँ रखता, एकादसी अहारा।
अड़सठ तीरथ जाइ जाइ भटक्या, जाना नहीं विचारा ॥3॥
सुंनत करके तुरक कहाया, बात करत बेकारा।
हिन्दवाँ घाट कन्दूर जनेवा, तिलक ललाट लगारा ॥4॥

हिन्दवाँ पूजै पत्थर पाणी, देवी देव दुवारा।
मुसला हाड कबर का पूजै, देवै दरुद शुकारा ॥5॥
हिँदवा तुर्क दोनूँ घर भूला, बांध्या नहिं पतियारा।
जुग चार हि दावा में खोया, सड़ि सड़ि मुए नकारा ॥6॥
संत फकीर है वाँ सूँ न्यारा, खेलै खेल खेलारा।
रोहल रमज समझ सुख पावै, ऐसा नर कोई सचियारा ॥7॥36॥

समस्त अवतारों का मूल एक साहिब है जो सबसे न्यारा है। तुर्कों के नवी और हिन्दुओं के अवतारये तो उस एक के मात्र विस्तार हैं ॥थल॥ तुर्कों के यहाँ सवा लाख नवी माने जाते हैं। हिन्दुओं में चौबीस अवतारों की मान्यता है। तुर्क चार किताबों में उलझे हैं, हिन्दू चार वेदों वाले हैं ॥1॥ मुसलमान नमाज पढ़ते व रोजा रखते हैं। अल्लाह का जिक्र=स्मरण, फिक्र= मनन करने का व्यवहार करते हैं। मक्का-मदीना की हज=यात्रा कर-करके मर गये और इस प्रकार सारा जन्म बर्बाद कर दिया ॥2॥ हिन्दू एकादशी का व्रत रखते हैं। एकादशी को निराहार रहते हैं। अड़सठ तीर्थों में जा-जाकर भटकते हैं किन्तु साहिब का यथार्थ विचार नहीं जाना ॥3॥ सुन्नत कराकर तुर्क कहलाते हैं। बेकार की बातें करते हैं। हिन्दू शरीर पर कन्दूर=भगवा वस्त्र व यज्ञोपवीत धारण करते व ललाट पर तिलक लगाते हैं ॥4॥ हिन्दू मूर्ति व तीर्थों की पूजा करते हैं। देवी-देवों के द्वारों पर जाते हैं। मुसलमान कबरों में दबे हाडों को पूजते हैं और दरुद पढ़कर शुक्रिया देते हैं ॥5॥ यथार्थ में हिन्दू तथा तुर्क दोनों ही निज-घर को भूल गये हैं। किसी ने भी साहिब के प्रति विश्वास स्थिर नहीं किया। चारों युग दावा करने में ही खो गये और सड़-सड़कर नाकारा हो गये॥ 6॥ संत फकीर उनसे विलक्षण हैं। खिलाड़ी बनकर खेल खेलते हैं। रोहल कहते हैं- रमज=रहस्यानुभूति, आत्मानुभूति करके सुख पाते हैं, ऐसा कोई ही सच्चा प्राणी होता है ॥7॥36॥

हम बाजीगर बाजी खेलूँ, कोइ वेखै नर सचियारा।
नट बाजीगर नाम हमारा, अधर खेलै न्यारा ॥थल॥
सातवें पयाल निसान उपाया, दहुँ दिसि मँड्या पसारा।
अनहद ढोल बाजे नौ खँड ऊपर, लागि रह्या झंकारा ॥1॥
रचिया राज पाँच नौ पसर्या, उतपत बन्या आकारा।
ब्रह्मा विष्णु सिव पांडे रमता, नाच करै सक्ति जगत बजारा ॥2॥
पाच पचीस सभै जग मोह्या, ताँ लागा ततकारा।
मूरख देखत माहिं अलूधा, बिरला जानि विचारा ॥3॥
टुक एक जंत्र मंत्र वचन सिद्धाई, बनिया दस अवतारा।
ऐसे हलाइ जगत कूँ चलिया, ओ भी नहिं करतारा ॥4॥

बारह बहोतर पंथ कहीजे, एही ओला व्योहारा।
पखापखी करि बाण्या बांध्या, पाया जनम दुवारा ॥5॥
निर्गुण नाम सकल सूँ न्यारा, निरपख रहै निरधारा।
निराधार आधार न राखै, सोइ है सिरजणहारा ॥6॥
साँच कहूँ मैं हेला साँचा, सुनै कोइ साधु पुकारा।
कहत रोहल मेरा खोज विचारै, तो पावै खेल अपारा ॥7॥37॥

मैं बाजीगर हूँ, खेल खेलता हूँ। कोई सत्य को जानने वाला नर उसको देखता, जानता है। मेरा नाम बाजीगर नट है जो अधर, न्यारा होकर खेलता है। अर्थात् खेल रूपी सृष्टि में लिपता नहीं है। दृष्टा मात्र है ॥थल॥ मैंने सातवें आसमान पर निशान रोपा है, दसों दिशाओं में ब्रह्मांड का पसारा=प्रसार कर रखा है। नौवें खंड के ऊपर अनहद नाद का ढोल बजता है और अनवरत् झंकार, ध्वनि होती है ॥1॥ मैंने अपना राज स्थापित किया है। पाँच महाभूत, नौ सूक्ष्म-तत्त्व का प्रसार किया जिससे उत्पत्ति होकर आकार, स्थूल आकार बना। ब्रह्मा, विष्णु व ब्रह्मा नामक पुरोहित रम रहे हैं और महाशक्ति बाजार में नाच नाचती है ॥2॥ पाँच-पचीसात्मक समस्त जगत मोहित हो गया जिनके ऊपर शक्ति के ततकारे का प्रभाव हो गया। मूर्ख लोग देखते ही उस नाच में भीतर-भीतर उलझ गये। कोई बिरला होता है जो इसको विचारपूर्वक जानता है कि यह है क्या ॥3॥ थोड़ा-बहुत यंत्र, मंत्र, वचनों की सिद्धाई के साथ दस अवतार बने हैं। इस प्रकार ये समस्त जगत् को चलाकर जगत से चले जाते हैं। वास्तविक कर्तार=साहिब ये भी नहीं हैं ॥4॥ बारह-पंथ व बहत्तर-पाखंड कहे जाते हैं। ये सभी जागतिक व्यवहार मात्र हैं। पक्षपात-मय बनाव बना रखे हैं जिनके कारण पुनः-पुनः जन्म लेते हैं (मुक्ति प्राप्त नहीं करते) ॥5॥ निर्गुण-नाम सबसे विलक्षण है जो पक्षहीन व निराधार रहता है। निर्गुण-नाम निराधार है अर्थात् उसका कोई दूसरा आधार नहीं, प्रत्युत् वही सबका आधार है। वास्तव में यही सृजनहार साहिब है ॥6॥ मैं सत्य कहता हूँ, मेरा उपदेश सच्चा है। जो कोई साधु हैं, वे मेरी पुकार को सुनो। रोहल कहते हैं- जो मेरी खोज करने को विचारता=उद्यत होता है, वही मेरे खेल को पाता है ॥7॥37॥

कोइ ऐसा साहब का साधू है, जो खेलै उन्मन सहज समाधी है ॥थल॥
सत सबदाँ की डोरी पकड़ै, निसदिन धुनि मँह लागै।
पाँच पचीसी भार हटावै, आसा तृष्णा त्यागै ॥1॥
अर्ध उर्ध का करौ निवेरा, पूरा राखौ प्राणा।
काया खोज होवै जद न्यारा, तो पीछै निरवाणा ॥2॥
पिंड ब्रह्मंड का अंडा फूटा, पावै अमर लोक का धाम।
अडिग अविचल देस कहीजे, उहाँ हंस लेवै विसराम ॥3॥

आवै न जावै मरै न जनमें, उतपति परलय नाहिं।
संत साहब का करत विलासा, इन असथानाँ माहिं ॥4॥
आकार हि बुदबुदा ज्यूँ जल के माहीं, त्यूँ इन घर अकल दरियाह।
आप हि उपजै आप हि विनसै, कैत यूँ रोहल साह ॥5॥38॥

साहिब का कोई ही ऐसा साधु होता है जो उन्मनी सहज समाधि में खेलता, निमग्न रहता है ॥थल॥ सत्य-शब्द की डोरी पकड़कर निशि-दिन उसी की ध्वनि में लगता है। पाँच व पचीस का भर हटाकर आशा व तृष्णा को त्याग देता है ॥1॥ ऊपर-नीचे का (प्राण व अपान को एक करके) निपटारा करके दोनों को एक प्राण के रूप में रखो। जब काया का अस्तित्त्व अलग हो जाता है, उसके उपरान्त ही निर्वाण की स्थिति बनती है ॥2॥ पिंड व ब्रह्मांड रूपी अंडे के फूटने पर ही अमरलोक-धाम की प्राप्ति होती है। वह अडिग, अविचल देश कहा जाता है। वहीं हंस विश्राम पाता है ॥3॥ उस अडिग, अविचल देश में न आता, न जाता है। न मरता, न जन्मता है। वहाँ उत्पत्ति व प्रलय भी नहीं है। संत, साहिब का विलास करता है, इन स्थानों में ॥4॥ जैसे जल में जल का बुदबुदा आकारवान होता है, वैसे ही इनके घर में (अडिग, अविचल के घर में) अकल (न कलने वाला) दरियाव है। आप स्वयं ही उपजता व आप स्वयं ही विनशता है, ऐसा रोहलशाह कहता है ॥5॥38॥

साधौ नगर हमारा न्यारा।
और लोक सब ऊरा रह गया, परसै कोइ हंस प्यारा ॥थल॥
आदि पुरुष सिव विष्णू ब्रह्मा, इन चारों का विसतारा।
चौदह लोक इकीसों ब्रह्मँड, ये ही भेद पसारा ॥1॥
धर्मराइ है सभ का राजा, ले जीव नरक में डारा।
अखै वृछ मूँ अवतार उपना, वैकुँठ माहीं करत गुजारा ॥2॥
इछा सरूपी आदी माया, ओ भी चलत करत चौधारा।
बडे बडे औ सुर नर मुनिजन, अंतै छल छल मार्या ॥3॥
तेतीस करोड़ देव स्वर्ग में बैठा, नखत्र नौ लख तारा।
कलंक लगाया ले गौतम चांद कूँ, सूरवीर गिरनारा ॥4॥
सहस ऊपर पाँच नाम ठहराया, तीन अंड माहिं दोइ भारा।
अजर अजोनी चन्द्र सत सुकृत ध्यावै, यूँ नहिं उतरै पारा ॥5॥
सत्रह खंड पर चार धाम है, जिस पर जम का द्वारा।
एक निरंजन चार सिकारी, बाजै काल नगारा ॥6॥
इस पद अतीत नहिं मानै परवाना, किसी का न चलै सारा।
ररंकार अवगत पर उलट्या, हंस वाँ का संधारा ॥7॥

काल डाढ सूँ कोइ न छूटै, किमि जीवन का निस्तारा।
सागी नाम मेरा ले सुमरौ, और नाम थकवारा ॥8॥
कोटि उपाइ करै बहु कीता, समझै नहिं संसारा।
अभय अविनासी अघ नासी नहिं पूगै, पुजसे कोइ हंस सचारा ॥9॥
मानसरोवर मँह हंस विराजै, करै अंमृत भोजन अहारा।
मानख मँह हंस उहाँ सूँ आवै, काया में करत सँचारा ॥10॥
सत्त सबद सूँ सृष्टी उपनी, उतपत का आचारा।
ऐसे वचन सूँ उहाँ न पूगै, जिस मूँ बन्या आकारा ॥11॥
निज नाम हमारा सार सबद है, अजर जरै अंतर झारा।
उसकी डोर अमर लोक माहीं, मेरे सूप मझारा ॥12॥
पाँच क्रोड़ सुन सार के आगै, निहसुन धाम निहारा।
राखै ध्यान विचार विवेकी, कर लीजे उद्यम करारा ॥13॥
पाँच करोड़ सुंन के आगै, धाम गंगे भणकारा।
पाँच करोड़ सुंन के ऊपर, धाम अदीठ धणकारा ॥14॥
पाँच करोड़ सुंन जिसके आगै, अंमृत धाम की धारा।
पाँच करोड़ सुंन ऊपर सुन है, सुगंधी धाम फुहारा ॥15॥
पाँच करोड़ सुंन पर सुन कहिजे, उनमुन धाम दीदारा।
पाँच करोड़ सुंन पर धाम अचरंगी, अचरंग आवै अपारा ॥16॥
पाँच करोड़ सुंन पर सुन सुख की, मौजी धाम मल्हारा।
और करोड़ पाँच सुन्य के ऊपर, प्रतिबिंब धाम पतियारा ॥17॥
पाँच करोड़ सुंन पर धाम उजासी, जाणै कोइ जाणणहारा।
पाँच करोड़ सुंन आगल सुन है, धाम उजवाल उजारा ॥18॥
पाँच करोड़ सुंन उनके ऊपर, झगमग धाम निरवारा।
पाँच करोड़ सुंन पर महा चांदणौ, रोहल साहब निरधारा ॥19॥39॥

साधुओ! हमारा नगर न्यारा है। अन्य लोक तो इधर ही रह गये, हमारे परली ओर के नगर को कोई प्यारा हंस ही प्राप्त करता है ॥थल॥ आदि पुरुष, शिव, विष्णु व ब्रह्मा इन चारों की सहायता से ही यह सारा विस्तार (ब्रह्मांड बना) हुआ है। चौदह लोक व इकीस ब्रह्मांडों का पसारा भी इनका ही का है ॥1॥ धर्मराज सभी का राजा है जो बुरे कर्म करने वालों को नरक में डालता है। अक्षय वृक्ष में से अवतार उत्पन्न हुआ और वैकुंठ में अपना गुजर-बसर करता है ॥2॥ आदि माया इच्छा स्वरूपी है जो भी चार धार वाले चरित्र करती है। अंत में इसने बडे-बडे देवता, मनुष्य और मुनिजनों को छल-छलकर मारा है ॥3॥ तेतीस

करोड़ देवता स्वर्ग में रहते हैं। नौ लाख नक्षत्र तारे हैं। गोतम ऋषि ने चन्द्रमा को कलंकित किया जो कि शूरवीरों में गिना जाता था ॥4॥ सहस के ऊपर, पाँच नाम निश्चित् किये, तीन में से दो अंडे भारी हैं। अजर अयोनी, चन्द्र, सत् व सुकृत का ध्यान करते हैं किन्तु इस प्रकार भी पार नहीं उतरते ॥5॥ सत्रह खंड पर चार धाम हैं जिस पर यम का ठिकाना है। निरंजन एक है। शिकारी चार हैं। काल का नगारा बजता है ॥6॥ इस पद से अतीत, इस परवाने को नहीं मानता। किसी का भी सारा=वश नहीं चलता। ररंकार अविगत पर उलटा, उसके हंस का संहार किया ॥7॥ काल के डाढों से कोई नहीं बचता, फिर जीवों का तो निस्तार हो ही कैसे? इसलिए मेरे सागी=सामर्थ्यवान नाम को लेकर स्मरण करो, अन्य नाम तो नष्ट होने वाले हैं ॥8॥ करोड़ों उपाय करने के उपरान्त भी संसार वाले समझते नहीं। अभय, अविनाशी, अघनाशी नहीं पहुँचते। कोई सच्चे हंस ही पहुँचते हैं ॥9॥ मानसरोवर में हंस निवास करते हैं और अमृत का भोजन करते हैं। मनुष्य में रहने वाला हंस वहीं से आता है और काया में प्रवेश करता है ॥10॥ सत्य शब्द से सृष्टि की उत्पत्ति हुई, उसी से आचार की उत्पत्ति। ऐसे वचन कहने से वहाँ नहीं पहुँच सकते, जिसमें से आकार बना है ॥11॥ सार शब्द ही मेरा निज नाम है जिससे न जरने योग्य भी जर जाता है और अंतर्हृदय झड़कर शुद्ध हो जाता है। उसकी डोर अमरलोक में मेरे स्वरूप में है ॥12॥ पाँच करोड़ शून्य-सार के आगे निरशून्य धाम है। विचारवान विवेकी ध्यान करते हैं, कठोर उद्यम करके ॥13॥ पाँच करोड़ शून्य के आगे गंगाधाम का प्रकाश है। पाँच करोड़ शून्य के ऊपर अदृष्ट धाम की ध्वनि है ॥14॥ उसके आगे पाँच करोड़ शून्य है जहाँ अमृतधारा का धाम है। पाँच करोड़ शून्य के ऊपर शून्य है जिसमें सुगंधि धाम की फुहारें चलती हैं ॥15॥ पाँच करोड़ शून्य के ऊपर शून्य कही जाती है जहाँ उन्मन-धाम का दीदार होता है। पाँच करोड़ शून्य के ऊपर अचरंगी धाम है जहाँ अपार अचरंग आता है ॥16॥ पाँच करोड़ शून्य के ऊपर सुख-शून्य है जो आनन्दवाला धाम है। और पाँच करोड़ शून्य के ऊपर प्रतिबिम्ब धाम है ॥17॥ पाँच करोड़ शून्य के ऊपर उजाले वाला धाम है जिसको कोई जानने वाला ही जानता है। पाँच करोड़ शून्य के आगे शून्य धाम है जहाँ उज्ज्वल प्रकाश है ॥18॥ पाँच करोड़ शून्य उसके ऊपर है जहाँ जगमगाने वाला विलक्षण धाम है। पाँच करोड़ शून्य के ऊपर महाप्रकाश है जो निराधार रोहलसाहब का निवास है ॥18॥39॥

रे हंसा अमर लोक सुहावणौ, मृत्यु लोक मत वैस।
रे हंसा करै नी पयाणौ, पहुँच तू उलट अगम के देस,
फेर यहाँ नहिं आवणौ ॥थल॥
हंस बगलाँ के देस में आया, जिथे जाण न तेरी पिछाण।
हंस कौन लेवै तेरी पारखा, ए तो अंधौ लोक अजाण ॥1॥

भौ सागर की सीर में, बूडौ जावै संसार।
भजन कियो सेइ ऊतर्या, गोता खावै गँवार ॥2॥
रे हंसा तेरे कुल मूँ कोई नाहीं, ए तो जगत बिराणा होई।
मानसरोवर के मुल्क में तू जा, राज हंसाँ रो है जोई ॥3॥
अखै मँडल अस्थान है वहाँ, हिरम्बर हंस चौधार।
हीरा मोती लाल है, जाँकूँ चुग चुग करत अहार ॥4॥
न्रिभय अघट गढ गाँव है, वहाँ पहुँचे खडे प्रयाण।
बगुला पाछा रे गिर पड़ै, कोइ कोइ हंस चढै निरवाण ॥5॥
उहाँ गयाँ आवै नहीं, अडिग अवीचल धाम।
रोहल कूँ उथ राज है, अधर अगम निज गाम ॥6॥40॥

हे हंस! अमर-लोक सुहावना है। अतः मृत्युलोक में मत रह; हे हंस! तू यहाँ से प्रयाण कर। उलट-कर अगम-देश की ओर चल ताकि यहाँ फिर वापिस नहीं आना पड़े ॥थल॥ हंस, बगुलों के देश में आ गया, जहाँ न तेरी जानकारी है, न कोई पहचान है। हंस! यहाँ तेरे गुणों की पहचान कौन करेगा क्योंकि यह लोक तो अंधा व अज्ञानी है ॥1॥ इस भव-सागर की धारा में सारा संसार डूबा जा रहा है। जिन्होंने भजन किया, वे ही इससे पार हो सके हैं अन्यथा मूर्ख तो गोते ही खाते रहते हैं ॥2॥ हे हंस! तेरे कुल का (तेरा सजातीय) यहाँ कोई नहीं है, यह जगत तो पराया है। मानसरोवर के मुल्क में जा, जहाँ हंसों का राज्य है ॥3॥ वहाँ अक्षय-मंडल स्थान है जहाँ चारों ओर स्वर्ण-पक्ष युक्त हंस हैं। वहाँ हीरा, मोती, लाल हैं जिनको चुग-चुग-कर हंस भोजन करते हैं ॥4॥ वह निर्भय, बिना घट वाला गढ़ व गाँव है। वहाँ खडे (सावधान होकर) प्रयाण करने वाले पहुँचते हैं। बगुले वहाँ से गिर पड़ते हैं। कोई-कोई हंस ही निर्वाण-पद पर चढते हैं ॥5॥ वहाँ जाने पर वापिस नहीं आते। वह अडिग, अविचल धाम है। रोहल का वहाँ राज्य है जो कि अधर व अगम्य निज गाँव है ॥6॥40॥

लागी प्रीति पियाजी सूँ, और बात सभ भूली।
अंत को खोज कह्यो नहिं जावै, सेज बनी पर सूली ॥थल॥
दुनिया हमारा दर्द न जानै, बेदरदी क्या बूझै रे।
लागौ घाव जिनके घट माहीं, पीड़ उसी कूँ सूझै रे ॥1॥
विरह विराग दिल भीतर जाग्यो, ऐसी लगन लगाई रे।
भूल गयो है तन मन मेरौ, जिंह दी खबर न काई रे ॥2॥
कौन हुआ है हम कूँ हेर्यो, गैब के माहिं गलताना।
देख्यू देख देखन में न आवै, होइ रह्या हैराना ॥3॥

जग जंजाल गयो मिट मेरौ, रही न कुल की आसा।
एकोएक नाम की है आसा, रोहल रहत पियासा ॥4॥41॥

प्रियतम से प्रीति लग गई, अन्य सभी बातें मैं भूल चुकी हूँ। उसके अंत की खोज के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। शूली पर सेज बनी है ॥थल॥ दुनिया वाले मेरे दर्द को नहीं जानते। बेदर्दी हमारी पीड़ा को क्या जानें। जिसके शरीर में घाव होता है, पीड़ा का अनुभव उसी को होता है ॥1॥ विरह और वैराग्य दिल के भीतर जागृत हो गये हैं, दिल में ऐसी लगन लग गई है कि मेरा तन व मन भी भूल में पड़ गया है जिसकी अब कोई खबर तक नहीं है ॥2॥ ऐसा कौन है, जो मेरे को ढूंढे। मैं तो आत्माकार स्थिति में निमग्न हूँ। देख कर देखा, किन्तु देखने में आता नहीं, हैरान हो रहा हूँ ॥3॥ मेरा जगत जंजाल मिट गया है और कुल की कोई आशा शेष नहीं रही है। मात्र एक नाम की ही आशा है, रोहल उसके लिए प्यासा रहता है ॥4॥41॥

साधौ चेतन राजा राज कमावै, जाँ की प्रजा बहुत सुख पावै ॥थल॥
महल चौबारा अजब झरोका, चेतन तख्त विराजै।
राम नाम का निसान उपाया, गैबी बाजा बाजै ॥1॥
दया धरम दोइ प्रौली बैठा, जप तप फरास दोई।
आव भाव दोइ खास हजूरी, सुरति निरति पास होई ॥2॥
सील संतोष प्रेम विवेका, पाँचवाँ हमराह विचारा।
ग्यान ध्यान दोइ माँह हाजरी, आठ पहर इकसारा ॥3॥
जत सत दोई देस दिवान, पूरी अकल हलावै।
दृढ सिंघासण छत्र झिणाका, खम्या चमर दुलावै ॥4॥
चकवै राज भया है निरभय, दहूँ दिसि फिरी दुहाई।
रोहल राव रंक सुखी प्रजा, जद लागै छाप सवाई ॥5॥42॥

साधुओ! जहाँ चैतन्य नामक राजा राज्य करता है, उसकी प्रजा बहुत ही सुख प्राप्त करती है ॥थल॥ चेतन राजा के महल, चौबारे और झरोखे अजब हैं, और तख्त पर चैतन्य राजा विराजता है। राम-नाम का झंडा लहराता है और वहाँ गुप्त बाजे बजते हैं ॥1॥ पौली (प्रतोली) पर दया और धर्म दोनों बैठे हैं तथा जप व तप दोनों फरास हैं। हाव व भाव दोनों निजी सेवक हैं तथा सुरति व निरति निकट में रहती हैं ॥2॥ शील, संतोष, प्रेम, विवेक एवं पाँचवाँ साथी विचार है। अनवरत् आठों प्रहर ज्ञान व ध्यान दोनों अंदर के निजी सेवक हैं ॥3॥ देश के दीवान जत व सत हैं जो कि पूरी अक्ल से काम करते हैं। दृढ़ता सिंहासन है। छत्र झिणाका? है। क्षमा-भाव का चमर ढुलता है ॥4॥ चक्रवर्ती राज्य निर्भय हो गया

है। दसों दिशाओं में आन फिर गई है। रोहल कहते हैं- राव, रंक सारी प्रजा सुखी है, ऐसा होता है, तब राज्य की सवाई छाप मानी जाती है ॥5॥42॥

अकल कला महिं हरिजन खेलै।
रहै निरासि आस नहिं राखै, धरणि उपर पग पाँय न मेलै ॥थल॥
बिन पग पैंडे सहजे चालै, गवन करत है उलटे गेलै।
जागृत सोवत स्वप्न सुखोपति, एक धुनि लागी साँझ सवेलै ॥1॥
बिना कँठ जिह्वा वचन उचारै, अखर की बात कहै बिन हेलै।
अँखिया बिना अणभूम बतावै, सूरमा वहि वाँ पंथ सुहेलै ॥2॥
बिन मुख अंमृत भोजन खावै, मंछा धापइ दलदर ठेलै।
अनासुरत सूँ रसि या पीवै, अमिय रस प्याला अधर झेलै ॥3॥
सुकृत फूल फूल्यो घट भीतर, रोम रोम जाँकी वासना फेलै।
अलखहि बात लखी गुरु गम सूँ, रोहल सूर कहै निज चेलै ॥4॥43॥

अकल की कला में हरिजन खेलते हैं। वे निर्आशी बनकर रहते हैं। लोक-परलोक की आशा नहीं रखते। भूमि पर पैर नहीं रखते (संसार में लिपायमान नहीं होते) ॥थल॥ बिना पैरों के ही सहज ही मार्ग में चलते हैं। उल्टे-मार्ग में गमन करते हैं (कुण्डलिनी को जागृत-कर सुषुम्ना-मार्ग से ऊपर जाने को ही उल्टा-मार्ग कहा जाता है।) जागते, सोते, सुषुप्ति, स्वप्न अवस्थाओं में सुबह-शाम एक ही ध्वनि लगी रहती है ॥1॥ कंठ और जिह्वा के बिना वचन बोलते हैं। बिना हेला=बोले ही अक्षर ब्रह्म की बात कहते हैं। बिना आँखों के ही अनुभूत-तत्त्व का वर्णन करते हैं। नगारे की आवाज होने पर (सु हेलै) पंथ पर चल पड़े, वही शूरवीर है ॥2॥ बिना मुख के ही अमृत का भोजन खाते हैं। मंशा संतुष्ट होती है, दारिद्र्य पलायन करता है। ये अनासुरत का रस पीते हैं। अमृत-रस के अधर प्याले को झेलते हैं ॥3॥ घट के ही भीतर सुकृत रूपी फूल प्रफुल्लित हो गया, जिसकी सुगंधि रोम-रोम में फैल गयी है। जो अलख तत्त्व था, वह गुरु के उपदेशानुसार प्राप्त ज्ञान से जान लिया और शूरवीर रोहल, निज चेले से कहते हैं ॥4॥43॥

संत जन पास है नाम का बेड़ा।
सुनै कोइ हेला चढ आवै सूरा, अगम लोक मूँ आया तेड़ा ॥थल॥
सत का बेड़ा ले सभ कूँ बुलावै, सिर साँटै ले जावै भेरा।
छोड़ौ संसार है झूठ पसारा, काल क्रोध कुबुधि का घेरा ॥1॥
वचन मान चल्या कोइ पूरा, जम का मिटावै झगड़ा झेरा।
सभ मरजात लोकलाज खोई, होइ निरवाण न राख्या चेरा ॥2॥

सुन्य नखत्र माँह सुरत लगाई, भव जल अमाप अथाह है भेड़ा।
दूत भूत मछ भव सागर का, सतगुरु ठेल गिराया सेड़ा ॥3॥
पैंडे पयाण करत रैणि दिन, जल्द जहाज किया ले नेड़ा।
पुरसलात पार उतार्‌या, रोहल अमर घाट गम गेड़ा ॥4॥44॥

संतजनों के पास नाम रूपी जहाज है। कोई शूरवीर 'अगम-लोक का बुलावा आया है' आवाज सुनकर आते और चढ़ते हैं ॥थल॥ संत-जन सत्य रूपी जहाज को लेकर बुलाते हैं और सिर के बदले में जहाज को लेकर जाते हैं। कहते हैं- संसार को छोड़ो, यह सारा विस्तार झूठा है। यह संसार काल, क्रोध और कुबुद्धि का घेरा है ॥1॥ कोई पूर्ण साधक संतों के वचनों को अंगीकार करके चलता है और यमराज का झगड़ा-झंझट मिटाता है। समस्त मर्यादा, लोक-लाज खोकर, सांसारिक किसी भी सम्बन्धी से सम्बन्ध न रखकर, निर्वाण होकर जो जहाज पर चढ़ते हैं, उनके यमराज के झगड़े-झंझट संत-जन मिटा देते हैं ॥2॥ शून्य-शिखर में सुरति=चित्त की वृत्ति को संयोजित करते हैं। संसार-सागर का जल अमाप=माप-हीनता व सीमा-हीनता का समूह है। भव-सागर के दूत, भूत, मत्स्य आदिकों को सद्‌गुरु महाराज ने धक्का देकर दूर गिरा दिया ॥3॥ रात-दिन मार्ग में चलते हैं जिससे जहाज शीघ्र ही अगम-लोक के निकट लग जाता है। सद्‌गुरु महाराज ने वह पुल भी पार करा दिया, जिसकी चौड़ाई सलाई के समान बिल्कुल पतली है। (पुरसलात, मुस्लिम-धर्म का पारिभाषिक शब्द है।) रोहल कहते हैं- यह अमरधार पाने का रास्ता है ॥4॥44॥

जिस घर सूँ तुम आव्यो, उस घर हंसा जाइ।
संग गुराँ को कर चलौ, पल में देवै पुजाइ ॥
निर्भय नगर माहीं थिर रहौ ॥थल॥
औराँ तो घर औंधा मंडिया, तीन लोक के माहिं।
ब्रह्मा विष्णु शिव पहुँचै नाहीं, चार वेद को गम नाहिं ॥1॥
चौदह लोक में एक लोक है, नौ खंड जगत व्यवहार।
सात दीप नवखंड नहीं, घट मंडल नहिं आकार ॥2॥
सुर आसुर दानव देवता, और सर्व अवतार।
उहाँ तो कोइ पूगा नाहीं, देह धर मुवा केइ बार ॥3॥
चाँद सूरज उहाँ नाहीं, नखतर तारा नौ लाख।
ध्रुवह मंडल मँह उलझिया, मर मिट गया होइ राख ॥4॥
धरमराइ को सभ दँड भरै, पकड़ दूत ले जाइ।
चौदह लोक में जा बसै, अंत चौरासी जाइ ॥5॥
उहाँ ररंकार अवगत नहीं, महल नहीं अटल कोट।

कोइ अविनासी सरूर नहीं, सभ पर जिसकी चोट ॥6॥
सार सब्द निज नाम है, जिसको ल्यो आधार।
असंख सुन ऊपरि धाम है, जिहिं रो भजन करौ इकसार ॥7॥
जहाँ सुरति निरति पहुँचै नहीं, अनासुरति को खेल।
अमर लोक सुहावणौ झरै, किमि करि लीजे गैल ॥8॥
उहाँ तख्त सिंघासण दरबार है, चमर ढुलै चौधार।
हंस केहड़ी सुन कर रह्या, मोख है सरकार ॥9॥
ओही तत्त्व हमारा धाम है, असंख जुगाँ सूँ अग्याध।
रोहल होइ हम आवियो, अंत उधरणा साध ॥10॥45॥

जिस घर से तुम आये हो, हे हंस! उसी घर को जाओ। साथ में गुरु का संग-साथ रखो जो तुमको पल मात्र में गंतव्य तक पहुँचा देंगे। निर्भय-नगर में स्थिर होकर रहो ॥थल॥ औरों ने तो तीन-लोकों में उल्टे घर बनाये हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी निर्भय-नगर तक नहीं पहुँचते; चारों वेदों को भी उसकी गम नहीं है ॥1॥ चौदह-लोकों में से एक लोक है जिसमें जगत का व्यवहार नव-खंडों में है। सात-द्वीप व नव-खंड तथा घट-मंडल-आकार वहाँ नहीं है ॥2॥ सुर, असुर, दानव, देवता तथा सर्वावतार, वहाँ तक कोई नहीं पहुँचा। सभी देह धारण कर-करके कई बार मर गये ॥3॥ वहाँ चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, नौ लाख तारे नहीं हैं। ये सब ध्रुव-मंडल में ही उलझकर रह गये, मर-कर राख होकर मिट गये ॥4॥ सभी धर्मराय का दंड भुगतते हैं। उसके दूत पकड़कर ले जाते हैं। चौदह लोकों में जाकर तो निवास कर लेते हैं किन्तु अंत में चौरासी में ही आकर पड़ते हैं ॥5॥ वहाँ ररंकार अविगत नहीं है, महल व अटल-कोट भी नहीं है। वहाँ कोई अविनासी का सरूर=सुरूर=नशा नहीं है कि जो सभी पर चोट करता है, प्रभाव डालता है ॥6॥ सार शब्द केवल निज नाम है उसी का आश्रय लो। असंख्य शून्यों के ऊपर उसका धाम है, उसी का लगातार भजन करो ॥7॥ जहाँ सुरति व निरति नहीं पहुँचती, वहाँ अनासुरति का खेल है, सुहावना अमर-लोक शोभायमान है, उसका रास्ता कैसे भी करके प्राप्त करो ॥8॥ वहाँ तख्त सिंहासन युक्त दरबार है, चारों ओर चमर ढोले जाते हैं, कोई ही हंस वहाँ रहता है, मोक्ष ही सरकार है ॥9॥ यही तत्त्व हमारा धाम है। यह अनंत युगों से अगाध स्वरूप है। वहाँ से मैं रोहल बनकर, अनंत संतों का उद्धार करने को भूलोक में आया हूँ ॥10॥45॥

हरि भक्तन हरि नाम उचार्‌यो।
निस दिन हर घड़ी हर पल दम, ऊठत बैठत कदे न विसार्‌यो ॥थल॥
फिरत उदास जगत सूँ न्यारा, मन ममता को मोह निवार्‌यो।
काम क्रोध पाँच पचीस ले, सभ ही विरहा अगनी बार्‌यो ॥1॥

खम्या महा बल ग्यान का बाण, सत नाम गुण ले हाथ में धार्‍यो।
कुलछ करम दुख भरम विकारा, सभ दल पकड़ काट संघार्‍यो ॥2॥
घाट मिटाइ औघट घाट राख्यो, निहकलंक होइ सभ कलंक उतार्‍यो।
मृत्त लोक की आसा छोड़ी, असल ठिकाणौ आडौ चितार्‍यो ॥3॥
कुसंग तज्यो सतसंग में रहनी, नाम के लाभ सूँ सदा निहार्‍यो।
रह गलतान अंतर धुनि लागी, अनंत अनंत अनंतौ उचार्‍यो ॥4॥
जिहिं जान्यो साहब पहचान्यो, धर ध्यान विवेक सुध ग्यान विचार्‍यो।
रोहल राहा सीधी चालौ, उन संत अपनौ हंस उबार्‍यो ॥5॥46॥

हरि-भक्त हरि-नाम का उच्चारण करते हैं। निशि-दिन, हर-घड़ी, हर-पल, हर-श्वास, उठते-बैठते हरि -नाम का विस्मरण कभी नहीं करते ॥थल॥ जगत से उदासीन व न्यारे हुए विचरण करते हैं; मन से ममता व मोह का निवारण करके। काम, क्रोध, पाँच तत्त्व, पचीस प्रकृति सभी को विरह रूपी अग्नि में जला डालते हैं ॥1॥ क्षमा का महा बल, ज्ञान का बाण, सत्य नाम का धनुष हाथ में धारण करते हैं। कुलक्षण, कर्म, दुख, भ्रम, विकार आदि, समस्त दल को पकड़कर, काटकर नष्ट करते हैं ॥2॥ शरीर को मिटाकर (आसक्ति मिटाकर) अवघट-अशरीरी शरीर धारण करते हैं। निष्कलंक बनकर समस्त कलंकों को दूर करते हैं। मृत्युलोक की समस्त आशाओं को नष्ट करके असली ठिकाने की ओर चित्त को संयोजित करते हैं ॥3॥ कुसंग को त्यागकर सुसंग में रहते हैं। भगवन्नाम के लाभ की ओर हमेशा देखा अर्थात् भगवन्नाम-जप किया। अंतर में ध्वनि लगाकर उसीमें निमग्न रहते हैं। अनंत परमात्मा के अनंत नामों को अनंत बार उच्चारण करते हैं ॥4॥ जिन्होंने ध्यान करके, विवेक व शुद्ध ज्ञान का बारंबार मनन करके साहिब को जानकर पहचान लिया है। रोहल कहते हैं, जो सीधे-मार्ग पर चलते हैं, उन संतों ने अपने हंस का उद्धार कर लिया ॥5॥46॥

सारंग

बरसत प्रेम बादल घन मेह।
विरह की बूंद पड़ी जिन ऊपर, दिन दिन बधत सनेह ॥थल॥
अंमृत धारा रिमझिम लाई, पीवत रह रस ठाहर पाई।
करम न लागै खेह, बरसत प्रेम बादल घन मेह ॥1॥
गाजै गगन में अनहद घोर, दादुर बोलै चातक मोर।
आतम पायो भेह, बरसत प्रेम बादल घन मेह ॥2॥
ग्यान घटा करि दह दिसि आया, जीउ सीउ में उलट समाया।
भूल गए तन देह, बरसत प्रेम बादल घन मेह ॥3॥

भया चित चेतन कुबुधी भागी, रोहल रूह अँतर धुनि लागी।
चरण कमल में लेह, बरसत प्रेम बादल घन मेह ॥4॥47॥

प्रेम रूपी बादलों से घनघोर मेह बरसता है। जिनके ऊपर विरह रूपी बूंद पड़ जाती है, उनका प्रेम दिनानुदिन बढ़ता है ॥थल॥ अमृतधारा की रिमझिम झड़ी लग रही है। इस अमृत-रस को पीते रहने से प्राप्तव्य परमधाम रूपी जगह प्राप्त हो गई। अब कर्मों की आंधी की मिट्टी नहीं लगती। प्रेम रूपी बादल घनघोर मेह बरसाते हैं ॥1॥ गगन में अनहद नाद गर्जता है। चातक, दादुर और मोर जैसी वहाँ नाद या ध्वनि होती है। आत्मा का भेद प्राप्त हो गया, प्रेम रूपी बादल घनघोर मेह बरसते हैं ॥2॥ ज्ञान रूपी घटाओं को लेकर प्रेम रूपी बादल दसों दिशाओं में छा गये। जीवात्मा उलटकर, शीव=परब्रह्म परमात्मा से एकाकार हो गया। परिणामतः शरीर व घर को भूल गये। प्रेम रूपी बादल घनघोर मेह बरसते हैं ॥3॥ चित्त चैतन्य हो गया, कुबुद्धि नष्ट हो गयी, आत्मा के अंदर ध्वनि लग गयी, चरण कमलों का आश्रय ग्रहण करके। प्रेम रूपी बादल घनघोर मेह बरसते हैं ॥4॥47॥

मंगल

प्यारे दुख सुख दूर बिडार, जगत को संग तजौ।
दुरमति दुविधा खोइ, सुमति कारज सझौ ॥थल॥
प्यारे सतगुरु सूँ सभ होइ, प्रमारथ जीव का।
देवै तुरत बताइ, सुमारग पीव का ॥2॥
प्यारे राख वचन में ध्यान, सुनौ निज कान सूँ।
मरजीवा होइ रहौ, सूरा सच ध्यान सूँ ॥3॥
प्यारे और काम अकाम, सुध काम इक नाम है।
नाम लेन निरवाण, निज धाम विश्राम है ॥4॥
प्यारे असल ठिकाना पाइ, दूजी नहिं आसा करै।
राखौ नहिं पाछल और, पिया आज्ञा धरै ॥5॥
प्यारे अरस परस है दीदार, पिया सन्मुख बसै।
रोहल साहब के संग, सदा रिलमिल हँसै ॥6॥48॥

हे प्यारे! दुःख-सुख को दूर करके जगत् का संग (आसक्ति) त्याग दे। दुर्मति व दुविधा को नष्ट करके सुमति-पूर्ण कार्य कर ॥थल॥ जीव का समस्त परमार्थ सद्गुरु द्वारा संभव होता है। प्रियतम को पाने का मार्ग तुरंत बता देते हैं ॥2॥ प्यारे! चित्त-वृत्ति को सद्गुरु के वचनों में लगा-कर रख और उनको एकाग्र होकर कानों से सुनो। सच्चे ध्यान के द्वारा जीवन्मुक्त शूरवीर होकर रहो ॥3॥ प्यारे! अन्य कार्य, शुद्ध काम नहीं हैं। शुद्ध काम परमात्मा

का नाम है। नाम-स्मरण करना निर्वाण-स्वरूप निज-धाम में विश्राम है ॥4॥ प्यारे! असली ठिकाना पाने का प्रयत्न कर। दूसरी आशा मत कर। प्रियतम की आज्ञा में ही पैर आगे रख। पैरों को एक बार आगे रखकर पीछे मत कर ॥5॥ प्यारे! अरस-परस (आमने-सामने) दर्शन कर। प्रियतम सामने ही तो है। रोहल, साहब के साथ सदैव रल-मिलकर आनंद करता है ॥6॥48॥

प्यारे, मानखौ रतन अमोल, कैसे पुन पावियो।
कूड़ कपट कर जग माँह, जनम गँवाइयो ॥थल॥
प्यारे, चेतना है तो चेत, अचेत क्यों रहिए।
साहब को नाम संभार, साच तुझ कूँ कहिए ॥1॥
प्यारे, सतगुरु तेरौ है स्याम, सीस चरने धरौ।
सहस बार कुरवान, अपना तन मन करौ ॥2॥
प्यारे, सिर साँटै नाम सुणाइ, सोहंग जाणिए।
महर अगम की मौज, सुहागण माणिए ॥3॥
प्यारे सतगुरु देवै सुहाग, दुहाग आवै नहीं।
नैना चढी खुमार, उतरि जावै नहीं ॥4॥
प्यारे लोट पिया की सेज, दुख सभ विसर गया।
रोहल साहब बहुत, असंख आनंद भया ॥5॥49॥

प्यारे! मनुष्य-जन्म जैसा अमूल्य रत्न कितने ही पुण्यों के प्रताप से मिला है। तूने तो झूठ व कपट का जगत में सहारा लेकर व्यर्थ ही जन्म को बर्बाद कर दिया ॥थल॥ प्यारे! सावधान होना है तो हो जा, असावधान क्यों रहता है? मैं तुझसे सच कहता हूँ, साहिब के नाम का स्मरण कर ॥1॥ प्यारे! सद्‌गुरु तेरा स्वामी है, उसके चरणों में मस्तक धर। अपने तन-मन को हजार बार न्यौछावर कर ॥2॥ प्यारे! सिर के बदले में नाम-स्मरण का उपदेश देते हैं, तब भी यह सौदा सस्ता ही जान। अगम की कृपा और आनंद से अपने आपको सौभाग्यवान जान ॥3॥ प्यारे! सद्‌गुरु ऐसा सौभाग्य देते हैं कि उसके पश्चात् दुर्भाग्य आता ही नहीं। नयनों में चढ़ा हुआ नशा, उतरता नहीं ॥4॥ प्यारे! प्रियतम की सेज पर सोने से समस्त दुःख विस्मृत हो गये। रोहल कहते हैं- साहिब के मिलने से संख्यातीत आनंद मिला ॥5॥49॥

प्यारे कंथन नाल संजोड़, आज पूनम भई।
हरष राखौ निज भाव, अचरँग अंते सई ॥1॥
प्यारे सज सोलह सिंगार, सतसंग जावाई।
भ्रम का पड़दा तोड़, कुल लाज गँवाई ॥2॥
प्यारे ए काया दिन दोइ, कुछ सुकृत कीजिए।
निज नाम अमीरस प्रेम, पियाला पीजिए ॥3॥

प्यारे सब्द की डोर लगाइ, चढ़ मकड़ी तार सूँ।
अनासुरत वृति धार, अलिप संसार सूँ ॥4॥
प्यारे करि सतगुरु को संग, पियाजी सूँ मिल रहौ।
औ सुख आनंद विलास, किसी कूँ मत कहौ ॥5॥
प्यारे सदा रहौ गलतान, मंगल गाविए।
रोहल साहब की धाम, हंसा पाविए ॥6॥50॥

हे प्यारे! आज पूर्णमासी है। कंथन=प्रियतम के साथ सम्बन्ध जोड़। हर्ष सहित निज भाव रख। अंत में अचरंग है ॥1॥ प्यारे! सोलह श्रृंगार सजाकर सत्संग में जा, भ्रम के पड़दे को तोड़; कुल की लज्जा को गँवाकर ॥2॥ प्यारे! यह काया दो दिन की है, थोड़ा-बहुत सुकृत (पुण्य) कर। निज नाम के अमृत का प्याला पी ॥3॥ प्यारे! शब्द की डोर (लय) लगाकर उस पर उसी प्रकार आरूढ़ हो जैसे मकड़ी लार से तार बनाकर बार-बार जाला पूरने को आती-जाती है और उसी में बन्द हो जाती है। अनन्य-वृत्ति परमात्म-नाम में लगाकर संसार से दूर हो जा ॥4॥ प्यारे! सद्गुरु की संगति करके प्रियतम से मिलकर रह। प्रियतम से मिलने का आनंद-विलास किसी से भी मत कह ॥5॥ प्यारे! सदैव प्रियतम में निमग्न रह और मंगल-गान कर। रोहल कहते हैं, साहिब की धाम हंसों को मिलती है ॥6॥50॥

प्यारे करौ आज आनंद उछाव, तिथि पूनम वार है।
प्यारे रिलमिल करौ सनेह, सतसंगत सार है ॥1॥
प्यारे वंदन कर होइ अधीन, गुरु के चरनौं रहौ।
राख निरंतर ध्यान, सत नाम अह निसि कहौ ॥2॥
प्यारे सुद्ध सुरत मिलाइ, कर दीदार सरूप का।
असंख ससि सूर उजवाल, अखंड अनूप का ॥3॥
प्यारे अखंड अनूप है आप, दरसन पर आनियो।
हंसा करै कलोल, वचन मेरा मानियो ॥4॥
प्यारे उहाँ गयाँ नहिं आवै, देह पाछै धराइ कै।
रोहल अमर पुरुष के धाम, पूगा हंसा जाइकै ॥5॥51॥

प्यारे! आज आनंद का उत्सव करो। आज पूनम तिथि है। प्यारे! हिल-मिलकर स्नेह करो, सार रूप सत्संगति है ॥1॥ प्यारे! शरणागत होकर वन्दना करो और गुरु के चरणों की सान्निध्य में रहो। निरंतर ध्यान करो। अहर्निशि सत्य-नाम का स्मरण करो ॥2॥ प्यारे! शुद्ध सुरति को प्रियतम से मिलाकर उसके स्वरूप का दीदार कर। उसका प्रकाश असंख्यों चन्द्रमा, सूर्य के अनुपम अखंड प्रकाश के समान है ॥3॥ प्यारे! प्रियतम अखंड व अनुपम है, दर्शन प्राप्त कर ताकि तेरी आत्मा आनंद-केलि करे, मेरा यह वचन मान ले ॥4॥ प्यारे!

वहाँ जाने के पश्चात् कोई भी देह धारण करके वापिस नहीं आता। रोहल कहते हैं- अमर पुरुष के धाम में हंस जाकर पहुँच गया ॥5॥51॥

छाप

राम नाम धन सतगुरु दीया। सिर के साँटै प्याला पीया ॥
घट भीतर का खोज बताया। सत सबदाँ सूँ सूझी काया ॥1॥
मूल चक्र पलहड़ै दृढताई। लिंग चक्र सूँ देह पलटाई।
नाभि कमल से दम उलटाना। उहाँ है विसनू का नीसाना ॥2॥
दिल दरियाह भर्‌या भरपूर। दे टुबकी नित बरसै नूर।
हृदय कँवल में सिव दरसाया। हीरा मोती माणक पाया ॥3॥
कंठ कमल में हंसा बोलै। तिरवेणी की खिड़की खोलै।
भँवर गुफा में करत निवासा। को अमीरस पीवै प्यासा ॥4॥
गगन मंडल में हुवा झँकारा। अनहद बाजै नाद अपारा।
जागी जोति भया उजवाला। मन चित होइ रह्या मतवाला ॥5॥
प्रेम कुंजी सूँ प्रोल उघाड़ी। एक हाथ की लागी ताड़ी।
पुहुप पछिम की घाटी चढिया। उलट अगम के मारग पड़िया ॥6॥
त्रिकुटी खोल चढ्या निरवाणा। पीछै हंस अकास उडाणा।
असंख सुन पर अविचल धाम। उहाँ हरिजन कीया विश्राम ॥7॥
जाइ पूगा है दसवें द्वार। सहज समझ सूँ किया दीदार।
रोहल साहब आपौ आप। मिटी चौरासी लागी छाप ॥8॥52॥

सद्‌गुरु ने राम नाम रूपी धन प्रदान किया। सिर समर्पित करके राम-नामामृत का प्याला पान किया। शरीर के भीतर ही खोज करने का उपदेश दिया। सत्य शब्द के द्वारा काया का शोधन किया ॥1॥ सर्वप्रथम मूलचक्र पर दृढ़ता करवाई। लिंगचक्र से देह को पलटवाई। नाभि-कमल से श्वास उल्टा हुआ। वहाँ विष्णु का स्थान है ॥2॥ दिल रूपी दरियाव भरपूर है। डुबकी मारने पर नित्य प्रकाश बरसता है। हृदय-कमल में शिव का दर्शन हुआ और हीरा, मोती, माणिक्य प्राप्त किये ॥3॥ कंठ कमल में हंस बोलता है जो त्रिवेणी की खिड़की को खोलता है। भँवर गुफा में निवास करता है। वहाँ कोई प्यासा अमृत-रस पीता है ॥4॥ गगन-मंडल में झंकार होती है। अपार अनहद नाद बजता है। ज्योति जागी जिससे प्रकाश हुआ, मन और चित्त मतवाले हो रहे हैं ॥5॥ प्रेम रूपी कूँची से दरवाजा खोला, एक हाथ की ताली=कूँची लगी द्वार खेलने में; पुष्पों की पश्चिम की घाटी से ऊपर चढ़े (सुषुम्ना में 21 छल्ले होते हैं, उसी को संतों ने घाटी कहा है।) उलटकर अगम के मार्ग पर चले ॥6॥ त्रिकुटी को खोलकर निर्वाण स्थान पर चढ़ गये। तत्पश्चात् हंस उडकर

आकाश को गया। असंख्य शून्यों पर अविचल धाम है वहाँ हंस-जन विश्राम करते हैं ॥7॥ दसवें द्वार पर पहुँच गये। सहजभाव से साक्षात्कार किया। वहाँ साहिब ही साहिब, आप ही आप है। चौरासी मिट गयी। साहिब की छाप लग गयी ॥8॥52॥

गुरु सबदी रोहल साहब की चेले कूँ प्रबोधा

अर्ध नाम उठावै, उर्ध नाम उलटावै।
अर्ध नाम की गैब अवाजा। उर्ध्व नाम का अनहद बाजा ॥
अर्ध नाम सात दीप नौ खंडा। अर्ध नाम पिंड ब्रह्मंडा ॥
अर्ध नाम का सकल पसारा। उर्ध्व नाम है अलेख रा ॥
सीस गुराँ के चरणै दीया। सत्त नाम का बीड़ा लीया ॥
सत्त नाम की भूली भाख्या। चौरासी में पड़ता राख्या ॥
स्याम अखर अरूप की रेख। खोल खिड़की अपना साहब सनमुख देख ॥
रोहल साहब का प्रबोध, निज चेले कूँ सुनावै, वृत्ति रहती बतावै।
निज सरूप लखावै, भरम मिटावै, कबहुँ नहिं डुलावै, सुद्ध मार्ग पावै ॥53॥

रोहलसाहब की शब्दी, शिष्य को प्रबोध

नीचे से नाम को उठाना, ऊपर के नाम को और ऊपर उठाना। नीचे के नाम की ध्वनि गुप्त है। ऊपर के नाम की आवाज अनहद है। नीचे का नाम सात द्वीप, नौ खंड में हैं। नीचे का नाम पिंड-ब्रह्मांड में है। नीचे के नाम का ही सारा विस्तार है। ऊपर का नाम अलख है जो सबको देखता है किन्तु जो सभी को नहीं दिखता। सद्गुरु के चरणों में मस्तक समर्पित किया और सत्य-नाम-स्मरण करने का संकल्प धारण किया। जो सत्य नाम की भाषा भूलते हैं वे चौरासी लाख योनियों में पड़ते हैं। श्याम अक्षर अरूप परमात्मा के रूप का खाका है। खिड़की को खोलकर अपने साहिब को सामने देखो। यह प्रबोध रोहलसाहब का है जो चेले को सुनाया है। इसमें बहती हुई वृत्ति को रहती हुई बताई गई है। यह उपदेश निज-स्वरूप का दर्शन कराता है, भ्रम को मिटाता है, कभी भी चंचल नहीं होने देता और शुद्ध मार्ग इसके द्वारा मिलता है ॥53॥

निज हंसा बेड़ा नाम का झेल। गुरु साहब के वचनों खेल ॥
ले सार सब्द उह उलटी गेलै। अनासुरत अमर घर मेलै ॥1॥
डोर ऊपर चढ देखौ सरूप। गैबी दरसै एक अनूप ॥
सकल दीप पिंड ब्रह्मंड सूँ न्यारा। सर्व मंडाण असंख सुन सूँ भारा ॥2॥
उसका नाम अंटी में लीजे। छुपा नाम भेद प्रगट नहिं कीजे ॥
हंसा तुम कूँ लाख दुहाई। सीस पड़े तो रह्यो न जाई ॥3॥

जे कोइ हंसा पूरा होवै। उसकी गति मति सारी जोवै ॥
नाम संभावै पलटै नाहीं। उसकूँ लीजे सतसंग माहीं ॥4॥
जदाँ ऐसे चेला करौ मंजूर। पीछै वचन सुनै कोइ सूर ॥
जे कोइ हंसा आप उबारै। तो चल आवै पास हमारै ॥5॥

दोहा

रोहल नाम कहाइया, हम है आपो हि आप।
सब अवताराँ सिर धणी, सब संतन सिर छाप ॥6॥54॥

निज हंस! नाम का जहाज पकड़। गुरु-साहब के वचनों के अनुसार आचरण कर। सार शब्द ग्रहण कर। उसका रास्ता उलटा है। अनन्यात्मक-सार शब्द रूप अमर घर में निश्चय ही मेल कराती है ॥1॥ डोरी (लय की डोरी) पर चढ़कर निज स्वरूप को देखो। एक अनुपम व गुप्त तत्त्व का दर्शन होता है। वह समस्त द्वीप, पिंड, ब्रह्मांड से विलक्षण है। वह सर्व रचना व असंख्य शून्यों से भी महान् है ॥2॥ उसका नाम अंटी में लो। उसका नाम गुप्त रखो, प्रकट मत करो। हे हंस! तुमको लाख बार सौगंध है। यदि कहने के लिए माथे पर आ पड़े, तब भी मत कहो ॥3॥ जो भी कोई हंस पूर्ण होता है, वह उसकी सारी गति व मति को जानता है। नाम धारण करता है, उससे पलटता नहीं। ऐसे हंस को सत्संग में ग्रहण करो ॥4॥ जब ऐसे चेले को स्वीकार कर लो तब ही कोई शूरवीर जैसे वचन सुनने को मिलते हैं। जो भी कोई अपनी आत्मा का उद्धार करना चाहता है तो वह चल-कर मेरे पास आवे ॥5॥ मेरा नाम रोहल है किन्तु हूँ मैं स्वयं परब्रह्म-परमात्मा ही। समस्त अवतारों का स्वामी हूँ और समस्त संतों के मस्तक पर छाप या सर्व संतों का सिरमौर हूँ ॥6॥54॥

आसा

साधू जन चिंता क्यों करै, मेरा साहिब साहूकार।
चाहि करै सोइ आउ मिलै, रोजी साँझ सवेर ॥थल॥
रोटी लंगोटी इतना, दाता देवणहारा।
आप दिवावै आप कूँ, हरिजन हरि का प्यारा ॥1॥
पंखी पखेरा अजगरा, सर्व जीवन का प्यारा।
किते हि कीट पलंत है, ओही देवणहारा ॥2॥
नौ निधि लछमी सँग सदा, रिधि सिधि भर्‌या भंडारा।
बाँट बरतावै घर घर, माया अंत अपारा ॥3॥
हरिजन हरि का गुमास्ता, बणजै नाम व्यापारा।
रोहल रघुवर हृदय बसत है, पूजै पूजणहारा ॥4॥55॥

मेरा साहिब साहूकार (ईमानदार, धन का स्वामी, सेठ) है, फिर संत-जन क्योंकर चिंता करें। जिसको इच्छा है, वह आकर मिल ले। उसको साहिब प्रातः-काल, सायंकाल दोनों समयों की रोजी देगा ॥थल॥ रोटी और शरीर ढकने को कपड़ा, इतना तो दाता देने वाला है। वह स्वयं ही स्वयं को दिलवाता है क्योंकि (हरि व हरिजन में भेद नहीं) हरिजन हरि को प्रिय हैं ॥1॥ साहिब पक्षी, पखेरु, अजगर, सर्व जीवों को प्रिय है। कितने ही कीट भी उसके देने से पलते हैं, वही सभी को देने वाला है ॥2॥ उस साहिब के साथ नौ निधियाँ व लक्ष्मी रहती हैं। रिद्धि-सिद्धि का भंडार उसके यहाँ भरा रहता है। वह माया को घर-घर में वितरित करता है, फिर भी उसके पास धन अनंत, अपरिमित है ॥3॥ हरिजन श्रीहरि के गुमास्ते (सेवक) हैं जो नाम का व्यापार करते हैं। रोहल कहते हैं- श्रीरघुवीर हृदय में निवास करते हैं; जो उसकी सेवा करने वालों की मनोकामना पूर्ण करता है ॥4॥55॥

निज तत्त का विचार

आओ संतौ मेरा प्यारा। निज तत का करौ विचारा ॥थल॥
अनेक मूँ क्योंकर हुआ एकसारे। सिव सक्ति मिल किया संजोगा ॥
छूटी बूंद कँवल समाया। कँवल मूँ इक अंड पठाया ॥1॥
अंड मूँ घड़िया आकारा। पीछै घड़िया सीस कपारा ॥
जिसके ऊपर जोत ठैराई। सूखम तत की सेज बिछाई ॥2॥
परमधाम सूँ परम तत आया। लहर बहर के माहिं समाया ॥
करम भाग कूँ जोनी लाया। नाभी नाळ सूँ आया ॥3॥
अभय अलख का भेवा। कोइ संताँ खाया मेवा ॥
पीछे सतगुरु सब्द सुनाया। बिछुड़्या हंसा फेर मिलाया ॥4॥
रोहल साहब किया अमरपुर डेरा। गुरु परताप टूर्या जम फेरा ॥5॥56॥

मेरे प्यारे संतों! आओ और निज-तत्त्व का विचार करो ॥थल॥ वह निज तत्त्व अनेक में क्योंकर एक जैसा समाहित है। शिव शक्ति ने मिलकर संयोग किया। बिन्दु स्खलित हुआ और कमल में समाहित हुआ। कमल में एक अंडा हुआ ॥1॥ अंडे में आकार निर्मित हुआ। तत्पश्चात् शीश व कपाल बना। उसमें ज्योति प्रविष्ट कराई। सूक्ष्म तत्त्व (नौ) की शैया बिछाई ॥2॥ परमधाम से परमतत्त्व आया जो लहर (वायु में) में बहकर अंदर समाया। कर्मों के कारण योनी=जन्म धर-कर आया। नाभी की नाड़ी के द्वार से भीतर आया ॥3॥ अभय, अलख के भेद का मेवा किन्हीं संतों ने ही खाया है। उसके बाद सद्‌गुरु ने शब्द का उपदेश दिया, जिससे बिछुड़ा हुआ हंस फिर मिल गया ॥4॥ रोहलसाहब ने अमरपुर में स्थान बनाया। गुरु के प्रताप से यमराज के यहाँ जाने का चक्र मिट गया ॥5॥56॥

हम हूँ सकल सकल सूँ न्यारा ॥थल॥
हमारे देस में धरती नहिं आकासा, नहीं कोई धुँधकारा ॥1॥
हमारे देस में चांद नहिं सूरज, नहिं कोइ नव लख तारा ॥2॥
हमारे देस में ब्रह्मा नहिं विष्णू, नहिं सिव सक्ति आकारा ॥3॥
कहै रोहल सुनौ भाई साधौ, कबीर नाम हमारा ॥4॥57॥

मैं सकल हूँ अर्थात् सभी में हूँ किन्तु सभी से न्यारा भी हूँ ॥थल॥ मेरे देश में भूमि, आकाश नहीं हैं। ना ही कोई धुंधकार=अंधकार है ॥1॥ मेरे देश में चन्द्रमा व सूर्य नहीं हैं, ना ही नौ लाख तारे हैं ॥2॥ मेरे देश में ब्रह्मा व विष्णु नहीं हैं, ना ही शिव-शक्ति का आकार है ॥3॥ रोहल कहता है- साधु भाइयों! सुनो, मेरा नाम कबीर है ॥4॥57॥

डूंगरपुरी, प्रश्न रोहलसाहब कूँ पूछा

कहौ तुम्हारी भक्ति का भेद, पड़ुत्तर साधू पूछै ॥थल॥
कहौ देव कहाँ सूँ आया, कहाँ सम्हाया पंथ।
कौन पुरुष के संग रमिया, क्यूँह धरेड़ा संत ॥1॥
कौनसा कँवल ले हालिया, कौन घोड़े हसवार।
कौन भगति को साखियो, कौन भगति को द्वार ॥2॥
कहाँ तुम्हारा राज है, कौन है चौकीदार।
कौनसी ठौर तुम करौ नौकरी, कौनसा भगती द्वार ॥3॥
कौन सुंन से आइया, कौन सुंन ले जाइ।
कौन सुंन तेरी सहज समावै, कौन सुंन परकास ॥4॥
कौन पूगे उस देस में, कौन पाया निरवाण।
स्वामी डूंगरपुरी बोलिया, कौनसी कला कल्याण ॥5॥58॥

डूंगरपुरीजी ने रोहलसाहब से प्रश्न पूछा। आप अपनी भक्ति का भेद कहो, साधु इसका उत्तर पूछता है ॥थल॥ बताओ, हे देव! कहाँ से आये, कौनसा पंथ धारण किया। किस पुरुष के साथ रमण किया? आपने संत का बाना क्यों धारण किया ॥1॥ कौनसा कमल लेकर चले, कौनसे घोड़े पर सवार हुए, कौनसी भक्ति के साक्षी हो और कौनसी भक्ति के द्वार हो ॥2॥ तुम्हारा राज्य कहाँ है, कौन चौकीदार है? तुम कौनसी जगह नौकरी करते हो। कौनसा भक्ति का द्वार है?॥3॥ तुम कौनसी शून्य से आये और कौनसी शून्य पर अन्यों को ले जाते हो। कौनसी तुम्हारी शून्य सहज में समरस होती है और कौनसी शून्य में प्रकाश होता है ॥4॥ कौन तुम्हारे उस देश में पहुँचा, किसने निर्वाण प्राप्त किया? स्वामी डूंगरपुरी बोले कि कौनसी कला से कल्याण होता है ॥5॥58॥

उत्तर, रोहल-साहब

कहूँ म्हारी भक्ती का भेद, पड़ूत्तर साधू कहै ॥थल॥
अविगत देव अगम सूँ आइया, प्रेम सम्हाया पंथ।
साँचे पुरुष के संग रमिया, बडे धरेड़ा संत ॥1॥
नाभि कँवल सूँ हालिया, पवन घोड़ै असवर।
सत भगती को साखियो, भगती पच्छिम द्वार ॥2॥
गगन हमारा राज है, चेतन चौकीदार।
सुषमण ठौर कराँ नौकरी, सुन में रह्या समाइ ॥3॥
जड़ सुंन सूँ आविया, सुन चेतन ले जाइ।
बेगम सुन मेरी सहज समावै, अपरम सुन्य प्रकास ॥4॥
वचन पूगै इस देस में, हंस पावै निरवाण।
श्याम सरणै रोहल बोल्या, ब्रह्म कला कल्याण ॥5॥59॥

रोहलसाहब का उत्तर : भक्ति का भेद कहता हूँ। साधु उत्तर कहता है ॥थल॥ मैं अविगत अगम-देश से आया हूँ और प्रेम का पंथ धारण किया है। सच्चे पुरुष के संग में रमण किया। बडे संत का रूप धारण किया ॥1॥ नाभि-कमल से मैं चला; पवन के घोड़े पर सवार होकर। सत्य-भक्ति का साक्षी हूँ। पश्चिम-द्वार की भक्ति है। गगन में मेरा राज्य (शासन) है। चेतन चौकीदार है। सुषुम्ना के स्थान में नौकरी करता हूँ और शून्य में समरस रहता हूँ ॥3॥ जड़ शून्य से आया और चेतन शून्य में ले जाता हूँ। मेरी बेगम शून्य सहज में समाहित होती है और अपरम शून्य में प्रकाश होता है ॥4॥ जो मेरे वचनों को पूरा करता है, वह हंस निर्वाण प्राप्त करता है। श्याम की शरण में रोहल बोलता है, ब्रह्म की कला-कल्याण है ॥5॥59॥

ग्रंथ पन्द्रह-तिथि

धमाल

पन्द्रह तिथि को करौ विचार। सनमुख साहब को पाइ दीदार ॥थल॥
पन्द्रह तिथि का विचार करो ताकि साहिब का साक्षात्कार प्रत्यक्ष में प्राप्त हो ॥थल॥
अमावस के घर रहकर देख। न्हाइ प्रेम सागर मेटि करम की रेख ॥

जोति झिलमिल रंग पंगाल। पूरे गुरु की भलमै चाल ॥1॥

अमावस के घर में रहकर देखो। प्रेम-सागर में नहाकर कर्म की रेखाओं को नष्ट करो। वहाँ पीले रंग की ज्योति झिलमिलाती है। पूर्ण गुरु की चाल वहाँ चमकती है ॥1॥

पड़वा परै परदे माँह। सुरति निरति सूँ चूकै नाँह ॥
अनासुरत का तमासा जोइ। जीत आया जम सूँ न्यारा होइ ॥2॥

प्रतिपदा परदे में पड़ी है। (प्रतिपदा के दिन चन्द्रमा नहीं दिखता) किन्तु वह सुरति निरति से बचती नहीं। अनासुरत (निश्चयात्मक परमात्माभिमुखता) का तमासा देख कि यम से बचकर, जीतकर आ गया ॥2॥

बिन बीज कहूँ कैसो विस्तार। सतगुरु साहब सींचणहार ॥
निज वृछ ऊग्यो एक अधर समान। अमरफल वाँको लागो सुबहान ॥3॥

बिना बीज (द्वितीया) के विस्तार कैसे हो सकता है। बीज को सद्‌गुरु व साहिब सींचने वाले हैं। अधर के समान (बिना आश्रय के ही) एक वृक्ष उगा। उसमें सुबहान (परब्रह्म-परमात्मा) नामक अमर-फल लगा है ॥3॥

तीज तिसणी सूँ सूझी पावै। भजते भजते सहज समावै॥
आवागमण सूँ न्यारी धाम। कोइ कोइ हँस लेवै विसराम॥4॥

तृतीया रूपी तीव्र तृष्णा (चाहत) से बोध होता है। भजन करते-करते सहजावस्था किम्वा सहज में ही समाहित हो जाता है। यह सहजावस्था आवागमन से विलक्षण धाम है। कोई-कोई हंस ही इसमें विश्राम पाता है ॥4॥

चौथ बनवा चौदह को चौक। जामें बसिया चारौ लोक ॥
पाँच तीन को सेत मंडाण। अकल कला कल फैले आण ॥5॥

चतुर्थी का तात्पर्य चौदह का चौक बनना है जिसमें चारों लोक बसते हैं। पाँच व तीन की श्वेत रचना है, जहाँ अकल की कला का कल आकर फैलता है। (अकल जो कलता नहीं, वह परमात्मा; कला माया व कल जीव) ॥5॥

पंचम पाँचों का पँच रंग। पाँच जनाँ को एकौ संग॥
एक अंत को लीजे भेद। न्यारौ लखिए कोइ सभ रँग छेद ॥6॥

पंचमी पाँचों तत्त्वों के पाँच रंग हैं। पाँच जनों का एक संग-साथ है। एक के अंत का रहस्य ज्ञात करो, उसको सभी से न्यारा जानिये, समस्त रंगों को छेदकर, पृथक् करके

(परमात्मा, पंचतत्त्व से पृथक् है, यही पंच रंगों को छेदकर एक को जानना है।) ॥6॥

जे तुम छठ्ठम छटवाँ जाण। सत सत मान मेरा फरमान ॥
अंतर खोज निरंतर वास। जिस मूँ हुवा है सब्द प्रकास ॥7॥

यदि तुम षष्ठी को छठवाँ जानते हो तो मेरे फरमान को सत्य-सत्य मानो। अंतर को खोजकर निरंतर उसी में निवास करो जिसमें से शब्द का प्रकाश हुआ है ॥7॥

सातम सूझौ सर्व दुवार। बिन सूझ्याँ किम उतरौ पार ॥
खोज बूझ कर दसवें जोइ। जीवत मुक्त उहाँ है सोइ ॥8॥

सप्तमी रूपी सर्व द्वारों का शोधन करो। बिना शोधन किये कैसे पार उतरोगे? खोजकर व जानकर दशम द्वार को देखो, जानो। जो वहाँ है, वही जीवन्मुक्त है ॥8॥

अठवाँ गुरु साहब को नाम उचार। जिस मूँ दरसै तेज अपार ॥
दहुँ दिस हड़ हड़ हीरालाल। नह नह पद का अजब खयाल ॥9॥

अष्टमी का तात्पर्य, गुरु व साहिब के नाम का स्मरण करो जिससे अपार तेज का दर्शन होता है। वहाँ दशों दिशाओं में हर-हर, हीरालाल की ध्वनि है और नये-नये पद के अजब तमाशे हैं ॥9॥

नौवाँ दिन्याँ नाथ भजौ निरधार। जिसको लीनों नेड़ै ओ तो आधार ॥
आप आप कूँ आपै जाण। सर्व ग्यान की राख पिछाण ॥10॥

नवमी के दिन नाथ (स्वामी) का निराधार भजन करो। जिसका सान्निध्य लिया, वह तेरा आधार है। स्वयं को ही स्वयं जान अर्थात् स्वयं को ही ब्रह्म जान। समस्त ज्ञान की पहचान रख अर्थात् तू ही ब्रह्म है, इस बोध की पहचान को सदा बनाये रख ॥10॥

दसवें चंद र दसवें सूर। दसवें बाजै अनहद तूर ॥
हद घर छोड बेहद घर वास। निर्भय देस में पावे विसराम ॥11॥

दशमी का तात्पर्य दशम-द्वार में चन्द्रमा व सूर्य का सम होना है। दशम-द्वार में ही अनहद तुरही बजती है। ससीम घर को छोड़कर निस्सीम घर में निवास करो। निर्भय देश में विश्राम प्राप्त करो ॥11॥

इग्यारस अंग में एकादसी वार। सील संतोष प्रेम विवेक विचार ॥
उवाँ पाँचाँ का दोइ दोइ बाण। रिप दल मार चढै निरवाण ॥12॥

एकादश अंग में एकादशी तिथि है जिसमें शील, संतोष, प्रेम, विवेक, विचार आदि शामिल हैं। उन पाँचों के दो-दो बाण हैं जो शत्रुदल को मारकर निर्वाण पदारूढ़ होते हैं ॥12॥

बारस अंजण द्वादस बाण। प्रेम हंस ले चढ्यो न्रिवाण ॥
हंस प्रमहंस के बिरछै खेल। डोरा नू अंमर घर मेल ॥13॥

द्वादशी माया के बारह बाण हैं (अनित्यत्व, विनाशित्व, अशुद्धत्व, नानात्व, क्षेत्रत्व, आश्रितत्त्व, विकारित्व, परप्रकाश्यत्व, हेतुमत्त्व, व्याप्तव्य, संगित्व एवं आवृतव्य)। प्रेमरूपी-हंस निर्वाण लेकर चढा (निर्वाण=माया राहित्य)। हंस व परमहंस का खेल विरचित होता है। डोरे को अमर घर में रख ॥13॥

तेरस को रस लेवै कोइ सूर। चढत खुमार सदा भरपूर ॥
निर्मल होइ सभ मैल उतार। कबहु न आवै देह दूजी धार ॥14॥

त्रयोदशी का रस कोई शूरवीर पीता है। सदैव भरपूर नशा चढता है। समस्त मैल उतरने से निर्मल हो जाता है और पुनः देह धारण करके जगत में नहीं आना पड़ता ॥14॥

चौदस की चाँदण में दीसै थाव। माँह निसाणी लागै घाव॥
सुरति निरति को नाहिं प्रवेस। अनासुरत को पायो देस ॥15॥

चतुर्दशी की चांदनी में स्थिरता दिखती है। चोट लगी किन्तु घाव का निशान अंदर है। वहाँ सुरति-निरति का प्रवेश नहीं है। अनासुरत के देश की प्राप्ति हुई ॥15॥

जिस घर ऊग्या तिस घर जाइ। सोलह कला संपूरण थाइ ॥
पूनम पाया कर्म नहीं पाप। रोहल साहब आपो हि आप ॥16॥

जिस घर से उदित हुआ, उसी घर में जाता है, सोलह कला पूर्ण होता है। पूनम=पूर्ण होने पर कर्म व पाप शेष नहीं रहते। रोहलसाहब ही आपो आप है ॥16॥

अथ सी-हरफी ग्रंथ (प्रथम)

दोहा : *सिफत करौ सुबहान की, जो आदि अंत मधि होइ।*
सो एको एक अखंड है, और न दूजा कोइ ॥1॥

सुबहान की महिमा का गायन करो जो आदि, अंत और मध्य में एकरस रहता है। वह एक का एक, अखंडित है। उसके अलावा दूसरा कोई तत्त्व नहीं है ॥1॥

एक हि अक्खर अर्थ ले, नहिं को अखर अनेक।
रे मन भूला मत फिरौ, अंत जगह है एक ॥2॥

एक ही अक्षर का अर्थ ग्रहण करो। अनेक अक्षर कोई है ही नहीं (जो क्षर=नाशवान नहीं है, वह अक्षर है।) रे मन! भूला हुआ मत फिर। अंततः तो जगह एक ही है अर्थात् एक अक्षर परमात्मा ही सत्य है ॥2॥

सो एक एक सभ को कहै, जानत नहीं विवेक।
को एक जोगी जौहरी, उलट समावै एक ॥3॥

उस एक को सभी कहते तो 'एक'-'एक' ही हैं किन्तु उसका विवेक=वास्तविक ज्ञान उनको नहीं है। कोई-एक पारखी योगी उलटकर उस एक में समरस होता है ॥3॥

एको एक जब दरसिया, मिटिया तन का ताप।
रोहल रत्ता एक सूँ, सतगुरु के परताप ॥4॥

जब एक ही एक जानने, अनुभव में आ गया, तब तन के ताप (आध्यात्मिक, आधिदैविक व आधिभौतिक) मिट जाते हैं। सतगुरु के प्रताप से रोहल एक ही से रत है ॥4॥

अलिफ : *अलिफ एक अलख है जोई। सभ घट भीतर देख्या सोई ॥*
जहाँ देख्या तहाँ निरमूल नूर। सर्व निरंतर है भरपूर ॥5॥

अलिफ का तात्पर्य है, परमात्मा एक, अलख है। सभी घटों में उसी एक को देखा गया है। जहाँ भी देखा, वहीं वही निर्मल नूर है। वही सर्वत्र, निरंतर भरपूर है ॥5॥

बे : *बे बादल बिन बरसै धार। बिन बिजली चमकै अंत अपार ॥*
पीवै अंमृत प्रेमी पूर। तहाँ पहुँचै कोइ बिरला सूर ॥6॥

बिना ही मेघों के वर्षा बरसती है। बिना बिजली के ही अनंत-अपार प्रकाश चमकता है। पूरे प्रेमी अमृत का पान करते हैं। वहाँ कोई बिरला शूरवीर ही पहुँचता है ॥6॥

ते : *ते तन खोज चढ्यो निरवाण। तहाँ न पहुँचै जम का वाण ॥*
अमर पियाला हरदम पीवै। काल न व्यापै जुग जुग जीवै ॥7॥

शरीर को खोजकर निर्वाण-पद पर आरूढ हुआ, जहाँ यम की चोट नहीं पहुँचती। वहाँ अमृत का प्याला हरदम पीता है। वहाँ काल का प्रभाव नहीं होता। युगों-युगों तक जीवित रहता है ॥7॥

से : *से साबित कर अन्तर्जामी। आदि अंत का झूना सामी ॥*
अंतर खोल मिलै कोइ पूरा। निरभय नाद बजावै तूरा ॥8॥

से के द्वारा अन्तर्यामी को प्रमाणित या सिद्ध करना हैजो आदि-अंत का सबसे पुराना स्वामी है। (भारतीय-दर्शनानुसार ब्रह्म स्वतः सिद्ध है। उसको प्रमाणों से सिद्ध नहीं किया जा सकता। रोहलसाहब ने 'साबित-कर' लिखकर यही कहा है, अथवा कुछ और कहना चाहते है, समझ में नहीं आया।) अंतर्हदय को खोलकर कोई पूरा साधक अन्तर्यामी से मिलता है और निर्भय होकर तुरही का नाद बजाता है ॥8॥

जीम : *जीम जगत तज झूठा संग। झूठे से आ लागै डंग ॥*
राम नाम की बेड़ी धार। भौ सागर चढ उतरौ पार ॥9॥

जगत को त्याग दो। इसका संग झूठा है। झूठे के संग से ही यह डंग=दोष लगता है। राम नाम रूपी नौका को पकड़ जिसमें चढ़कर भवसागर से पार उतरो ॥9॥

हे : *हे हाँसी मत जानौ कोई। तन मन अरपै सूरा सोई ॥*
पहले मरै पछै फिर जीवै। अंमर प्याला सो सँत पीवै ॥10॥

हे को कोई हँसी मत जानो। वही शूरवीर है, जो तन, मन को अर्पित करता है। पहले मरता है, तत्पश्चात् जीता है। (जीवन्मुक्तावस्था का वर्णन है।) वे संत अमर प्याला पीते हैं ॥10॥

खे : *खे खालिक सूँ जो को लागै। जम सिर नारी अहनिसि दागै ॥*
सुंन सिखर में आसण करै। हर दम जीवै मूल न मरै ॥11॥

मालिक से जो कोई लगता है, वह यमराज के सिर पर रात्रि-दिवस नाल (नारी) = बंदूक दागता है। शून्य-शिखर में जाकर आसन करता है। हर श्वास जीवित रहता है, लेशमात्र भी मरता नहीं ॥11॥

दाल : *दाल दुवारै हरि के लागै। मैं मेरी निद्रा सूँ जागै ॥*
अर्ध सबद मँह रहै समाइ। नहिं तो जनम अक्यारथ जाइ ॥12॥

हरि के द्वार पर लगता है (हरि के शरणागत होता है) तो मैं-मेरी रूपी निद्रा से जाग उठता है। अर्ध शब्द (रकार) में समरस हुआ रहता है; अन्यथा जन्म व्यर्थ ही चला जाता है ॥12॥

जाल : *जाल जरूरत मिलै बिच हीये। गुप्त कथा परगट सूँ लहिये ॥*
गुप्त प्रगट जब एकौ हूवा। सो जन कहिए जीवत मूवा ॥13॥

जाल रूपी जरूरत (आवश्यकता) हृदय में मिल जाती है। जो बात गुप्त थी, अब वह प्रकट की तरह मिल जाती है। गुप्त और प्रकट जब एक हो जाते हैं, उस भक्त को जीवन्मुक्त कहना चाहिए ॥13॥

रे : *रे रुणझुण लाए झंकार। अंतर धुनि की सुनै पुकार ॥*
मनवा मस्त मगन होइ बैठा। आप आप में आपै पैठा ॥14॥

रे रुणझुणकार युक्त झंकार (नाद) लाता है। अंतर्हृदय में इस नाद की पुकार को सुनता है। मन यहाँ आनन्दमग्न होकर बैठता है। स्वयं में स्वयं ही प्रवेश पाता है ॥14॥

जे : *जे जोरा लागै नहिं कोई। भई कृपा तब दरस्या सोई ॥*
पाया सुक्ख भरम सब भागा। उलटा चित चेतन सूँ लागा ॥15॥

जे, अर्थात् कोई भी जोरा (यमराज के दूत) लागू नहीं हो सकते, कुछ भी कर नहीं पाते; जब कृपा हो जाती है और परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। सुख प्राप्त किया। सारे भ्रम नष्ट हो गये। संसार से उलटकर चित्त चेतन रूप परमात्मा में निमग्न हो गया ॥15॥

सीन : *सीन सँतोष पाया फल लागा। जन्म मरण का साँसा भागा ॥*
मिट गइ ममता सहज समाया। आप आपका दरसन पाया ॥16॥

सीन संतोष प्राप्त किया, फल प्राप्त किया। जन्मने और मरने का संशय मिट गया। ममता मिट गई। सहजावस्था में समा गया। स्वयं ने स्वयं का ही दर्शन पाया ॥16॥

शीन : *शीन शराब प्रेम रस पीया। मनवा मगन भया रस दीया ॥*
उनमुन के घर सुमति समानी। ग्रहा खीर तज्या सब पानी ॥17॥

शीन शराब प्रेम-रस का पान किया। मन मग्न हो गया, रसामृत देने से। उन्मनावस्था के घर में सुरति समाहित हो गई। दूध को ग्रहण करके सारे पानी को त्याग दिया ॥17॥

स्वाद : *स्वाद सबूरि सांत जब आई। भूला भटकण थाई पाई ॥*
जागी सुबुधि भरमना भागी। राम नाम रसना धुन लागी ॥18॥

स्वाद सबूरीसंतोष व शांति जब आई तब भटकना भूलकर स्थिरता प्राप्त की। सुबुद्धि जागृत हो गई। भ्रमना भाग गई। जिह्वा में राम-नाम की ध्वनि लग गई ॥18॥

ज्वाद : *ज्वाद जरा कुछ वाँ बिन नाहीं। सब घट खेलै गाइ बजाई ॥*
अंधा लोक न बूझै कोई। तब जानै जब किरपा होई ॥19॥

उसके बिना कुछ भी ज्वाद-जरा भी नहीं है। सभी घटों में गाकर, बजाकर खेलता है। अंधा लोक कुछ भी समझता नहीं। तब ही जानता है, जब परमात्मा की कृपा होती है ॥19॥

तुए : *तुए तंत जब दरसै नाहीं। मूरख ढूँढै सुनिया जाई ॥*
बिना विचार कोइ नहिं पग्र्या। भइ किरपा तब सूरज उभ्र्या ॥20॥

तुए रूपी तत्त्व जब दरसता नहीं, तब मूर्ख उसको शून्य=सूनी जगह में ढूंढता है। बिना विचार के कोई भी यहाँ तक नहीं पहुँचता। जब कृपा होती है, तब तत्त्व रूपी सूर्य का प्राकट्य होता है ॥20॥

जुए : *जुए जात जब अपनी बूझी। तीन लोक की महिमा सूझी ॥*
जानी जात जब किरपा कीनी। ऐसी बुधी दया कर दीनी ॥21॥

जुए, जब अपना जिन स्वरूप (जात) समझ में आ जाता है, तब तीनों लोकों की महिमा ज्ञात हो जाती है। जब कृपा की तब निज स्वरूप को जान लिया। ऐसी बुद्धि दया करके दी ॥21॥

ऐन : *ऐन इनाइत हरि की जानी। बरसन लागी अमरत बानी ॥*
गई पुराणी जोभन आया। जम सूँ लेखा तुरत चुकाया ॥22॥

जब ऐन रूपी इनायत=कृपा हरि की जानी, तब अमृतवाणी की वर्षा होने लगी। बुढ़ापा चला गया। यौवन आ गया और यम का लेखा-जोखा तुरंत ही चुकता कर दिया ॥22॥

गैन : *गैन गुसा तजि निरमल रहिए। निंदा नीकी सिर पर सहिए ॥*
छाड सयानप बहु चतुराई। सतगुरु सबद मिलै रघुराई ॥23॥

गैन रूपी गुस्से को त्यागकर निर्मल होकर रहो। यदि कोई निंदा करता है तो उसको शिरोधार्य करके सहन करिये। अत्यधिक चतुरता और सयानापन छोड़ दो। सतगुरु के शब्द के अनुसार आचरण करने से ही रघुराई से मिलन होता है ॥23॥

फे : *फे फिकर तजि झूठी आसा। हद घर छोड बेहद घर वासा ॥*
अर्ध उर्ध मिल ममता मारी। जीत्या चेतन मंछा मारी ॥24॥

फे रूपी फिक्र व झूठी आशा की त्याग दो। ससीम घर को छोड़कर निस्सीम घर में

निवास करो। अर्ध और अर्ध (प्राण व अपान) को मिला-कर ममता को मारो। मनसा को मारकर चेतन को जीतो ॥24॥

काफ : *काफ करार मैं तब ही पाया। जब आत्मराम के सरणै आया ॥*
छाड्या जप तप सरनै आया। आप आपका दरसन पाया ॥25॥

काफ रूपी करार = विश्वास को मैंने तब ही प्राप्त किया, जब मैं आत्माराम की शरण में आया। जप-तप छोड़कर शरण में आ गया। स्वयं ने स्वयं का साक्षात्कार प्राप्त किया ॥25॥

गाफ : *गाफ ग्यान दीप घट जाग्या। भया उजवाड़ जब पारस लागा ॥*
कंचन देह भई सब काया। ऐसा रतन अमोलक पाया ॥26॥

गाफ रूपी ज्ञान का दीपक अन्तःकरण में जागा। जब स्वर्ण रूपी शरीर से पारस रूपी ज्ञान का स्पर्श हुआ, तब प्रकाश हो गया। सारा शरीर कंचन सदृश हो गई। ऐसा अमूल्य रत्न पाया ॥26॥

लाम : *लाम लगन हरि सूँ जब लागी। पूरन पद पाया मन पागी ॥*
पाप पुन्य का बन्धन टूटा। भई कृपा तब जम सूँ छूटा ॥27॥

लाम रूपी लग्न, जब श्रीहरि से लग गई तब मन पवित्र होकर पूर्ण पद को प्राप्त हो गया। पाप व पुण्य का बंधन टूट गया। जब कृपा हो गई, तब यमराज के फंदे से भी छूट गया ॥27॥

मीम : *मीम महा रस जब ही दीठा। जब चाख्या तब लागा मीठा ॥*
प्रेम पियाला भर भर पीया। सिर के साँटै साहिब लीया ॥28॥

मीम रूपी महारस जब देखा और जब चखा, तब मीठा लगा। प्रेम का प्याला भर-भर-कर पान किया और सिर के बदले में साहिब को पाया ॥28॥

नून : *नून नाम जब निश्चै आया। जीव सीव में उलट समाया ॥*
छोड्या मोह भया मतवाला। अंतर घट में भया उजवाला ॥29॥

नून रूपी नाम का जब निश्चय हो गया तब जीव उलटकर शिव में समरस हो गया। मोह त्याग दिया, मतवाला हो गया और अन्तर्हदय में प्रकाश फैल गया ॥29॥

वाउ : *वाउ विवेक विचार सब थाके। सो पी पाया प्यासै जाँ के ॥*
चांद सुरज दोउ एक घर आया। चंचल चित निहचल पद पाया ॥30॥

वाउ रूपी विवेक-विचार सब ही तब थक जाते हैं, जब जिस रस को पीने की प्यास होती है, वह पान करके पा लिया हो। चन्द्रमा व सूर्य दोनों एक घर पर आ गये। चंचल चित्त ने निश्चल पद प्राप्त कर लिया। (सूर्य की स्थिति मूलाधार चक्र में है। चन्द्रमा सहस्रार चक्र में है। चंद्रमा के स्रवित अमृत को सूर्य सोख लेता है। जब कुण्डलिनी को उद्‌बुद्ध कर ली जाती है, तब शब्द सुषुम्ना के मार्ग से सहस्रार की ओर चलता है। यही शब्द का उल्टे मार्ग में जाना है और यही सूर्य व चन्द्रमा के एक होने की प्रक्रिया है) ॥30॥

हे : *हे हारी मानी तब जीती। मर कै अमर खुमारी पीती ॥*
दावा छोड़ै तब दाव आया। निरदावा थी निरंजन पाया ॥31॥

हे रूपी जब हार मान ली जाती है, तब ही जीत होती है। मरकर ही अमर वारुणी पीने को मिलती है। संसार का दावा छोड़ने से ही दाव=अवसर मिलता है। निरदावा होने से ही निरंजन की प्राप्ति होती है ॥31॥

लाम : *लाम लगै लिव पूरन पाया। अनेक मूरतैं दृष्टी आया ॥*
क्याह कहूँ कुछ कह्यो न जाई। उन्मन कला सहज घर आई ॥32॥

लाम रूपी लिव (चित्तवृत्ति) जब एक लक्ष्य में संयुक्त हो जाती है तब ही पूर्ण परमात्मा का अपरोक्ष होता है। अनेक सूरतें दृष्टि में आती हैं। क्या कहूँ, कुछ कहते नहीं बनता। उन्मनी-कला सहज घर में अवस्थित हो गई ॥32॥

हमज : *अलिफ अलाह घट भीतर आया। सिद्ध सिद्ध मिल अलख जगाया ॥*
सुन धुन सेती लागा लारा। दरस्या पूरण ब्रह्म अपारा ॥33॥

हमज रूपी अलिफ अल्लाह शरीर के ही भीतर मिल गया। सिद्ध ने सिद्ध से मिलकर अलख जगाया। शून्य की ध्वनि से साथ लग गया जिससे अपार पूर्ण ब्रह्म का साक्षात्कार हुआ ॥33॥

ये : *ये यारी जब कीनी आप। मिटिया दुखिया तन का ताप ॥*
छोड्या तप जप सरने आया। रोहल रतन अमोलक पाया ॥34॥

ये रूपी यारी जब स्थापित की, तब तन के ताप-जन्य दुःख मिट गये। जप-तप छोड़ दिये। शरण में आ गया। रोहल ने अमूल्य रत्न प्राप्त कर लिया ॥34॥

दोहा : *मोल तोल वाँ का नहीं, नहीं रंग नहिं रूप।*
सगल वरन व्यापक सदा, रूप रूप में रूप ॥35॥

उस ब्रह्म का मोल-तोल नहीं है। रूप व रंग नहीं है। उसमें समस्त रंग व्याप्त हैं। रूपों में रूप वही है ॥35॥

रूप रूप मँह देखिया, ओही रूप अरूप।
सतगुरु वचनै समझिया, रोहल रूप अनूप ॥36॥

प्रत्येक रूप, रूप में उस अरूप का ही रूप देखा। रोहल कहते हैं- सतगुरु के उपदेश से उस अनुपम रूप का बोध प्राप्त हुआ ॥36॥

सन्मुख होइ दरसन किया, कीनी दया दयाल।
रोहल राता राम सूँ, मिटिया आल जंजाल ॥37॥

दयालु ने दया की, जिससे उसके सन्मुख होकर, शरणागत होकर उसके दर्शन किये। रोहल रामजी में रत है जिसके समस्त आल-जंजाल मिट गये॥37॥

सी-हरफी ग्रंथ (द्वितीय)

अलिफ : *अलिफ अला कर याद सदा नित, वहदत विच्च गुजारीं।*
जीवन के दिंह चार दिहाड़े, खाम खयाल न धारीं ॥
एह दुनिया धूती सभ जग मोह्या, चेत चलौ मत हारीं।
रोहल राह फकीरी के बिच, गफलत मनहुँ विसारीं ॥1॥

अलिफ रूपी अल्लाह को नित्य व सदैव याद कर। अपना समय वहदत= अद्वैतावस्था में व्यतीत कर। जीवन के चार दिन=कुछ ही समय शेष है, व्यर्थ के खयालों को मन में मत आने दे। यह दुनिया ठग है, सारे जग को इसने मोहित कर रखा है। सावधान होकर भगवन्मार्ग पर चल पड़। मनुष्य जन्म रूपी बाजी को हार मत। रोहल कहते हैं- फकीरी के रास्ते में गफलट=असावधानी को मन से सर्वथा विस्मृत कर दे ॥1॥

बे : *बे बदियाँ थों रक्खीं साँई, फुरसत करीं न काई।*
मैं बिच लल्ल न लक्खण कोई, न को कराँ कमाई ॥
तेरे राज फिराँ अलबेली, वत्ता बाँह लुड़ाई।
रोहल राज खसम दा जहिं ते, जग्ग सुहावण सा ई ॥2॥

बुराईयों से साँई मुझको दूर रख। बुराइयाँ करने के लिये किसी भी प्रकार की मुझको फुर्सत मत दे। मेरे में ऐसी कोई बात व आचरण नहीं, न मैं कोई कमाई=साधना करता हूँ। तेरे राज में मैं बेपरवाह होकर घूमती हूँ तथा वैसे ही हाथों को घुमाती-फिरती हूँ। जगत में वही सौभाग्यवती स्त्री है जिसके ऊपर पति का राज है, पति का साया है ॥2॥

ते : *ते तन घोल घतें दिलवर तू, सीना मूल न तंगै।*
जाम सराब रिन्दा दे हत्थूँ, प्रेम पियाला मंगै ॥
छूटे जिन्द जवाब सवालू, टूटन झेड़े झंगै।
रोहल राह रवानी दे बिच, देदियाँ सिर न संगै ॥3॥

तन को दिलवर के ऊपर वैसे ही न्यौछावर करके भी मन को लेशमात्र भी छोटा मत-कर, जैसे कोई रिन्द-मद्यप हाथ में शराब का जाम लिये हो और फिर भी प्रेम का प्याला मांगता हो। जिन्दगी के जवाब-सवाल छूट जाएँ, झगड़े झंझट समाप्त हो जाएँ। रोहल कहते हैं- रब के रास्ते में सिर देने में भी शंका (संशय) नहीं करनी चाहिए ॥3॥

से : *से साबित कर अन्तर्यामी, जे तू आसिक थीवै।*
सौक सराब रिंदाँ दी मजलिस, पल पल दे बिच पीवै ॥
लहै हौल हिसाब हसर दा, फेर मुवा दिल जीवै।
रोहल रात भरम दी भंजै, नेही नाम सदीवै ॥4॥

यदि तू प्रेमी होना चाहता है तो अन्तर्यामी को हृदय में स्थिर (साबित) कर ले। मद्यपों की मजलिस (गोष्ठी) में चाहत की शराब पल-पल में पी। कयामत के दिन के हिसाब का डर समाप्त हो जायेगा, जिससे मरा हुआ दिल भी जीवित हो उठेगा। रोहल कहते हैं- भ्रम की रात का भंजन हो जायेगा तथा प्रेमी का नाम सदैव जिह्वा पर बस जायेगा ॥4॥

जीम : *जीम जहान दुनिया दा तालिब, छोड़ तिहीं दी यारी।*
हीरस हवा तकब्बर कूँ तक, मारीं कींवड़ कारी ॥
जिन्हाँ इश्क अलह दा चाहा, तिन्हाँ तेंडी तारी।
रोहल थिव कुरवान तिन्हाँ तू, जिन्हाँ ममता मारी ॥5॥

हे दुनिया को चाहने वाले! इस दुनिया की दोस्ती को छोड़ दे। हवा=इंद्रियों के हिरस=भोगों को व अहंकार को तक-कर कींवड कारी=करारे भाले से मार डाल। जिन्होंने भी अल्लाह के प्रेम को चाहा है, उन्होंने ही ममता को मारा है; रोहल कहते हैं- तू उन पर न्यौछावर हो, जिन पर तुझे भरोसा है ॥5॥

हे : *हे हजूर हरदम्म हमेसा, भूलिं परी ढूंढेदी।*
कामिल मुरसद बाझू अन्धे, ऊँचे सद्द करींदे ॥
बिच अंधियारे बिन रोसनाई, नाहक हत्थ मलींदे।
रोहल खसम जिन्हाँ दे झोली, सुक्खी सेइ जलीन्दे ॥6॥

हमेशा हरदम प्रत्यक्ष है प्रियतम फिर भी मैं भूल में पड़कर उसको ढूँढने लगी। ब्रह्मनिष्ठ गुरु के उपलब्ध होने पर भी अंधे=अज्ञानी ऊँची-ऊँची आवाज करते हैं कि प्रियतम रूप परमात्मा मुझको मिलता नहीं। अंधकार में, बिना प्रकाश के व्यर्थ ही हाथ मलते रहते हैं। रोहल कहते हैं, जिनकी झोली में प्रियतम है, वे ही सुखपूर्वक जीते हैं ॥6॥

खे : *खे खालिक दा ख्याल जिन्हाँ कूँ, मिठ्ठी लगै न माया।*
से आसिक वहिदत बिच विरुदे, विसरी सुंदर काया ॥
जीवित नेह निमाणी कीती, राति गई दिन पाया।
रोहल रतन अमोलक मिलिया, भाग परापत आया ॥7॥

जिनको परमात्मा का ख्याल रहता है, उनको माया अच्छी नहीं लगती। वे प्रेमी प्रियतम के अद्वैत-भाव में निमग्न रहते हैं और अपनी सुंदर काया को भी विस्मृत किये रहते हैं। प्रेम ने उनको जीते जी ही मानहीन बना दिया। उनकी अज्ञान अथवा अमिलन रूपी रात्रि चली गई और मिलन रूपी दिन उनको मिल गया। रोहल कहते हैं- उसको अमूल्य रत्न मिल गया। उनको सौभाग्य की प्राप्ति हो गई ॥7॥

दाल : *दाल दमामा दिल दे अंदर, निरभव चोट चलाएँ।*
पँच मेवासी काया दे बिच, मुहकम मार हटाए ॥
होका फेर हकानी वाला, नगरी सुक्ख बसाए।
पीछै रोहल दर दोस्ताँ दे, दरसन भिख्या पाए ॥8॥

दाल रूपी नगाड़ा दिल के भीतर निर्भय होकर चोट करता है। शरीर के मध्य पाँच लुटेरे हैं जिनको मुहकम=कठोर मार-मारकर खदेड़ दिया। होका=ढिंढोरा पीटकर, हकानी=हकवालों को, सत्य के पक्षपातियों को देह नगरी में सुखपूर्वक बसा दिया। तत्पश्चात् दोस्ताँ=परब्रह्म के दर्शन रूपी भिक्षा, दर=दिल रूपी द्वार पर ही प्राप्त हो जाती है ॥8॥

जाल : *जाल जरा कुछ तो बिन नाहीं, झर झँग तेड़्या झोकाँ।*
हिकना दे घर सावे सब्जे, हिकना दे घर सोकाँ ॥

सभ घट दे बिच तू ही बसदा, एही खबर न लोकाँ।
रोहल कूँ तूँ आप पिलाई, प्रेम पियाला मौकाँ ॥9॥

'जाल' तेरे बिना जरा कुछ भी नहीं है। जंगल में बुलाकर निवास-स्थान देने जैसा है। (झरझँग=वन, जंगल, तेड़्या=बुलाकर; झोकाँ=निवास)। एक के घर में सावे-सब्जे=खुशी है जबकि दूसरों के घर में शोक है। समस्त घटों में तू ही रहता है, लोगों को इसकी जानकारी नहीं है। रोहल को तो आप स्वयं ने ही प्रेम का मुक्तहस्त से प्याला पिलाया है ॥9॥

रे : *रे रांझन दी सिक्क जिन्हाँ कूँ, हरदम रहै हमेसा।*
सूहीं सेज न भावै जिन्हाँ, कीती प्रेम परेसा ॥
से आसिक सादिक निर्भय नेही, हटके रहनि न खेसा।
रोहल दर दिलवर दे भिख्या, पाया खेर दरवेसा ॥10॥

रे रांझन=प्रियतम की, जिनको प्रत्येक श्वास में हमेशा चाहत रहती है, उनको सूनी सेज अच्छी नहीं लगती क्योंकि उनको प्रेम परेशान करके रखता है। वे आशिक सच्चे, निर्भय व प्रेमी होते हैं। उनको फटकारने या रोकने पर भी वे रुकते नहीं हैं। रोहल कहते हैं- दिलवर के द्वार पर ऐसे दरवेश को खैर=कुशलता की भिक्षा प्राप्त होती है ॥10॥

जे : *जे जारी बिच रहै हमेसा, तोड़े मिलै दिलासा।*
ए जग बाजीगर दी बाजी, रक्खे ना भरवासा ॥
दाढे नाल सिराकत के ही, खिन तोला खिन मासा।
रोहल थीव रजा थे राजी, तो पाए सुक्ख निवासा ॥11॥

'जे' यद्यपि दिलासा=सांत्वना मिल जाती है तथापि जो हमेशा विरह=वियोगावस्था में रहती है, वह इस जगत के बाजीगर की बाजी का विश्वास नहीं करती। दाढे=बलवान के साथ रिश्ता कैसा? वह कभी तो प्रसन्न होता है, कभी नाराज़। रोहल कहते हैं, उसकी प्रसन्नता में ही राजी हो ताकि तू सुख में निवास प्राप्त कर सके ॥11॥

सीन : *सीन सजन दा सही सुञाणे, कुप्पेरी बिच पेरा।*
लोंअ लोंअ दे बिच झोक जिन्हीं दे, दिल दे अंदर डेरा ॥
सिर सरवाह करै चा सदकै, क्या लागै हुण मेरा।
रोहल रात भरम दी भाजै, मिटहै सरव अंधेरा ॥12॥

'सीन' सज्जन की सही पहचान कर। उसका पैरा=सहारा, हरेक कुप्पेरी=मुश्किल में प्राप्त है। जिनके रोम-रोम में विश्राम है सजन का, दिल के अन्दर निवास है सजन का, वे सिर को काटकर उस पर न्यौछावर करें तो अब (हुण) ऐसा करने में मेरा लग ही क्या रहा

है, नुकसान ही क्या हो रहा है? रोहल कहते हैं- ऐसा करने से भ्रम रूपी रात्रि नष्ट हो जायेगी और सारा अज्ञानजन्य अंधेरा नष्ट हो जायेगा ॥12॥

शीन : *शीन सिताब विहाणी ऊमर, पीछै क्याह करेसी।*
जोवन दे बिच कंत न पायो, भेले हत्थ भलेसी ॥
नाल सहेल्या आतण दे बिच, केहा मुँह घिन वेसी।
रोहल खसम जिन्हीं दे झोली, सुक्खी साई जलेसी ॥13॥

'शीन' उम्र शीघ्रतापूर्वक व्यतीत हो रही है, बाद में क्या करेगी? जब यौवन था, तब पति को प्राप्त नहीं किया, बाद में तो दोनों हाथों को मिलाकर मलती ही रह जायेगी। जब सहेलियों के साथ वार्तालाप के मध्य बैठेगी, तब उनके पास कौनसा मुँह लेकर जायेगी (घिन)। रोहल कहते हैं- जिनकी झोली=गोदी में प्रियतम है, वही सुखी रहेगी ॥13॥

स्वाद : *स्वाद सबूरी कर दिल खोजै, जित सज्जन दा वासा।*
दे सिर वार विरह चा चाए, मूल न मोड़ै पासा ॥
चन्दन वृख्य खुल्या बिच वेढे, कित कूँ फिरै उदासा।
रोहल रतन अमोलक मिलिया, पाया नेह निवासा ॥14॥

स्वाद संतोष-पूर्वक दिल को खोजो, जहाँ सजन का निवास है। विरह रूपी वार=भार, बोझे को, सिर नीचे देकर चाए=उठाये। उठाते समय पासा=पार्श्व, कंधे को लेशमात्र भी पीछे नहीं करे। अरे! चंदन का वृक्ष तो बेढे=हृदय रूपी आंगन में उगा हुआ है। फिर तू उसको पाने को उदासीन होकर कहाँ घूम रही है। रोहल कहते हैं- स्नेह का खजाना अमूल्य रत्न मिला है ॥14॥

ज्वाद : *ज्वाद जरूरत मिलिया लोड़ै, कूड़ी जाण न जोल्है।*
काया कोठी कुलफ कुफर दा, इश्क कुंजी कर खोल्है ॥
लोंअ लोंअ दे बिच झोक जिन्हीं दी, दे टुबकी घर गोल्है।
रोहल रूह रतन है तेड़ा, ग्यान कंडे घत तोल्है ॥15॥

'ज्वाद' जरूरत=जिसकी आवश्यकता है उसके मिलने पर लोड़ै=उमंगित होता है। कूड़ी=झूठी होने पर उसके पीछे नहीं जाता। काया रूपी मकान कुल्फ=इन्द्रिय-भोग व कुफर=कृतघ्नता का घर है जिसका ताला इश्क रूपी चाबी से खुलता है। जिनके रोम-रोम में प्रेम का झोक=निवास है, वे उसमें डूबकर घर=लक्ष्य को पा लेते हैं। रोहल कहते हैं- आत्मा रूपी रत्न तेरा है जिसको ज्ञान रूपी काँटे=तराजू में घत=रखकर तोल। अर्थात् आत्मसाक्षात्कार ज्ञान के द्वारा ही होगा। ज्ञान=आत्मा-परमात्मा का अद्वैत ॥15॥

तुए : *तुए तालिब मतलूब मिलण दा, कर घिन साझुर साया।*
दिल तेरे बिच दिलवर बसदा, मुरसद राह बताया ॥
जिंह दे दर्द दिवानी कीती, सो शह अलह मिलाया।
रोहल रोज अवल दे लिखिया, चँद झोली बिच पाया ॥16॥

'तुए' यदि तू मतलूब=प्रियतम या वांछित वस्तु को पाने का अभिलाषी है तो साझुर=सवेरा होते ही उसकी साया=शरण ग्रहण करने को उसकी ओर घिन=चलना, कर=प्रारंभ कर दे। तेरे दिल के भीतर तेरा दिलवर बसता है, उसको पाने का रास्ता गुरु ने बताया है। जिसने दर्द देकर दिवानी बनाया है, वह प्रियतम अल्लाह ने मिला दिया। रोहल कहते हैं- वही दिन अव्वल लिखा जाता है, जिस दिन चन्द्रमा रूपी पति झोली में मिलता है ॥16॥

जुए : *जुए जाहिर बातन सभ साँई, वेशक शिर्क न आणीं।*
रक्ख यकीन इरादा सच्चा, जे जाणी सुख माणीं ॥
कूड़े हरगिज जाए न लहसन, सचिया साहिब साणीं।
रोहल राह अलख दा ओखा, ग्यान एनक घत जाणीं ॥17॥

'जुए' साँई प्रत्यक्ष है, बातिन=मन के अंदर है अर्थात् साँई बाहर-भीतर सर्वत्र है। बेशक=बिना शक अर्थात् निसंदेह उस साँई पर संदेह मत कर प्रत्युत् विश्वास रख, संकल्प सच्चा रख। जिसको जान लिया है उसको प्रसन्नतापूर्वक मान। कूड़े=झूठे, कपटी, हरगिज=कदापि जाए=जगह, लक्ष्य को नहीं लहसन=पाते हैं। जो सच्चे हैं, साहिब उनके साथ है। रोहल कहते हैं- अलख साँई को पाने का रास्ता ओखा=कष्टपूर्ण है। वह ज्ञान रूपी चश्में से जाना जाता है ॥17॥

ऐन : *ऐन इनायत कीनी साकी, दित्तस प्रेम पियाला।*
पीवण नाल शराब लहोरा, अंदर थिया उजवाला ॥
लोंअ लोंअ दे बिच थिइ खुसहाली, मिटिया कष्ट कसाला।
रोहल रंग रवानी रत्ता, सदा मगन मतवाला ॥18॥

'ऐन', साकी=शराब पिलाने वाले गुरु ने कृपा की और प्रेम का प्याला बक्षीश किया। शराब पीने के साथ ही लहोरा=पवित्रता छा गई जिससे अन्तर्हदय में प्रकाश हो गया। रोम-रोम में प्रसन्नता छा गई और कष्ट तथा क्लांतता मिट गये। रोहल कहते हैं- रब के आनंद में रत है और सदैव आनंदित व मतवाला है ॥18॥

गैन : *गैन कढीचा गेरौ बिचू ताँ, ओहो अैन सदीवैं।*
काया नुकता सभ जग मोह्या, देख मुतीअ न थीवैं ॥

अंमर प्याला मुरशिद वाला, सिर गहणै रख पीवैं।
रोहल बिच्च रंदाँ दी मजलिस, आसिक नाँव सदीवैं ॥19॥

'गैन' गैरों में से अपने आपको बाहर निकाल और सदैव उस जैसा ही हो। काया आकार ने सभी को मोहित कर रखा है। उसको देखकर उसका दास मत बन। सिर को गिरवी रखकर गुरु वाला अमर प्याला पी। रोहल कहते हैं- मद्यपों की मजलिस के बीच में तेरा नाम सदैव आशिक हो जायेगा ॥19॥

फे : *फे फिकर सभ छोडिए जिन्हाँ, से ई फकर सदीओ।*
हरदम रंग रवानी रत्ते, रूखी मूल न थीयो ॥
नित नेही मयखाने दे बिच, अमर पियाला पीयो।
रोहल रंग तिन्हाँ दा गूढा, जे मू तू थे फिर जीयो ॥20॥

'फे', जिन्होंने सभी चिन्ताओं को छोड़ दीं, वे ही सदैव फकीर हैं। हरदम=हर श्वास वे आत्मानन्द में निमग्न रहते हैं। वे लेशमात्र भी प्रेम-विहीन नहीं होते। प्रेमी प्रतिदिन मद्य-शाला में अमर प्याला पीते हैं। रोहल कहते हैं- उनका आनंद गूढ़ है, जो मेरी, तेरी को निश्शेष करके पुनः जीवित होते हैं अर्थात् मरजीवा, जीवन्मुक्त हैं ॥20॥

काफ : *काफ कयूमा करम कुनंदा, असाँ तेड़ी तारी।*
अक्ल फिकर दी चौपड़ रचिया, तू पासा जग सारी ॥
हुकम रजाए तेड़िअ चल्लन, रय्यत कौन विचारी।
रोहल बाजी तिन्हाँ जीती, जाण समझ जिन्हाँ हारी ॥21॥

'काफ', निश्चय ही कर्मों को नष्ट करता है और हमारे जैसे कैदियों (कर्म के बंधन में बंधे हुओं) को तारता है। ज्ञान, स्मरण की चौपड़ की रचना करके तू पाशा व जगत् गोटी बने हैं। तेरे हुक्म व रजा में सब कुछ संचालित होता है। फिर बेचारी जनता की गिनती कौनसी है? रोहल कहते हैं- बाजी उन्होंने ही जीती है जिन्होंने जान-कर व समझ-कर इसको त्याग दी ॥21॥

गाफ : *गाफ गयान जिन्हाँ दे अन्दर, उभर्या सूरज सारा।*
भिन्नी रात भरम दी तिन्हा, मिटिया सभ अंधेरा ॥
चौदह तबकैं थि ई रोशनाई, खिलिया गुल्ल हजारा।
रोहल ते रब राजी थीया, पाया नेह नजारा ॥22॥

'गाफ', ज्ञान जिनके अन्दर है, उनमें ही प्रकाश प्रकटा है। उन्होंने भ्रम रूपी रात्रि को

नष्ट कर डाला है और उनका समस्त अज्ञानांधकार मिट गया है। चौदह लोकों की रौशनाई=प्रकाश हो गया, जिससे हजारों गुल=पुष्प पुष्पित हो गये अथवा हजारों दीपकों की (बत्ती-गुल) जल उठीं। रोहल कहते हैं- उनसे रब=परमात्मा प्रसन्न हो गया और उनको प्रेम-नजारा मिल गया ॥22॥

लाम : *लाम लगन दिल अंदर लागी, दिठ्ठी सूरत सारी।*
अमर पियाला मुरशद दित्ता, चढी इश्क खुम्मारी ॥
जहिं दी सिक्क सोइ शह पाया, मन दी ममता मारी।
मिलिया दोस्त मिटी दिलीगिरी, रोहल मुल्क तुम्हारी ॥23॥

'लाम', जिनके दिल के अन्दर लगन=प्रियतम को पाने की उत्कट चाह जाग उठी, उन्होंने परमात्मा की सूरत को देखा। गुरु ने उनको अमर प्याला दिया जिसको पीने से उन पर इश्क का नशा चढ़ गया। जिस प्रियतम की चाहत थी, वही मिल गया। मन की ममता को मार डाला। दोस्त=प्रियतम मिल गया, दुःख निश्शेष हो गया। रोहल मुल्क तुम्हारा है ॥23॥

मीम : *मीम महादेव पैदा कीतो, कारण रूप जहूरा।*
जाती रूप तिहीं बिच घतियो, वाणी अनहद तूरा ॥
गगन मँडल बिचि भट्टी चूई, चिकी शराब तहूरा।
रोहल पुर कर पीअ पियाला, मुरशिद मिलिया पूरा ॥24॥

'मीम', महादेव को कारण रूप में जहूरा=सृष्टि को उत्पन्न करने को पैदा किया। जाती रूप=स्वयं का रूप ही उनके अंदर डाला। अनहदवाणी की तुरही बजी। गगन मंडल से भट्टी चूने लगी जिसमें से तहूरा=पवित्र शराब चिकी=स्रवित हुई। रोहल कहते हैं- उस शराब को प्याले में भरकर पिया। पूरे गुरु मिले ॥24॥

नून : *नून निबाहो रंग तिन्हाँ जी, इश्क अलह दे रत्ते।*
कन्नू शौक शराब हकीकी, पी प्याले मघ मत्ते ॥
मिलिया दोस्त मिटी दिलगीरी, घोल अंधारी घत्ते।
रोहल जिंह ते नौशह राजी, सा क्यूँ चरखा कत्ते ॥25॥

'नून', जो अल्लाह के इश्क में निमग्न हैं, उनके आनंद का निर्वाह अल्लाह करता है। हकीकी=सत्यमयी शराब को उत्साहपूर्वक प्याले में पीकर मघ=नशे में मत्त हो जाते हैं। प्रियतम मिल गया। दुःख निश्शेष हो गये। घोर अंधकार को नष्ट कर दिया। रोहल कहते हैं, जिस पर नया शौहर=दूल्हा प्रसन्न है, वह क्यों कर चरखा काते?॥25॥

वाउ : *वाउ विसाल बिछोड़े दा हुण, धोखा मूल न आणी।*
चौदह तबके हिक्को सूरज, सभ घट जोत समाणी ॥
ज्यूँह जल में फिरै अलीली, जित देखै तित पाणी।
रोहल रमज रिंदाँ दी मुसकिल, किहिं हिक बिरले जाणी ॥26॥

'वाउ', अब बिछुड़े हुए का विसाल=एकाकार हो गया, अतः लेशमात्र भी मन में संशय मत लाओ। चौदहों लोकों में एक ही सूर्य है जिसका प्रकाश सभी घटों में समाया हुआ है। ऐसे ही परमात्मा एक है जिसकी व्याप्ति सचराचर में है। जिस प्रकार जल के ऊपर कजी फिर जाती है फिर भी जहाँ देखो, वहाँ जल ही जल होता है। काई (कजी) उपाधि है। उपाधि का बाध होते ही सर्वत्र पूर्ववत् जल ही जल दीखता है। ऐसे ही सर्वत्र एक ही ब्रह्म व्याप्त है, केवल घट-मठादि की उपाधि के कारण द्वैत का आभास होता है, वस्तुतः द्वैत है नहीं। रोहल कहते हैं- रमज के मद्यपों की रहनी को समझना मुश्किल है जिसको किन्हीं बिरलों ने जाना है ॥26॥

हे : *हे हमरान हमेशा दिलवर, प्रेम लधा वञ पेरा।*
इश्क चिराग कीती रौशनाई, मिटिया सभै अंधेरा ॥
लोंअ लोंअ दे बिच थिई खुसहाली, मिलिया महरम मेरा।
रोहल रीझ रह्या रंग तेरे, करै इबादत घेरा ॥27॥

हे, दिलवर हमेशा हमराज (दिल की सभी बातों को कहने-सुनने वाला) है। उसका प्रेम प्राप्त हुआ। इश्क रूपी दीपक ने प्रकाश फैलाया जिससे सारा अंधेरा नष्ट हो गया। रोम-रोम में खुशहाली स्थापित हो गई क्योंकि मेरा मित्र मुझको मिल गया। रोहल तेरे रंग में प्रसन्न है और इबादत=वंदगी करता है ॥27॥

लाम : *लाम लखाउ वेखण दे तालिब, हर दम रहनि हजूरी।*
हिक पल पासे मूल न थीवन, प्रीति जिहाँ दी पूरी ॥
मिटिया दर्द लथी दिलगीरी, पाई सांत सबूरी।
रोहल थिव कुरवान तिन्हाँ तू, जे नूर मिलै बिच नूरी ॥28॥

'लाम', लखाउ=दर्शनों को देखने के इच्छुक हरदम हजूर में (सामने) रहते हैं। जिनकी प्रीति पूरी होती है, वे एक पल के लिए भी सानिध्य को छोड़ते नहीं। दर्द मिट गया। रंज नष्ट हो गया। शांति और संतोष की प्राप्ति हो गई। रोहल तू उन पर कुर्बान हो, जो नूर, नूर में मिल गये ॥28॥

अलिफ : *अलफ अवल आखर भी ओही, जाती जिकर फकीरा।*

दर दिलवर दी आप कुहावण, विन काती तकवीरा ॥
सिर दे सौदे इश्क गिधोनी, ए हो परचा पीरा।
रोहल रूह तिन्हाँ दियाँ दिठिया, तन ताकत मन धीरा ॥29॥

'अलिफ', अब्बल=सर्वप्रथम है, वही आखिर भी है। उसके निजी फकीर उसका स्मरण करते हैं। दिलवर के दरवाजे पर अपने-आपको उसकी कहलाने के लिए बिना काँट-छाँट 'अल्ला हो अकबर' (तक्वीरा) कहती है। सिर के बदले में इश्क खरीदा है कि पीर=प्रियतम का साक्षात्कार हो। रोहल उन्हीं की आत्मा दृढ है जिनका शरीर ताकतवर तथा मन धैर्यवान है ॥29॥

ये : *ये यारी कर इश्क दितोई, कीते एन करामत।*
देखूँ शाह फिरूँ मतवाली, लत्थी मंन मलामत ॥
अंधे कूँ बल दइया अँखियाँ, थिया इमान सलामत।
रोहल कूँ हुण मिट्ठा लग्गा, तेड़ा नाम नियामत ॥30॥

'ये', यारी करके इश्क दिया। खास करामात की। मन में से मलामत=बुराई निकल गई। अतः शाह को देखने को मतवाली हुई घूमती हूँ। अंधे को आँखों का बल दिया जिससे ईमान सलामत हो गया। रोहल को अब तेरी नाम रूपी दौलत मेरे को मीठी लगती है ॥30॥

काफी, गजल, रेखता व बैत

रूप झंझोटी

माहीं बसदा दिल दे नेड़े, घोल घता लख ते तू खेड़े ॥थल॥
साडी प्रीत सहावण जाई, जित्थाँ बसदाँ रांझन साँई।
नित बेखाँ बिच संझ सुबाही, ताने दीन्दी दुखी भेड़ी ॥1॥
सभ घट दे बिच तेड़्या झोकाँ, डरन्दे आख सघाँ न लोकाँ।
इश्क तेड़े दियाँ लगड़िया नोकाँ, तुझ बिन मूल न भांदे वेड़े ॥2॥
सेज उते चढ नौ शह आया, सहज कनूँ चा रंग लगाया।
जहिं दी आह्न सो सहु पाया, लगड़ी महबत कौन नखेड़े ॥3॥
दिलवर दिल दी खिड़की खोली, चौरासी लख समझी बोली।

रोहल चन्द्र पिया बिन झूली, टुट्टी सियालिन दे झूठे छेड़े ॥4॥1॥

माही मेडा मीर थि आया, सन्ध सन्ध मल जीउ लगाया।
देख्या दरस बहुत सुख पाया, देवौ मुवारक रिलमिल सँइया ॥थल॥
अंगण आया प्रीतम प्यारा, बाजै नौबत प्रेम नगारा।
लूउँ लूउँ लग रहिया रणकारा, सुन सुन धुन महीं छक रहियाँ ॥1॥
मैं इयाणी नींद क्या जाणा, नीमाणी कूँ आप बुझाणा।
जहँदा पेटा तहँदा आपै, आपै वडंदा मैं थकि रहियाँ ॥2॥
उग्या चंद चित चलै न मोरा, रोहल रुह मिल भया चकोरा।
लागा इश्क चलै नहिं जोरा, मोहकम पेच कंधी बिच पइयाँ ॥3॥2॥

रूप प्रभाती

अखियाँ इश्क पियाला पीता, का जा सिखियाँ चाली ॥थल॥
जित वैखाँ तिन सुहणी सूरत, माहीं मेडे वाली ॥1॥
तीन लोक में फूल रह्यो है, एक हि फूल हजारे दा ॥2॥
चन्द्र चढ़्या कुल आलम वेखै, मैं मुख वेखाँ यारी दा ॥3॥
हिक दिल ऊही रांझो नेती, क्या डर काल विचारी दा ॥4॥
रोहल रैन गई दिन पाया, ढूंढ लधा घर सारी दा ॥5॥3॥

सुहेलड़ी आशिक थीवाँ मेडे डाना वे, इश्क अलहदा मुश्किल पवँदा ॥थल॥
जोग जगत बिच आहिन जागा, सुरति दी सुई ध्यान दा धागा।
ग्यान दी गूदड़ी सीवाँ सुहेलड़ी आशिक थीवां ॥1॥
इश्क अलहदा औखा अणांगा, नाहे रखदा सिर दा सांगा।
पिंड दा लोहू पीवाँ सुहेलड़ी आशिक थीवाँ ॥2॥
रोहल आखे मस्त मवाली, दरद मंदाँ दी येहा चाली।
जिइन्दे मरकर जीवाँ सुहेलड़ी आशिक थीवाँ ॥3॥4॥

रूप जोग

सजण मूँ पाणूँ लखयो, रहियो अंदर रूह।
रहियो अंदर रूह, जहँ खे पसां संझ सुबुह ॥थल॥
अछो कंजस अन्न जाँ, तारे मथऊँ तूह ॥1॥
मेंजो मन मिठ्ठे पयो, छडे खारा खूह ॥2॥
वण टिण वाई हेकिड़ी, पिर्याँ संदे पापोह ॥3॥

सिंगारीं जस सींगजा, देईं रोगन रूह ॥4॥
रोहल रत्तो रंग में, वेठो करै वरूँह ॥5॥5॥
साँवल तुहिंजी दाढी सिक यार, सारे सहर भंभोर में ॥थल॥
गुझूँ गाल्हियूँ केच जू, लोक कंदो लिक लिक ॥1॥
रातो डीहाँ रोज में, चोले कयो चिक चिक ॥2॥
सिर डेई सुर्की पीती, वट्टीअ में पिक पिक ॥3॥
रोहल रूह अलह सां, वञी थियो हिक हिक ॥4॥6॥

रेखता रूप

ए वंदा वंदगी करो, सुख छोड सभ संसार का।
मगरूर होइ अब मत फिरौ, रख खौफ खुदा सरकार का ॥थल॥
ये सारा तिलिस्मात है, बाजीगर बनाया खेल कूँ।
कएँ तू देखे भूल गएँ, अचरज कतल इसरार का ॥1॥
रोज शब होसियार रह, फरमान मन फरमोदो मैं।
गाफिल न हो तुम गफलती, ऐरादमंद इश्तयार का ॥2॥
अपने साहब के ऐन में, हर वक्त हरदम कर गुजर।
मुख्तियारकारी मौज की, आया रकम अखबार का ॥3॥
चौतरफ चढ़े हसवार हो, दोरो ऊपर इकबाल सूँ।
हाकिम हुकुम की चाल चल, हो चौकसी चौधार का ॥4॥
थाणा थिया निर्भय मुलक, लागरज होई बेगरजी।
तेरी फिर बदले न दूसरी, एक जा बहुकुमीं यार का ॥5॥
रोहल रहत जब बांध ली, दो साल मांह सारी उमर।
पीछै आद अंत परलय नहीं, अमर आगे इसरार का ॥6॥7॥

बेफिकर अब फर्क दे, तुम तरक दो जहाँ सूँ।
सिर दी किफायत पी खमर, चल मर्द खुद मयखान सूँ ॥थल॥
तुम जान्यो मेरा माल धन, मादर पदर बीरादरी।
कुटुब कबीला झूठ है, झगड़ा अगर यक जान सूँ ॥1॥
जग सारा माया सपने का, एक तेरा ना कोई।
छोड सब इसवाब दे, क्या काम तक तुलाँ सूँ ॥2॥
पीर पैगम्बर चल गए, कितने ओलिया हो फना।
एक रोज सर तेरे अजल, लगा पकड़ आए कान सूँ ॥3॥

अब तुम अचेती चेत ले, बीठी गई थोड़ी रही।
तज तक्कब्बर लाग रह, मजरदला मकान सूँ ॥4॥
रोहल रमज खुद खेल में, रस प्रेम पी सुख माण ले।
अपणे साहब कूँ देख ले, चल अरस परस चौगान सूँ ॥4॥8॥

लोक आखे इह रोहल बोलिंदा, कोइ अखै है जात जंगीजा।
है रोहल नहिं जात जंगीजा, एको सिर्र इलाही है ॥थल॥
कुफ्र इस्लाम दुहाँ थियो न्यारा, जींवै जल दे बिच दीसत तारा।
दिल दरियाह बिच खेत असाँडा, जींवै पाणी बिच माही है ॥1॥
केइ कूड़ा केइ सचा सडिंदे रम्ज रिंदा दी नहिं समझींदे।
तू क्या जाणनि हाल असाँडा, जहँ दिल दाग सियाही है ॥2॥
कामिल मुर्सिद राह बताया, रोहल विचउँ रूह अलह पाया।
आखिर जात मिले बिच जातैं, देंदा इश्क गवाही है ॥3॥9॥

रूप विहाग

पोए परू ड़्यम अंधवो जी जाँ जोगीअड़नि जा ॥थल॥
नकी डाहे हलिया, नकी जोड़ियाउँ हंध वो ॥1॥
नकी बजायाउँ मुरलियूँ नकी चोरियाउँ चंग वो ॥2॥
नकी धोतियाउ धोतियूँ, नकी धोतियाउँ लंग वो ॥3॥
नांगा निकिता नंग खूँ, तिन नांगनि कहड़ा नंग वो ॥4॥
लगो लाहो तिंइन जो, रोहल तोखे रंग वो ॥5॥10॥

रूप लोड़ाउ

जब्बल छा कँदो, डूंगर छा कँदो,
जडहं पई आह्यां हबीनन हंजमे ॥थल॥
वेहालीअ जे मकान में, रात कौन रहंदो।
संज्जो अमर अलह जो, वाट बठी हलंदो ॥1॥
जानी हिन जहान में, वत रत रुअंदो।
हीला कयम हजार, वतन कोन वरंदो ॥2॥
रोहल रत छो रोई वत पेर अहंदो।
पुलसलात जी बाट, लहजे में लंघनदो ॥3॥

बैत पंजाबी

दुनिया ढूंढते तालिब कुस्ती, सभनान मिल करताणी।
हड्डी उत्ते होड तहाँ दे, बड़हंदी उम्र बिहाणी ॥
अँधिया इश्क अला दा छोड़्या, पई बिलोड़े पाणी।
रोहल राह रबानी बाझूँ, बी सभ कूड़ कहाणी ॥1॥
काया मस्त प्रीति करि पत्थर, करणी कलस चढाई।
मन महराब सदा रख कीली, जे तूँ साह रिझाई ॥
पंज जमाती पढह नमाजा, हरदम संझ सुबाहीं।
रोहल रूह किती मिल सजदाँ, हज्ज हजूर इथाहीं ॥2॥
हज्ज हजूर तहीं कूँ लिखियाँ, सच्ची सिक्क जहीं दी।
दिल दरियाह महब्बत दे बिच, तांघनि तांघ तहीं दी ॥
रैंदी बेपरवाह हमेसा, क्या परवाह कहीं दी।
रोहल रंग रबानी लागा, पुनी आस महीं दी ॥3॥
चिक्की दिल्ल दरूनी अंदर, बठी होज बशर दी।
पुर कर पीती शौक शराबू बट्टी इश्क अमर दी ॥
जहिं घर कूँ मैं नित ढूंढे दी, घटी लधी तहिं घर दी।
रोहल रात गई दिन पाया, सभ सूरत दिलवर दी ॥4॥
इश्क चिराग थिया जब रोशन, भीनी रैन अंधेरी।
ग्यान अँजन वट पाए आँखिन, दे उलटी खाधी फेरी ॥
जित वेखाँ तित आपा दरसै, सभ घट सूरत मेरी।
रोहल रात गई दिन पाया, ना को बैर न बैरी ॥5॥
पशम आब हयाती दा दिल, अंदर होज हजूरी।
फिर ही सौदे पींदे आशिक, प्रति जहाँ दे पूरी ॥
बेजिनइजिया मौतो थी कर बैठी, पाया सुक्ख सबूरी।
रोहल रंग हिकी जे रत्ती, से नूर भाई वञ नूरी ॥6॥
अणखुदी ताँ खुद कूँ पहुँची, नाल खुदी खुद पाई।
इह दो बिच दीदार सजन दा, ज्यूँ दर्पन बिच छाई ॥
कैफ लतीफ न लभन्दा, सुन ताँ सच आखाई।
रोहल रांझन दिल बिच बसदा, ढूँढ न सुजाण जाई ॥7॥
इह संसार ठगाँ ठग बाजी, अक्खे नाल डिठोसी।
डेख तमासा सजण मिलण दा, ईहो फिकर पियोसी ॥
पशम आब हयाती दा दिल, अंदर गोल लधोसी।

सतुअन साकी थिया इनायत, पर कर जाम पितोसी।
रोहल बिच रंदाँ दे मजिलस, नव शह गोल लधोसी ॥8॥
तू दरियाह सुभर मैं मछली, तो संग सदा सुहेली।
तेडे इश्क बिना जगजीवण, डुक्खी उमर डुहेली ॥
जहिं कूँ नींह लगा नव शहदा, वती राज गहेली।
रोहल राज खसम दा जहिं ते, सा माणी सुक्ख सहेली ॥9॥
को जो कामण कीनर दिलवर, बाँका विरह बचायो।
चुप्प चुपाती सुत्त कूँ घिन, दस्तर पकड़ जगायो ॥
दिल अंदर दीदार कितोसी, बिछड़्या फिजर मिलायो।
रोहल रीझ रहूया रंग तेड़े, अखियाँ एन व खायो ॥10॥
डित्ता साकी शोक सड़ायूँ, पुर कर जाम पियाला।
गर दस्त दूर खल्क दे दा सभ, मिट गया दुक्ख कशाला ॥
इश्क खुमार चढ्या मन मेडे, सदा मगन मतवाला।
रोहल रँग रांझनि दा चोखा, छोड़ खेड़ा मुँहुँ काला ॥11॥
थिया दीदार दरूनी अंदर, पाए डिठी जब झाती।
टूटा तारा कुलफ कुफ्र दा, थिया जिकर घट जाती ॥
उखड़्याँ अक्खिन रंग लगोसी, खिलिया बाग बसाती।
रोहल इश्क पियाला पीता, किनूँ विसाल हयाती ॥12॥
खानजाद बान्ही जहिं दर दी, तहिं सेती किहा माणा।
नाल साँई दे कीहाँ लेगा, जहिं दा पेटा ताणा ॥
इश्क जहींदा अंदर झमिया, लिव लिव बिच्च समाणा।
रोहल आप तहीं कूँ डित्ता, जहिं हथ जीउ बिकाणा ॥13॥
अति सुंदर बहुरंगी मूरति, मन मेडे बिच अटकी।
लग्गा इश्क विसर गइ काया, फूट गई ममता मटकी ॥
जहिं दे सिक सोई शह पाया, लटिक तहीं दी लटिकी।
रोहल प्रीति लगी नहिं छूटै, पाइ पेच चित चटिकी ॥14॥
चुप्प चुपाती वेड़हि दे बिच, भेड़ा नव शह आया।
न मैं सुरमा सींध गंदाई, न मैं चंदन लाया ॥
लिव लिव दे बिच सहज समाणा, तेराजी रँग लाया।
मैं मतहीण निमाणी दा चा, साई भानु वसाया ॥
रोहल राह फकीरी दा कहिं, भाग परापत पाया ॥15॥
ईहो रांझो ईहो भाही, इहो अहीर कहाणी।

ज्यूँ पाणी भिंज थिवै पाला नहिं, पाल ईहो पाणी ॥
सभ घट दे बिच तू ही वसदा, ज्यूँ चाची पत्रियाणी।
बहुरंगी धन नामी खेलै, देख दोइ शह न आणी ॥
रोहल म अलख दा झीणा, ग्यान ऐनक घत जाणी ॥16॥
न नेही ला बहनि जमा अता, नारो साध सडावनि।
दिल दरियाह महब्बत दे बिच, राज डिहाँ तडफावनि ॥
जहिं दा दर्द तहिं दे दर ते, नित उठि आप कुमावनि।
सभ सूरत साहब दे जाणनि, दोई दिल म लावनि ॥
रोहल रंग हिकी जी रती से, सभ कूँ सीस नमावनि ॥17॥
जे नेही बिच नींह सजन दे, राज डिहाँ रँग रत्ती।
किन्नू शोक शराब हकीकी, पी प्याली मद मत्ती।
दोजख वहिश्त डुहऊँ थीं न्यारी, नहिं सीतल नहिं तत्ती।
रोहल रात गई दिन पाया, धोल अंधारी घत्ती ॥18॥
जहिं कूँ नींह लगा घर अंदर, सा क्यों बाहर वत्ती।
जहिं कूँ तार विरह दी लग्गी, चरखी तंदु न घत्ती ॥
जाडे गिल बाँह सुती सह सेती, सा क्यों आतणि कत्ती।
रोहल रंग तिहाँ दा गोड़्हा, जे इश्क रंड़ण रँग रत्ती ॥19॥
जड़ा तो इहु पइ पउ कर मान्या, तड़ाँ तो राह सनीती।
बिच दर बनी झोक रांझन दे, खोल कुल्फ पाइ झाती ॥
दिल अंदर दीदार सजन दा, चशम आब हयाती।
रोहल पर कर पीऊ प्याला, जात मिली वञ जाती ॥20॥
जात मिली वञ जात माहि नाल, तडां सपा बिन आई।
अंग लिख्या कातिब रोज अजल दे, किसकूँ खबर न काई ॥
फाल रांझन दे हक्कु असांडे, तडां त महबत लाई।
रोहल रमज रुबानी लग्गी, भाग परापत पाई ॥21॥
जहाँ रमज रब्बानी लग्गी, से साहब अलबेले।
वहिदत बिच्च विसाल तहाँ कूँ, नाल सजन हर वेले ॥
दोई दाग लथो ही दिल तउँ, नित्त तहाँ दे मेले।
रोहल रात हजर दा हट्टी, मिलिया यार सवेले ॥22॥
सुहिणी सूरत बेखण कारण, इश्क लगा मन मेरे।
सिक्क सजण वे आकर डित्ती, दिल दे अन्दर देरे ॥
पंज मवासी महकम लेती, ग्यान घटी बिच घेरे।

रोहल रात गई दिन पाया, मिट गए सभ अंधेरे ॥23॥
काया कोट दख्सी दरवाजे, दिल दिलवर दा देरा।
लिव लिव दे बिच थइ खुशहाली, कीता नव शह फेरा ॥
कूड़ी साटि छतीस दोजख, थीसी सच्च निबेरा।
रोहल रात गई दिन पाया, मिट गया सभ अंधेरा ॥24॥
बे मँबरी दे नींद बिचूँ आदस्तों, पकड़ के दोस्त जगाया।
बिच अंधारी थइ रोशनाई, दिलवर आके दरस दिखाया ॥
जिक्र फिक्र दे खतरे लथे सेज, उते चढ नव शह आया।
डे गल बाँह प्यारी सेती सुहिञ, कँवल चा अंग लगाया।
हजर विसाल किनूँ जिंद छूटी, रोहल विचु रुह अल्ला पाया ॥25॥

बैत सिंधी

जे तूं सही सिंञाणी पाण, अथई कीमत संदो कतरो।
कोरी कढि कलूब, मूं मंदाई जो माण ॥
परे निहारण पिर खे, संदो जटन जाण।
नित साई तोही साणु, आहे रात डींहा रोहल चवे ॥1॥
सही सिञाणिज सच, मिड़िज म मिलामत खूं।
घड़ी पंहिंजे घट में, परवाने जिएं पच ॥
मारे कढिज मन मूँ, कूड़ाई जो कच।
रंग परियां जे रच, रात डीहां रोहल चवे ॥2॥
जे लगो अथई तां लाए, हिंअड़ो जीबनि सां।
पाए पेच प्रीत जा, सुपिरियां डे साह ॥
वहिदत में तो वाह, रोहल रती रूह जी ॥3॥
जे लगो आहीं तां लग, परियां संदे पेचिरे।
मन मूँ महबूबनि जो, सही सिञाणिज पग ॥
छडे जूठो जग वञी, रोहल रचिज रंग में ॥4॥
परियां भेद कितेब जा, था दीनि दूरांहा डस।
से सच सिंञाणिन कीन की मोहिया पसा मस ॥
रात डीहां रोहल चए, रिथही तंहिखे रंस।
पेर परियां जो पस, नाई कंध कलूब जो ॥5॥
पढहन बरझन पान, में वदो फर्क फेर।
का ड़े मुहु महबूब जो, काडे अखर ईर ॥

साण सहाई सिज जी छा, मुवाफिरु थींदो मेर।
जिन सही सिञातो पेर, रोहल रात न तिन खे ॥6॥
चढी पुर धूजनि, से आकल अकल जा धणी।
से मोतो थी महबत में था पलपल पिरीं पसनि ॥
तिनत मीलोन तमाम कयों महब जंहिंजे मन।
रोहल मथों तिन लथा हरफ हिसाब जा ॥7॥
कातिब काती कान्ह जी, कागज ते मकाह।
अखर ते अदराक जा, तंहिं में लखें लाह ॥
कलम जो कलूब जो, मथे वहिदत वाह।
सुपिरियाँ डे साह, रोहल रती रूह जी ॥8॥
कुफुर ऐं इस्लाम मैं था, भरन उबता भेर।
हिक हिन्दू बिया मुसलमान, विच विधाऊँ वेर ॥
अंधनि उन्दहनि लमीं तिन, खे सच चंवदो केर।
पर रोहल राह पिरीं जो, जां घिड़ी डिठोसूँ घेर।
तरब मिड़नी हिकड़ो, जंहि में फंदन फेर।
साकाड़े कंदी पेर, जा सुती कीता अल्ला में ॥9॥
न मूँ सुध न सार, अची इश्क उथारियमि ओचिती।
रोहल चवे रूह में तिन पिरीं जी पचार ॥
से अंडण आया सुपिरीं याद कंदी ई यार।
ठरिया नैन जार, पसीं मूँ महबूब जो ॥10॥
न मूँ जन न कन अची इश्क अथारियमि ओचिती।
रोहल चवे रूह में महबत महबूबनि ॥
सेई सजण आगडिया तात जंहिं जी तन।
जई जड़ लगी जिन, से साई मेड़िया सुपिरीं ॥11॥
हएन न जातमि जाण, त को वसें वेडही बिच में।
इश्क जी उहाए ते अची पिर पसायो पाण ॥
रोहल रंग पसी करे भगो ममता माण।
साई सदा साण मूँ अणजाणीअ थी उझियो ॥12॥
बुधां जां बीमार तां तूं अगेंईं खां भी ओडड़ो।
रोहल वसीं रूह में विथ न छायां बार ॥
जीअं सो संझ सुबुह जो थो करीं बाग बहार।
बैत न भांइजो माणहूनि ही वहिदत जा वीचार ॥

दिल मे कया दीदार इश्क जिन अखिन सां ॥13॥
जिन खे इश्क अंदर में, तिन खे उञन बुख ॥
वहिदत मींझ विसाल जी था सदा माणिन सुख।
डूर तंहिं तू डुख, जे रोहल रता रूह में ॥14॥
पंहिंजूं अखियूं पाण में जोड़े रखियूं जिन।
से सौ मेरा साइत में था पल पल पिरीं पसनि ॥
तिन तहसीलूं तमाम कयूं महब जंहिं जे मनि।
रोहल मथऊं तिन लथा हरफ हिसाब जा ॥15॥
बणिज विहाइण कान छो बञी बेहट।
तोखे पट पटीहर बाहंजू, बणिज मिड़ेई वट ॥
जंहिं में नशो नींहं जो सा कोथी पट।
रोहल मुहबत मूर म मट, तोखे सिक में थींदो सोझिरो ॥16॥
आशिक ओला में उभा से कजा जीं करीं।
नाए कंध कलूब में था निमाजूं नेतीन ॥
तिन तवाफूं तन में मकोई मञीनि।
रोहल रूह संदिन हरदम आहे हज में ॥17॥
न को हकीर खिलण में नको रूअन में रूस।
न को सुख सुम्हण में नको जाञन में जस।
जिकर सा जबान करण वञ पिन ओरियो डिस।
तू मन जो मर्श पस रोहल पंहिंजे मई में ॥18॥
टुबी हणी पाण में पवनि जां पेही।
त नका खाल्क नको मुल्क नकी रसेई ॥
असीं गोलियूँ जिन खे से पिण असेई।
पी वाई वेई रोहल वुंग परिया वे हिकड़ी ॥19॥
बकनि मिड़ेई बात, तात न कंहिजे तन में।
बुधियूं सुणियूं गाल्हिड़ियूं, था बाखाणी वात।
पर जाहिर थींदनि जात रहणीअ मां रोहल चवे ॥20॥
नव निशानियूँ नूर जू, आशिकनि आहिन।
हिकड़ो विहनि वाटुनि ते, बिचो खाइण ना खाईनि ॥
टियों सिर सभकंहिं अगियऊं था नरतियऊ निवाईनि।
चोथों बुधी कननि सां वरी न वरझाईनि ॥
पंजूं पहु पिरीं सां था पको पचाईनि।

छहो छिननि कीन की था नातो निमाईनि ॥
सतीं सिक सजन जी था लिंव लिंव लखाईनि।
अठीं गाल्ह अजीव जी वातऊँ नावाईनि ॥
नाए निंद्र नेणनि खे था वजूदऊं विञाईनि।
तडंहिं सीबाइनि रोहल दोसाणी दरबार में ॥21॥
जिन वैराग वजूद में रोहल से राणा।
वञी दर दोस्तनि जे, सूफी सामाणा ॥
उहे अघाणा जंहि बात वैराग जी ॥22॥

बैत पूरव

विरह ऐं वैराग जी जिन खे जड़ लगी मंझि बई।
सूझे सच सरीर मूँ तिन प्रेमिन पातो पई ॥
मरण जिअन जो मन मूँ तिन सां मन लथो सीउ।
नाथ निमाणा थी वञी रोहल रता राम सां ॥1॥
जे रंग रची राम जी लाहोती थिया लाल।
सिर डिताऊं सट में काया माया मार ॥
विया तंहिं खूं विसरी खोटा सभ खयाल।
रात डींहां रोहल चवे वाई साण विहां।
से नांगा सदा निहाल, जिन दरसन पातो दोस्त जो ॥2॥
जे नंग छडे नांगा थिया, तिन नांगनि कहिड़ो नंग।
गंगा ए गिरनार जो, तिन सामीं छडियो संग ॥
नकी वाहीं सितड़ियूं, नकी चोरिनी चंग।
रोहल लगो रंग तिन, लाहोतीन लकाउ जो ॥3॥
जे तन में तीरथकनि से गंगा वञनि न गोदड़िया।
तिन सामी संदी सिक ञाथा दूहां दिल दुखनि ॥
पेर सिंञातो पिर जो लोचे लाहोतिन।
लगो रंग रोहल चवे अंदर आदेसनि ॥
खोज खाहोड़िन वञी ऊन्हें में आसण कया ॥4॥
ऊन्हे में आसण करे वञी, माग लधाऊ मूर।
तिन जा अठई पहर अखंड में, था कनि तंवारूं तोर ॥
अते रोहल रात न डींहं को न को सिसु न सूर।

वे नूरी गडिया नूर, लंघे प्याला होत खूं ॥5॥
नाए कंध कमा हकुं जिन निहारियो ना होत।
रात डींहां रोहल चवे माणिक था मलकूत ॥
पेर सिंञाणी पिर जो जूता में।
जोगे जफाऊं करे लंघे प्याला होत ॥
सही आदेसी औधूत, वञी नांगा गडियां नाथ खे ॥6॥
नांगा गडिजी नाथ सां वरी बियो पहु पियोन।
सागणियाउ गाल्हिड़ी जो गुर डस डिनऊनि ॥
ला हिजाब............विचों सभ वियोन।
कुन पोए पियोन वञी पियो नद पेच पिरीं सां ॥7॥
को पहु पियो जोगिन तिन खायों खंथायूं।
जाटा जोग जुहार जी मूर न मञाऊं॥
सा भूं सो झाऊं मुंह में जोग न भोग को ॥8॥
को पहु पियो जोगिन पूरिया तंहिं पार।
जित गंगा न गोमती, न को जोग जमार ॥
न को जिकर फिकर, कोन को सड तंवार।
न का रात न डींह को नका जीत न हार ॥
पेही लधाऊँ पेचिरो ऊन्हो जित उझार।
बगो रंग रोटल चवे, उते आदेसनि अपार ॥
जंहिंजो आर न पार, वञी तित कयाए तकिया ॥9॥

बैत सुहिणी

कचे जे कुननि जी जंहिं चिनीं वस।
से पके पेर न डीन्दियूँ तिन खे चारो डे न चस।
रोहल चवे तिन जेरे जाऊं खस।
से लेटी पवन्दियूँ लस, तू मींहियूँ पस म मतियूँ ॥1॥
कपो जे चारीं पेट चिता ई पांहिंजी।
लालच लगी लोभ जी वेन्दियूं न वारीनि ॥
रोहल चवे रीझ में मींहियूं सभ मारिनि।
हंजूं से हारीनिं, थोड़े घने डींहड़े ॥2॥
जिन चल्हन सांचाह सो मींहियूं पस म मतियूँ।

कान्युनि जे कचनि जूं से खुतिन जेरी जाए ॥
जड़ मन वरदा वाहिदी, वाऊ तदहिं जाऊं पवंदनि जान में ॥3॥
मांजी जेरा जिन जा पके कीअड़ा पाक।
चारो सोचर नदियुनि जो मोरयो मींहं माक ॥
रोहल चवे रीझ खूं तिन जी सूर ही सची साख।
से थकी डीन न थाक, अंदर अछा जिन जा ॥4॥
पको जे चरन, तिनजूं मींहूं पस म मेरियूं।
अवसर अचे न उनखे तोड़े गाह बरनि ॥
रोहल रीझि न रंजियूं जे फांगिन मंझि फिरनि।
से मड़हीं कीन मरनि, धुगाही जे डुख सां ॥5॥

बैत हीर रांझो

हीर कनूं तन बीर गई जड़ां, प्रेम पढहायसि पटी।
नेणें निंड न आवस निपुड़े, हीर पटी सिर पटी ॥
साल्हूं साड़ सटे सिर उतऊं, पाड़ खेड़ां दी पटी।
छती छाड़ पटी उते पटी, चा भारी सिरु पटी ॥
झोक डहूं वल वेंदी हीर पाड़ खेड़्याँ दी पटी।
टेंजी बाह खेड़्यां दी वेड़हियां, कोन ओछोड़ थियूं सिर पटी।
रोहल रांझो हीर दा यारो इश्क लगा लट पटी ॥1॥
मारण हीर दी कीते खेडा नित नित खडां खटी।
पासा पलंग न डींदी हीरे खूह खेड़ियां दी खटी ॥
खांदी भूल त ताआमा हीरे बिन और खेड़ियाँ दी खटी।
शरबत हार घटी ना पीवे खह खेड़ियां दी खटी ॥
रोहल रांझो नाल शरमावे, हीर खेड़े तूं खटी ॥2॥

बैत पारसी

अज जवान तो के भई, गोयत शह दानिए केसआन।
आफरिला हरदो आलम आनस्त खुद रोहल मदान।
जजबातो दीगर नीसत किस अलाह अलहम दुलिल्लाह मुशरकीन।
आशिक बरोवी खुद माशूक यक जात दान ॥1॥
आफताब इश्क तालो शदचून अज मशरिक वजूद।
चशम दर हैरत बमानल अकल करदा सजूद ॥

नागहा नजर फतादा वर जमाले दोस्त खुद।
वाहिद यक भई नुमाइद आना दमे रोहल बशद ॥2॥
च अहमक बूद आन मजनून के आशिक गसत बरलैला।
लैले रफत अज दसतिश पशिमान मांद अजलैले ॥
अजब मन शमस कब्र यजम के आशिक गुसतम बरखुद।
चून खुदरा नजर करदम न दीदम हुसने खुदा दरखुद ॥
दरजबान हिफत आसमान तलई कूंची।
तरतीब हरस हवा पाई गिनी ॥3॥
मन राय गुफ्त अहमद खुद फीका वराइल हका।
साद कान राशिद ब दस्तावेज आन बी शबाशेख ॥
आशिकान राशिद यकीन रोहल ब गुफतनी मुस्तफा।
नशीता खुद बरतन्हाता दिल बेचशम मर्द मक ॥4॥

साहू साहब की वाणी

अथ सर्व-शास्त्र अन्तर-विलास सम्वाद शाहू फकीर व रोहल-साहब का

चौपई : *अंतर विलास जिसकूँ जागै। करम भरम का संसा भागै ॥*
पूरे गुरु कूँ सीस चढावै। चरण कमल में उलट समावै ॥1॥
सीस धरै गुरु आगै भेट। दुविध्या दुरमति सारी मेट ॥
तन मन देवै संका नाहीं। लागा रह चरणाँ के माहीं ॥2॥
कर अर्पण सिर काया सारी। जो तुम होवौ सुरू विचारी ॥
गुरु ऊपर धन माल निवार। गुरु सूँ राखौ तजौ सँसार ॥3॥
सकल सँसार मिथ्या कर जानी। अणहोती नहिं सत कर माणी ॥
अणथिर हुती सु कैसी प्रीत। राखौ गुरु साहब सूँ रीत ॥4॥
गुरु का मान वचन है सूरा। नित्त हि प्रीति परख निज पूरा ॥
गुरु साहब की सेवा कीजे। चरण पखाल र अमिरत लीजै ॥5॥
आठ पहर कर गुरु का संग। कर कुर्बान अपना सिर अंग ॥
काया माया काम न आवै। जीवित गुरु के बिले लगावै ॥6॥
काया पोट क्रमाँ की भारी। गुरु अकल धरै कोइ संत विचारी ॥
गुरु करमाँ की पोट उडावै। जंम काल सूँ तुरत छुडावै ॥7॥
गुरु साहब की सिर पर छाप। पीछै दोष करम नहिं पाप ॥
घाट मिट्या जब अवघट पाया। पीछै काल करम नहिं काया ॥8॥
अवघट देव अखंड सरूप। ज्यूँ का त्यूँ है सुद्ध अनूप ॥
उसका हरदम कर दीदार। अनासुरत का राख विचार ॥9॥
ऊठंता औंकार उठावै। सूरा सो जो हुंकार सुनावै ॥
सो हुंकार महिं साहिब तेरा। सूरा मान वचन इक मेरा ॥10॥
पूरा सोहि गुरु वचनाँ हालै। प्रीति निभावै वचनै पालै ॥

सीस पड़ै गुरुमत नहिं जावै। सचा धाम साहिब का पावै ॥11॥
असल धाम होइ पूरा पावै। निगुराँ कूँ ओ हाथ न आवै ॥
निगुरा ऊणा रह्या, अधूरा। जिसकूँ सतगुरु मिल्या न पूरा ॥12॥
गुरु बिन घोर अंधेर न जाइ। गुरु बिन नाम की खबर न पाइ ॥
गुरु बिन हाथ न आवे ठौर। गुरु साहिब ही सिर का मोर ॥13॥
गुरु बिन निगुरा साखत ठोठ। गुरु बिन निगुरा जैसा रोठ ॥
गुरु बिन निगुरा पावै काँही। गुरु बिन निगुरा बैल की त्याँही ॥14॥
गुरु बिन निगुरा जैसा स्वान। गुरु बिन भूले सर्व अजान ॥
गुरु बिन क्रोध न जावै रीस। गुरु बिन निगुरा भव सूँ अबीस ॥15॥
गुरु बिन निगुरा है अपराधी। जैसे मारौ ज्यूँ अपराधी ॥
निगुरा पापी काम कमावै। गुरु बिन मोख मुक्ति नहिं पावै ॥16॥
गुरु बिन निगुरा कबहु न छूटै। जिस कूँ जंम पकड़ ले कूटै ॥
थाप देकर आगै चलावै। फाँसी गल मँह नाठा जावै ॥17॥
निगुरा पड़िहै नरक दुवार। जमदूत बांध र दीनी मार ॥
..................................। अंत निगुरा का ऐसा रोला ॥18॥
गुरु बिन निगुरा रहै अलोना। गुरु बिन निगुरा अंधा ओणा ॥
गुरु बिन अंधा मूरख भोर। गुरु बिन निगुरा बेसहूर ॥19॥
गुरु ही गती मुक्ति का दाता। गुरु बिन घोर अँधेर न जाता ॥
गुरु है साहिब गुरु है साँई। गुरु बिन कोई दूजा नाहीं ॥20॥
गुरु साहिब को नाम ले, करूँ कोटि परणाम।
रोहल गुरु परताप सूँ, पावै पूरा धाम ॥21॥

अथ रोहलसाहब अर साहूजी को उत्तर-प्रश्न लिखंत

प्रश्न, शाहूजी-वाच

दोहा : *पूरे गुरु कूँ किमि लखै, किस विधि पड़ै पिछान।*
साहू अबै अरज करै, देवौ सरव गियान ॥22॥
ग्यान बिना गम किम पड़ै, जब सतगुरु कह समझाइ।
साहू पर किरपा करौ, देवौ तुरत लखाइ ॥23॥

उत्तर, रोहलसाहब-वाच

सतगुरु पूर्ण पारस है, सदा बेपरवाह।

रोहल ओ राजा भए, राजन के पतसाह ॥24॥
रंग अछवाड़ निरमलौ, नैन वैन भरपूर।
रोहल वचन बोल मोती पड़ै, कोइ चुगै हंसा सूर ॥25॥
निहकामी निहक्रोधी, निरलोभी निरमोह।
रोहल आसा तृष्णावान कूँ, नहिं दगाबाजी नहिं द्रोह ॥26॥

प्रश्न, साहूजी-वाच

ओ तो सतगुरु आप हो, निहचल निराधार।
सम दृष्टी के नाथ हो, साहब सिरजणहार ॥27॥
मेरे तो अब आप हो, दूजा नाहीं कोइ।
इक चेला दूजा गुरू, तीजा साहिब होइ ॥28॥
इन तीनाँ का निरना कहौ, एक एक वीचार।
करौ निवेरा हम सूँ, किस विधि किस परकार ॥29॥

उत्तर, रोहलसाहब-वाच

ज्यूँ सूरज आकास सूँ, दीसै माहीं काँसी।
इस काँसी कूँ चिलकन हुए, भीत ऊपर भासी ॥30॥
त्यूँ साहब सतगुरु चेले कूँ विचार है, तीनाँ माहीं एक।
एको एकहि एक है, जिसमें सरव अनेक ॥31॥
देखत भूली दुनिया भई, करहै संत विरोल।
खोज बतावै अभय जिन्ह करन, भरम मिटावै भूल ॥32॥

प्रश्न, साहूजी-वाच

साहब उत्पति कौन करै, किमि साहब ते संसार।
अब ही अब हम कूँ कहौ, सब ही सर्व विचार ॥33॥
हम पूछूँ आपै कहौ, तीजा कहिए कौन।
साहू पर किरपा करौ, ज्यूँ सूझै तीनौ भौन ॥34॥

उत्तर, रोहलसाहब-वाच

सब का साहिब हम हुआ, आया रोहल कहाय।
मुझ कूँ कोइ जानै नहीं, गाफिल गोता खाय ॥35॥

अमरलोक सूँ आइया, जीव देखौ रे देख।
असल धाम की गम नहीं, भूला सारा भेख ॥36॥
न्यारे मेरे धाम है, असल जुगाँ सुँ अगाध।
सुर नर अवतार पीछै हुवा, अखुट दरसन सभ साध ॥37॥
सृष्टी रचना रची नहीं, आकार न कोइ अस्थूल।
उस पल रोहल आप था, निज सरूप निज मूल ॥38॥

प्रश्न, साहूजी-वाच

आप साहब हो सर्व के, किस विधि धारी देह।
हम कूँ ऐसी बात का, भाखौ सारा भेह ॥39॥
कहाँ होती कहाँ से आई, किमि करि किया पसार।
साहू कूँ मालूम नहीं, बन्या जीवन विस्तार ॥40॥
ज्यूँ की त्यूँ सब ही कहौ, कथा कराई बात।
साहू अब बलिहार है, किमि करि खोजूँ गात ॥41॥

उत्तर, रोहलसाहब-वाच

हम होता आप हि आप में, नहिं को मँडल विस्तार।
ना कोइ नाम न ठाम था, नहिं उतपत कोइ आकार ॥42॥
हम उतपत किस ते नहिं भया, हम सूँ सभ कोइ होइ।
मैं स्रव का निज मूल हूँ, जे जानें नर कोइ ॥43॥

प्रश्न, साहूजी-वाच

आप ते उतपति किमकर भई, अर मँडियो सर्व मँडान।
साहू पूछै साहिबा, जिसकूँ कीजे जाण ॥44॥
पहले क्या होता पीछै क्या भया, क्या क्या रचिया खेल।
साहू सरणै आपके, अब कहौ कोइ औ खेल ॥45॥

उत्तर, रोहलसाहब-वाच

गैबी होता गैब में, आप अकेला एक।
मेरे आपे आप मूँ, भया अनंत अनेक ॥46॥
पहले प्रेम मुझ कूँ भयो, कीनूँ आइ किलोल।

उस प्रेम सूँ सहजे उठी, ज्यूँ ब्रह्म दरिया की झोल ॥47॥
मेरे निज्ज सरूप मूँ, भव कला को परकास।
गुप्ते घोर अंधार मूँ, अचिंत भयो ऊजास ॥48॥
जग मग चहु दिसि चांदणौ, बिन धर थापी धाम।
ऊहाँ जगमग हंस है, भगत बडे विसराम ॥49॥
पछै धाम दूजी भई, अखंडी उजवाल।
हंस उज्वलि उनमें बसै, सदा रहै मतवाल ॥50॥
दूजी सूँ तीजी हुई, धाम को नाम उजास।
उथै उजासी हंस है, लियो वह आइ निवास ॥51॥
तीजी सूँ चौथी भई, धाम प्रतिबिंब प्रवेस।
जहाँ प्रतिबिंबी हंस को, सथान कहीजे देस ॥52॥
चौथी मूँ पाँचवी भई, सूझे धाम मलार।
ऊहाँ मौजी हंस है, मौन माहिं मुख्तियार ॥53॥
पाँचवीं सूँ छठवीं होइ, धाम अचरंगी धूण।
जिथ अचरंगी हंस रहै, हर हीरों के गूण ॥54॥
छठवीं मूँ सातवीं भई, उनमनि धाम अनूप।
उनमनि हंस उहाँ बसै, अर सनमुखी सरूप ॥55॥
सातवीं सूँ आठवीं कीनी, पुहुप सुगंधी धाम।
तित्थ सुगंधी हंस है, कमल फुलौं का गाम ॥56॥
आठवीं पर नवमीं भई, धाम अमृत की धार।
हंस अंमृत उहाँ तपै, बेखुद माहिं खुमार ॥57॥
नवमीं सूँ दसमीं होई, धाम अडीठ अस्थान।
उत्थ अडीठी हंस है, मगन सदा मस्तान ॥58॥
दसवीं मूँ अग्यारवीं, धाम गोरंगी होइ।
तहाँ गोरंगी हंस है, बिरला जानै कोइ ॥59॥
ग्यारवीं सूँ बारवीं भई, धाम नेकी निखेल।
ऊहाँ नेकी हंस है, खूब बन्यो सुध खेल ॥60॥
बारवीं सूँ भइ तेरवीं, सार सबद की सेज।
सार हंस ताहाँ बसै, जिस मूँ अधको तेज ॥61॥
तेरहवीं मूँ भइ चौदवीं, ररंकार के धाम।
जहाँ ररंकार हंस है, अणअच्छर को गाम ॥62॥

चौदवीं सूँ पंद्रवीं होइ, सत्त सबद की ठौर।
सत हंसा को वास हे, सत सुख र सुकृत की डोर ॥63॥
पन्द्रवीं पर भइ सोलवीं, मानसरोवर के निवास।
उथ हंस को राज है, मान हंस के वास ॥64॥
मानसरोवर सूँ अवगत बनी, अर अविनासी अवगत माहिं।
अनिवासी मूँ निरंजन भयो, पकड़ी जिसकी बाहिं ॥65॥
अविनासी कूँ यूँ कह्यो, तेरी नहिं परवाह।
तुम मानसरोवर मूँ पैदा हुवा, तेरा सोई ठाह ॥66॥
जम काल हमारा नाम है, सभ का करूँ अहार।
जो वचन लियावै ठेठ का, सोइ मेरा सरदार ॥67॥
उसकूँ सब वंदन करै, गण दानव जमदूत।
किसका बल लागै नहीं, राकस डाघी भूत ॥68॥
रोहल कह साहू सुनौ, जम जोरावर होइ।
मेरे नाम असल बिना, कबहुँ न छूटै कोइ ॥69॥
मेदनि जम के मुख बसै, जोड़ अकास पताल।
चौदह लोक इकीस ब्रह्मँड पर, जंम पसार्‌यो जाल ॥70॥

साहूजी इस बात कूँ विचार पूछत भयो, प्रश्न

एहि रचना किस विधि रची, और कौन रचावणहार।
साहू कभी सांबणौ मेरा, साम धणी करतार ॥71॥
धरणि अकास तेज पवन, जल थल धूल र सेस।
ए किमि कर पैदा हुवा, ब्रह्मा विष्णु महेस ॥72॥
चांद सुरज किम तारा भया, सुर नर सभ औतार।
साहू को समझाओ देवा, बलि बलि ये वीचार ॥73॥

उत्तर, रोहलसाहब-वाच

सुण साहू रोहल कहै, तोहि बतावूँ खोज।
कर वचन वचन की पारखा, सरव बात कूँ सोज ॥74॥
नरहीण मूँ बरकत भई, अर बरकत सूँ महान तत।
महान तत मूँ तामस भई, तामस माहीं सकत ॥75॥
सकत मूँ आकास तत भयो, आकास मूँ सपरस।

सपरस सूँ पवन भयो, पवनै जोत उजास ॥76॥
जोत मूँ तेज भई, तेज मूँ सूक्ष्म रस रसाल।
सूक्ष्म मूँ जल तत भयो, जल मूँ निज आधारी गंध पयाल ॥77॥
आधारी गंध मूँ भूमि तत भयो, पृथिवी सूँ ईश्वर की काया।
ईश्वर की काया मूँ, जड़ चेतन उपजाया ॥78॥
जड़ चेतन इना दिना, सेन तीन गुण कीया।
तीनाँ गुणाँ मूँ पाँच विकार थीया ॥79॥
पाँच विकार मूँ भया सूक्ष्म, नवाँ तत का सरीर।
जिस मूँ सर्व इंद्रिय का, सुभाउ जोति मन धीर ॥80॥
तमोगुण सतोगुण रजोगुण मूँ मन भया, मिल सभ ही किया कमथाण।
एक अंडा थापिया करि थापना, जिसमें आदिकला समाई आण ॥81॥
जल में जोति जिसमें अंडा, तिस मूँ आदि पुरुष धारी काया।
आदि पुरुष के नाभि मूँ पदम लागा, उस पर फूल लगाया ॥82॥
उस कमल मूँ ब्रह्मा विष्णु सिव सक्ति भया, कीना उतपति का विचार।
मेदनी रची चारि जुग थापिया, बण्यो जगत व्यवहार ॥83॥
रोहल कहै साहू सांभळौ, तुझ कूँ कथा सुनाई खोल।
उतपति सभी इहिं विधि होई, तोहि लखायो तोल ॥84॥

साहूजी ब्रह्मांड के मंडाण कूँ विचार पूछत भये, प्रश्न

धरणि अकास किस ऊपर बणिया, किमि तारामंडल चंद सूर।
सुर नर अवतार देवता, किम इनको भयो असथूर ॥85॥
जीवा जूण सभ जानवर, अर मानवी आकार।
साहू पूछै ये किम हुवा, इनको कहौ विचार ॥86॥

उत्तर, रोहलसाहब-वाच

पहले तेज बूंद के वज्र सिला, जिस पर सात पताल।
तिस पर पहली भीत है, उस पर सात अकास सँभाल ॥87॥
कमल मूँ तो सुमेर भयो, उस पर अखै वृछ को झाड़।
उसके पतरा मूँ पैदा हुवा, दसओं ई अवतार ॥88॥
सुर नर पीछै पैदा हुआ, स्वर्ग लोक में वास।

धर्मराइ अदालत करै, पूछै दोष तपास ॥89॥
चाँद सुरज तारा नखत, भए कासब केरा पूत।
जूण चौरासी चार वाणी चार खाणी, दैत दाणव दूत ॥90॥
ये सब परिवार कासब का भया, जो दीसै सृष्टी माहिं।
उपजै खपै इस च्यारि जुग में, निगुरा पहुँचै नाहिं ॥91॥

अथ साहूजी देह की उतपत को विचार पूछत भयो, प्रश्न

घाट घड़ीजै पिंड को, किस विधि मानख देह।
देह हंस के आप में, किम करि बनै सनेह ॥92॥
लड़के किस विधि होइहै, लड़की किस विधि होइ।
साहू पूछै सारी कहौ, साहिब मेरा सोइ ॥93॥

उत्तर, रोहलसाहब-वाच

पिंड बन्यो पंच तत्त को, जो दीसै स्रव आकार।
जामें पचीस परकृती, तीन गुण पाँच विकार ॥94॥
ये सुभाउ सब सरीर में, पसु जानवर मानख माँह।
गुरु पूरे मिलिए बिना, कुलछ पलटै नाँह ॥95॥
कुलछ पलटावै सतगुरु, जो समरथ स्रव जान।
अग्यान मिटावै इक पलक में, देवै ब्रह्म गियान ॥96॥
मानुष की रे देह में, एक बीज की मूरत।
मर्द माहिं आकार मर्द को, नारि मँह नारि की सूरत ॥97॥
ओ मूरत अंग सत जेतरी, पाँच रंग की देह।
जो ऊगै सो बीज है, देही माहिं विदेह ॥98॥
रितु आवै बिगस कँवल होवै, पुरुष स्त्री की रीज।
फूल इनकी बूंद पखी, माहिं समावै बीज ॥99॥
पहलै रजमा छूटै मर्द का, पीछै लड़के को अवतार।
नारी के निंग ऊपजै, लड़की को अवतार ॥100॥
पहले जल वर्ण बूंद है, देवै पतियाँ भरी ज ऊपर चौफेर।
इसमूँ लोहू का गोटा भया, जिस मूँ अण्डे का अवतेर ॥101॥
जब अंडे मूँ रजमा बाहंत का, फूट निकलै बाहर।
जल मूँ सेत तेज मूँ राता आकास मूं काला,

पृथिवी तेज मूँ तिल जैसा सण हुआ जाहर ॥102॥
अंडे मूँ लोथ भई, जिस मूँ भए सरीर।
छठे महिने हंसा आविया, कीनौं काया माहीं सैर ॥103॥
माता के मुख मूँ आइयो, निचर्‍यो बंक नाळ की बाट।
बंक मूँ नाड़ी तले रोपी, बालक नाभी के घाट ॥104॥
मानसरोवर सूँ हंस आइकै, इस विधि लियो विश्राम।
दसवें महिने बाहर आवै, लेख छलअण धाम ॥105॥
फंद पड़ै आइ संसार के, जामूँ निकसै किसे प्रयाण।
जे सतगुरु पूरा मिलै तोहि चढै निरवाण ॥106॥
सुन तुम साहू हम कह्‍यो, इन कथा को अनुमान।
अब तुम ही विचार करौ, सारौ समझ बयान ॥107॥
गुरु गुरु तो सभ कोइ करै, कोइ इस विधि कह समझाइ।
ओहूँ सूँ ओहूँ रह्‍या, आखिर ओहूँ जाइ ॥108॥

अथ साहूजी दिल विचार पूछत भयो है, प्रश्न

आप हो साहब सरव के, मेरे तो निज मूल।
साहु सुनावै साँइया, सब ही सूल कसूल ॥109॥
बिन पूछ्‍याँ समझै नहीं, अर पूछ्‍याँ सूझै पाइ।
सतगुरु बिन पावै नहीं, लाखौं बल लगाइ ॥110॥
मिहर करि मुझ कूँ कहौ, तत पाँच प्रकृति पचीस।
न्यारा विचार एक एक का, भाखौ सवा बीस ॥111॥

उत्तर, रोहलसाहब-वाच

पहले पाँच तत्त की, तुम से कहूँ मैं बात।
पछै पचीस परकृति कहूँ, और खोज मर जात ॥112॥
जल पृथि तेज पवन आकास है, ये पाँच तत का नाम।
इन पाँचा का घाट घड़ियो, जिसमें हंस लियो विश्राम ॥113॥
पाँच तत्त्व को परगट्‍यो मानखौ असथूल।
इस देही के झाड़ में, दो सुंदर लागा फूल ॥114॥
इन फूलाँ का रंग पाँच है, पंचा का रँग गोल।
दुई दिलाँ के फूल मूँ, एक तेज पंच को तोल ॥115॥

विचार तुम कूँ सभ कह्यो, पांच तत्त्व को एह।
पचीस परकृति अब कहूँ, भाख सुनाऊँ भेह ॥116॥

पाँच तत्त्व को विचार संपूर्ण भयो, पचीस प्रकृति को लिखंत

जल तत की परकृति कहूँ, बूंद मूत्र पसेव होवै।
मूंढे मूँ लार पड़ै, लार पाँचवी जोवै ॥117॥
पृथवी तत की परकृति, अस्थि माँस त्वचा खाली।
और नाड़ि देह की, पाँचवीं रूमाली ॥118॥
पवन तत की परकृति कहूँ, गँवण अगोचरी सुभाउ।
बकना सत कूजना, अर ध्यावना ऐसा भाउ ॥119॥
तेज तत की परकृति कहूँ, खुद्या तृषा लगावै।
निद्रा आलस आवती, अर उबासी आवै ॥120॥
आकास तत की परकृति कहूँ, लज्जा मोह माया।
और राग अर दोष हियारी, चालौ माहीं काया ॥121॥
पाँच तत की पचीस परकृति, कही सभौ समझाइ।
रोहल कह साहू सुणौ, तुझ कूँ दई बताइ ॥122॥

प्रश्न, साहूजी-वाच

पाँच विकार की खोज कहुँ, जिसकी न्यारी न्यारी चाल।
परगट कहै सुनाइ द्यो मूझ कूँ करौ निकाल ॥123॥
कर्म विकार ज्यूँ सभ मिटै, देही निरमल होइ।
जोई सरणै आपके, निहकरमी न्यारौ होइ ॥124॥

उत्तर, रोहलसाहब-वाच

पाँच विकार के नाम कहुँ, काम क्रोध लोभ मोह अहंकार।
इनके न्यारे न्यारे सुभाउ है, जिसका सुन वीचार ॥125॥
काम सूँ जागै कामना, जासूँ भोग कमाइ।
खेलै संत निरास में, संसारी आसा में जाइ ॥126॥
क्रोध सूँ लड़कर मरै, पच पच सभ संसार।
विष जाके मिटै नहीं, सारी सभै जमार ॥127॥

लोभ सूँ लालच करै, हाय भाय दिन रात।
जाके मंछा धापै नहीं, मन में पाँच सात ॥128॥
मोह सूँ मोह्यो फिरै, माहिं कुटुँब परिवार।
कह माता पिता सुत भाई घणा,करत न्यात घर बार ॥129॥
अहंकार सूँ अहंता भया, बड़ाई राखौ।
अतर लगावै डोडा चाबै, मुख काच जैसा भाखै ॥130॥
अहंकार डूबै अभिमान में, फिरै ऊजल वैस।
झूठी भाषा भाखवै, भरी सभा में भैस ॥131॥
पाँच विकार पलटै नहीं, जब लग कूड़ा होइ।
कुलछ पलटै सुलछ पावै, साध कहीजे सोइ ॥132॥

प्रश्न, साहूजी-वाच

सुलछ राखौ देह में, सोहि कहो सभ मोहि।
साँई सर्व जहान को, अर्ज सुनाऊँ तोहि ॥133॥
हम हूँ बालक आपके, तुम मात पिता मेरे।
असल आदि जुगादि सूँ, तब खिग भई तेरे ॥134॥
रहति विरति बताइ द्यो, रती न राखो फेर।
तरग फरग संसार सूँ, रहूँ मैं अपजेर ॥135॥

उत्तर, रोहलसाहब-वाच

पहला सूलछ सील है, दूजा है संतोष।
तीजा प्रेम चौथा विचार है, पाँचवा है विवेक 36॥
ये पाँच सुलछ बलवंत है, चेतन का उमराव।
ओ पाँच कुलछ इन सूँ डरै, जण को जेरो घाव ॥137॥
ये स्रव विकार कूँ नास करै, जिसके संगी जोध।
लोभ मोह अहंकार कूँ आचरण करै, कूट काढै काम क्रोध ॥138॥
सुरति निरति दया धरम, जप तप जोधा होइ।
भाव भगति सुमति सहज ही राखै, वृत्ती ऐसी कोइ ॥139॥
जद कोइ सहज ऐसा राखै, सोहि सूरमा सुजान।
सार सबद का सुमिरण करै, गुरु का मान फरमान ॥140॥
अनासुरति की वृति धरै, आस सुँ रहै निरास।

तब हमारे निज धाम में, पावै सुक्ख निवास ॥141॥
उहाँ जावै आवै नहीं, मृत्युलोक के घाट।
ओ अविचल नगर निर्भय बसै, नहिं जम की लागै झाट ॥142॥

प्रश्न, साहूजी-वाच

भजन करूँ किम देह का, ओ किस विधि कमाई।
सारी विधि समझाइए, द्यो आपकी बड़ाई ॥143॥
साहू सिष है आपका, मुझे तेरा बसीला।
तुझ बिन मेरा को नहीं, कुटंब और कबीला ॥144॥
आप कुटुम्ब परिवार हो, आदि जुगादी संग।
आप हो सागर सुख का, मैं हूँ लहर तरंग ॥145॥
काया का जो हि विचार है, सो सभी कहीजे।
साहू कूँ साची कहौ, किस विधी रहीजे ॥146॥
साहूँ कूँ सोझी पड़ै, ऐसा देवौ ग्यान।
हम हूँ वारण वारणी, आप ऊपर कुरवान ॥147॥

उत्तर, रोहलसाहब-वाच

जोग कमावण को खोज कहूँ, सुन साहू दे कान।
खट चक्कर है घट का, जिसका समझै ग्यान ॥148॥
खट चक्कर खट देवता, जाँ के न्यारे न्यारे ठौर।
ये देव सभ देह लग, इनकी देही माहीं दौर ॥149॥
एक एक देव का, न्यारा कहूँ विचार।
तुम ले करौ पारखा, जानौ जाननहार ॥150॥
मूल कमल दल चार है, जिस पर गणेस देव।
दृढ आसन ठहराइ करि, करै सुर नर सेव ॥151॥
लिंग चक्र खट दल भया, ब्रह्मा को असथान।
अगला घाट पलटाइ कै, निज सतसंग कूँ सुजान ॥152॥
नाभि कमल दल आठै, जिस पर विष्णु को वास।
उहाँ सूँ गुण ले सातकी, सहजे पाइ निवास ॥153॥
हिरदै ऊपर सिव बसै, द्वादस दल को फूल।

सिव सक्ती को विचार ले, दिल दरिया में झूल ॥154॥
चक्र कंठ पर सरस्वती, कमल षोड़ष दल जोइ।
अर्ध उर्ध को भेद ले, किम कर ग्यानी होइ ॥155॥
त्रिकुटी पर निज सेस, कमल दोइ दल देख।
जीत निरंजन जंम कूँ, मेटि काल की रेख ॥156॥
त्रिवेणी पर परमहंस है, कमल सहस दल वर्ण कपूरि।
अंमृत अमी रस पियो, कि सदा रहौ भरपूरि ॥157॥
चहुँ दिसि चमकै दामिनी, अखंडी उजवाल।
भरम अंधेरा सभी मिटै, निर्मल रहौ निरवाल ॥158॥
अनहद बाजा होत है, बजै छतीसी साज।
मंन मगन नित सुनत है, नह नह विधि आवाज ॥159॥
गगन मँडल में गरजियो, छिप्या चंद अर सूर।
मेरु सिखर आसण किया, नाद संख बजावै तूर ॥160॥
दसम द्वार दरसन करै, सनमुख आतमराम।
अष्ट कमल के ऊपरै, लियो जाइ विसराम ॥161॥
पारा हंस प्रकासियो, कियो आगै पयाण।
असंख संखै ऊपरै, पावै असण ठिकाण ॥162॥
असल ठिकाणा अगाध का, उहाँ मेरा निज सरूप।
उस हमारे निज स्रूप मूँ, आकार बन्यो सभ रूप ॥163॥
उस न्यारे कूँ कौन लखै, भूला जगत के व्यवहार।
हाइ हाइ करता मर गया, कितनाई नर नार ॥164॥
रोहल कह साहू सुणौं, ये है वचन हमारा।
जो लागै सोइ मर्द है, इन देही सूँ न्यारा ॥165॥

प्रश्न, साहूजी-वाच

ब्रह्मंड देह सूँ न्यारा कहौ, जिसको किस विधि जाण।
साहू कूँ मालूम नहीं, किस विधि पड़ै पिछान ॥166॥
पिछाण कहौ मुझ पारखा, न्यारे को नीकाल।
समझ बिना सूझै नहीं, सतगुरु कहूँ सवाल ॥167॥
साहू सदा गुलाम है, हर दम रहूँ हजूर।
दया करौ मन का मिटै, फंदा फकल फितूर ॥168॥

उत्तर, रोहलसाहब-वाच

एक देह पँच तत को बन्यौ, मानूषौ अवतार।
दूजी देही प्रेम की, पाँच रंग विसतार ॥169॥
तीजी देही नव तत्त की, जिसमें सर्व इंद्रि को भेज।
सुपन वेखै चाला करै, ज्यूँ अणखै माहीं खेज ॥170॥
चौथा सरीर पिंड तत्त का, न्यारा सकल सुभाउ।
पाँचवाँ सरीर हंस का, देह समाया आउ ॥171॥
छठा सरीर चसमा भया, द्वादस पर ठहराइ।
सातवाँ स्रव न्यारा भया, कोइ सूरा पहुँचै जाइ ॥172॥

प्रश्न, साहूजी-वाच

सात सरीर आप ज कहै, पीछै उनको क्या वीचार।
साहू कूँ संसौ भयो, कहियो बहुत पुकार ॥173॥
जिससूँ मेरौ श्याम है, सोइ मुझे देउ बताइ।
सागी सूप लगा देवौ, दुरमति भरम मिटाइ ॥174॥
आपहो साहिब सिर धणी, निज मालिक मेरे।
हम तो दास हूँ आपकौ, चरणाँ को चेरे ॥175॥
मुझ कूँ अंतर खोल कै, कहौ विचार सुनाइ।
साहू सरणै आपके, नित बलिहारी जाइ ॥176॥

उत्तर, रोहलसाहब-वाच

सुन साहू तुम कूँ कहूँ, सात सरीर को तोल।
विधि विधि कह समझाइ द्यो, कहूँ अंतर खोल ॥177॥
पहला सरीर देह का, जो चलै फिरै जग माहिं।
सभ कारज देह सूँ सूझै, बिन देह कारज नाहिं ॥178॥
दूजी देही प्रीति की, पाँच रंग के घाट।
जब अस्थूल सूँ न्यारौ हुवै, बिखर पबै फूटफाट ॥179॥
जल तत्त जल सूँ मिलै, पृथिवी धरणि समाइ।
तेज तेज में पवन पवन में, आकास आकास जाइ ॥180॥
तीजा सरीर नौ तत्त का, जिसमें सरव लुभाउ।
ये सुभाउ मिटै नहीं, क्रित जब खाण में जाउ ॥181॥

चौथा सरीर पिंड तत्त का, देवलोक लग जाव।
पावै धाम वैकुंठ की, अर स्वर्ग लोक समाव ॥182॥
पाँचवा सरीर सतगुरु का भया, चश्मा निरत निसाण।
छठवाँ सरीर हंस का, माँह चश्म समावै आण ॥183॥
सातवाँ निज स्रूप साहब का, जिसमें सतगुरु समाइ।
जब धाम हमारे पूग गया, पाछै नाहीं आइ ॥184॥
साहू समझ विचार कूँ, तुझै रोहल सुनाव।
गाम हमारी जाइ करि, पाछा नाहीं आव ॥185॥

प्रश्न, साहूजी-वाच

किस विधि न्यारे कूँ जानिए, अर धारा पिंड ध्यावै।
ओ निज सरूप है आपका, किण पर सूँ पावै ॥186॥
सार सबद निज नाम है, उसका कहौ सुमार।
भजन करूँ मैं आपका, आठ पहर इक सार ॥187॥
अनासुरत किम धारणा, किम कर राखै इक ठाह।
सुरति निरति ठिग जात है, रहति बतावौ राह ॥188॥
अडिग अविचल धाम का, जिसका देवौ सुक्ख निवास।
साहू के साहब आप हो, मैं धणी तुम्हारौ दास ॥189॥

उत्तर, रोहलसाहब-वाच

सुण साहू अब मैं कहूँ, न्यारे को निज वास।
सब्द उनका नाम सार है, उसका करौ अभ्यास ॥190॥
सार सब्द निज नाम है, अनासुरत की डोर।
ज्यूँ गुड़ी खंवण अधर रही, राख आठ पहर की ओर ॥191॥
ये नौ न्यारा निज रूप है, कोइ निज हंसा जान।
साहू कहूँ साँच मैं, जे मेरा वचन मान ॥192॥
रोहल कह साहू सुणौ, न्यारे को ये खेल।
सारौ विचार मैं कह्यो, तुझ कूँ ये है तोल ॥193॥

अथ साहूजी रोहलसाहब की महिमा करत भयो है

चौपई : *रोहेल साहब पर बलिहारी। मेरी प्रीति लगी अति प्यारी ॥*

साहू सुनौ महीमा गावै। पलक पलक बलिहारी जावै ॥194॥
रोहल साहब नाम कहाया। मृत्युलोक में अगम सूँ आया ॥
अगम अगोचर धाम अघेरी। साहू संत लिए सिध सेरी ॥195॥
रोहल साहब सब का साँई। प्रकट नाम है जाँई ताँई ॥
साहू हरदम नाम उचारै। पिया पिया पियु पिया पुकारै ॥196॥
रोहल साहब सभ के भेड़ा। हैले ऊपर हरदम नेड़ा ॥
साहु सदा चरणाँ के माहीं। रोहल साहब बिन मेरा कोइ नाहीं ॥197॥
रोहलसाहब सामरथ, सभ की करत सहाइ।
साहू जिसके नाम पर, नित बलिहारी जाइ ॥198॥

इति शास्त्र अंतर-विलास संपूर्ण समाप्त ॥ चौपाई 24 ॥ दोहा 174 ॥ सर्व 198 ॥

सतगुरु रोहलजी के प्रसाद पूर्ण सत-आत्मा-विचार-अनुभव ग्रंथ

चौपई : *गुरु रोहल के चरने लागा। जन्म मरण का संसा भाग ॥*
जैसे पावक कासठ माहीं। प्रगट भयाँ वह कासठ नाहीं ॥1॥
गुरु रोहल वह सबद सुनाया। हउमैं संसा तुरत मिटाया ॥
क्याह कहूँ कुछ कह्यो न जाही। सतगुरु सब्द काटै जम फाही ॥2॥
गुरु रोहल सा और न कोई। तीन लोक में देख्या जोई ॥
ग्यान दीप वह घट में दीया। ज्यूँ रे सर्प का भ्रम सो गया ॥3॥

दोहा : *साहू था सो उठ गया, सोहूँ एक अपार।*
मूरख अंधा पोट भर, सिर पर राखै भार ॥4॥

चौपई : *ना कोइ जनमें ना कोइ मरै। ताँ फिर जोनी कौन स भरै ॥*
गुरू कृपा वह बन्धन टूटा। हउमैं गागर भ्रम का फूटा ॥5॥
गुरु किरपा बिन मुक्ति न आवै। वाँ किरपा ते जन्म न पावै ॥
जन्म मरण वह हमरा खेला। साहू सो हूँ रहत अकेला ॥6॥
ना कोइ मिलिया ना कोइ न्यारा। सोहूँ चेतन रूप अपारा ॥

विचार अनुभव में टुबकी मारै। अपना कारज आप सँवारै ॥7॥

दोहा : मिल्या बिछुड़िया तो कहूँ, जे कारज कारण होइ।
साहू एकौ रम रह्या, दूसर नाहीं कोइ ॥8॥

चौपई : ज्यूँ एका अंडौ घट्ट अपारा। घट फूट्याँ वह अंडौ न्यारा ॥
ज्यूँ रवि एका धूप अनेका। त्यूँ हूँ चेतन रूप विवेका ॥9॥
कहाँ हम जोगी कहाँ हम भोगी। कहाँ हम वैद्य कहाँ हम रोगी ॥
कहाँ हम पंडित कहाँ हम तुरका। कहाँ हम स्याना कहाँ हम मुरखा ॥
ज्यूँ वन एका पान अनेका। त्यूँ हूँ चेतन रूप विवेका ॥10॥

प्रश्न : एक अनेक सु कहिए काह। जैसे तरँग सागर बिन नाँह ॥
चेतन रूप सो कहे अकेला। कौन सु विछुड़्या कौन सु भेला ॥11॥

उत्तर : कोइ न जानै मेरी बात। सो जानै जाकुँ लागी धात ॥
ग्यान कुंढे वह चोट चलाई। हूँ मैं गले मूँ काटी फाही ॥12॥

दोहा : नाम रूप सभ तरँग जल, क्यूँ कर उतरूँ पार।
सतगुरु पूरा काढ ले, पकड़ उतारौ पार ॥13॥

सवैया

आप विचार पड़ौ अब पार तू, जान गँवार नहीं यह हासी।
एक अनेक धर्‌या बहु भेष तू, आपहि पेख यही घर वासी ॥
जहाँ रात न दिंन मिल्यो नहिं भिंन, कह्यो अब गंन वही घर वासी।
साहू साह रम्यो घट मूँ अब, ज्युँ रोमहि रोम में जोत प्रकासी ॥14॥

चौपई

नाम लेवै वह तीरथ जोवै। ज्यूँ खँड कह्याँ मुख मीठा होवै ॥
नाम रूप सभ आतम देखी। प्रगट्या सुर्य उनौ नहिं पेखी ॥15॥
नाम लियाँ वह क्या सुख होवै। जब लग अपना आप न जोवै ॥
नाम लेवै बहुता ज्यूँ सौहा। मोह माया का पकड़्या खोहा ॥16॥
सोऽहं छोड फिरै वह भटके। ज्यूँह सूवा नलनी मूँ लटकै ॥
आप आप कूँ आपै फांधा। साहू वाँ कूँ कौन सो बांधा ॥17॥
आप विचार्‌या आपा टूटा। मोह माया का पिंजडा फूटा ॥
साहु भया वह साँसा भागा। आप था फिर आप कूँ लागा ॥18॥

दोहा : *लोहे मूँ कंचन भया, गुरु पास के संग।*
साहू भिनता कब रहै, जब सुलटा उलट्या गंग ॥19॥
साहू आतम राम सभ यह, दया जो सतगुरु कीन।
मुझ कूँ सब्द सुनाइ करि, कियो आप सूँ लीन ॥20॥

चौपई

गुरु रोहल जब किरपा कीनी। आप विचार मुझ अग्या दीनी ॥
आप विचार बिना नहिं मोख। इन बिन मिटै न संसा सोक ॥21॥
विचार कह्यो गुरु कैसे मानूँ। अविचार भयो सो क्यों कर जानूँ ॥
अब तो सरन तुमारी आया। कृपा करौ तुम भी मैं आया ॥22॥
एहि रूप तू आप कूँ जान। और रूप सभ आपहि मान ॥
आप कूँ त्याग चेतन है रूप। और जाप सभ संसा कूप ॥23॥
जाप बिना भ्रम मिटै न दोष। जा सूँ जोगेसुर पावै मोख ॥
प्राणायम प्रगट कर भाखूँ। अमीं रस गुरु कैसे चाखूँ ॥24॥
सेवा पूजा कैसे करूँ। वाँ बिन और नहीं तो मरूँ ॥
जासूँ मोख कहौ गुरु सोई। तुम बिन और न हमरा कोई ॥25॥

उत्तर, झूलना

आपना आप तू मार देता नहीं, दरै दर दौड़ता फिरै डोला।
जिस्सके कारनै कष्ट बहुता करै, वही रे वही तू काँह भूला ॥
पिंड ब्रह्मंड में तुम्हैं ही रम रह्या, तहीं नहिं जान रे काँह भूला ॥
साहु अपना आप है और नहिं थाप है, ज्ञान झूले पर बैठ झूला ॥26॥

दोहा : *साहू अपना रूप तुम, सोऽहं करता भोग।*
चेतन रूप तू आप सुख, और जोग सभ रोग ॥27॥
प्रश्न : *तुम कह्यो ब्रह्म एक है, सो एक भयो बहु भेष।*
साहू कैसे करि जानिए, जो ऐसा ब्रह्म अलेख ॥28॥

उत्तर, चौपई

एक ओइ तब अलग कहिजे, जब लग नाहीं होइ ॥
साहू आपा धार सही, लातौ मैं ठाहर सोइ ॥29॥
आपै डूबै आपै तरै, आपै करता आपै भरै ॥

आपै गीअर ग्याता आप, आपै सेवग स्वामी जाप ॥30॥
एहि बात को बिरला बूझै। सो जानैं जाकूँ आपहि सूझै ॥
अपना विचार आप सो करै। दुतिया भाउ हउमैं सभ जरै ॥31॥
सो जोगी कबहू नहिं मरै। आप तिरै औराँ कूँ तारै ॥
हउमैं का सभ परदा फाड़ै। द्वैत भाव सभ मिथ्या जारै ॥32॥
एकौ रूप आप सो मानही। जैसे तरँग सागर बिन नाहीं ॥
.........................। त्यूँ आप बसै सभ ही घट माहीं ॥33॥
साहू सोऽहं एक प्रकास। कहा भया ठाकुर कहा भया दास ॥
कहा भया चोर कहा भया त्यागी। कहा भया मूर्ख कहा भया भागी ॥34॥
जैसे वृच्छ वृच्छ है सोई। साख पात नहिं दूजा कोई ॥
आप आप कूँ आपै भूला। चौरासी मूँ फिरता डूला ॥35॥
आप आप कूँ आपै दाधा। जैसे मरघट काकरुँ बाधा ॥
दर दर फिरै बहुत दुख खाधा। वाँ बिन और न दूजी फाँधा ॥36॥
मृगजल देखि र नौका चाहै। आपै डूबै को पार लँघावै ॥
वाकूँ कैसा कह समझावै। बोड़े आगै वैन बजावै ॥37॥
भिन भिन है सभ खेल हमारा। हम ही चेतन रूप अपारा ॥
हम ही सतगुरु हम ही चेला। ना कोइ विछुड़्या ना कोइ मेला ॥38॥
भांडा भव भरम का फूटा। हउमैं का सभ संसा लूटा ॥
साह साहू इत्थे नाहीं। आप आपकी पकड़ी बाहीं ॥39॥
भिन भिन रूप सो कैसे जानूँ। देखे बिन सो कैसे मानूँ ॥
हम मूरख अब पड़े हु खोहा। तुम हो पारस हम हू लोहा ॥40॥
वेदों का मत एही भी है। जोग नेम बिन नहीं लही है ॥
इसी बात मूँ संसा जानूँ। सतगुरु मैं कैसे कर मानूँ ॥41॥
कुरान कहै पच्छिम सूँ लहै। वेद कहै पूरव सूँ वहै ॥
दोनों कान पर पाग रखै। डूब मरै क्यों पार लंघै ॥42॥
हउँ तू संसा दोई अरी है। आप त्याग तो तू हि वही है ॥
साधू संगती ये पल पइए। नहिं तो जन्म अक्यारथ बहिए ॥43॥
साध संग ते संसा भागै। काम क्रोध का डंक न लागै ॥
वाँ किरपा ते ग्यान प्रकासी। आपा आप और नहिं भासी ॥44॥
ग्यान विग्यान दोनों गुरु कहिए। अपना आप सो क्योंकर लहिए ॥
सतगुरु पूरा मोकुँ बतइए। नहिं तो जन्म अक्यारथ बहिए ॥45॥

ग्यान विग्यान दोनों तब पावै। जब कूँची वैराग की हाथ सो आवै ॥
साहू ए पद तब ही पावै। हउमैं का सभ संसा जावै ॥46॥

दोहा : साहू आतम राम सभ, दूर दृष्टि सभ त्याग।
सुन रे मूरख चेत तू, अग्यान नींद सूँ जाग ॥47॥
साहू आतमराम सभ, तुझ बिन दूजा कौन।
तुम कूँ ऐसा चाहिए, ज्यूँ जल मध्ये लौन ॥48॥

चौपई : सुन रे मूरख आप हि त्याग। सुन रे मूरख आप हि जाग ॥
सुन रे मूरख आप पछान। सुन रे मूरख आप कुँ जान ॥49॥
सुन रे मूरख तू है सोई। तुझ बिना दूजा नाहीं कोई ॥
काहे कूँ तू भरमै भोला। ज्यूँ सागर में तरँग सु डोला ॥50॥
मैं ज कही कब सागर देखूँ। कष्ट करे वह क्योंकर पेखूँ ॥
वाँ कूँ कैसा ही दरसावै। आप के माहिं और कूँ धावै ॥51॥
मैं ज कही वह भ्रमना लागे। आपके माहिं और कूँ भागे ॥
अग्यान दृष्टि सूँ क्योंकर पेखै। जल के माहीं वह नहिं देखे ॥52॥
काल दृष्ट सू इसकूँ कहिए। आपा त्याग और कूँ छहिए ॥
दर दर फिरै को मुक्त बतावै। वाँ कूँ कैसा कह समझावै ॥53॥

दोहा : साहू गूंगी भावना, गूंगा होइ सुजान।
उल्लू कूँ कुछ ना सुझै, प्रगट्या चेतन भान ॥54॥

चौपई : ऊँच नीच में सोहू होइ। भई कृपा तब दरस्या सोइ ॥
जिस कारन जग भया विरागी। सोहि लगन घट भीतर जागी ॥55॥

सवैया : केस सभी सिर सेत भए अब, कष्ट केइ वह सांति न पाई ॥
आप विचार कियो नहिं मूरख, ज्यूँ कपि मूठि फिरै बिललाई।
हाटो हि हाट सो डोलत है सठ, मीन कहै कब सागर जाई।
साहू साह हथो हथ हाजिर, ताहि न जानें सो पुरुष न लुगाई ॥56॥

चौपाई : को गंगा को मथुरा जावै। कोइ तीरथ बहु व्रत्त रखावै ॥
कोइ कहै वह कष्ट है कीजे। राम नाम रस तब ही लीजे ॥57॥
कोइ कहै पच्छिम कूँ जावौ। कोइ कहै पूरव कूँ ध्यावौ ॥
बाधे गुरु का यही मता। ज्यूँ पत्थर पर करले तपा ॥58॥

दोहा : *जब लग आपा ना मिले, तब लग भासै और।*
साहू ग्यान प्रकास बिन, कबहु न पावै ठौर ॥59॥

सवैया : *ग्यान बिना नर मूँछ कटावत, ग्यान बिना नर मक्का जावै।*
ग्यान बिना नर मूंड मुंडावत, ग्यान बिना नर जटा बधावै ॥
ग्यान बिना नर दौड़त है पुनि, ग्यान बिना नर गंगा न्हावै।
जब आतम ग्यान प्रकास कियो घट, साहू राम सदा सुख पावै ॥60॥

चौपई : *नाम रूप सभ सोऽहं बसै। ज्यूँ जल भीतर उलटा दिसै ॥*
नाम रूप ते सोऽहं न्यारा। ज्यूँ जल भीतर दीसत तारा ॥61॥
नाम रूप अनेक है लागे। काकूँ ग्रहै काकूँ त्यागे ॥
जो देखूँ सोही वह जरै। सोइ बतावौ भूल न मरै ॥62॥
हम मूरख हुँ अल्प मत बंधा। काम क्रोध का बडा हि युद्धा ॥
मोह अहंकार सूँ क्योंकर छूटूँ। लोभ कहै अब तुझ कूँ लूटूँ ॥63॥
इन्द्रिय देह मिथ्या कर जान। यहाँ तो उपजै अति अभिमान ॥
आप को त्याग तुहि है सोई। तुझ बिना दूजा नाहीं कोई ॥64॥

दोहा : *साहू आखिर जावणा, आइ वेखौ हुण पीउ।*
राते सुख ना सोवणा, खड़ उसका वो जीउ ॥65॥
साहू कर तन आरसी, आँख नूर करि देखि।
यह दरसन मूँ देखले, घट घट जाँको वेखि ॥66॥

चौपई : *मेरौ कह्यो तू कान न लावै। यहाँ तो बहुता तू दुख पावै ॥*
सेत भया समझै नहिं मूढ। सठ मूरख तेरे सिर धूड़ ॥67॥
रे मूढा दिन बैठा जाइ। गुरू सदीदे औरे आइ ॥
वर्णाश्रम की चौपड़ भारी। जीती बाजी आपै हारी ॥68॥
तीरथ वरत धरे बहु भेषा। पूर्ण ब्रह्म सूँ कीया लेखा ॥
गंगा मथुरा घट के माहीं। मूरख ढूँढै सुनिया जाहीं ॥69॥

दोहा : *तीरथ वरत उपासना, बहु वेखा करि लेह।*
साहू पानी जुगतिया, नाद विधा न गेह ॥70॥

चौपई : *अगम अगोचरी मुख वाणी। येहि बात किहि बिरले जाणी ॥*
सो जाणै जाकुँ आप दिखावै। हउमैं का सब संसा जावै ॥71॥

साहू ब्रह्म जुदा नहिं भेड़ा। ज्यूँ सागर तरँग सुँ होइ बनेड़ा ॥
नख सिख व्याप्या सोहू माहीं। वेद कतेब की तहाँ गम नाहीं ॥72॥
वेद कतेब करम के वाचा। सतगुरु सबद मिल्या मन साचा ॥
बोले साहू जिन जाँझो रता। ज्यूँ खेलै बांझ का पोता ॥73॥
हउँ तू था वह गइ है आस। हद्द छोड बेहद किया वास ॥
अगम अगोचर गोचर होई। साहू नाहीं बोल्या सोई ॥74॥

दोहा : *साहू की क्यूँ भया, सुन रे मूढ अजान।*
मिरग जल की आव कूँ, कब करिए परवाँन ॥75॥

त्रोटक : *रे कुबुधी भूम सो जोई। रे संसै बीज सो बोई ॥*
रे तृष्णा जल सू पूगा। रे अग्यानि ऊगो सो ऊगा ॥
रे मन कहै यहै बाई। रे जैसी पोखै तैसी चाई ॥76॥

दोहा : *साहू यह संसार की, कैसी करिए बात।*
जो आठ पहर मूँ डोलना, ना कुछ हाथ न साथ ॥77॥
बार बार तुझ कहत हूँ, मूढा चेत गँवार।
मनख जन्म फिर न आवही, साहू कहै पुकार ॥78॥

सवैया : *प्रेम बिना नर भूलत है वह, प्रेम बिना नर झूठ बखानी।*
प्रेम बिना नर आप न जानत, प्रेम बिना नर कूप उरझानी॥
प्रेम बिना नर नर्क न सूझत, प्रेम बिना नर काहे सो मानी।
प्रेम विचार भेला जब होत है, साहू साह सभहि घट जानी ॥79॥

चौपई : *चंदन नागिन सूँ लिपटिया। ग्यान मोर जब ऊपर ठहरिया ॥*
तब आप आप कूँ ऊपर भागी। साहू ताकूँ विष न लागी ॥80॥

कवित्त : *ग्यानी की तो दृष्टी दूर, जहाँ देखी तहाँ हजूर,*
जहाँ प्रगट्या ग्यान सूर, तुमरी सब जात है।
हउँ तू दोई अरे, नूर कुंडी दिया तूर,
ज्यूँ चंदन के ऊपर मोर, सर्प सब ही खात है ॥
जैसे जल मध्य माहँ, चहुँ दिसा चलत नाँह,
वाँ कूँ पेड़ा ई आस भयो, वर दो ही ते वात है।
जैसे कँवल आप माहिं, ग्यानी त्यूँ जगत माँह,
साहू तू विचार देख, सकल ब्रह्म बात है ॥81॥

दोहा : *साहू देख्या आप मूँ, अपना रूप अनूप।*
भरम भुलाना मिट गया, होया चेतन रूप ॥82॥

चौपई : *देहभिमान मिट्या नहि भ्रंम, वह समझै न कबहु ये म्रंम ॥*
देहभिमान भरम का खूवा। कीता बूडा पच पच मूवा ॥83॥

प्रश्न : *पाँच तत्त की देह अस्थूल। सा समझै कबहु नहिं मूल ॥*
एक अनेक सूँ क्योंकर लागूँ। कान कूँ घर हू कान कूँ त्यागूँ ॥84॥
जो देखूँ सो मर मर जाइ। कान मूँ अपना कान्ह समाइ ॥
कौन सु जन्में कौन सु मरै। फिर फिर जोनी कौन सु भरै ॥85॥
उत्तर :*ज्यूँ तरंग सिंधू कूँ झपै। वा मूँ उपना वा मूँ खपै॥*
तू जनम मरण साहू उस माहिं। सुन रे मूढ़ा तू है काहिं ॥86॥

दोहा : *पाँच तत्त गुन तीन में, जब लग तुमरी दौर।*
तब लग भटकत मूँ रहै, कबहु न पावै ठौर ॥87॥

चौपई : *तुम कूँ किते कहे उपदेस। साम घटे सिर आए केस ॥*
आप आप सूँ आपै भूला। चौरासी मूँ फिरता डोला ॥88॥

दोहा : *साहू ये तन खाक है, आखिर माटी होइ।*
पहुती भेड़ी मार कर, गाफिल पीछै रोइ ॥89॥

दिन तो गफलत में गया, अर रैन गँवाई रोइ।
आखिर तो है चालना, अर जन्म गँवाया खोइ ॥90॥

चौपई : *संसार समन्द अखंड अपारा। वाँ में संत का नौका भारा ॥*
वाँ ते चढै सो पार परै। नहीं तो फिर फिर डूबै मरै ॥91॥
हउमैं भइ वह कहते ग्यान। ताते उपजै अति अभिमान॥
वह कहता हम ब्रह्म समान। फिर कहता हम जीव अजान ॥
उसकूँ कहते बंधन ग्यान। दर दर फिरै न पावै मान ॥92॥

दोहा : *है नाहीं क्या कीजिए जो घट घट परगट रूप।*
तन दर्पण मूँ देखिले, साहू रूप अरूप ॥93॥

सोरठा : *साहू रूप अरूप, नहीं बोलै नहिं मूँ कहै।*
कहो मुझे समझाइ, यह बोलै सो कौन है ॥94॥

दोहा : *साहू रूप अरूप था, घट घट बोलै राम।*
कहा हिन्दू कहा तुरक है, कहा नच नच माँगै जाम ॥95॥
ये ही रूप अरूप है, हाथों हाथ हजूर।
साहू एको रम रह्या, नहीं निकट नहिं दूर ॥96॥
दूर कहूँ तो निकट है, निकट कहूँ तो दूर।
साहू था सो उठ गया, नहीं निकट नहिं दूर ॥97॥

सिष-वाच

चौपई : *देहभिमान मिट्या अब छीना। सतगुरु वचन सुन्या मन भीना ॥*
पंच नवाँ की छोडी दौर। सतगुरु सब्द किया मन ठौर ॥98॥
हउमैं की वह होती दौड़। ग्यान कुण्डी वह दीनी तोड़ ॥
मन चंचल पायो विसराम। जहाँ देखूँ तहाँ दीसत राम ॥99॥
ऊँच नीच में सोइ होइ। भई कृपा तब दरस्या सोइ ॥
ग्यान सूर घट भीतर जागा। रैन अँधार सकल सू भागा ॥100॥
जहाँ देखूँ तहाँ राम हजूर। सरव निरंतर है भरपूर ॥
जिस कारण जग भया उदासा। वह तो घट घट कीया वासा ॥101॥
जल की बूंद पड़ी जल माहीं। वाकूँ भगता कहिए काँहीं ॥
ज्यूँ सागर में तरँग समाना। आया था थिर आप कुँ जाना ॥102॥

दोहा : *जो उपजै विनसै वही, ताहि बताऊँ कौन।*
ये ही बात विचार करि, हम पकड़ै है मौन ॥103॥

चौपाई : *उपजै खपै सो दीसत माया। ज्यूँ वृछ एक दूसरी छाया ॥*
कब देसी कब देसी नाहीं। सुन रे मूरख तू है काहीं ॥104॥
आपा भया तो दूजा भासी। आप गया तो दूजा नासी ॥
साहू ए पल तब ही पावै। हउमैं संसा भरम भुलावै ॥105॥

सिष-वाच

दोहा : *मृग सिंधू ज्यूँ देख त्यूँ, जग सपने व्यवहार।*
साहू नौका प्रेम चढ़, उतरिया है पार ॥106॥
कीटी का तहाँ पग नहीं, हस्ती की कब लत्त।
आप आप मूँ रम रह्या, साहू उलटी मत्त ॥107॥

सवैया : *मत्त गई अर गत्त गई, असत्त गई सुन प्रेम नजारा।*
सो धन खिंन चलै नहिं मंन को, बिरला जंन जो आप विचारा ॥
सोहू एक विचार किए वह, वेख तू, आप हि देख तभी निरधारा।
साहू राम दिया भर जाम, इथै घर धाम जो होत बकारा ॥108॥

त्रोटक : *ना कुछ गया न आया है। सोना बिछुड़्या कुछ पाया है ॥*
यह उपजै खपै सो माया है। सो सो हउँ वेख बनाया है॥
तहाँ साहू साह कहाया है। जहिं देखे भरम कल्हाया है ॥109॥

चौपई : *सुख जो ही था चाख्या सोई। तू निबंधना बंध न कोई ॥*
आपै गुरु आपै भया चेला। ना कोई बिछुड़्या ना कोइ मेला ॥110॥

झूलण : *प्रेम कंमान ले सुरति का खींच कर, ग्यान का तीर ले हाथ बाऊँ।*
आप कूँ घात करि द्वैत कूँ मार करि, अंत मैदान में सुक्ख पाऊँ ॥
अगम दरियाह मूँ टुब्बकी मार करि, एक सूँ मेख करता नहाऊँ।
साहू आप मूँ ऊपना आप मूँ खापना, आप सूँ आप हूँ आप खाऊँ ॥111॥

कुंडलिया : *गुरु वही चेला वही सब्द वही कर जान।*
साहू आप विचार कर एहु निवार सुजान॥
एहु निवार सुजान घट्ट घट सोहउँ बोल्या।
विवेकि पुरुष सो सार हंसा घूंघट खोल्या ॥
सर्व वियापी आतमा देख्या आप पिछान।
गुरु वही चेला वही सब्द वही कर जान ॥112॥

चौपई : *अणभौ ग्यान सो घट मूँ जागा। रैन अंधेरा सकल सो भागा ॥*
आपा भया तो दूजा भासै। आप उठ्या तो दूजा नासै ॥113॥
विचार किया तब ही यह बूझै। विचार किया तब ही यह सूझै ॥
विचार बिना नर कोइ ना छूटा। भई कृपा तब संसा लूटा ॥114॥
अब तो सुरति समानी धरनि अकास। हउमैं का वह झगड़ा नास ॥
जिसकूँ चाहा तू अब सोई। तू निरबंधन बंध न कोई ॥115॥
तुम तो प्रेम पियाला पीया मस्त। सौदा किया आपने हस्त ॥
जब सिर दीया तब यह लीया। अपना सौदा आप हि कीया ॥116॥
दर्पण फेरा पूठा देखै। सो अपना मुख क्योंकर पेखै ॥
साहू वाँकूँ क्यों दरसावै। जो पिरथक त्याग और कूँ जावै ॥117॥

पृथक आप सो देखै नाहीं। मूरख ढूँढै स्वान हि जाई ॥
जैसे मरघट ठौर न पावै। दर दर फिरै बहुत दुख खावै ॥118॥
विचार बिना नर कोइ न पावै। तब जानैं जब आपा जावै ॥
आपा सुध आपा नहिं बूझै। आपा उठ्या तो तब ही सूझै ॥119॥
यह काया सो तो माया है। जिहि माया जग भरमाया है ॥
सो ना तेरी ना मेरी है। यह खाक भसम की ढेरी है ॥120॥
सो ग्यान कुंडी सूँ घेरी है। अब ना कोइ सज्जन ना वैरी है ॥
सो साहू की यह फेरी है। सो समझ्या कूँ यह सेरी है ॥121॥
ना कुछ गया नहीं कुछ पाया। अपना सौदा आप बनाया ॥
घट घट सोहउँ किया प्रकास। कहा भया ठाकुर कहा भया दास ॥122॥
आप आप सूँ आपै लागा। हउमैं का सब साँसा भागा ॥
क्या कहिए कछु कह्यो न जाइ। जो कहिए सो कहै लजाइ ॥123॥
साधु संग तेरे पद पावै। नहिं तो मिथ्या जन्म गँवावै ॥
साधु संग ते आप सुँ लागै। हउमैं का सब संसा भागै ॥124॥
साधु संग ते ग्यान प्रकास। रैन अंधेरा सकल सु नास ॥
साधु संग ते जन्म न पावै। हउमैं संसा तुरत मिटावै ॥125॥

दोहा : साहू अनुभव ग्यान मूँ, टुबकी मारी माँह।
जहाँ देखूँ तहाँ आतमा, दुतिया दीसत नाँह ॥126॥
साहू आतम ग्यान मूँ उलटी लागा आप।
भरम भुलाना मिट गया, गुरु रोहल परताप ॥127॥

इति शास्त्र अनुभव-विचार संपूर्ण समाप्त

चौपई 85 ॥ दोहा 30 ॥ कवित्त मनहर 1 ॥ सवैया 5 ॥ झूलणा 2 ॥ त्रोटक 2 ॥
सोरठा 1 ॥ कूँडल्या 1 ॥ सर्व 127॥

सबद

साधौ वहाँ पर खेल हमारा।
हम भी नाहीं तुम भी नाहीं, नाहिं सकल संसारा ॥थल॥

क्या हिन्दू क्या तुर्क सडावै, दोनों हि मंगणहारा।
उह गंगा उह मक्का जावै, झगड़ा लागा भारा ॥1॥
परगट राम न जानैं कोई, मोटै बंध लगारा।
घट की गंगा न्हाइ न जानैं, वाँका मूंढा कारा ॥2॥
तीन गुणाँ में सभ जग बंधा, चौथा गाँव हमारा।
नाम नगर का बेगम नगरी, मार्‍या प्रेम नगारा ॥3॥
नंगा फिरूँ न कपड़ा पहरूँ, ना कोइ भेष हमारा।
हम वासी हूँ उसी देस का, जहाँ आवागमन निवारा ॥4॥
हम में स्रव मैं स्रव सूँ न्यारा, ज्यूँ जल दीसत तारा।
कह साहू जन सुन गुरु रोहल, स्रव घट दरसन थारा ॥5॥1॥

तन मन अंदर दामिनि चमकै, विरहा बादल लाया है
समझ सजन कूँ सही सुञा तो, आसिक लाल लखाया है ॥थल॥
चोले अंदर बैठा बोलै, काया को रूप धियाया है।
गुझड़ी गाल्ह नहीं आखण दे, रावळ रमज रिझाया है ॥1॥
पछिम देस सूँ बादल आयो, मेघ मेह बरसाया है।
अगम देस सूँ पड़ियाँ बूंदाँ, मालिक मुलक बसाया है ॥2॥
बिन नैनन मैं निरख्यो साधू, बिन जिभ्या गुण गाया है।
लव लव दे बिच सुहणा साँई, साजन उहाँ समाया है ॥3॥
आसिक रोहल रंडण चाढ़है, साहू रंग रचाया है।
नहिं मैला नहिं पुराना थींवे, रोजौ रोज सवाया है ॥4॥2॥

देहभिमान मिटै जब ममता, सुमति सहज घर आई।
गुरू कृपा वह बंधन टूटै, हउँ तू दोनों भाई ॥थल॥
सर्प कँठ डाल चली धरा पुर, त्युँ ग्यानी रहत संसारा।
वेद कतेब की तहाँ गम नाहीं, सो हउँ सगल पसारा ॥1॥
जन्म मरन सुपनै की भावना, जब जागा भव भागा।
एकोहि एक मिल्या भरपूरा, उलट उहाँ सूँ लागा ॥2॥
नहिं कोइ देव नहीं कोइ ध्याता, नहिं को धूप न छाया।
एकोहि एक मिल्या अविनासी, उपजै खपै स माया ॥3॥
कहीं से कहूँ कहीं सँग बोलूँ, और देवन को दूजा।
हउँ तू नाहिं कहै जन साहू, जो जाणै सो नर बूझा ॥4॥3॥

क्याह कहूँ कछु कहयो न जावै, बखमी बात सवाई।
रहत अकेले अज्ञात कहीजे, सतगुरु दिया बताई ॥थल॥
नहिं कोइ अजपा जाप सिमरना, अरथी गरथी नाहीं।
सब्द न साखी खाणी न वाणी, गीता गावण नाहीं ॥1॥
चन्द न सुरज पवन नहिं पाणी, अचरज बात बनाहीं।
अजब रंग किया बैरंगी, रँग जाइ बेरँग माहीं ॥2॥
रहणि न करणी सेवा न साधन, ना कोइ करूँ कमाई।
पूरण भाग मिल्या अविनासी, उहाँ जाइ हंस मिलाई ॥3॥
नहिं कोइ कार अकारी नाहीं, नहीं धूप नहिं छाई।
साहू कह गुरु रोहल पाया, रोहल सुन्य समाई ॥4॥4॥

मेरी बात सुन एही कि केई, भूल रह्या हर तरफ देही ॥थल॥
कि सरवण और नहीं धार्या, कि बाजा कूच नगारा।
कि सुनकर लाज नहीं आती, मुसाफिर हटाँ वही जाती ॥1॥
कि गाफिल नींद मूँ सोता, जब जाग्या तब रोता।
पिया संग है नहीं राती, बिछोड़ै दी बडी काती ॥2॥
आपा मूल कूँ पेखौ, घट घट बोलता देखौ।
कि वाँसूँ प्रीति है मेरी, नहीं तेरी नहीं मेरी ॥3॥
हंम सूँ मिले ना बिछुड़े, जो बेखमें हुँ सदा बिगड़ै।
जो अब तो आ जगाना हूँ, जो जग में तो बेगाना हूँ ॥4॥
आपा लक्ख की कहता, जो हद में ओ नहीं आता।
जो अनहद के सदा वासी, जो काटे भरम की पासी ॥5॥
साहूदास नहिं बोल्या, जिसे घूंघट सती खोल्या।
जो उसमें पत्त है आवै, त चौरासी में न फिर जावै ॥6॥5॥

जाँ घट ठाकुर लिया निवासा, तिस कारण जग फिरै उदासा ॥थल॥
कौन सो जन्में कौन सो मरै। फिर फिर जोनी कौन सो भरै।
गुरु कृपा वह बंधन टूटै। हउमैं गागर भरना फूटै ॥1॥
वैरागी विचार भया बडभागी। जहाँ कुछ नाहीं तहाँ धुन लागी ॥
सहस भान घट भीतर जागा। रैन अंधेरा भीतर भागा ॥2॥
जाँ देखूँ ताँ राम हजूर। सकल निरंतर है भरपूर ॥

आपो दिया जुगौ जुग जीया। सिर साटे साहब हम लीया ॥3॥
नहिं कुछ लिया नहीं कुछ दीया। अपना सौदा आपहि कीया ॥
साहू नाहीं बोलै ओही। जल थल गुप्त प्रगटिया सोही ॥4॥6॥

मेड़ा मेड़ा यहाँ ही मेड़ा।
आतम जैसा देव न कोई, काया जैसा और न डेरा ॥थल॥
अंधे मूरख दर दर डोलै, कोइ पूजै गुरु कोइ पूजै देव रे।
वाँ से नाहिं तुमार निवेरा, काया जैसा और न डेरा ॥1॥
बिना विचार बहुत गल थकी, कोइ जावै गंगा कोइ जावै मक्की।
वाँ से नाहिं तुमार निछेड़ा, काया जैसा और न डेरा ॥2॥
तरंग कहै कब सागर वेखूँ, कष्ट किये बिन क्योंकर पेखूँ।
जुदा नाहीं है तुम संग भेड़ा, काया जैसा और न डेरा ॥3॥
दास साहू जन खडा पुकारै, समझ लिया तो पार उतारै।
आप दिया बिन काज न तेरा, काया जैसा और न डेरा ॥4॥7॥

बैत

पँहिंजूँ अखियूँ रखी पाण में लियो पातो जिन।
सो विहण तिनखे विह थियो नकी सुख सुम्हण ॥
से अठई पहर अजीब साँ बठिया ओरन कनि।
त साहू मुँझऊँ तिन अचे बूअ बहार जी ॥1॥
अचे बूअ बहार जी छड पिरीं पसायो।
वेई विछाड़ै रातड़ी अंडण सो आयो ॥
लधो ला मकान मूँ गुरु रोहल बतायो।
साहू समायो पाण पंहिंजो पाण में ॥2॥
डहनि वैरिनि बिच में आयो आए इंसान।
पहिरियूँ वैरी पांहिंजो आहे नफ्स नजस नादान ॥
बियो वैरी तंहिं सां सामिल आहे सैतान।
टियो वैरी वितरो आए सुहिबत जाल जियाँ ॥
चौथों वैरी था चऊं विटो वे फरमान।

पंजूं वैरी पेट आए जो नित नित घुरे नान ॥
छहूँ वैरी उञ आए जालई पाणीअ परेसान।
सतूं वैरी सहूत आए जंहिं कया हजारे हैरान ॥
अठों वैरी आकरो आए तक बरतोलाँ।
नाऊँ वैरी निंड आए जो गफलत जो गुजरान ॥
डहों वैरी डमर आए जो जहलु बडो जउलां।
इन्हनि डहनि वैरिन विच में जो जंग खटे जवान ॥
ही सिर करियां कुर्वान तहिं सूरह तां साहू चवे।
पेट सुबुड सुलतान पेट हथियार बंधावे ॥
चकी पिन्ही पेट पेट वह आप पकावे।
करे मजूरी पेट पेट सिर वास चढावे।
पाजा पूजा पेट की इह सभई पेट के काज।
पर साहू पेट न होवहीं त कौन जचे महाराज ॥3॥

उलट-भेद

मन बिच पाए बैठो सी मोल्हां, जाई मींहं विया इया कोन्हां।
पीन्ही साइण सुम्ही गोली, साहू है को समझे बोली ॥
पने कूँ धन कैंची कतर, जाया भई निभाया पतर।
कोरई तानीं आणिया सतर, जोगी कूँ धन फिरंदे झोई ॥

साहू ही को समझे बोली

अहीं बोली विच नहीं जिवान, गई इंसानी थी सुलतान।
भज गई भ्रम दी बोली, साहू ही को समझे बोली ॥

गुलामअली साहब की वाणी

ग्रन्थ ब्रह्म-विचार

सवैया

कोइ कहत है मक्के के माहीं, कोइ कहै वनवास है जी।
कोइ कहत है धरणी ऊपर, कोइ कहै आकास है जी ॥
जिस कूँ दूर तु देखत है वही, प्रीतिम तेरे ताँ पास है जी।
गुलाम अली गुरु रोहल को अब, दासन को ताँ दास है जी ॥1॥
एक अनेक अनेक मुँ एक हि, एक अनेक समाय रह्यो है।
आप में आप हि व्याप रह्यो अब, आप मुँ आप सो आय रह्यो है ॥
गुरु रोहल राह बताय दियो घट, लख अलख लखाय रह्यो है।
गुलाम अली अब ग्यान गले मँह, आप छक्यो छक छाय रह्यो है ॥2॥
बाहर भीतर एक निरंतर, व्याप रह्यो है प्रीतम प्यारो।
घट घट माहीं खेल करत्त है, एक अनेक रहत्त सो न्यारो।
लाखन मूँ नहिं लाभत है यह, सतगुरु सब्द कह बहुत विचारो।
गुलाम अली उस खाक मिले जहिं, राम के नाम को नैम विसारो ॥3॥
ब्रह्म को भेद बताय दियो सो, सतगुरु सब्द को दान दियो है।
जो दृष्टि न मुष्टि नहीं कछु आवत, जाँ के महीं सो जान लियो है ॥
एक अनेक के भेष बनावत, रंग कहाँ शहशान कियो है।
गुलाम अली जो जीवित मरना, जुग जुगों सो जान जियो है ॥4॥
चेतन चाम को महल बनायो, अवघट आयकै घाट घड़्यो है।
पंच के पिंजरे पाय पड़्यो तब, आप उहाँ सूँ आइ रह्यो है ॥
गुरु शाहू जब ही किरपा कीनी, दिल मूँ तब ही ध्यान धर्‍यो है।
गुलाम अली अब ग्यान गले महिं, सभ ही सारौ काज सर्‍यो है ॥5॥

दोहा : *सभ घट एक हि राम रह्यो, जगत में जगदीस।*
गुलामअली गुरु रोहल की, जब चरण लगायो सीस ॥6॥

गजल : *जो सतगुरू सबद का सूरा। कि प्रेमी है वही पूरा।*
कि जिसने आप पहचाना। कि आप बिन आप कूँ जाना ॥7॥

प्रश्न, दोहा : *सतगुरु यह समझा मुझे, तुम पारस हम लोह।*
जोई जोगी जोग करत है, वहि कह समझाओ मोह ॥8॥

उत्तर : *आप बना अब आप मँह, जोगी जोग कमाइ।*
षट चक्कर षट देव हैं, सभ में उलट समाइ ॥9॥

सिष-उवाच, गजल

जो सतगुरु संग मूँ राता। कि मुख ने भखन मूँ माता ॥
दुहूँ दिसि गगन गरजाया। कि अनहद नाद बजवाया ॥
कि दम दम दामिनी दरसै। कि ब्रह्म की बूदंनी बरसै ॥
कि छम छम छाबतिया छेरें। कि ब्रह्मग्यान बाजतियाँ भेरें ॥
देखी है गंगा नी जमना। उहाँ सूँ राह है रमना ॥
कि त्रिवेणी तीर परसाया। कि तन मूँ तीरथाँ न्हाया ॥
गगन में पवन चढवाया। कि दसमा द्वार भी धाया ॥
शाहु ने शाह समझाया। उहाँ सूँ ख्याल ऊठाया ॥
परम मुनी पद कूँ पाया। गुलाम अली सरण आया ॥10॥

गुरु-उवाच, दोहा

जोगि जोग पूरण भयो, अब अनुभव कीयो वास।
जहाँ एक दोइ के गम नहीं, आवागँवन निवास ॥11॥

सिष-उवाच

अनुभव अथाह समंद्र है, जिसका आर न पार।
गुलाम अली गुरु रोहल को, अब चरण कँवल आधार ॥12॥

कवित्त : *सतगुरु को सब्द सत सुन मूँ पाई है गत,*
गुरु बिन कैसी है गत ब्रह्म जहाँ विसार्‌यो है।
दिल मूँ सो दान दियो मन माहीं मानि लियो,
प्रेम सूँ पिछान लियो तलब माहीं तार्‌यो है ॥
जान मूँ जान्यो है जब आप बीज आन्यो है अब,
मन को मान्यो न तब इश्क से उतार्‌यो है।
गुलाम अली और आस सुँ क्या फिरूँ वनवास,

सुँ प्रेम के प्रकास सुँ अब तो उजार्‌यो है ॥13॥
सतगुरु को सब्द सुन सुंन मूँ लागी है धुंन,
गुरु को गायो है गुन भेद जहि बतायो है।
सत्संग के तो संग संग लागै है नैनन संग,
बेरँग वही रंग रंग कैसो रंग लायो है ॥
तू जो करै आज आज आवै नहीं क्यों न लाज,
नाम बिना कौड़ी काज और तो अजायो है।
गुलाम अली ग्यान गली फूल्यो है कँवर कली,
शाहू ने शाह बली सत्‌गुरु समझायो है ॥14॥
सतगुरु के संग संग लागो है राम रंग,
रंग मुँओ ही रंग, साजन समायो है।
सतगुरु के आस पास तजो तुम और आस,
धरणी माहीं क्या अकास जोत जहाँन गायो है ॥
अब गुरु देख्यो घट घट प्रकास ताके वट पट,
बात येही अटपट अब छाती में छिपायो है।
हिरदै हरि नाम नाम और सूँ कैसा है काम,
कहत यही जन गुलाम गुरु के गुन गायो है ॥15॥

दोहा :
गुलाम अली अब आप मूँ, सहजे रह्यो समाय।
गुरु शाहू के चरन पर, लियो जब सीस लगाय ॥16॥
गुलाम अली सभ देखिया, देवी देव मनाय।
ब्रह्मँड सारा घट में गुरु, शाहू दिया बताय ॥17॥

गुरु-उवाच, झूलना

तन मंन के माहिं सो देख लीजे, ओहि सास उसास मूँ सास है जी।
तीन लोक मूँ फूलनी फूल रह्यो, भेड़ि भेड़ि मुँ ओहि ताँ बास है जी ॥
यह कंचन जैसी है काया तेरी, बिना राम के नाम सो नास है जी।
गुलाम अली एकोएक में एक हो, आपे सु आप उदास है जी ॥18॥

सिष-उवाच

जाणी जाण कै माहिं पिछान लिया, सत्संग सूँ जब ही संग है जी।
मोहन मन के माहिं सो मान लिया, अंग अंग मुँओ ही जो अंग है जी ॥
तन मंन के माहिं जो खेलता है, रँग रंग मूँ ओही बेरंग है जी।
गुलाम अली अब आप मूँ आप ही, आपे सो आप असंग है जी ॥19॥

गुरु-उवाच

धुंध घोल तुम आँख खोल देखो, सभ दिलबर का दीवार है जी।
बोल भूल माहिं ओही बोल देखो, सभ साजन का सिंगार है जी ॥
घट घट माहिं अवघट भया सारा, साहब तो बीच संसार है जी।
गुलाम अली जब आप उठो तब, आप ओही इजहार है जी ॥20॥

प्रश्न, दोहा

कहाँ ऊँच भयो कहाँ नीच है, कहाँ चोर भयो कहाँ साध।
गुलाम अली अब मौन है, क्या कहिए बकवाद ॥21॥

थीरक छंद

कहाँ चोर बन्यो कहाँ साध भयो, कहाँ पापी बन्यो अपराध भयो।
कहाँ मौन बन्यो कहाँ बकवाद भयो, कहाँ जान के माहिं सो जान लियो है ॥
कहाँ झूठ बन्यो कहाँ साँच भयो कहाँ कंचन है कहाँ काच भयो।
कहाँ वाच में वाच अवाच भयो, कहाँ मन के माहिं सो मान लियो है ॥
कहाँ नेड़े बसे कहाँ दूर भयो, कहाँ हाजिर है हज्जूर भयो।
कहाँ कायर है कहाँ सूर भयो, कहाँ आप सूँ आप पिछान लिया है ॥
कहाँ खास बन्यो कहाँ आम भयो, कहाँ हाकिम है हक्काम भयो है।
कहाँ जिनो जन गुलाम भयो कहाँ, दिल के माहिं सो दान लियो है ॥22॥

प्रश्न, दोहा

दो दिन का नेहड़ा लगा, तीन गुणाँ की टेक।
गुलाम अली अब आप है, किम भयो एक अनेक ॥23॥

उत्तर, सवैया

ज्यूँ जल तरँग तरँग मँह जल है, जल्ल तरंग नहीं कुछ न्यारो।
त्यूँ जग मँह जगदीस विराजत, जान जगत्त यह झूठ पसारो ॥
ज्यूँ कंचन एक अनेक है भूषण, भूषण बहुत सुवर्ण है सारो।
गुरु रोहल यह भेद बतायो, गुलाम अली हउँ वारण वारो ॥24॥

सिष-उवाच, दोहा

कबु जानैं मन वन फिरूँ, वन में रहूँ उदास।
मन की ममता तब मिटै, छुटकाया कासी को वास ॥25॥

उत्तर, सवैया

हे प्रीतम पास फिरै वनवास क्यों, रहत उदास बन्यो है उदासी।
तुहि इंसान सही सुलतान सो, आप पिछान फिरौ क्या कासी ॥
जो सतगुरु सर्न चुम्यो जब चर्न सो, जीवत मर्न नहीं है हासी।
गुलाम अली गुरु ग्यान गले सो, कँवर कली को भँवर है वासी ॥26॥

प्रश्न, दोहा

कबु जानत मैं ब्रह्म हूँ, कहा जानत जीउ अजान।
गुलाम अली इस पंथ की, किस विधि पड़ै पिछान ॥27॥

उत्तर कवित्त

जान्यो नहीं जुक्ति जोग बांध्यो है हरष सोग,
सोई है साक्षात रोग थाम माहीं थाधो है।
हउमैं जब बीच आन्यो मन माहीं ब्रह्म मान्यो,
कबहूँ जीउ जानियो बंध ग्यान बांधो है ॥
जीउ मूँ जानैं तू जान जानत नाहीं क्यों अजान,
भयो है सांत को सान खिन कैसो खाधो है।
पृथक है राम नाम भर रह्यो ठाम ठाम,
कैत यही जन गुलाम आखिन में आंधों है ॥28॥

सिख-उवाच, सवैया

प्रेम प्रकास कियो जब ही तब, मिट्ट गयो है सगल्ल अंधेरौ।
आप के माहीं आप पिछानत, दिल्ल दसा मँह दरसन देरौ ॥
हौं अर तुंम की भ्रंमना भागी, काट दियो गुरु बंधन मेरौ।
गुलाम अली गुरु रोहल को, होऊँ चर्ण कँवल्ल को चेरौ ॥29॥

झूलना

ब्रह्म विचार में ब्रह्म का खेल है, आप बिना आप मँह बूझे बूझा।
प्रेम प्रकास में धरणि अकास में, सभ मँह एक हि गूझे गूझा ॥
ब्रह्म बहार में गुल गुलजार में, सभ मँह साजन सूझै सूझा।
गुलाम अली अब आप मँह आप हूँ, कह्यो नहिं जात है एकै दूजा ॥30॥

गुरु-उवाच

जो कुछ करना है ओही कर लीजे, फिर फिर यहाँ नहिं आवना है।

सब संसार असार की प्रीति तजो, आस झूठी जो जगत सूँ जावना है ॥
जोई आये यहाँ जग जावै नहीं अब, लिव उसी से जो लावना है।
गुलाम अली अब आप मूँ आप है, बीच सूँ आप उठावना है ॥32॥

सिष-उवाच, सवैया

सतगुरु के सब्द की जोति जगी तहाँ जोत सूँ जोत जगावना है।
सभ घट माहिं लालो लाल है, उस लाल सूँ लिव लगावना है ॥
जब बूंद सागर मूँ आइ मिलै, तहाँ नहीं गया कुछ आवना है।
गुलाम अली अब आप हू अंत, देव नहीं कोइ ध्यावना है ॥32॥

रेखता

मेरी प्रीति तुम से लागी, औरों की बात त्यागी ॥थल॥
कैसा आ पड़ा है राजा, अब जा दौड़ा जगाया।
आप ही मूँ आप पाया, साजन मिला है सगाया ॥1॥
आप भव भरम का भागा, आपन सूँ आप लागा।
जब ही ताँ हऊँ जागी, ममता की मटकी भांगी ॥2॥
हउँमैं की रैण काटी, रे अगनि बिन डुबाती।
रूई की नहिं बाती, बिना तत जोत जागी ॥3॥
जब इश्क मूँ झूम आया, साहू ना साह सदाया।
प्याला जो पूरि पिलाया, अँखिया मूँ लाली लागी ॥4॥
गुलाम हूँ अली का, ना गुल ना कली का।
महबूब के गली का, प्रेम बड़ा है पागी ॥5॥33॥

सवैया

दिल दीदार ब्रह्म बहार खुल्यो, गुलजार सो कँवन कली को।
जो जानी जान भरम सभ भान दियो दिल दान सो ग्यान गली को
जो जीवत मरन सो सतगुरु सरन गुरु हुओ जब चरन सो साह बली को।
दियो जब जाम भयो विसराम सर्‌यो सब काम गुलाम अली को ॥35॥

गुरु-उवाच

ब्रह्म विचार भयो ज्याँके घट, ताह समान नहीं अब कोई।
ओही आप के माहिं सो आप पिछानत मौन उस तूँ नहीं तहाँ दोई ॥
सभ के माहीं सो बस रह्‌यो है, जिस कूँ चाहत तू अब सोई।
गुलाम अली जोई आप उठावे, आप उठ्‌याँ बिन मुक्त न होई ॥35॥

सरीर असार की प्रीति तजो क्यों, झूठे सुख में आय उलूझै।
लोक की लाज सो तोड़ दियो अब, सूरा सो जो सन्मुख झूझै ॥
आप के माहिं सो आप पिछानत, आप बिना अब आप कूँ बूझै।
गुलाम अली अब एक भयो तब, सभ मँह एक हि साहिब सूझै ॥36॥

सिष-उवाच, रेखता

प्याला प्रेम का पीया, कि ताते जुगो जुग जीया ॥थल॥
हुस्न हैरत्त हैराना, हुआ हउँ मस्त दीवाना।
हरी अब हाथ सर्न दीया, प्याला प्रेम का पीया ॥1॥
प्याला पूरण का पाया, जिसे जहाँ जोग जगाया।
थिया है खूब ने कीया, प्याला प्रेम का पीया ॥2॥
दिया है घूटु में घाटी, पिया है सिरों के साटी।
आँखै लाली का रंग लीया, प्याला प्रेम का पीया ॥3॥
गुरु रोहल के चरना, शाहू नी शाह की सरना।
कैसा कामण ताँ कीया, प्याला प्रेम का पीया ॥4॥
गुलाम अली का घर नामा, आया हूँ जोड़ के जामा।
सजन सारा नी सरसीया, प्याला प्रेम का पीया ॥38॥

सवैया

ब्रह्म विचार कयो विसराम सो, आप अधार भयो निरधारौ।
एक हि एक भयो वह वेख तहाँ एक अनेक कियो विसतारौ ॥
न थाप अथाप न पुंन न पाप है, आप हि आप सही सरसारौ ॥
लियो राम को नाम भयो विसराम सो, जन गुलाम हउँ वारणवारौ ॥38॥

दोहा

सभ घट एक हि रम रह्यो, जगत माहिं जगदीस।
गुलाम अली गुरु रोहल के, जब चरण लगायो सीस ॥39॥

गुझल

न दरसै देव को दूजा, कि सभ मँह साजन इक सूझा।
ओ पृथक वह गूझा, कि आप बिन आप कूँ बूझा ॥
कि हउमैं नींद सूँ जागा, कि उलटा आप सूँ लागा।
कि जान्या अन्तरै जामी, ओही शोक ओहि सामी ॥

कि एक ही एक अकेला, वही गुरु वही चेला।
सजन सूँ प्रीत नहिं लागी, कि हउमैं भरमना भागी ॥
दहूँ दिसि जोति नहिं जागी, सजन देख्या वही सागी।
कि जानी जान मँह जोया, कि मन का मैल नी धोया ॥
कि सभ मँह हक नी होया, सहज की सेज पर सोया।
कि खोले ज्ञान की गली, कि बोल्या है गुलाम अली ॥40॥

कवित्त :

गगन माहिं घनघोर अनहद बजै टकोर,
रिझझिम लगै झकोर बादल भर आयो है।
नहीं तहाँ पुंन पाप भूल गयो जोग जाप,
आप बिना पायो आप, आपौ विसरायो है ॥
गुरु कह्यो कहूँ काह नैन बिना नींह नाह,
ब्रह्म भयो ब्रह्म माँह साजन समायो है।
गुलाम अली आप जान आप बिना आप मान,
पड़ी यह तब पिछान हरि हीरौ पायो है ॥41॥
काया तो है कचकूड़ देही ऊपर धर्‍यो धूड़,
उसी ताँ मरना है मूर ठाम कैसो ठायो है।
भूल गयो भूल भ्रम मिट गयो काल क्रम,
दूर भयो ध्यान धम एक ब्रह्म मान्यो है ॥
होवनी है सोई होय भूल गयो एक दोय,
साजन देख्यो सागी सोय जान माहिं जान्यो है।
नहीं पुन पाप हू अजपा सो जाप हू गुलाम,
अली आप हू न आप बिच आन्यो है ॥42॥

सवैया

गुरु ग्यान लियो मन मान लियो, सो पिछान लियो जब जान को जानी।
जहाँ जान दियो भ्रम भान दियो दिल, दान दियो ओही गुरु ग्यानी ॥
है ओही अमीर सोइ दिलधीर को, सूरवीर जहाँ बात पिछानी।
गुलाम अली भयो खाक गली साहू, साह वली के दान को दानी ॥43॥
सतगुरु के सब्द को जाप जप्यो तब, जाप युँ जाप अजाप भयो है।
इस देही के माहिं सो देखि लीजे अब, थाप मूँ थाप अथाप भयो है ॥
जहाँ जंम को जोर न लागत है तहाँ पुन्न न पाप सो आप भयो है।
गुलाम अली अब आप उठ्यो तब, आप मूँ आप सो आप भयो है ॥44॥

झूलना

आपै आप सूँ आप सो आप रह्या बिन, आप मूँ आप सो आया है जी।
जब जग्ग के जोग सू जाय रह्या तब, जोग मूँ जोग जगाया है जी ॥
अब ब्रह्म का भेद बताय रह्या, बिन वेद अभेद बताया है जी।
जब गुरु की महिमा हो गाय रह्या, गुलाम अली गुण गाया है जी ॥45॥

सवैया

सतसंग सूँ जब ही संग भया तब, जान के माहिं सो जान लिया।
अँग अंग सूँ जब ही अंग भया, तब मन के माहीं सो मान लिया ॥
नैन निगाह मूँ नैन निसंग भया तब, दिल के माहिं सो दान लिया।
गुलाम अली रँग रंग मूँ बेरंग, आप मँह आप पछान लिया ॥46॥
है नी हजूर नहीं कुछ दूर भर्‍यो, भरपूर सो नेड़ौ भयो है।
भूल्यो है भ्रम्म मिट्‍यो सब भ्रंम न, काट न कर्म सो भेडो भयो है ॥
ओही अवगाह सो बेपरवाह, साहू है साह सो मेरी भयो है।
मिल्यो है राम सर्‍यो सब काम सो, जन गुलाम एही तेरौ भयो है ॥47॥

दोहा

भगवान सारा समँद है, अर लहर उसी के माँह।
गुलाम अली पिछानिया त, लहर समँद बिन नाँह ॥48॥
करौ सेवा राम की जो, जगत को मूल राम।
दासन को ताँ दास है, एही तो जंन गुलाम ॥49॥

॥ इति शास्त्र ब्रह्म-विचार संपूर्ण समाप्तम् ॥

छंद विगत : सवैया 17 ॥ दोहा 14 ॥ चौपई 1 ॥ गलत 1 ॥
कवित्त 6 ॥ झूलणा 6 ॥ थीरक 1 ॥ रेखता 2 ॥ गुझल 1 ॥ सर्व 49 ॥

सबद

भैरव

भूला क्यों फिरौ वनवास।
सबद की करौ सुमरना, जपौ सासौ सास ॥थल॥
कइ कहता धरणि पर है, कइ ढूंढत आकास।

सोध लियो घट भीतर, है तुम्हारे पास ॥1॥
कइ कै हंसा मक्का जावन, कइ न्हावन गंगा पास।
सिर साँटे साँई मिलै, पथर नदी का दास ॥2॥
तेरा साहिब तुझ महीं, तुम तजौ औराँ की आस।
सिंह भूखा जे मरै, फिर ना खावै घास ॥3॥
गुरु तो रोहल हम कूँ मिलिया, काटिया जम फास।
दिन रैण हम कूँ येही है, तेरे चरणों का विश्वास ॥4॥
साहु स्वामी गुरु मेरा होया, दासन को मैं दास।
जन गुलाम अली सरन तेरी, आवागमन निवास ॥5॥1॥

सतगुराँ के सबद मैंनूँ, जादू रो कैसो जगायो ॥थल॥
गणेशजी के देस सूँ कोइ, अटल आसण आयो।
ब्रह्माजी देखौ सृष्टि को, कोइ ऐसो रंग रचायो ॥1॥
विष्णुजी के दास का कोइ, नाभी थाँव बतायो।
देस में महेस देख्या, दिल द्वारै ध्यायो ॥2॥
कंठ में अखंड देख्यो, सरसती को सायो।
गंगा जमना सुषमना, निज नीर तीरथ न्हायो ॥3॥
त्रिवेणी के सीर पर, मैंने अनहद नाद बजायो।
दामिनी ताँ सीस चमकी, दसवें द्वार दरसायो ॥4॥
गुरु तो रोहल हम कूँ, ऐसो ब्रह्म भेद बतायो।
सुन माहीं मेरी धुन लागी, बिन जिभ्या गुन गायो ॥5॥
शाहू शाह गुरु हेत सूँ, मैनूँ प्यालौ प्रेम पिलायो।
गुलामअली प्रेमरस को, पी मद छक छायो ॥9॥2॥

पाया घट में दीदार,
सभ घट होइ रह्या उजवाल, दरसन आपणा ॥थल॥
नाभि कमल ऊपर है, विष्णू को विस्तार।
बंकनाळ उलटी बहै, कोइ पवन को परिवार ॥1॥
दिल्ल द्वारै भीतरा है, भरिया नीर अपार।
हीरा माणिक माहिं निपजै, जाणैं जाणनहार ॥2॥
कंठ चक्कर खेम ढई, सृष्टी को सार।
सबद वाँ सूँ ऊपजै, कोइ वाणी को व्यवहार ॥3॥
गंगा जमना सुखमना, बहै त्रिवेणी पार।
अनहद बाजै गगन गरजै, दामिनी चमकार ॥4॥

ए जगतर भरम भूला, जान्यो नहिं संसार।
कहै गुलामअली गुरु साहू, तेरे चरण कँवल आधार ॥5॥3॥

होरी

फागुन में खेल होरी, साजन के सँग संग।
छूटी है पिचकारी प्रेम, भीज रह्यो अँग अंग ॥थल॥
ज्ञान को उडियो गुलाल, तन मन भयो मेरो लाल।
अनहद की सुन धुन, बाजते है चँग चंग ॥1॥
नैना के नीर में, त्रिगुणा के तीर में।
सुषुमना के सीर में, न्हायो ब्रह्म गँग गंग ॥2॥
अनहद घन घोर घोर, जोत नहीं जोर जोर।
आ मचाया शोर शोर, बाजै मृदँग मृदंग ॥3॥
गुलामअली प्रेम गली, फूल्यो है कँवल कली,
सभ घट इसरार तेरौ, रहत उहाँ सँग संग ॥4॥4॥
गुरु ग्यान दिया हम कूँ, अब राम नाम को।
गुरु बिना ज्ञान कैसा, कैसे जो काम को ॥थल॥
भरम भूल सभा छोड, नंग नाम को।
उहाँ आवागमन नहीं, वासी सत धाम को ॥1॥
रसना मूँ रस लियो, हिरदै हरि नाम को।
बिना भजन मुख में कैसो, टुकड़ो जो चाम को ॥2॥
प्याला जो प्रेम पिया, मस्ती मदाम को।
गुरु रोहल राह बताया, बेगम गाम को ॥3॥
शाहू के शाह दिया, जंग जैसे जाम को
मतलब भयो ले तबही, इस जन गुलाम को ॥4॥5॥

दिल में मेरे आज सजन, याद तू ही आवता।
आवता आवता आंगण वेखौ, भूला फेरड़ा पावता ॥थल॥
हादी दीया हाथ से, मैं प्याला पीया प्रेम का।
असर उसका आँखिया माहीं, लाली का रंग लावता ॥1॥
विरह का बाग माहीं, साँवरे का वेश किया,
वृन्दावन में आज कान, बाँसुरी बजावता ॥2॥
आप कूँ तो आप जान, तुझ बिना को और नहीं।
तू घट की गंगा छोड कै, क्यों और गंगा न्हावता ॥3॥
हम नहीं नहीं नहीं, सोऊँ नहीं नहीं नहीं।

आपे ही में आप वेखौ, आपे ही गुन गावता ॥4॥
इश्क तो इसरार का, खूब हम वेखिया।
हर तरह हर शाम माहिं, मुझे ही समझावता ॥5॥
जिस तू मैंनूँ बख्श किया, इश्क रहै इसरार का।
गुलामअली पीर मेरा, शाहू शाह सदावता ॥6॥6॥

एही बेरा समझौ साधो, फेर यहाँ नहिं आवणा ॥थल॥
है बाजी कल कूड़ पसारा, सौदा समझ बिहावणा।
दिन तेरी अब बैठी जाऊँ, साजन माँह समावणा ॥1॥
एक घड़ी अब बार न करना, महकम हो मन लावणा।
सुलटा सागर उलट समाना, नहिं पाया नहिं पावणा ॥2॥
जल की बूंद मिलै जल माहीं, ना को गया न आवणा।
गुलामअली गुरु शाहू के अब, चरणो सीस लगावणा ॥3॥7 ॥

गौडी

ना को तू मैं नहीं कुछ तेरा,
मनख जनम फिर हाथ न आवै, समझण एही बेरा ॥थल॥
ग्यान के सूर प्रकास कियो घट, मिट गया सगल अँधेरा ॥1॥
आप हि आप में लाट समाना, ना को दूर न नेड़ा ॥2॥
आप हि आप सूँ आप हि खेलै, ना को मैं नहिं मेरा ॥3॥
गुरु रोहल जब किरपा कीनी, चरण कँवल का चेरा ॥4॥
गुलामअली गुरु शाहू मेरा, काट दिया जम फेरा ॥5॥8॥

साधौ दम दम की है होसियारी।
रतन अमोल एहि फिर ना आवै, आवण एही बारी ॥थल॥
बाजीगर एहि बाजी रचाई, खेलै खेल खिलारी ॥1॥
द्वैत मत ना भूल जावै, सुरति करणी सारी ॥2॥
एको एक रह्यो भरपूरण, कहा पुरुष कहा नारी ॥3॥
अंतर बाहर पूर रह्यो है, मैं ताँ बारन बारी ॥4॥
गुरु रोहल के जब सरणै आया, मन की ममता मारी ॥5॥
गुलामअली गुरु शाहू के, चरण कँवल बलिहारी ॥6॥9॥

कल्याण

मेरे मंदिर माहीं साहिब आयो, आयो बहुत सुख पायो ॥थल॥

तन मन सीस मैं बारन जाऊँ, सतगुरु सबद सुणायो ॥1॥
गगन मँडल में दामिनि चमकै, अनहद नाद बजायो ॥2॥
दसवें द्वारे ताली लागी, आगम जोति जगायो ॥3॥
मन की ममता दूर भई है, अविगत अलख लखायो ॥4॥
गुरु रोहल जब किरपा कीनी, बिन जिभ्या गुन गायो ॥5॥
गुलामअली गुरु शाहू के, चरण कँवल चित लायो ॥6॥10॥

होरी, कल्याण

प्रेम नगर के माहिं, श्याम सूँ मैं खेलूँ होरी ॥थल॥
वृन्दावन मूँ बीन बजावै, चश्मा लावत चोरी ॥1॥
लाल गुलाल की बादल बनी, पिचकारिन झरझोरी ॥2॥
अतर अबीर की धूम मची है, केसर भरत कटोरी ॥3॥
गगन मँडल मूँ दामिनी चमकी, अनहद की घनघोरी ॥4॥
आप सूँ आप हिह खैच लियो है, पाय प्रेम की डोरी ॥5॥
शाहू शाह की जब सरणै आया, प्रीति लगी तब मोरी ॥6॥
गुलामअली अब ग्यान गली मँह, मिलिया श्याम किसोरी ॥7॥11॥

जोग

ऐसी सैन समझ मन मेरा, अगम अभय पद वाणी।
तू जाणै मैं कुछ कर लेऊँ, ए सभ मन मुरखाणी ॥थल॥
अक्षय अतुल अती ब्रह्म आतम, रहया समाय जल पाणी।
ब्रह्म बेखरी बाण विरह का, ब्रह्मंड तहँ सुरति लुटाणी ॥1॥
दूर हटाया जग का झगड़ा फूँक दिया फकराई।
समझा संत म्हंत होइ बैठा, लख चेतन बतलाई ॥2॥
बेगम गाम नाम नहिं इनके, एही रस्ता हम धारा।
ना कोई जाग्रत स्वप्न सुखोपति, बेगम अगम अपारा ॥3॥
बेगम गुलामअली गुरु मेरा, खाक चरण लिपटाई।
राम रूप रोहल गुरु शाहू, मेरे प्राण अधारी ॥4॥12॥

मैं कंगाल मैं कंगाल मैं कंगाल तेरा।
तू दयाल तू दयाल, तू दयाल मेरा ॥थल॥
किम संताँ री कृपा धारी, चेतौ येही बेरा।
दिये दीदार होय करार, फिर ना आऊँ फेरा ॥1॥
सुजान चतुर सयानू, वह रंग है तेरा।

हम तो मूढ चेतन रूढ, आलस घनेरा ॥2॥
देवौ ग्यान महरवान, भगत विरद तेरा।
करम दूत भरम भूत, भागिया अँधेरा ॥3॥
नाना रूप हो सरूप, नहीं दूर नेरा।
सतगुरु शाहू गुलामअली, काटौ जम घेरा ॥4॥13॥

राम नाम का नाम लीया, सतगुरु सब्द सूँ प्याला पीया ॥थल॥
बूंद माहीं समद समाया, पाँच पचीस नौ तत की माया।
पाँचौ चीन्ह आत्म तत पाया, सतगुरु सब्द सूँ प्याला पीया ॥1॥
जल में सागर सागर में तरंगा, बाहर भीतर उलटी गंगा।
हउँ तूँ गया आप ही पाया, राम नाम हिरदै मुख गाया ॥2॥
अधर ब्रह्म की वासन नाहीं, है पण माहीं दीसै नाहीं।
नहिं को गया ब्रह्म नहिं आया, सूक्ष्म भेद मैं सकल समाया ॥3॥
जल का कुंभ जल व जल भरिया, जैमूँ दूध मूँ घीया।
उल्टा नीर ब्रह्म का दीया, साइर नीर कुंभ का पीया ॥4॥
अनुभव बोलै आतम तत माहीं, पूरण ब्रह्म रोहल गुरु साही।
अजब तुमारे सरनाई, गुलामअली प्याला सन्मुख पीया ॥5॥14॥

आसा

साधौ मैं सतगुरु पारस पाया, मिथ्या देह कँचन भई काया ॥थल॥
सबद सुनिया तन मन भीनिया, प्याला भर पीलाया।
पीवत प्रेम भया मन मगना, जोति में जोति जगाया ॥1॥
राम रतन धन हाथ जो लागा, यहै मिथ्या मन की माया।
यह झूठे जग में रच रहिया, भटकत फिरत अजाया ॥2॥
ये दिल द्वारका काया कासी, तन में तीरथ न्हाया।
उहाँ उजल आप भयो मन मेरौ, ममता मैल हटाया ॥3॥
घट घट माहीं सगल सृष्टि में, रंगी सो रंग रचाया।
रंग रंग माहीं ओही बेरंग है, लख माहीं अलख लखाया ॥4॥
गुलामअली अब दिल में दर्सन, सतगुरु यूँ समझाया।
आप उठावै ओही पद पावै, आप उठियाँ पहचानिया ॥5॥15॥

आज मोरे घर भई बधाई, सतगुरु आंगन आया है ॥थल॥
चोवा चंदन अगर अमीरस, घिस घिस अंग लगाया है ॥1॥
रोम रोम में सुहणा साँई, साजन इहाँ समाया है ॥2॥

घट में गंगा घट में जमना, घट में तीरथ न्हाया है ॥3॥
काया नगर में जोति जलत है, दरसन दुर्लभ पाया है ॥4॥
रोहलसाहब किरपा कीनी, तब यह भेद बताया है ॥5॥
गुलामअली गुरु शाहू साँई, चरणनि सीस नवाया है ॥6॥16॥
राम नाम लिव लावणा, और दिसा नहिं जावणा ॥थल॥
सतगुरु हम कूँ भेद बताया, तब आपै आप कूँ ध्याया।
सहजे सहज समावणा, राम नाम लिव लावणा ॥1॥
जब आपै आप में ताली लाई, तब एकाएक में रह्यो समाई।
प्रीति उसी कूँ पावणा, राम नाम लिव लावणा ॥2॥
ना को मूआ ना को जीया, ना को गया ना को आया।
मन का मैल मिटावणा, राम नाम लिव लावणा ॥3॥
एकौ एक रह्यो जब होकै, गुलामअली गुरु शाहू के।
चरणनि सीस नवावणा, राम नाम लिव लावणा ॥4॥17॥

साधौ मैं उसी देस का वासी, जहाँ आवागमण न चौरासी ॥थल॥
तन की तीरथ परगट पाया, सिमरौं सास उसासी।
गंग जमन का भरम मिटाया, क्या वृंदावन कासी ॥1॥
यहाँ चन्द्र न सूर नदी पग बाटी, जोति में जोति प्रकासी।
हद बेहद दोनों ही नाहीं, आप में आप उदासी ॥2॥
ये संसारा झूठ पसारा, देख्या सगल सो नासी।
आपै आप कूँ ताळी लागी, नहिं को धरणि अकासी ॥3॥18॥

रेखता

दो दिना का मेला, मेला मेला सोई मेला ॥थल॥
जोई जाया रहण न पाया, चलणा एक अकेला ॥1॥
रैन गई जब उड चलिया है, पीछै करत बसेला ॥2॥
तू जो करता मेरा मेरा, छोड र चल्या सवेला ॥3॥
जान जगत सब झूठी बाजी, बजीगर का खेला ॥4॥
गुलामअली है एकौ एक, सोइ गुरू सोइ चेला ॥5॥19॥

नैनन लागो मेरो आज तुम सूँ, छोडाँ तो अब छूटै नाहिं ॥थल॥
ऐसा खजाना जो हम कूँ मिलिया, खर्चा तो अब खूटै नाहिं ॥1॥
जल नहिं डूबै न अग्नि जलावै, पाधर पड़्यो कोइ लूटै नाहिं ॥2॥
प्रेम बिना बहु जतनाँ करहै, ममता मटकी फूटै नाहिं ॥3॥

शाहू शाह के सरनै आया, चरणौ पड़्या अब छूटै नाहिं ॥4॥
गुलामअली मेरी प्रीति जो लागी, तोड़ाँ तो अब टूटै नाहिं ॥5॥20॥

काफियाँ, रेखते

नाहिं निकट नहिं दूर हूँ, सभ नूर माहीं नूर हूँ।
आशिकाँ के इश्क माहीं, मैं ओही गफूर हूँ ॥थल॥
जिसका जो रंग न रेख ना, तिस कूँ जो कैसा पेखना।
देखना माहीं देखना, उस दीद में दस्तूर है ॥1॥
प्याला जो प्रेम का पीया, हादी जब हाथ सूँ दीया।
जिसने जो वेखौ क्या किया, उस मय में भखभूर हूँ ॥2॥
मो से जो रबअर ने कहाया, लन तराने जवाब आया।
जिसी सूँ आवाज आया, सोई सैना तोर हूँ ॥3॥
गुलाम हउँ तो हउँ अली के, कँवल फूले ज्यों कली के।
शाहू शाहंशाह वली के, चरननि में चकचोर हूँ ॥4॥1॥

मुसाफिर खबर कर दो दिन कागज रहे,
किसी का न घर है, पलक का पहर है ॥थल॥
जल की जा बूंद सा जल माहीं जावे, फोटो जो फूटा सर्व में समावे।
आवै न जावै, विरह का बहर है ॥1॥
कोई न जानै बाजीगर की बाजी, समझ पड़ी तब हरि का साजी।
देखन में जो आवै, ला सभ लहर है ॥2॥
बीचोनो नमूनो देखन में न आवै, आप उठावै सोई पद पावै।
विरही पढहाया, जेरी जबर है ॥3॥
होय रह्या मैं गुलामअली का, शाहू नीशाह की खाक गले की।
अकसीर इन्हा का नैन्हूँ नजर है ॥4॥2॥

नको है नको हो, परतो हुस्न जो पियो ॥थल॥
पंध त इन्हींअ पार दे, वञी कूड़नि मंझा को।
गूढ़ न मलामत खाऊँ, तालिब दिसी तऊ ॥1॥
आशिक असाँ जहिड़ा, हुत सजण अगिया सो।
नालो गधम नींह जो, वञण ताँ थियो ॥2॥
परझी दिसिज पाण में, आहे को न बियो।
तू गोली थो जंहिं खें, तू सागे आहीं सो ॥3॥
हादी अंङ्ण आइयो, हाणे भरम सभ बियो।

शाहू शाह असाँ ते, करम अची कयो ॥4॥
गुलाव अली इश्क में, पुछी पंध न पव।
गाल्ह परिया जो गुझ जी, कंहिं खे की म चव ॥5॥3॥

मैं ताँ चाया मेहणा यार दा, लोक करे रुसवाई ॥थल॥
गैर वालियाँ दा गरदन न कोई, नींह लगा निखारादा ॥1॥
कल त कंहिं कुं भी नाहीं, इश्क दे इसरार दा ॥2॥
सिर बिन सौदा भी को नाहीं, जो मिलंदा विरह बजार दा ॥3॥
शाहू शाह सांवन दिस जो दितड़ा, दिल बीच दीदार दा ॥4॥
गुलाम अली इश्क अल्ला दा, सनुह सचे दरबार दा ॥5॥4॥

है को इश्क अवेड़ा, मायोड़ी मैं समझ न जाता ॥थल॥
खेड़ियाँ दे है मैं हेका ही, रोज अजल कनूं अगे आहे।
पेच तिदाँ मैं पाया ॥1॥
महबत मच बल बलियोसी, गैर गुमान दा जल गयोसी।
सही सजन सिञाता ॥2॥
सालिक रख तू सुरत संभाला, हाल असाँ ते हादी वाला।
चाहूँ ताँ चमचाता ॥3॥
शाहू शाहंशाह मिलियोसी प्याला जंहिं तां पर पलियोसीं।
रमज तंहीं रंग लाता ॥4॥
गुलामअली ते इश्क आया, रोजां रोज है सवाया।
नाल ढोलन नींहं नाता ॥5॥5॥

मालकोश

हादी वाला नक्त हिको, सही करीं तूं सारा ॥थल॥
अंदर बाहर सुहणा साँई, सभो नूर नजारा ॥1॥
जे जाणी तां आप सिञाणीं, बिया सभ कूड़ पसारा ॥2॥
बेदर्दी कल दूर करीं, है बाझूँ इश्क अंधारा ॥3॥
हुस्न असाँ ते हमला कीता, नींहं मरींदा नगारा ॥4॥
कल फक्र कूँ कीतम सजदा, शाहू शाह हमारा ॥5॥
गुलामअली जाहिर बातन, मार तूं नींहं नगारा ॥5॥6॥

जोग

इथाँ रहण किसे नहीं पाया, मैं तूँ आहज जावणा ॥थल॥
है संसार हेली साजी, बाजीगर दी है ये तां बाजी।

समझ की पीरा पावणा ॥1॥
ना कोइ रहिया ना कोइ रहसी, इथां आखिर तूँ भी न बहसी।
बिया तां कूड़ कमावणा ॥2॥
जो कुछ मिल चूंड धराया, ओही सभो ई है पराया।
इथों क्या तू है चावणा ॥3॥
बियाँ कल हैं कूड़ याँ चालै, इथाँ रहसनि बिच के गाल्हिं।
साजन बिच समावणा ॥4॥
इथूँ औड़क तूँ भी मरना, जैसा करना तैसा भरना।
सौदा समझ बिहावणा ॥5॥
उतूँ तेंडी मौत खरोती, उथाँ क्यों तूँ है सुख सोती।
बिन खुशियाँ खूह खावणा ॥6॥
गुलामअली गम थियोसी, ना को हम न तुम रहियोसी।
ना को ज्ञान आवणा ॥7॥7॥

दिन दुनिया बिच है नींचार, जो होवै करै न वेसाह ॥थल॥
फानी है संसार सारा, आतण सांवन इश्क विसारा।
चरखड़ी नाहे चाह ॥1॥
आखिर जासी तूँ कंहि कली, बेठी घतां मैं पूबी छली।
आतण नूँ देवां बाह ॥2॥
दिलबर नाहे असां हूं दूर, ये तां बेड़ी वाला पूर।
साहित दे सागाह ॥3॥
हाल दी गाल्ह मैं आखाँ कंहिं नू, मारो मारीं कएं तूं मैं तूं।
केही दोह गुनाह ॥4॥
तूँ जो करीं मेडा मेडा, ना को तूं है नहीं को तेडा।
सभो है फनाऊ ॥5॥
सुहिणा साँई नित लणींदा, बे निमूँ बे चवनि सुणींदा।
कीता इश्क आगाह ॥6॥
कीहा करीं तूं तां पसारा, अंदर बाहर नूर नजारा।
सभो ही वाह वाह ॥7॥
सजन है सुधीर असाँ दा, गुलामअली पीर असां दा।
है शाहू नी शाह ॥8॥8॥

सिकियो साहू सारे, विहाँ की कएं विसारे। मारून खे (ओसांगनि खे) ॥थल॥
साँई लग सूमरा बेड़हीचनि खे वारी, महबत उन जी भारी ॥1॥
आहिन कम करबम ते बधा मूँ तां वारी, खड़ी दोह दहकारी ॥2॥

द्रोथीड़ा तां देह में डूर मंझा डेखारी, इश्क जी आरी ॥3॥
शाहू शाह अज असां खे, परतऊं पर प्यारी नजर नीहं निहारी ॥4॥
गुलामअली हुन रो गूंदर, मंझ गुजारी हुत घड़ी न घारी ॥5॥9॥

कल्याण

नींहं दा नजारा तेड़े नैणे दा नजारा, तरहें तरहें जो वेखण आया ॥थल॥
सभ सूरत बिच सुहिणा साई, खिलिया गुल हजारा ॥1॥
रोज अवल कनूं अगे आया, उसगा इश्क इशारा ॥2॥
सभ घट दे बिच सैर करिन्दा, नींहंम मरिंदा न्यारा ॥3॥
शाहू शाह यूँ आखिया, सही करीं सर सारा ॥4॥
गुलामअली इश्क दे बिच, मार तूँ नींहं नगारा ॥5॥10॥

मंगल

तूं तां सार सिर सिञाणी, पर आप वचवनि ना आणीं ॥थल॥
समझ वेखे तूं है सिर सारा, अन्दर बाहर नूर नजारा।
रस भो ई है प्रेम पसारा, जान इहो तू जाणीं ॥1॥
दुनिया दे हैं चार दिहाड़ी, तहिं बिच मौत मरिंदे धारी।
पूछ वेख तू ओड़े पाड़े, वेई वेल विहाणी ॥2॥
है संसार जेले हेले साजी, किए हिक गोए मरींदे गाजी।
विरह बनाई तिलिस्म बाजी.............................. ॥3॥
शाहू शाहंशाह मिलियोसी, प्याला तंहिं तां पर पलियोसी।
अखियाँ दे बिच रंग लियोसी, है सदा हुण साणी ॥4॥
गुलाम अली इश्क आयोसी, आप किनूँ तां आप वियोसी।
गैर गुमान दा भूल भूलियोसी, बी तां कूड़ कहाणी ॥5॥11॥

कल्याण

मैं डरी नाहीं खेड़ाँ नाले, मायोड़ी मैं डरी नाहीं ॥थल॥
हीर हीरां होय रही है, रांझे वंझली वाई ॥1॥
माउ पीउ दितड़ा वर लोकां नूं, मैं कूं बखश इलाही ॥2॥
शाहू शाह करम कीता, दितड़ा मनसब शाही।
गुलामअली कूँ असल कीनूँ, दतड़ी इश्क औगाही ॥3॥12॥

जंगला

रांझन असां दे अंड़ण आवंदा, आवंदा आवंदा, वे आवंदा ॥थल॥

विरह असाँ ते गालिब होया, सीने नाहं समावंदा ॥1॥
हर बेले हर बखत हमेशा, दिलयूँ दूर न जावंदा ॥2॥
नशा नीहं दा बख्श असा नू, प्याला प्रेम पिलावंदा ॥3॥
पीर असाँ दा जाहिर होया, शाहू शाह सदावंदा ॥4॥
गुलामअली दे बिच्चो दिलबर, आपै तां गुन गावंदा ॥5॥13॥

दिलबर नाहीं संताँ दूर, रहणा हरदम सूँ हजूर ॥थल॥
वेख हुस्न में हए हए हैरानी, नहिं सुहिणे दा बिया को सानी।
किया जो दूर कसूर ॥1॥
नारा अना अहलक मरींदा, सूली ते चढहै सैर करिन्दा।
मर्द होया मनसूर ॥2॥
सजन दा सिंगार वेखिंदा जेड़े केड़े यार दिखींदा।
भर रहयिा भरपूर ॥3॥
जमीन ते असमान जो नाहा, रोज अबल किनूं अगे आहा।
मोहबत दा मजकूर ॥4॥
सही करीं तूं है सिर सारा, आशिक मरिया नैन नगारा।
मुल्काँ बीच मशहूर ॥5॥
प्रेम नगरी उल्टी चाली, समझेगा को मस्त मवाली।
जाहिर जात जहूर ॥6॥
अखियाँ दे बिच रंग लगाया, शाहू शाहन पूर पिलाया।
पूराँ ते दिल पूर ॥7॥
गुलामअली आप सिंञाणी, आप बिना कुछ और न जाणी।
नूर नजारा नूर ॥8॥14॥
दम दम होया दिल दीदार, रहणा हरदम सैन होशियार ॥थल॥
दिल दरिया दे लखें लहरिया, सवे सहणे दिया नव नव निहारिया।
रहणा खबरदार ॥1॥
राहाँ अल्लादियाँ करोड़िया कैई, जिवैं को जाणैं तीवैं होई।
पर मोहबत है मुख्यतार ॥2॥
एड़े ओड़े मूल न गोले राहां दे बिच रूह न रोलें।
कर आप अति ऐतबार ॥3॥
महबत मस्त किता है मैनूँ, तिस दी गाळ मैं आखाँ के कहिं नूं।
वेख सारा इसरार ॥4॥
शाहू शाहंशाह सुहिणे दा, गुलामअली इश्क उहें दा।
आउ थिया इजहार ॥5॥15॥

आयो आहे कहिं खवाहिश खूं, अवलो करै इंसान में ॥थल॥
सही सैर तूं तां कर सारो सूरत संदी सिलान में।
हादी तां पूर पिलायो कंहिं जोश जे जवलाँन में ॥1॥
आशिक असल आहिन उहै, हिन हुस्न जे हैरान में।
कंहिं शौक खूं हित आइया, सोध जे सामान में ॥2॥
पेट पिड़ पायो अचे महवत संदे मैदान में।
वर्क वारे सभ सही, कयाउ दिल संदे दीवान में ॥3॥
अकरब खूँ वेझो बसै, इएँ पाण चयाउ फरकान में।
हुई रमज रिलाइज रूह साँ, इन कमानी कान में ॥4॥
शाहूंशाह समझाइयो, हर तरह हर शान में।
गुलामअली सिर दीनो, दिलवर मिलियो तहिं दान में ॥5॥16॥

रेखता

मेडा ढोलण नाल नींहड़ा, लगा मेडा ढोलन नाल ॥थल॥
तू रे बाझूँ सुहिणा साँई, जीवन है जंजाल ॥1॥
साह पसाहुँ वेझा वसंदा, विथ नहीं हिक वाल ॥2॥
बिच जहान दे बिया नहिं कोई, महबत जीहा माल ॥3॥
गुलामअली दा सुहिणा साँई, सँधड़ा लहीं तू संभाल ॥4॥17॥

बिलावल

इश्क बोले बोलड़ियाँ, नव नव नाज नैणाँ दे ॥थल॥
इश्क आराम दींदा नाहीं,
विरह विसार्‌या व्याकुल वाहीं, हुस्न खेड़े होलड़िया ॥1॥
पूछी ना तूँ पह कंहिं कूँ,
गुड़े मूर न गाल्ह इहें तूं, बी केही न कर तोलड़ियाँ ॥2॥
सभ सियालिन टोकां लाइन,
घटि न काई सभ सैर सदावन, असाँ झालिया तां झूलड़िया ॥3॥
दर्दमंदाँ दी जे दिल रंजाइन,
एड़ो ओड़ो चोली चाइनि, रुल गयासी रूलड़िया ॥4॥
बेकुल हीनी कूड़ी चालै,
दिलबर लधड़म वाचो चालै, ए सूर घतियान घोलरियाँ ॥5॥
गुलामअली तालिब तेडा,
शाहू शाह पीर महीं दा, भिन घतिया तंहिं भूलड़िया ॥6॥18॥

नैन्हड़ा लगा नाल तेडे, नाल तेडे, नाल तेडे नाल तेडे नाल तेडे ॥थल॥
तगूँ असाँ तार तेडे ते, राती दिहां दिल मेडे ते।
सजन नाल संभाल नी संभाल तेडे ते ॥1॥
प्रेम प्याला पर जो पीता, दिल मेडे नू मसत जो कीता।
जानब ताँ जमाल नी जमाल तेडे ॥2॥
प्रीति जो पाई नाल मेडी बी तरफ दिंह देखाँ केडे।
लेता विरह तां विसाल नीं विसाल तेडे ॥3॥
विरह तेडा वसो असां ते, बख्श कितोई आज असाँ ते।
महबत जे ही माल नी माल तेडे ॥4॥
डीन्दे के ही दस बिन्हानू, पलपल पवन्दी पूर असा नूं।
हरदम हरदम हाल नी हाल तेडे ॥5॥
अकरब किनूँ नेड़े जलीन्दा, सभ सूरत बिच हल हलीन्दा।
बिच नहीं हिकवाल तेडे वाल तेडे ॥6॥
पीर असाँ दा शाहू शाह, गुलाम अली नींह निगाह।
बहू बहू भाल तेडे भाल तेडे ॥7॥19॥
जादू लगा यार तेडा यार तेडा, यार तेडा यार तेडा यार तेडा ॥थल॥
सुहिणा साँई मड़ भाल, अज असाँ नाल जानब जाल।
लगा नींह ताँ निरवार है निरवार तेडा ॥1॥
हर कथां हीं यार जो बसन्दा, रमजा नाद दिल जो खनंदा।
जलवो सारां तां संसार है संसार तेडा ॥2॥
मन मेडे दा मोहिणा तू है, सकल सियालिन बिच सुहिणा तू है।
सभ सजन का सिंगार है सिंगार तेडा ॥3॥
इश्क असां नूं काबू जो कीता, हथों हादी दे पर जो पीता।
सारा इश्क तां इसकरार है इसरार तेडा ॥4॥
शाहू शाह बोलिया बोल समझ वेखें तू अखियन खोल।
दम दम दिल दीदार है दीदार तेडा ॥5॥
फेरा पाइन नकल किनूं, गुलामअली है असल किनूँ।
तालिब तां तकरार है, तकरार तेडा ॥6॥20॥

वेख जो लाया लाया लाया लाया, जा दौड़ा यार सानूँ ॥थल॥
बेखबरे नूँ निन्ड घणेरी, जानब यार जगाया ॥1॥
जे मैं जाणा आपै ही आया, आन्दे होत हिलाया ॥2॥
दिस इहो ई मुरशद वाला, बिया सभ पंध अजाया ॥3॥
गुलामअली दा सुहिणौ साँई, कीअड़ा पंध सजाया ॥4॥21॥

मूँ मारूनी जी संभाल, उमर हिते दींह लगा ॥थल॥
गिलम गलीचा तूल बिहाणा, छाजी है सुखपाल।
उमर सब शींह लगा ॥1॥
विहां हिते कएं वसीले, महबत झेड़ा माल।
उमर हुत मींहं लगा ॥2॥
गुलामअली इश्क में, जोशन में हित जाल।
उमर हुत नींहं लगा ॥3॥22॥

बैत

1. अंदर आग इश्क जी था जोगी जागाइनि।
सामी सदा सिक में था खुदाई खे खाइनि ॥
पाण पंहिंजो पाण में भाइण नको भाइनि।
गुलामअली इश्क में आशिक नी आहीं।
के लाहोती लाहिनी लागा पा हिन लोक जा ॥1॥

2. अंदर आग इश्क जा तिन जोगीन जा गाया।
प्याला पिरिम प्रीत जा तिन पूरविन पाया ॥
गुलामअली इश्क में अवधूती आया।
थिया तिन सामिन सजाया, ओजागा नी अखिन जा ॥2॥

3. अधिया दर अल्ला जे तिन जोगिन जा जागा।
सारे हिन संसार जा लाथा लाहोतिन लागा ॥
गुलामअली इश्क में थिया आगन जा आगा।
उहै सामी सभागा इश्क जे उजारिया ॥3॥

4. पाए मुंहुं महीअ में था औधो थी औरिन।
तनाल जा तालिब जी सा चपाती चोरिन ॥
जो अकरब खूं बेझी बसी था डिसि तांहिं डूरीं।
गुलामअली इश्क में तक न बियो तोरीं।
से मरू समरणियों सूरीं, जे रावत रीधा राम सां ॥4॥

5. मढहीऊ में मन को थियो उथी जोगी जाग।
आहे आशिकनि खे इएं लाहोतिन जो लाग ॥
गुलामअली असूल खाँ अथनि इश्क अझाग।
से डेही डील डुहाग, केही सन्मुख संनासी थिया ॥5॥

6. से सनमुख सफा से थिया, पाण विञाई पाण।
पूरविया परवड़ तू जाण वियाई जाण ॥
गुलामअली इश्क जो आए, अमल उहू अहिञान।
इहै सामीं सदा साणहउ, हणी हिंगलाज विया ॥6॥

7. रोगी रुकाटिन में औरे था अड़जनि।
आशिक इश्क आरोग, में लंघिया लाहोत वञनि ॥
रीधां बिछि रांदि राम साहू वेठा वक्त पूछनि।
गाजी वञी गर्क थिया हू टरिया डे टकरिन ॥
वहन अकरब अली मन उबल अलूरीक इहियो बोझ़ कीन बुधनि।
ला तकन तू थरहो करें था आशिक ऐन डिसनि।
महबत जे मैदान ते भील कएँ पतंग ॥
गुलामअली अनीर जूँ कपियूँ लामूँ लाहोतिन।
हू रोजनि मंझि रूलनि हिन खे हरदम डिस हजूर थियो ॥7॥

खुदाबख्श साहब की वाणी
सी-हरफी

'अलफ' *अलफ अला दी जात असल है, रंग न को बेरंगी।*
खिन फिक्खूँ बिच्चूं जग जोड़िस, बेरंगी था रंगी ॥
किथां इरानी किथां इराकी, किथ रोमी किथ जंगी।
किथ सुन्ना किथ शीया होया, किथ सूफी किथ भंगी।
खुदाबख्श हकाहक किन्नूं, असा महब्बत मंगी ॥1॥

'ब' *बे बयान न तंहिं दार कोई, है बेअंत अपारा।*
ला मकान मकान न कोई, रूप वर्ण थूँ न्यारा ॥
थी महीत सभो बिच आया, पसरै आप पसारा।
जोड़ जहाँ जुदाई दा खुद, बेखै नूर नजारा ॥2॥

'त' *तन बिच तलब दी देवें, मूल न मोड़ै पासा।*
सिर दितिया सिर हाँसिल होये, ये सौदा खुश खासा ॥
छोड़ गाजी ठगबाजी तू, आशिक रहें उदासा।
रक्खै खयाल खुदाई आशिक, तां पाए सुख वासा ॥3॥

'स' *से साबित रख सिक्क सजन दी, जे चाहीं सुख पाईं।*
बिच मैदान महब्बत दी दिल, लाए कदम उठाईं ॥
दे सिर बार विरह दा बारी, नाल खुशी चमचाईं।
राखै ख्याल खुदाई दा हुण, ताए संझ सवाईं ॥4॥

'ज' *जीम जुदा हिकदंम नहीं है, हरदम तेडे नाली।*
ऐड़े ओड़े मूल न गोलीं, जान तेड़ी बिच जाली ॥
कुल शइ महीत न जाणनि, से काफिर दिल दी काली।
इरफत रवी रब अलाया, ख्याल खुदाई वाली ॥5॥

'ह' *है हक नाल हमेशा होवै, सभै वहम विसारीं।*
तुरक करीं तदवीराँ कूँ तू, मन दी मैं वत मारीं ॥

बिना हरफ हकी हक बाझूँ, वर्क सभी वे वारीं।
तालिब बिच्च तलब तन दीवें, नैन बिहाइन नारीं ॥6॥
'ख' *खे खालिक दा ख्याल जहाँ कूँ, थैं फिरन निमाणी।*
जे मोती थी कर मर ज्यूँ, साधू बसै सियाणी ॥
जाहिर जोर जईफ दिसी जन, कामिल वतन कुमाणी।
बिच्च खयाल खुदाई दी खुद, जाणनवाला जाणी ॥7॥
'ज' *जाल जिकर बिच रैंदे आशिक, हरदम मत्त मदामी।*
दुनिया अकबा वाली तालिब, जोड़न तलब तमामी ॥
इशरत ऐश अशाक सरन ओ, हरफत जाण जिहानी।
खुदाबख्श पितों से प्याले, दस्तऊँ शाह शहानी ॥8॥
'ग' *गैन गरूर न थीयूँ आशिक, दीद जहाँ है दम बिच।*
वाली नाल वसाल न ताहाँ, कलब जहाँ दा किम बिच ॥
मस्जिद मेल न करंदे जिन कूँ, यार मिल्या है यम बिच।
खुदाबख्श न मरसैं सो जहिं, जाम पीता है जम बिच ॥9॥
'न' *नी फरदा ते कंम न रखौ, हो दम दम दिलवर नाल मिया।*
जो दम थीवे दम कुदमी, तहिं दी केहीं गाल्ह मियाँ ॥
जिन्हन दिल दर्द नहिं दिलवर दा, सो ना मर्द न जाल मियाँ।
वेखी समझी सुणी अलाय चलन्दा चोखी चाल मियाँ ॥
खुदाबख्श मिलियो से नव शइ, हल वेले हर हाल मियाँ ॥10॥
'क' *काफ कलब मोमिन दा जिन कूँ, आँखिन अर्श इलाही।*
अर्थ सो नहीं फर्श जिथाँ है, बरही दे बदशाही ॥
सच्ची सिक वाली विच मिलन्दी, कुड़ियाँ दी मँह काही।
खुदाबख्श मिलें दम दम दे बिच, है जग खुदा फनाहीं ॥11॥
'क' *काफ कीवें आपहरियाँ जानी, ए जामा जिस्मानी।*
होइ बेमिशल अमूरत मूरत, ला सूरत लासानी ॥
अरबा अनासर दे बिच कीवे, आया सर सुब्हानी।
नैना बीच निगाह करिन्दा, नूर इहो नूरानी ॥
खुदाबख्श लधोसी दिल बिच, नौशइ दिलबर जानी ॥12॥
'ल' *लाम लगा रंग ऐन हुसन को, वेख थिये भखमूर कीवें।*
वेखो नाज विरह दी कीता, करमल नाल किलोर कीवें ॥
परदेसी परवेज करायस, शीरीं ते शाहपुर कीवें।
चश्मा चोरी चौकां देवई, दीदां दा दस्तूर कीवें ॥
खुदाबख्श बिन देवण सिर थींवे, महबत बिच मंजूर कीवें ॥13॥

दूल्हदरियाखान साहब की वाणी

ग्रन्थ ब्रह्मवेद

चौपई : *गुलामअली गुरु दीनदयाल। तुम हो दाता मैं हुँ कँगाल ॥*
जब सतगुरु यह किरपा कीनी। बोल्या आप अज्ञा मुझ दीनी ॥1॥
गुलामअली गुरु पूरा पाया। ब्रह्म वेद का भेद बताया ॥
ब्रह्म वेद मँह डुबकी मारी। आप तिरे औराँ कूँ तारी ॥2॥
ब्रह्म वेद का भेद अपूठा। सो बूझै जिस आपै लूटा ॥
ए उलट वेद सोई नर भाखै। जो सीस काट गुरु चरणै राखै ॥3॥
ब्रह्म वेद जोई नर बूझै। चौरासी ताँ कौं नहिं सूझै ॥
जो ब्रह्म वेद मँह उलट समावै। सोहि बांझ का पूत कहावै ॥4॥

दोहा : *गुलामअली गुरु भेटिया, हउमैं रहै न टेक।*
दरियाखान आप मिट गया, एक एक मँह एक ॥5॥

चौपई : *ज्यूँ ज्यूँ देखूँ देखत भूला। चौरासी मँह फिरता डोला ॥*
करो कृपा गुरु मुझ समझावौ। आवागमन का भरम मिटावौ ॥6॥
हउमैं नींद सुँ तुम ही जागा। ज्यूँ ज्यूँ देखूँ भूत है लागा ॥
ज्ञान खड़क सूँ हउमैं काटी। दुतिया भाव औराँ सूँ न्हाटी ॥7॥

प्रश्न : *कहा भया ब्रह्म कहा भया जीउ। कहा भया छाछ कहा भया घीउ ॥*
ए वर्णाश्रम किस विधि जानूँ। जो तुम कहो गुरु सो हम मानूँ ॥8॥

उत्तर

कवित्त : *मन ही को कह्यो मान भूलौ है अती अजान,*
हउमैं की फाँसी पड़्यो ब्रह्म जीव भयो है।

माया सूँ जगत जोग बांधो है हरष सोग,
हरि सूँ बेमुख फिरै बुधिमान रह्यो है ॥
भजौ नहीं राम नाम कपट के तो करौ काम,
कर्मन के तो बस पड़्यो कुबुधि ठाम ठह्यो है।
कैत जन दरियाखान हरि भजे हरि समान
आगै आगै एक संत बार बार कह्यो है ॥9॥

प्रेम को अंग

चौपई : *प्रेम बिना परतीत न आवै। प्रेम बिना बहुता भटकावै ॥*
प्रेम बिना सभ बंध गयान। प्रेम बिना पावै नहिं मान ॥10॥

दोहा : *प्रेम तो मेरे बस नहीं, प्रेम न मेरे हाथ।*
तुम सतगुरु सावधान हो, कह समझाओ बात ॥11॥

चौपई : *प्रेम की महिमा कही न जावै। प्रेम नहीं को हाट बिकावै ॥*
आगे मरे पीछे फिर जीवै। प्रेम पियाला भरभर पीवै ॥12॥
प्रेम न देखा सुनिया कान। प्रेम खेल हाँसी नहिं जान ॥
प्रेम जिस घट कीया वास। सो जोगी नित रहै उदास ॥13॥

दोहा : *प्रेम पियासी हउँ फिरूँ, लगी प्रेम की प्यास।*
दरिया जिस घट प्रेम है, उहाँ प्रगट ग्यान विग्यान ॥14॥

चौपाई : *प्रेम जिस घट सो बडभागी। प्रेम जिस घट हउमैं त्यागी ॥*
प्रेम बिना समझै नहिं मूढ़। प्रेम बिना पावै सिर धूड़ ॥15॥

सवैया : *प्रेम प्रकास भयो जिनके घट, ताहि समान नहीं ए कोई।*
प्रेम बिना टूटै नहीं बंधन, प्रेम बिना परतीत न होई ॥
प्रेम को सूर उग्यो जिनके घट, तहाँ न दीसत एक र दोई ॥
दरियाखान प्रेमी प्रेम भयो उहाँ, हउमैं नहीं है साखी सोई ॥16॥

चौपई : *प्रेम नहीं को वन वनवासी। प्रेम नहीं को तीरथवासी ॥*
प्रेम भूत जिसके तन लागै। पाँच पचीस उहाँ सभ भागै ॥17॥
प्रेम भूत जिसका घट माहिं। एक निरंजन दूजा नाहिं ॥
प्रेम को सूर भयो परकास। पाँच पचीस उहाँ सभ नास ॥18॥
प्रेम नहीं कोइ हाटै बाटै। प्रेम का सौदा सिर के साटै ॥

जो सीस की भेट रखै गुरु दान। सो जोगसर पावै मान ॥19॥
तुम दाता गुरु मैं भिखियारी। सरन पड़े की लाज तुमारी ॥
तुम सागर मैं जीउ अजान। नाम निरंजन मांगूँ दान ॥20॥
नाम की भिक्षा सिर की साटी। जम तेरे सिर देवत झाटी ॥
चेत चेत रे ए है बेरा। नहिं तो अवसर जावै तेरा ॥21॥

सवैया : *ए सब संग असंग है तेरौ, काया संग है काल को डेरौ।*
जो देखौ सो दीसत नाहीं, देखत जंम कियो अंधेरौ ॥
मैं मेरी में मुक्ति न तेरी, ना कुछ तू नाहीं कुछ तेरौ।
दरियाखान संग असंग सूँ कीजे, जाके संग मिटै जम फेरौ ॥22॥

प्रश्न

चौपई : *एक प्रश्न गुरु पूछूँ तोह। तुम हो पारस हम हूँ लोह ॥*
काम क्रोध क्याह गृह वासा। लोक मोह अहँकार ते फाँसा ॥23॥

उत्तर : *इस प्रश्न का एक हि मूल। मृगतृष्णा जल देख न भूल ॥*
अज्ञान दृष्टि से परगट भासी। ज्ञान दृष्टि ते एही नासी ॥24॥
धृग धृग चेला ए मति तेरी। आपा जान कहै मैं मेरी ॥
ना कुछ तू नहिं कुछ तेरा। सांझ पड़े जम लूटै डेरा ॥25॥

सवैया : *केस फिटे अर दंत घटे यह, कंचन काया देह कुमलानी।*
सुध बुध मति गति भूल गई सभ, तृष्णा त्रास लगी जहाँ प्राणी ॥
रोगी रोग सरीर की संगति, नाम विसार झुगी जब पानी।
दरियाखान आस निरास बराबर, जे देख्या है सो सभ नानी ॥26॥

प्रश्न

चौपई : *तुम गुरु वैद रु हम हूँ रोगी। मैं मेरी में हरषी सोगी ॥*
हउमैं रोग का औषध करिये। भव सागर बूडा किमि तरिये ॥27॥

उत्तर : *हउमैं रोग है ए मति तेरी। भूल गयो हउमैं अर मेरी ॥*
बार हि बार क्याह तुम कहिए। आपा ढाह नहीं तो गिरिये ॥28॥
काया दरसी माया जानी। आतम दरसी आप न मानी ॥
त्यूँ अज्ञानि आप सूँ अंधा। अणहोता सत मानी धंधा ॥29॥

कवित्त

कहाँ तेरी जात पात कहाँ तेरो पिता मात, एको एक ही इहाँ हउमैं को कहत है।
कहाँ तेरौ नंग नाम कहाँ तेरो धाम गाम, सारौ सनबंध तेरौ इहाँ नहीं रहत है ॥
तू जो कहै मेरौ मेरौ नहीं तू कहाँ तेरौ, देखत है जम फेरौ प्राण ले बहत है।
कैत जन दरियाखान आपनी तू आप मान, भले बुरे सभ जान सा सभ सर सहत है ॥30॥

प्रश्न

चौपई : *तुम हो जहान र मैं हूँ कांगा। सर्ण तेरी भवसागर लांघा ॥*
आ पड़िया गुरु तेरे द्वारे। मैं मेरा है तुम सरवारे ॥31॥

उत्तर : *एक जान दूजा नहिं कोई। जिसका भार उठावै सोई ॥*
जिवड़ौ देख सरप कियो वासा। अपनी करनी आपै फाँसा ॥32॥

प्रश्न

दोहा : *एक कहूँ तो दो दिसै, अर दोइ कहूँ तो तीन।*
तुम सतगुरु सावधान हो, मैं हूँ मति आधीन ॥33॥

उत्तर

सवैया : *एक माहीं दो भयो तीन माहीं चार भयो पंजा तो पसारा।*
काम मुँ क्रोध भयो लोभ माहिं मोह भयो मोह ते अहंकारा ॥
अर्भ माहिं गर्भ भयो जीव जन्तु सर्व भयो सर्व सूँ न्यारा।
दरियाखान आप हूँ और नहिं थाप हूँ सतगुरु के सब्द मँह आप तो बसारा ॥34॥

चौपई : *जप तप संजम में बुधिमान। ताते किस विधि धरिए ध्यान ॥*
अणभौ ज्ञान बिना किम पावौ। नहिं तो मिथ्या जनम गँवावौ ॥35॥
ज्ञान गिलोला जिसकूँ लागै। संजम वरत नैम सभ भागै ॥
ध्याता ध्यान ध्येय ते नाहीं। एको एक रम्यो सभ माहीं ॥36॥

प्रश्न : *ज्ञान बिना गुरु कहाँ सु जाऊँ। ज्ञान बिना गुरु कहाँ समाऊँ ॥*
ज्ञान बिना गुरु मिटै न दौर। ज्ञान बिना पाऊँ नहिं ठौर ॥37॥

उत्तर

सवैया : *ज्ञान की गंम पड़ी जिनकूँ उहाँ, दूर निकट्ट नहीं इकसारौ।*
ज्यूँ जल के माहीं चंद दिसत है, पिरथक भान रहत्त सो न्यारौ ॥
त्यूँ आपहि आप रच्यो रचना में, आप सूँ आप भयो निरधारौ।
दरियाखान ज्ञानी समकर जानी, राग न द्वेष न जीत न हारौ ॥38॥

ज्ञान की चोट लगी जिनके घट, हउमैं पोट लुटी अब ताहीं।
एको एक भर्या भरपूरन, नैन र वैन में दूजा नाहीं ॥
मन की दौड़ मिटै गुरु की मत, एक अलक्ख लख्यो दिल माहीं ॥
दरियाखान रोम रोम मँह एक, रमैया समझ देख अर तू है काहीं ॥39॥

दोहा : *मानसरावेर मन बसै, दे डुबकी घट सूझ।*
हरि हीरा की गाँठड़ी हंसा होकर खोज ॥40॥
मानसरोवर मन बसै, आतम सुमरौ नित्त।
अँधिया आगै ओट है, हउमैं संसा भित्त ॥41॥
मानसरोवर मन बसै, जो खोजै सो पाय।
सुमरण येही बार है, नहीं तो अवसर जाय ॥42॥

प्रश्न

चौपई : *करनी करूँ करम गति पाऊँ। उन दोनाँ ते कहाँ समाऊँ॥*
करम छोडि करनी कूँ लागूँ। किसकूँ गहूँ किसी कूँ त्यागूँ ॥43॥

उत्तर : *कर्मकांड में सब जग बांधा। बिन करनी किमि छूटै भांडा ॥*
करणी है करमाँ ते न्यारी। बिन करणी किमि मिलै मुरारी ॥44॥

प्रश्न

दोहा : *करणी का कुछ बल नहीं, रहणी खांधी धार।*
भवसागर की सीर मूँ, किम कर उतरूँ पार ॥45॥

उत्तर

चौपई : *भव सागर क्यों सतकर जानौं। आप बोडौ आपै मानौं ॥*
जो तू कह्यो सुन्यो नहिं कान। हउमैं वास भयो बुधिमान ॥46॥
अपनी करणी आपै पास। हाथ दीप अर खोहै फाँस ॥
जैसे मरकट पकड़ी मूठ। आपै बांधा सकै न छूट ॥47॥

सवैया : *बिन सतसंग न दौड़ मिटै वह, अड़सठ तीरथ न्हाऊ कासी।*
पिरथक आतम राम न जानों, दूजा मान फिरौ वनवासी ॥
हिन्दू तुरक दोनाँ ते नाहीं, कहिं बडभागि मिलै अविनासी ॥
दरियाखान ये पद बिरला बूझै, अटपटि बात नहीं का हासी ॥8॥

प्रश्न

चौपई : *तुम हो सतगुरु दीनानाथ। सरण पड़े पर राखौ हाथ ॥*
जुग जुग भूला चरनै लाओ। जनम जनम के पाप मिटाओ ॥49॥

उत्तर : *मारग देख कहीं मैं भूला। अपनी करणी आपै डोला ॥*
ज्यूँ सिंघ कूप में छाया भासै। आपै बूडै आपै भासै ॥50॥
चेत अचेत दूजा नहिं कोई। दूर निकट है सागी सोई ॥
परथम सूर उलू नहि देखै। जन्म का अंधा क्योंकर पेखै ॥51॥
ज्यूँ काच मंदिर पड़्यो सुवान। आप न चीनै अचरज मान ॥
भिन भिन देख उहाँ बस मरै। अपनी करणी आपै भरै ॥52॥
ज्यूँ गज फाटक सासट वासी। तोड़ै दंत उहाँ सभ नासी ॥
त्यूँ अज्ञानि आप सूँ भोला। दर दर दौड़ै फिरता डोला ॥53॥

दोहा : *आप न चीनै आप मँह, मिरग कथूरी वास।*
दरियाखान अचरज मनहि, भिन भिन सूंघै घास ॥54॥

प्रश्न

चौपई : *तुम दाता गुरु दीन दयाल। अपने आप करौ प्रतिपाल ॥*
जे तुम कहौ करूँ मैं जोग। जनम जनम मिट जावै रोग ॥55॥

जोग का अंग

उत्तर : *अव्वल एही जोग पछान। मूल तखत दृढ़ आसन जान ॥*
धर के पवन चढो आकास। ऊहाँ हरिजन कीया वास ॥56॥
लिंग लहर ब्रह्मा का वास। उलटी बूंद भया परकास ॥
अमर पियाला जो नर पीवै। काल न व्यापै जुग जुग जीवै ॥57॥
नाभि कमल दम धमण धमावै। खाली भरै भर्‌या उलटावै ॥
उचरै वाणी सबद प्रकास। वा घट हंसै कीया वास ॥58॥
दिल दरिया भरिया भरपूर। दे डुबकी निज निरख्या नूर ॥
सोऽहं सबद उहाँ धुन लागी। हउमैं संसा दुरमति भागी ॥59॥
सुन चेला इक मेरी बात। कंठ कंठ सुमरन कर हाथ ॥
अकड़िया करनी करौ कमाई। सोऽहं सबद मिलै रघुराई ॥60॥
निकट खोज पाया घर पूरा। उहाँ निरंजन दीसै नूरा ॥
अधर अमी बरसै नित गगना। पी पी मस्त भया मन मगना ॥61॥

चमकत बीच गगन घनघोर। बाजै अनहद सबद टकोर ॥
बाजै साज सुरै सुर मंडल। पाँच सखी मिल गावै मंगल ॥62॥
ज्ञान को दीप भयो उजवाड़। प्रेम कुँजी हथ खुल्यो किंवाड़ ॥
जय जयकार सरन पद आया। सनमुख दसवें दरसन पाया ॥63॥

दोहा : *दरसन में परसन भया, उडर्‌या भँवर अकास।*
मन पवना पहुँचै नहीं, वाँ घर कीया वास ॥64॥

सवैया

अपरम्पार बेअंत अपार अगम को, बार किन्हीं एक बिरले चायो।
न लख अलख न बख अबख, न पख अपख सोई सर्व समायो ॥
न रूप अरूप न भूप अभूप, न छाया धूप कैसो आ ठाम ठहायो।
दरियाखान मिट्‌यो अभिमान गुराँ के, ग्यान इहाँ सूँ आप उठायो ॥65॥

अकड़िया करनी का अंग

प्रेम बिना वह भेख करै अर, प्रेम बिना वह जोग कमावै।
प्रेम बिना तपसी हो दौड़े, प्रेम बिना वह केस बधावै ॥
प्रेम बिना वह वेद बखानै, प्रेम बिना हरि हाथ न आवै।
दरियाखान जोगी सो सत मानौं, अकड़िया करनी जोग कमावै ॥66॥
सुंन समाधि करै बहु जतनन, मौनी होइ अर ध्यान लगावै।
जोगी जोग अभ्यास करै बहु, पंडित पोथी ते नहीं पावै ॥
आतम तत्त न चीन्ह सकै जब, आप में आप न उलट समावै।
दरियाखान जोगी सो सत मानौं, अकड़िया करनी जोग कमावै ॥67॥
कहाँ पानी कहाँ पाथर पूजै कहाँ, हाजी हज मक्के जावै।
कहाँ नादी कहाँ वेदी होकर, कहाँ हरि मंदिर संख बजावै ॥
कहाँ अज्ञानी भरमै भूला कहाँ, आकास पवंन चढ़ावै।
दरियाखान जोगी सो सत मानौ, अकड़िया करनी जोग कमावै ॥68॥
कहाँ जप तप जोगेश्वर जोगी, कहाँ हिन्दू कहाँ तुरक सदावै।
कहाँ फिरै वनवासी भूला, कहाँ सो मूरख मूंड मुंडावै ॥
कहाँ हिन्दू हथ माला फैरै, कहाँ सो तसबी ताल मिटावै।
दरियाखान जोगी सो सत मानौं, अकड़िया करनी जोग कमावै ॥69॥
आतम दरसी आप न मानै, माया दरसी मूल गँवावै।
आतम दरसी संत सरोवर, माया दरसी मोह समावै ॥

आतम दरसी सर्व वियापक, माया दरसी मान न पावै।
दरियाखान जोगी जो सत मानौं, अकड़िया करनी जोग कमावै ॥70॥
कहाँ वह भेष करै भेष धारी, कहाँ सो पूजा कलस चढावै।
अपना आतम देव न मानैं, दर दर दौड़ उहाँ जस गावै ॥
कहाँ सूरौ जारख कर भूला, कहाँ ग्यारस रस अन्न न खावै।
दरियाखान जोगी सो सत मानौं, अकड़िया करनी जोग कमावै ॥71॥
कहाँ जोगेश्वर झोली झंडा, कहाँ नारायण नाथ कहावै।
कहाँ संन्यासी सेल्ही सींगी, कहाँ वैरागी भस्मी लावै ॥
काहाँ सोधी दूधाधारी होकर, कहाँ सो रमता मूंड मुंडावै।
दरियाखान जोगी सो सत मानौं, अकड़िया करनी जोग कमावै ॥72॥
कहाँ तपेश्वर तपसी होकर, कहाँ सो भूला भुजा सुकावै।
पाँव ऊँचा अर सीस तले कर, लोगाँ आगे लटक दिखावै ॥
आपा घाती महान पापी, ओ जती सुन समाध में जावै।
दरियाखान जोगी सो सत मानौं, अकड़िया करनी जोग कमावै ॥73॥
मन का मरम न जान सकै अर, कूड़ी करनी कनचिसवै।
अपना भेद अभेद न जानैं, ज्ञानी हो अर आप वुदावै ॥
दिल का दौड़ मिटै नहीं कबहूँ, जान गुरू परतीत न आवै।
दरियाखान जोगी सो सत मानौं, अकड़िया करनी जोग कमावै ॥74॥
अपने आप कूँ आप जानौं नहीं, दूसरा मान रे कहा जाऊँ।
पिंड ब्रह्मंड में एक ही रम रह्या, दर दर दौड़ नहिं ठौर पाऊँ ॥
जुगत झोली करो सत सेली बांधो, विरह भभूत ले अंग लाऊ।
कहत यूँ दरियाखान हरि बियो न धरियो, ध्यान आपना आप जस आप गाऊँ ॥75॥

छंद

करनी पहर कंगण रहणी हाथ खाधाँ मारूँ पाँच वैरी पचीसी मनाऊँ।
धीरज बांध ढालाँ रे दुरजन निकालाँ, वह सन्मुख लड़ाई भली जुध बनाऊँ।
चढूँ ग्यान घोड़े चाहूँ जुगत झंडा, मारूँ मन मेवासी सूरा हू उनाऊँ।
दरियाखान गुरु ग्यान सूँ जीत कलम पकड़, चोर पाँच जा दुर्ग सुनाऊँ ॥76॥

सवैया

सब्द की सवारी दिया गगन डेरा, चढ़ै फौज बाँरै मारूँ मन मेवासी।
लगी जंग झेड़ा करूँ येह निवेड़ा, मारूँ चोट कारी लड़ूँ सास सासी ॥

बजी प्रेम ताली खुल्या ग्यान घट का, भरमना बिगाड़े निपट नासी।
दरियाखान गुरु ग्यान की हाथ छड़ी, पकड़ कान आऊँ गले बाँध फाँसी ॥77॥
फिरै गुरु दुहाई दिया लोट डेरा, पड़ी भीड़ भागा कटक कोट माहीं।
नवीं छाप चीरा लिख्या प्रेम पट्टा, लिया देस निर्भय कोई गंम नाहीं ॥
अधर धुंनि लागी बाजै तबल बाजा, अगम जोत जागी सभी सुक्ख ताहीं।
दरियाखान गुरु ग्यान का खेल न्यारा, तेरी तुम जानौं रे हउमैं मूँ काहीं ॥78॥
ब्रह्म के खेल का प्रेम पता दिया, सुंन महँ धुंन झंकार लागी।
अनहद बाजी छतीसी अवाजी, लगे घंन घोरी अगम जोति जागी ॥
ब्रह्म बूँद बरसै उहाँ मंन परसै, करै केल हंसा भरमना त्यागी।
दरियाखान गुरु ज्ञान की उलट फेरी, पायो पद निर्भय भयो मंन माखी ॥79॥
ब्रह्म के भेद को वेद जानैं नहीं, मंन के मान कर भूल भटकै।
लोभ के संग सूँ मोह माया पड़ै, काम के संग पर नारि अटकै ॥
दुष्ट के संग सूँ पार पावै नहीं, साधु के संग अहंकार हटकै।
दरियाखान बिन गुरु नाहीं सांति पावै, माया मेलवी कूड़ करै नाट नटकै ॥80॥

दोहा :

मैं मेरा कुछ बल नहीं, सब कुछ सतगुरु हाथ।
दरिया मीठी मौन है, क्या कहिए बकवाद ॥81॥

सवैया :

अगम के देश में बैठ निर्भय इहाँ, राव अर रंक सभ एक जानौं।
आपणी मौज सूँ आप परगट हुआ, आपने आपको आप मानौं ॥
द्वैत के भाव सूँ बुत रु पत्थर पुजै, देइ सिर दंड और सभै भानौं।
दरियाखान गुरु ज्ञान सूँ पाँच पचीस, एक घर एक अनेक आनौं ॥82॥

दोहा :

गुड़ी गगन पर उड चली, डोर गुराँ के हाथ।
मन पवना पहुँचै नहीं, सबद सनेही साथ ॥83॥
करणी का घर नीच है, अकड़िया का घर दूर।
दसवें द्वारै पाँव धर, को पहुँचै बिरला सूर ॥84॥

ब्रह्म-ज्ञान, सवैया

ज्ञानी सोइ मानू फिरै मदमाता, अकल खेल खेलै रहत सो न्यारा।
न रागी वैरागी न ग्रेही त्यागी, सदा सर्ववासी एकौ एक सारा ॥
न चाही अचाही बनी न बनाई, न हारी न जीती सोइ संत प्यारा।
दरियाखान ज्ञानी की एही निशानी, सर्व एक जानी रहत निरधारा ॥85॥

उलट-वेद

चौपई :

खाय हराम हलाल बताहीं। अध खाधा कर छोडै नाहीं ॥
जो खावै अमरापुर जावै। दरियाखान एको भेद बतावै ॥86॥
इक तरवर देखा बिन पाड़। बिना फूल फल लागा झाड़ ॥
आप उठावै सो फल खावै। दरियाखन एको भेद बतावै ॥87॥
ऊँचा सरवर नीचै बाड़ी। पसरी बेल अर ऊगा भाड़ी ॥
उस भाड़ी को पार न पावै। दरियाखान एको भेद बतावै ॥88॥
एक कुलच्छण देखी नार। फिरै कुँवारी करै सिंगार ॥
छोटी मोटी अंग लगावै। दरियाखान एको भेद बतावै ॥89॥
इस नारी के पंजह वास। चौरासी मँह रहत मवास ॥
को इक सूरा मार मनावै। दरियाखान एको भेद बतावै ॥90॥
एक पंछी देख्या साँस न मास। धरा गगन में रहत उदास ॥
सोऽहं सीस अकास उडावै। दरियाखान एको भेद बतावै ॥91॥
एक पंछी देख्या पाँउ न पंख। धरा गगन में रहै अलग ॥
फूटै पंजर सर्व समावै। दरियाखान एको भेद बतावै ॥92॥
म्हैंदी कह अब लाली लाऊँ। है सो लाल अर लाल लगाऊँ।
दर दर फिरै को लाली लावै। दरियाखान एको भेद बतावै ॥93॥
ज्यूँअ नली में सूआ लटकै। आपै बांधै आपै अटकै ॥
ऐसा बांधा कौन छुड़ावै। दरियाखान एको भेद बतावै ॥94॥
कहाँ पानी कहाँ पाथर पूजै। अपना आतमदेव न सूझै ॥
पूजा नावै देव न ध्यावै। दरियाखान एको भेद बतावै ॥95॥
देह ध्याता उपजै अभिमान। हउमैं संसा छोड गुमान ॥
ए पद कोई बिरला पावै। दरियाखान एको भेद बतावै ॥96॥
जल कहै जा तीरथ न्हाऊँ। बिन तीरथ सो मुक्ति न पाऊँ ॥
उसका मैल कौन मिटवावै। दरियाखान एको भेद बतावै ॥97॥

कवित्त :

सुन मँह समाधी करौ मौनी है अर बात करौ,
मति को अज्ञात करौ देखौ धुन लाइकै।
वेद को विचार करौ पवन को उचार करौ,
साखी सत सार करौ सुंन मँह समाइ कै ॥
जोग को अभ्यास करौ और देहाध्यास करौ,
संसय को नास करौ देखौ गत गाइ कै।

कैत जन दरियाखान आप कूँ न जान सकौ,
किते जग दान करौ करौ पुंन जाइ कै ॥98॥

उपदेस को अंग

चौपई : कोटिन ग्यानी कोटिन ध्यानी। कोटिन पाथर पूजै पानी ॥
कोटिन ब्रह्मा वेद बखानी। हरि का सुमरन यूँ भी नाहीं ॥99॥
कोटिन्ह जप तप संयम सार। कोटिन भव जल बूड़ै गँवार ॥
कोटिन कोएक उतरै पार। कोटिन नैम वरत के माहिं ॥
हरि का सुमरन यूँ भी नाहिं ॥100॥
कोटिन्ह सिद्ध संन्यासी जोगी। कोटिन्ह कर्मकांड मँह रोगी ॥
कोटिन कामी किरिया भोगी। कोटिन्ह रमता मुंड मुंडाहीं ॥
हरि का सुमरन यूँ भी नाहीं ॥101॥
कोटिन्ह देस दिसन्तर त्यागी। कोटिन्ह हरि सुमरै बडभागी ॥
कोटिन्ह मोह माया लिव लागी। कोटिन्ह ढूंढै भटकै जाहीं ॥
हरि का सुमिरन यूँ भी नाहीं ॥102॥
दरियाखान हरि सुमरै सूरा। ओहि संत साहिब का पूरा।
अनहदनाद बजावै तूरा। हउमैं का जब मूल गँवावै ॥
हरि का सुमरण तबही पावै ॥103॥

इति शास्त्र ब्रह्म-वेद संपूर्ण समाप्तम्

सबद

कहोर

बिना लच्छ नहिं पावैगा, उलटा भेष लजावैगा ॥थल॥
जोगी जंगम भेष संन्यासी, तपसी तप में जावैगा।
पाँव ऊँचा सीस तलै कर, लोकाँ लढक दिखावैगा ॥1॥
काजी पंडित वेद कतेबाँ, पढ पढ मुलक भुलावैगा।
औराँ कूँ उपदेस करन वह, मन परबोध न लावैगा ॥2॥
कहा वैरागी भसमी लावै, अंग भभूत रमावैगा।
पत्थर पूजै कलश चढावै, आगै सीस नमावैगा ॥3॥

कहा सु मूरख मूँड मुंडावै, कहा सु जटा बढावैगा।
गुरु पूरै बिन पार न पावै, सिर पर बोझ उठावैगा ॥4॥
कथनी बकनी मान बढाई, नव नव ज्ञान सुनावैगा।
दरियाखान यह पद सोइ पावै, मरजीवा हो जावैगा ॥5॥1॥

होरी

खेलौ होरी श्याम किशोरी, मेरे मंदिर मोहन लाल ॥थल॥
ज्ञान घटा कर घट में गावै, नाम की नौबत निर्भय बाजै।
अनहद घोरी प्रेम टकोरी, सतगुरु सबद किया पैमाल ॥1॥
हउमैं कुबुधि भूलकै भागी, भव सागर की लहर न लागी।
तरुड़ तोरी प्रेम कटोरी, पीवत जीवत रहत अकाल ॥2॥
सतगुरु सब्द की मैं बलिहारी, जहिं सँग साहिब मिल्यो मुरारी।
प्रीति जो जोरी लागी मोरी, नाम के नैम सुँ कियो निहाल ॥3॥
मैं मतिहीन अधीन अपारा, दरियाखान गुरु संत सितारा ॥
ज्ञान की होरी लागै जोरी, तन मन धन तुम भी सम ताल ॥4॥2॥

श्याम सुंदर आयो री सखी मेरे कान ॥थल॥
वृन्दावन में खेलै होरी, सन्मुख साहिब श्याम किशोरी, राधा सूँ छिक छायो ॥1॥
पाँच सखी मिल मंगल गावै, चंग मृदंग की चोट चलावै, रंग रस ताल बजायो ॥2॥
ज्ञान गुलाल दहों दिसि बरसै, एक बसै घट दोइ न दरसै, अतर अबीर उडायो ॥3॥
आपहि आप मूँ ताली लागी, हउमैं मटकी प्रेम की भागी, आप मूँ आप समायो ॥4॥
दरियाखान ये पद तब ही पाया, सतगुरु सब्द में सहज समाया, आप आपै गुन गायो ॥5॥3॥

विरह

कहा रे गंगा जावौ जमुना, भाई वन वन के वनवासी,
मूंड मुंड़ावौ क्या तीरथ न्हावौ न्हावौ ॥थल॥
जब तुम अपना आप न जानौं, तब तुम पार न पावौ।
दे डुबकी घर सोध निहारौ, फिर जनम नहीं जावौ ॥
भाई ज्ञान की सुध बुध खासी, प्रेम प्यासी अनहद वासी ॥1॥
कहा पाणी कहा पत्थर पूजै, कहा सो ठाकुरद्वारा।
अपना आतम राम न जानैं, रूप वरण सूँ न्यारा ॥
जिसकी गति मति ऐसी, पार न पासी बहुत भटकासी ॥2॥

कहा काजी कहा बनकर हाजी, मक्के माँग सधावौ।
आपा जान अभिमान सूँ साधौ, भव ताँ बडा सदावौ ॥
दिल हैरान कुरान बगल में, दर दर जासी दिन गँवासी ॥3॥
दरियाखान ये पद ओही पावै, जिस घट अलख निशानी।
जिस कूँ सूझै सो नर बूझै, और झुगी जल पानी।
भाई प्रेम नहीं को हासी, जाओ कासी फिरौ उदासी ॥4॥4॥

वसंत

मानख जनम अमोलक तेरौ, फेर यहाँ नहिं आवैगा।
नाम को नेम जिस घट नाहीं, अंति चोरासी जावैगा ॥थल॥
जननी जनै त साधू जनमें, या जनमें कोइ सूरा।
बिन साधू जो जन्म ले आवै, मात गर्भ मर जावैगा ॥1॥
मात पिता भाई सुत बन्धव, एक नहीं को तेरा।
प्राण छुटाँ बहुता पछतावै, काल पकड़ झप खावैगा ॥2॥
को इक बिरला उहाँ सूँ छूटा, गुरू कृपा सूँ ज्ञानी।
सिर साँटै को साहिब पावै, ओ जगदीस समावैगा ॥3॥
कहा पानी कहा पत्थर पूजै, कहा सु जमना जावैगा।
दरिया आप मूँ आप न जानैं, ओ बहुता भटकावैगा ॥4॥5॥
राम नाम धन सतगुरु दीया, सतगुरु दिया ओ जुगाँ जुग जीया ॥टेक॥
धुन धुन ओ धुन वंसी नाहीं, समझ विचार देखा मन माहीं।
अटल अडोल गरहै हाथ कीया, राम नाम धन सतगुरु दीया ॥1॥
सतगुरु सब्द अमर सुख पाया, कुबुधि करम का भरम मिटाया।
अखँड अभेद का भेद बताया, राम नाम धन सतगुरु दीया ॥2॥
सुरत सुराही और प्रेम पियाला, पीवत जीवत रहत सुखाला।
सुभर भरिया प्याला प्रेम का पीया, राम नाम धन सतगुरु दीया ॥3॥
गुलामअली गुरु भेद बताया, घट ही में गंगा वह तीरथ न्हाया।
आप में आप हि सहज समाया, राम नाम धन सतगुरु दीया ॥4॥
दरियाखान ज्ञान ध्यान धुन लागी, भयो चित चेतन कुबुधी भागी।
पाई डोरी अपना कर लीया, राम नाम धन सतगुरु दीया ॥5॥6॥
सतगुरु सबद अमर घट ऊगा, बिन फूलाँ फल लागा।
वाँकी अमीरस ओ नर चाखी, हउमैं नींद सूँ जागा ॥थल॥
तीन लोक में फूल रह्यो है, ज्यूँ सूरज परकासा।

मन भँवरा ऊहाँ जाय चिपटा, वाँकी अंमृत वासा ॥1॥
चित चेतन जब परगट हूआ, ज्ञान ध्यान धुन लागी।
हउमैं कुबुधी भस्म भई जब, जोति अलख की जागी ॥2॥
सूरा सो जो सिर साँटे आवै, पाए धरनि नहिं पावै।
ज्ञानी सो जो गुरु गम छूटा, ओ जगदीस समावै ॥3॥
मैं मतिहीन अधीन अपारा, गुरु दाता अधिकारी।
दरियाखान दान दिया सिर साँटी, आतम राम मुरारी ॥4॥7॥

ढोलियो

हिक पंछी मेरे पिंजरे समाया, जहिं आवागमन मिटाया ॥थल॥
बिना चोंच चुण चुगत है मोती, बिन सिर सीस उडाया।
ओ जल हंस बह आया टोली, बगुला उहाँ छुपाया ॥1॥
मानसरोवर अवसर माहीं, हंसला हंस समाया।
हरि हीरों की चूण चुगत है, छीलर पार न पाया ॥2॥
सतगुरु सब्द अमर सुख पाया, वाँ में काल न खाया।
जन्म मरण की वहाँ गम नाहीं, उपजै खपै सो माया ॥3॥
गुरु गुलामअली कर किरपा, मुझे ये भेद बताया।
अधीनता सूँ आप हि पाया, बिन नैनन दरसाया ॥4॥
कहा गंगा कहा जमुना जावै, कहा सूँ तीरथ न्हाया।
दरियाखान आप में आप न जानैं, भटकत फिरत अजाया ॥5॥8॥

देशी

काया नगर में गुरुमत मिलिया, अवघट ऊधौ जोगी।
रोम रोम में रमता बोलै, ना हरखी ना सोगी ॥थल॥
ना ओ ब्रह्मा वेद कतेबा, ना ओ पंडित पोथी।
ना ओ जंगम संन्यासी जती, ना ओ उजागर जोती ॥
दुख सुख माहीं एक सरीगा, ना ओ वेद न रोगी ॥1॥
ना ओ पत्थर ना ओ पूजा, ना ओ गंगा कासी।
ना ओ चन्दर ना ओ सूरा, ना ओ धरण अकासी ॥
ना ऊँकारी ना अवतारी, नारी पुरुष ना भोगी ॥2॥
दरियाखान दिल दर्पन में देख्या, उलटी समझ अपूठी।

गुरु गुलामअली कर किरपा, हउमैं कुबुधी लूटी ॥
जिस मत में गुरु की गम नाहीं, सा मत ओणी ऊगी ॥3॥9॥

ए जग जाँ सपना देखिया, तज मन मूरख अणहोता।
मैं मेरी में भटकत भूला, हई हई हार जन्म खोता ॥थल॥
ए सभ कल्पवृच्छ की छाया, कहि इक वाँसूँ रहण न पाया।
ए अवसर तेरा दो दिन भाई, गफलत नींद में क्यों सोता ॥1॥
नाभि कँवल में उलट समावौ, त्रिवेणी तीर मँह तीरथ न्हावौ।
हउमैं मिल सब्द सतगुरु सूँ, सुषमण सीर मँह सभ धोता ॥2॥
अपरम अपार अगम धुन लागी, उलट्या पवन पदारथ सागी।
अनहदवाणी प्रेम पिछाणी, सोहऊँ सबद ले ऊहाँ पहरा ॥3॥
कहा सूँ गंगा जावै कासी, कहा सु वन के वनवासी।
दरियाखान आदि पुरुष अविनासी, आप में आप नहीं जोता ॥4॥10॥
मत भूलो मन मत भूलौ, हरि नाम सुमरि मन मत भूलौ ॥थल॥
सतगुरु सब्द मँह उलट समावौ, काया कासी तीरथ न्हावौ।
मन के पंच मेवास मनावौ, ज्ञान हिंडोले में झूलौ ॥1॥
दे डुबकी घर सूझ निहारौ, वाँ में बाग वसंत झारौ।
सुन धुन भँवर को भुणकारौ, फूल वरण कैसो फूल्यो ॥2॥
कहा वनवासी फिरौ उदासी, कहा सु पत्थर पूजौ नासी।
दरियाखान आप सुमरि अविनासी, और दिसा मँह मत डोलौ ॥3॥11॥

गूजरी

हरि भजि धन क्या मांगो भाई, हरि के भजन बिन मुक्ति न काई ॥थल॥
धन धन करता सभ जग भूला, अंत समय गल काल के फाही ॥1॥
फालाँ फूलाँ तेरे पल में वंसी, वंस जावै तेरी मान बदाई ॥2॥
जब तेरे सिर काल है आवै, बिन सतगुरु तेरौ कौन समावै ॥3॥
दरियाखान हरि भजन बिन तेरौ, जनम अकारथ सबही जाई ॥4॥12॥

सूरा होवै जे को सनमुख झूझै, पीछै पाँव कछू नहिं पावै।
रण जुध देख न मुड़ै मुनीजन, कायर थाग कछू नहिं लावै ॥थल॥
काम क्रोध लोभ मोह अहंकारा, पाँच पचीस एक एक बेरी।
गुरु प्रताप लड़ै जा सनमुख, खार घेर करौ इक सेरी ॥2॥

ज्ञानी सो जो गुरुमत चालै, पाँच पचीस एक घर आनै ॥
उलट सुलट फिर सबद समावै, और बात नाहीं कुछ मानै ॥3॥
एक न भूला दोय न भूला, सभ भूला सपने माहीं।
मात पिता भाई सुत बन्धव, जो जो देखौ तेरा इक नाहीं ॥4॥
हंसा सो जो हंस गति चालै, छीलर पाँव कछू नही मेलै।
दरियाखान बगुला नहिं पहुँचै, उहाँ घर जहाँ हंसला हँस हँस खेलै ॥4॥13॥

सब ही माया मँह अटके, कोइ इक हरिजन हटके ॥थल॥
सुणी सामळी बात बतावै, घाट घड़ी सभ घट की।
निगुरा ज्ञान कथै सभ कूड़ा, सभ कूँ झेड़े झटकै ॥1॥
पाँच पचीस बडा मठधारी, चोर गई सभ लटकै।
को छूटा को अणबिध बांधा, ज्युँअ नाली सुवा लटकै ॥2॥
घर की नारि करै चतुराई, ले आवै कुछ खटकै।
मन बहरंगी बाहर त्यागै, नाट करै सभ नटकै ॥3॥
घर की माया मूल गँवाया, भोंदू दर दर भटकै।
दरियाखान मोह माया की फासी, कौन छुडावै कटकै ॥4॥14॥

गुरु बिन कौन सुधारै, राम गुरु बिन कौन सुधारै।
डूबत डूबत भव सागर में, भुजा पकड़ कढ तारै ॥थल॥
बालापण हँस खेल गँवाया, हय हय कर कछु हाथ न आया।
जोवन कूड़े लारे ॥1॥
काम क्रोध लोभ मोह अंहकारा, पाँच पचीस मिल किया है पसारा।
एक एक लड़ते न्यारे ॥2॥
तू जो करता मेरी मेरी, ना कुछ तू है ना कुछ तेरी।
हउँ हउँ कर कर हारे ॥3॥
दरियाखान बिन गुरु किसी ने न पाया, सतगुरु मिलिया काल मिटाया।
बहु वेद कुरान विचारे ॥4॥15॥
मन कामना तुम छोड रे, दिल हरि सुमरण सूँ जोड़ रे ॥थल॥
मंन मतै सूँ सभ को चालै, संत मतै कोइ सूरा।
मुख हरि बेमुख सूँ मोड़ रे, मन कामना तुम छोड रे ॥1॥
आया था हरि नाम भजन को, पड़ गयो माया फासी।
रे मनमति मूरख छोड रे, मन कामना तुम छोड रे ॥2॥

गुलामअली गुरु किरपा कीनी, तन माहीं तीरथ न्हाया।
मिट गई मन की दौड़ रे, मन कामना तुम छोड रे ॥3॥
दरियाखान संत का सरणा लीजे, ज्ञान गरीबी पाय रे।
ताँ तुम पहुँचो तोड़ रे, मन कामना तुम छोड रे ॥4॥16॥

होरी

आज आनंद घर होरी होरी, धन धन भाग मेरे सैंया ॥थल॥
सतगुरु सबद ऐसी धनु लागी, अनहद के धन धोरी धोरी ॥1॥
लाल गुलाल के बादल बनिये, पिचकारिन झकझोरी झोरी ॥2॥
अतर अबीर को भयो बरसालो, बूंद पड़त है थोरी थोरी ॥3॥
दरियाखान सतगुरु गुलाम अली सूँ, प्रीति जो लागी मोरी मोरी ॥4॥17॥
मेरे मन में ऐसी बात आई, को काहू को किसको नाँई ॥थल॥
हरि सुमरण की ऐही बेरा, नहीं तो अवसर जावे तेरा।
जो दीखै सो थिर न रहाई, मेरे मन में ऐसी बात आई ॥1॥
जवानी जोवन दो दिन लटका, कूड़ा रंग खुहिंबे का चटका।
छोड़ हुस्न की होय हवाई, मेरे मन में ऐसी बात आई ॥2॥
धन जोवन किस काम न आवै, जा गुजरै सभ बीती जावै।
बिन सतगुरु तेरौ कौन सहाई, मेरे मन में ऐसी बात आई ॥3॥
दरियाखान गँवण करै सभ कोई, हरि के भजन बिन मुक्ति न होई।
ए जग सपना क्या ठहराई, मेरे मन में ऐसी बात आई ॥4॥18॥

धानाश्री

जम का जोर न लागै साधौ, मरजीवै वाँ का क्या मरै।
जो जन हउमैं नींद सूँ जागै, भव सागर महिं तार तरै ॥थल॥
काम क्रोध लोभ मोह अहंकारा, पाँच पचीसा त्यागै।
साधौ प्रेम कला सूँ पार परै ॥1॥
त्रिभुवना के रंग महल मूँ, उल्टा अंकुस लागै।
साधौ वाँ घट हंसा केल करै ॥2॥
अघट तखत पर खेल संताँ का, कोई बिरला जोगी जागै।
साधौ सून्य महल में ध्यान धरै ॥3॥
दरियाखान सतगुरु किरपा कीनी, करम भरम सब भागी।
साधौ चौरासी फिर कौन भरै ॥4॥19॥

विरह

रहत फकीरी को कठिन काम है, काहे को कहो दरवेश, भँवरा मन ॥थल॥
अपना आप परबोधै नाहीं, औरौं करै उपदेस, भँवरा मन ॥1॥
नाना रूप बन्यो लट धारी, काहे मुंडावौ केस, भँवरा मन ॥2॥
दह सिर रावण काल अकाली, पार न पायो सीस, भँवरा मन ॥3॥
दरियाखान बिना गुरु कोइ न सुधरिया, बिन खँड ढूढै देस, भँवरा मन ॥4॥20॥

पहाड़ी

तेरे चरण कमल पर वारी, मैं दासी तू साहब मेरा ॥थल॥
कभी शोर कभी मुसकावौ जी, कभी हजूरो हाल बतावौ जी।
मैं तो बारूँ बार बलिहारी ॥1॥
कभी घूंघट में वन आवो जी, कभी थुमक थुमक पाँव पावौ जी।
कभी जलवो हुस्न हजारी ॥2॥
ए ता बोध उलट इंसानी जी, कर जोड़ आया जिस्मानी जी।
तेरी अकल कला कल न्यारी ॥3॥
गुलामअली गुरु यूँ समझाया, दरियाखान ए पद तब ही पाया।
ऐ ता दम दम की होशियारी ॥4॥21॥

आसा

सोऽहं सुमिरन कर ले वंदा, भव सागर मूँ तरना है।
ऐसा सुमिरन कर ले वंदा, हरि भज पार उतारना है ॥थल॥
दिल दरियाह पवन का कूहा, लिव लेजूँ दिल धरना है।
सबद गुराँ का उर ला हथ कर, बेड़ी पार उतरना है ॥1॥
अजपाजाप जपौ मन माहीं, सासो सास सुमरना है।
पाँचै मार पचीस मनावौ, लीजो साहब सरना है ॥2॥
अड़सठ तीरथ मन में न्हाओ, गंगा काशी जमुना है।
सोऽहं सबद गुराँ का मानौं, हरि हरि सुमरौ हरना है ॥3॥
ज्ञान ध्यान की सुरति लगावौ, आपा को जो करना है।
दरियाखान दुतिया भस्म भई जब, इश्क आग में जरना है ॥4॥22॥

कल्याण

दम दम नाल सच्चे साहब, डरिये राम नाम कहिये ॥थल॥

तेरा नाम ऐसा जैसा, धोबी धोवै मलमल खासा।
आसा मेरी येही आसा, चरणै सीस धरिये ॥1॥
भावै नाम तेरा भावै, तो बिन कुछ और न भावै।
गावै इश्क ये ही गावै, हरि मुख ही हरिये ॥2॥
जो कुछ देख्या देखन आया, सो सभो तिलिस्म की माया।
राया इश्क येही राया, परखै प्रेम पढिये ॥3॥
दरियाखान सतगुरु मैं बलिहारी, वारी जावाँ बारौं बारी।
प्यारी प्रीति सतगुरु प्यारी, जिसके सरने तरिए ॥4॥23॥

अकल कला खेल खेलै खिलारा, खंड ब्रह्मंड मिल्या सोइ न्यारा ॥थल॥
जोगी न जोग पवन नहीं पाणी, बिन जिभ्या के उलटी वाणी।
चन्द्र नहिं सूर गगन नहीं तारा ॥1॥
तीर्थ न व्रत न गंगा न कासी, ना ओ पत्थर पूजा वासी।
नारी न पुरुष नहीं अवतारा ॥2॥
रूप व वर्ण लख्यो नहिं जावै, ज्यूँ कूप की छाँया कूप समावै।
हद बेहद किया है पसारा ॥3॥
हिन्दू न तुर्क नहीं अवधूता, ना ओ मात पिता नहिं पूता।
आप सूँ आप भया निरधारा ॥4॥
दरियाखान ए पद जो नर बूझै, चौरासी ताकूँ नहिं सूझै।
आवागँवन जीत नहिं हारा ॥5॥24॥

सोरठ

उद्धव मेरी अँखिया में बस रह्यो साँवरौ, नैन सधूँ नहिं झलकै।
इन गलियों में आत समावत, करौ कीं बाताँ रलकै ॥थल॥
जाग्रत सोवत स्वप्न सुखोपति, जादू चलाया छलकै।
मोर मुकुट पर छत्र विराजै, कुंडल की छबि झलकै ॥1॥
क्याह कहूँ किस हथ लिख भेजूँ, श्याम संदेसो घलिकै।
तुम आये अविगत मिट जावै, प्राण रह्यो इक पल कै ॥2॥
सुषुमणा दिल देराणी जिठाणी वाला, वैद तड़ आयो चलकै।
वैद विचारा क्याह करै जो, प्रेम रह्या अँग मिलकै ॥3॥
तुम आओ मेरा प्रीतम प्यारा, औषद जावै सभ घुलकै।
दरियाखान तेरे दरस कर प्यासी, बार बार जाऊँ बलिकै ॥4॥25॥

क्याह कहूँ कछु कह्यो न जावै, सतगुरु महिमा तेरी।
गइ है कुमति सुमति घर आई, ना को बैर न बैरी ॥थल॥
दया उडाय अडम्बर मन का, उलटी समझी फेरी।
जिस माया यह जग भरमाया, सा माया घर चेरी ॥1॥
वस्तु अमोलक लखी न जावै, गुरुमत समझै सेरी।
करम भरम दोनों किरपा से, नैनन निरखै नेरी ॥2॥
तुम हो साहब सतगुरु दाता, तेरी सरन बडेरी।
ते तेरी गति तुम ही जानौं, ना कुछ मैं नहीं मेरी ॥3॥
दरियाखान सतगुरु सूँ मिलिया, पीर लधौ कपेरी।
दूर निकट का संसा भागा, उलट भई मति गहरी ॥4॥26॥

साधौ मेरे मन का भँवर उदासी ॥थल॥
जाग्रत सोवत स्वप्न सुखोपति, लागी प्रेम पियासी ॥1॥
जो देखूँ सो थिर न रहत है, नाम बिना सभ नासी ॥2॥
सतगुरु मिलिया संसा भागा, तन में तीरथ कासी ॥3॥
गुलामअली गुरु पूर पाया, आय मिल्यो अविनासी ॥4॥
दरिया सतगुरु मूँ समझाया, सुमरौ सास उसासी ॥5॥27॥

पहाड़ी

मेरी हरि सूँ लागी प्रीति, और बात मैंनूँ कुछ न सुहावै ॥थल॥
नींद कराँ तो सपनै आवै, जागाँ तो अँखियाँ माँह समावै।
दृष्टि न देखूँ मुष्टि न पकड़ूँ, ऐसा मोहन मीत ॥1॥
ऐसी रचना राम रचाई, देखत भूल रहे सभ कोई।
ए बाजी किसी अंत न आई, हारी लेवत जीत ॥2॥
दिन अर रात न बिसरै मोही, अंग अंग में सुमरूँ तोही।
तुम नहिं छोड़ौ हम किमि छाड़ू, ऐसी आवत चीत ॥3॥
दरिया प्रीति लगी नहिं छूटै, गुरु कृपा बहु बंधन टूटै ॥
जैसा था फिर तैसा समाया, भांगी भरम की भीत ॥4॥28॥

साँसौ साँस साहिब तेरे संग है, भूल भटक मत वंदा री ॥थल॥
अपने आप कूँ जानैं नाहीं, दर दर दौड़े भटकै जाई।
दौड़ पड़ै अँध कूप के माहीं, सो मन अंध निरंधारी ॥1॥
गाफिल गोता दम दम खावै, आप भूला औरों भरमावै।

आतम छोड पथर कूँ ध्यावै, उस वारो खंधारी ॥2॥
तीरथ व्रत में कुछ नहिं पाया, गिर्‌या डार अर मूल गँवाया।
सतगुरु सैन सूँ मन नहिं लाया, राम भजन बिन गंदा री ॥3॥
सबद नगारा रुणझुण बाजै, अनहद घोर गगन धुन गाजै।
भिन भिन सुन्दर सुणै अवाजी, बादल में बरसंदा री ॥4॥
दरिया राम नाम धुन लागी, कुबुधि भरमना भाठी।
गुलामअली गुरु साहब सागी, काट दिया जम फंदा री ॥5॥39॥

ओ तो पूरव जनम को वासी अविनासी,
हंसला रे तुम खोजो काया नगरी में ॥थल॥
सतगुरु सरणै लियो स धारा, मानख जनम न हारौ।
ए तो देखत ही जग जासी ॥1॥
जो देख्या सो थिर न रहा है, मात पिता सुत भाई।
ओ तो नाम बिना सभ नासी ॥2॥
ना ओ जप तप जाग र जोती, ना ओ पंडित ना ओ पोथी।
ओ तो नहीं गंगा नहीं कासी ॥3॥
मैं मेरी नहिं मुक्ति न तेरी, ना कुछ तू नहिं कुछ तेरी।
ए तो उलट गले मँह फाँसी ॥4॥
विमुख बात अर बिन पग पैंडा, कोइक सूरा जावै।
ए तो प्रेम नहीं को हाँसी ॥5॥
दरिया ए दिल दरिया सूभर में, क्योंकर फिरौ उदासी।
तू पी ले साँसौसाँसी ॥6॥30॥

सोऽहं सबद सतगुरु के बल से, घोड़ा अगम दौड़ाऊंगा ॥थल॥
सील का संज संतोष पलाणा, खासी टोट चलाऊंगा ॥1॥
अरध उरध मैदान सजाऊँ, हउमैं गोए उठाऊँगा ॥2॥
सुरति निरति का झंडा हथ करि, सुन मँह धजा ठराऊँगा ॥3॥
धरणि गगन बिच हटकत नाहीं, सीस अकास उडाऊँगा ॥4॥
दरिया प्रेम कला सूँ जाइकै, निर्भय नगर बसाऊंगा ॥5॥3॥

भूला मन भजन करौ तुम किस का।
जोई ठहरावौ सोई तुम हो, ध्यान धरौ तुम जिस का ॥थल॥
जिह्वा रोकौ पवन चढ़ावौ, ध्यान दुवारै दिस का।

कीरी कहै अकास चढ़ूंगी, तांघ ना तांघो तिस का ॥1॥
तीरथ न्हावौ मन परचावौ, मंजन करौ आपस का।
पूजा न्हाया देव न ध्याया, भीतर भांडा विष का ॥2॥
पोथ पुस्तक वेद विचारौ, जोत जगावौ सिध का।
प्रेम का अक्षर उसमें नाहीं, है ठस सभ ही ठसका ॥3॥
दरिया ए पद तब ही पावौ, ख्याल मिटावौ उस इस का।
आप उठावै सो फल पावै, है साहिब तो तिसका ॥4॥32॥

बरोर

तेरी बाँसरी बाजै वन मूँ, कैसे धुन पड़ी मोरे कान कनैया ॥थल॥
भिन भिन में तेरी बाँसुरी बाजी, कैसे लूँ आवत लाजी।
तेरी बाँसरी केरी बीन मूँ, कैसा कामण किया जोगी जादू जोगणिया ॥1॥
रैन अंधेरी तेरी बाँसुरी बिरजै, अर्र अर्र मोटी हियरौ अरजै।
कैसी घोर पड़ी है घन मूँ, छम छाम छाँट छूटै विरह बूंद बरसाया ॥2॥
सनध सनध मूँ तेरी सब्र सिया सार बंसी में बस रहिया।
तेरे नैनों के रे अंजन मूँ, छन छन छिनन छिनन कैसा छंद छिनाया ॥3॥
कान कुंडल गल मोतियन की माला, सामी साहर है मतवाला।
कैसा जादू जगिया मेरे मन मूँ, सामी सहर किया कैसा भेष बनाया ॥4॥
दरियाखान ये पद तब ही पाया, गुलाम अली के सीस लगाया।
जिसकी तार लगी मोरे मन मूँ सतगुरु सब्द सुन्या सहजे सहज समाया ॥5॥33॥
सतगुरु अजब शिकारी साधौ, मेरा सतगुरु सबद शिकारी।
कुबुधि कोट कूँ चोट लगाई, हउमैं ममता मारी ॥थल॥
विरह बंदूक सुरति की सोई, चकमक चेतन कीना।
प्रेम पलीता ज्ञान की गोरी, मार दोइ के लीना ॥1॥
काया कुंज जब नजरे कीना, एकौ एक समाया।
सतगुरु सबद की हउँ बलिहारी, बिन नैना दरसाया ॥2॥
अमरापुर में आसण कीना, निर्भय नगर बसाया।
भवसागर की लहर न लागी, मन बूडा फेर तराया ॥3॥
गुरु गुलामअली कर किरपा, सतगुरु सबद सुनाया।
सीस दिया जगदीस लिया है, आज आनंद सुख पाया ॥4॥
उनमुन पुरुष मिल्या घट भीतर, एको एक हजूरी।
दरिया दुविधा दूर भइ मेरी, मन की आसा पूरी ॥5॥34॥

सतगुरु सरनौ लीजे, मानुष जनम सुधार।
ए अवसर दिन चार है, आपौ आप उबार ॥थल॥
ज्ञान समुद्र हंसला बसै, मोती चुग चुग खाया।
हरि हीरौ का पारखौ, छीलर पाँउ न लाया ॥1॥
मूल तखत पर बैसणा, आसण दृढ़ कर धारा।
लिंग लहर सूझी पड़ी, ब्रह्मा वेद उचारा ॥2॥
नाभि कँवल दिल द्वारका, मोती अगम अपारा।
कोइ कोइ जानैं जौहरी, बणजै बणजणहारा ॥3॥
कंठ कँठाँ सुमरण किया, सहज गले में पोया।
हउमैं मिल सबद सतगुरु सूँ, सुषमण सीर में धोया ॥4॥
पवन हिंडोला हींडिये, सुख दुख सो सहिए।
पवन पवन कूँ ले चलै, हरि राखै त्यूँ रहिए ॥5॥
सुन सरवर सुरत आ मिलै, दसवें दरसन पाया।
दरियाखान ए पद सो लहै, जो नर उलट समाया ॥6॥35॥

जागा जागा जागा साधौ, हउमैं नींद सूँ अब जागा।
मिट गया घोर भया उजवाड़ा, तोड़ दिया गुरु जम धागा ॥
सुद्ध सरीर भई अब काया, जद गुरु पारस मन लागा ॥थल॥
मैं मतिहीन अधीन अपारा, गुरुदाता तुम अधिकारा।
सरन पड़े की लाज तुमारी, तेरा बाना अति भारी ॥
पिया पियाला रहुँ मतवाला, चढ़ी खुमारी इकसारी।
हउँ नाहीं हउँ नाहीं नाहीं, आदि अंत गुरु तुम सागा ॥1॥
तुम तेरी गति तुम ही जानौं, क्या जानैं कोइ को गति तेरी।
तू साहिब ऊँचे ते ऊँचा, धन गुरु धन गुरु मति तेरी ॥
खाली भरौ भर्‌या उलटावौ, सभ मानौं गुरु सत तेरी।
हउँ लारै हउँ लारै तिहारे, अँग सँग साहिब तुम आगा ॥2॥
गुलामअली गुरु पूरा पाया, बात बताई खराखरी।
दूर निकट का संसा भागा, पड़ी रहै अब परापरी ॥
रोम रोम में एको रमिया, हरदम सिमरूँ हरी हरी ॥
काम क्रोध अर मोह मेवासी, पाँच पचीसा सभ त्यागा ॥3॥
दरियाखान सौदा आदि अंत का, अब का सौदा कुछ नाहीं।
वस्तु अमोलक गुराँ बताई, सहजे घर की घर माहीं ॥

अंदर बाहर एक दरसाया, जहाँ देखूँ तहाँ सभ साया।
टूटा झेड़ा भइया नेड़ा, जन्म मरण का भव भागा ॥4॥36॥
वेखौ संतौ अजब कारीगर, बंगला खूब बनाया ॥थल॥
काया कोट मिटी का महला, थम्भा पवन ठहराया।
आतम ओली परघट बोलै, कैसा छाप छपाया ॥1॥
रंग न रूप वर्ण कुछ नाहीं, सागर लहर समाया।
उलटी बूंद रली सागर में, रचना राम रचाया ॥2॥
अगम निसानी गुरु प्रेम पछानी, ममता महल मिटाया।
रोम रोम में रमता बोली, सिमर सिमर सुख पाया ॥3॥
गुलामअली गुरु किरपा कीनी, हउमैं भरम मिटाया।
दरियाखान आदि पुरुष अविनासी, आप मिल्या औलखाया ॥4॥37॥

ए को उलटी बूझै, समझै को समझणहार ॥थल॥
कुबुधि की ढोलक बाजण लागी, नाच रहे नर नार ॥1॥
कीड़ी हाथी लड़ता देख्या, गहला करौ विचार ॥2॥
चेला चोर गुरु भया लोभी, लूटी वह बाजार ॥3॥
सारा खेत गोफण खाया, दस दिन झलकी झार ॥4॥
दरियाखान सतगुरु किरपा कीनी, निरख लियो निरधार ॥5॥38॥

सोई रह्या जाँ का गुरु पतियारा, कोइ न रह्या माया संग न्यारा ॥थल॥
माया मूल वृक्ष है विष का डाल पात है हर्ष सोग का, जो चाखै ओही रह्या न सारा ॥1॥
मन माया में चित चौरासी, काम क्रोध लोभ तृष्णा तासी, भूल भटक पच मुवा अहंकारा ॥2॥
मोह माया में निसदिन अटकै, पर नारी संग दर दर भटकै, राम नाम धन लागत खारा ॥3॥
दरियाखान गुरु परताप से पाया, आप आप में उलट समाया, रोम रोम में रह्या इकसारा ॥4॥39॥

ग्रंथ बावन-अखरी

'स' ससा सिफत सुबहान की, मुख सूँ कही न जाय।
ए अकल कला को खेल है, न सिर हाथ न पाँय ॥1॥
'म' मंमा मारग प्रेम का, बिन मारग चलनाह।

औघट विषमी बाट है, सूरा पहुँचै कोह ॥2॥
'र' ररा राम के नाम सूँ, जिनके लागी प्रीत।
दरिया इस संसार मूँ, हारी लेवै जीत ॥3॥
'ग' गगा ज्ञान की निरति सूँ, दिल दर्पण में देख।
हउमैं रंचक ना रहै, मन ममता की रेख ॥4॥
'ह' हहा हरि का नाम बिन, जन्म अकारथ जाय।
गुरु पारस के चरण सूँ, अपनी लिव कूँ लाय ॥5॥
'क' कक्का कारज तब सरै, जब सतगुरु लागै संग।
काम क्रोध अहंकार को, कबहुँ न लागै डंग ॥6॥
'भ' भभा भगती नाम की, मुक्ती है ता माहिं।
भवसागर की सीर मूँ, पकड़ उतारै बाँहि ॥7॥
'झ' झझा जो जो जनमिया, दम के आधर टेक।
टूटी पिंजर गिर पड़ी, माटी कूड़ा वेख ॥8॥
'ड' डडा डोरी प्रीति की, सतगुरु साहिब हाथ।
जब चाहै तब खींच ले, मेरे बस नहिं बात ॥9॥
'ल' लला लागी प्रेम की, करक कलेजे आय।
तुझ बिन मेरा को नहीं, कौन मिटावै घाव ॥10॥
'च' चचा चकवै रैन के, बिछुड़ मिलै परभात।
मेरे पीया बस नहीं, कैसे बोलूँ बात ॥11॥
'द' ददा धुन धुन है तहाँ, साधौ जिनके नाम।
बिन साधू संसार में, कारज कूड़ा काम ॥12॥
'ढ' ढढा ढारा सोढ ले, पासा पिय के हाथ।
हारै जीतै एक सूँ, बाजी भातौ भात ॥13॥
'फ' फफा फेरी उलट कै, बिरला बूझै कोय।
सतगुरु सरणै जा पड़ै, उलट समावै सोय ॥14॥
'ञ' ञञा नर को नरक सूँ, सरगै स्वर्ग समाय।
जिसकी जैसी चाकरी, तैसी खटौ कमाय ॥15॥
'प' पपा पारस है गुरू, चेला लोसुरी लोह।
सतगुरु सरणै जो पड़ै, लोहा कंचन होह ॥16॥
'ध' धधा धरणि अकास मँह, नह नह रूप अनेक।
सरव वियापै आतमा, बोली बोलै एक ॥17॥
'ख' खखा पिंजर खाक का, पाँच तत्त का मेल।

रोम रोम में रम रह्या, अकल कला को खेल ॥18॥
'थ' थथा थिर न को रह्या, जो देखौ सो धूड़।
ए अवसर दिन चार है, समय चेत मन मूढ ॥19॥
'य' यया यारी नाम सूँ, जिसके है दिन रैन।
से साधू बादशाह हैं, सदानन्द सुख चैन ॥20॥
'छ' छछा संगत साधु की, दुरलभ मिलना जान।
साधू साहब यूँ बसै, ज्यूँ गोपन में कान ॥21॥
'ठ' ठठा कूड़ा ठीकरा, काया कूड़ा संग।
जो देखूँ सो थिर नहीं, ज्यूँ कूवे का रंग ॥22॥
'ब' बबा बरसै प्रेम का, बादल अमरित धार।
गगन मँडल आसन किया, अनहद घोर मल्हार ॥23॥
'व' ववा वस्तु अमोल है, काया कोठी गूझ।
हरि हीरौ गँठड़ी रखौ, हँसला होकर सूझ ॥24॥
'ट' टटा टारी प्रेम की, जिन लड़ लग्गी हाथ।
धन साधौ से सूरमा, साहिब ताके साथ ॥25॥
'आ' आऊ अंदर खोजकर, जिन जान्यो निज नाम।
वैकुंठ वासी से सदा, जनम जनम विसराम ॥26॥
'ओ' ओइड़ा औलखिया नहीं, साहिब संता पास।
साधौ साहिब यूँ बसै, ज्यूँ गुल माहीं वास ॥27॥
'त' तता तलब न छाडिए, जब लग पिंजर साँस।
काया माया माल धन, रूप वर्ण सभ नास ॥28॥
'ड' ड़ाड़ा राऊ रंक सम, हौं हौं करके हार।
दरियाखान अजियाँ बूझ सूँ, कोइ न उतर्‌या पार ॥29॥
'ज' जजा रे जग झूठ है, पसर्‌या कूड़ पसार।
मानख जनम अमोल है, मूरख चेत गँवार ॥30॥
'ए' एड़ी अरथ संत की, सीस लगाओ पाँव।
काम क्रोध अहंकार को, कबहुँ न लागै घाव ॥31॥
'न' नना नौवत नाम की, लागै निर्भय चोट।
हौमें सगल विकार की, सहजे लूटै पोट ॥32॥
'घ' घघा ज्ञान समंद मँह, मोती अगम अपार।
को मरजीवा जौहरी, बणिजै वणिजणहार ॥33॥
'ण' ठाणियो नाणा नाम का, खर्चा खूटत नाहिं

तज माया संग झूठहै, जैसे वृछ की छाँहि ॥34॥
'ञ' ञञा साहिब यूँ बसै, ज्यूँ सूर बसै आकास।
जहाँ देखूँ तहाँ एक ब्रह्म, चौकूट भयो परकास ॥35॥

चाली दरबाब नसीहत

(1)

1. *कर सिफत शना साहब दे फरजई,*
बन्दे ते बन्दगी दाकर जई, देखलो वाली लऊं लऊं लरजीई।
कीते कचे कम जरूर, कुझ समझ बेगाना बेखबर ॥1॥
2. *जलवो जोभन नित न होसी,*
खूबी खाक खजान थी वेसी, हए हए कर अठ हथ मिलेसी।
आसे ए पेस कया म कबर, कुछ समझ बेगाना बेखबर ॥2॥
3. *अन्धा यूँ ही उमर विञाई,*
हए हए कर कुझ हथ न आई, कोदीअ ते लाल मटाई।
वणिजए कूड़ा वणिज वखर, कुझ समझ बेगाना बेखबर ॥3॥
4. *माउ पी खिवेश बिरादर भांडे,*
जे गोशी हिनि जान जिगरदे, कर महमूअआ अगूँ बहंदी।
उथि न आसइ हिक नजर, कुझ समझ बेगाना बेखबर ॥4॥
5. *पढहियो इलम रयाइ दा उथाँ,*
बंध रिशवा दियां बिटियूँ रिथां, क्या जवाब करेसी इथाँ।
अगो पिछसन जेर जबर, कुझ समझ बेगाना बेखबर ॥5॥
6. *हाकिम थी कर हुकुम हलईंदा,*
अंधा यूँ ही उमर विञईंदा, देख दुरंगी दीन गवईंदा।
मैं मैंडी करवेसी मर, कुझ समझ बेगाना बेखबर ॥6॥
7. *भगवा पहरि फकीर सदायो,*
ठह पह कूड़ा ठाह ठाहियो, बिन रहणी कुझ हथ न आयो।
इश्क दा सखत सफर, कुझ समझ बेगाना बेखबर ॥7॥
8. *तो जाता मैं इथाँ होसाँ,*
मैं मेडा कुझ खासाँ पैसाँ, क्या मजाल करीसाँ।

ये सभ खाम खयाल दगर, कुझ समझ बेगाना बेखबर ॥8॥

9. *अगियूँ पेंड आ मुश्किल वारी,*
तुझ दरसाहब दो ज़ारी, तंहिं खोज खटिया जबहिं वित हारी।
देख लो बाली वेंदी डर, कुझ समझ बेगाना बेखबर ॥9॥

10. *दरियाखान उथ न कँहि दी चले,*
दरंदे गोट कलब गए मिले, वेख न ऐब सितार अवली ॥
पढ़ह कलमा थीवे रहबर, कुझ समझ बेगाना बेखबर ॥10॥

(2) नसीहत

1. *अवल अल्ला कूँ करा इशबात,*
उमर विञाई सभ बरबात, बिच गफलत दे दींहा रात।
यहाँ बेफहमी बसिया रही, हण मैं कुँ सट आजार है ॥1॥

2. *मैं दा बूड़ा पाड़ू पटीं,*
आदत छोड असल कूँ झटीं, दे सिर तां ये बाजी खटीं।
शाहीं एहो शिकार है, हण मैं कुँ सट आजार है ॥2॥

3. *जलवो जोमन नित न माण,*
खूबी खाक खजान कर जाण, मुशिक मथाँ करि मिलेई भाण।
ये कूड़ा नाकश नगार है, हण मैं कुँ सट आजार है ॥3॥

4. *माउ पी खिवेश कबीला जाल,*
मैं मेडी कर बेटियूँ बाल, आसई कबर अन्धारी काल।
मैं मेडी क्यों मार ही, हण मैं कुँ सट आजार है ॥4॥

5. *मैं तू दार टंगाटोड़,*
दून्हीं बन्ध कुटे कर लोभ, मैं कूँ मार जरा न छोड।
ये दान भिश्त हजार हैं, हण मैं कुँ सट आजार है ॥5॥

6. *महबत छोड मुबठी वित माया,*
ये सब औझर पंध अजाया, अरफत रबी रब फरमाया।
नहन अकरब निरवार है, हण मैं कुँ सट आजार है ॥6॥

7. *दे सिर आशिक इश्क इमाऊँ,*
दम दम खून जिगर दा खाऊँ, मिशल पतंगा आग जलाऊँ।
इश्क दा ये इतवार है, हण मैं कुँ सट आजार है ॥7॥

8. *कठिन कम फकीर सदावण,*
ठह पह कूड़ा, ठाह ठहावण, बिन रहण सभ वेख बनावण।

इश्क दा औखा बार है, हण मैं कुँ सट आजार है ॥8॥

9. रू की समझ फिटा कर रोला,
मैं दापहर बैठे वित चोला, अपना आप अगूँ थियें अवल।
बेहूदा बेकार है, हण मैं कुँ सट आजार है ॥9॥

10. गाफिल दूंहा जहाँ तूं खथे,
यूँ ई उमर बजींदी सती, कूड़ी कहिणी कह कन कुती।
बहूदी बेकार है, हण मैं कुँ सट आजार है ॥10॥

11. ये दम तुझ नाल गुजार,
दिल तू किना कर उतार, गाफिल गफलत छोड गँवार।
दाढा रब कहार है, हण मैं कुँ सट आजार है ॥11॥

12. जवानी जोभन दो दिन लटका,
कूड़ा रंग खुहँबे का चटका, आसई मौत अजल का सटका।
लो बाली दरबार है, हण मैं कुँ सट आजार है ॥12॥

13. आदत छोड़ असल कूँ झटी,
सिर दा सांगा लाह कर सटीं, दे सिर ताँ ए बाजी खटीं।
शाही ए हो शिकार है, हण मैं कुँ सट आजार है ॥13॥

14. यूँ ई उमर गई बिच ख्वाब,
ना जाणाँ क्या बणसी बाब, अगो पिछासन हरफ हिसाब।
क्या कीता बिच जमार है, हण मैं कुँ सट आजार है ॥14॥

15. दरियाखान आप बिचूँ ना आणी,
वहिदत विच सदा सुख माणी, पढहै कलमा ताँ थियई साणी।
कठ कुफर बेकार है, हण मैं कुँ सट आजार है ॥15॥

(3) हिदायत

1. अलफ अल्ला कूँ याद करै,
जो दम जीवै नित डरै, बिन तरहे नातार तरै।
जो डाढा रब कहार है, सोई तुझ इस्तफफा रहै ॥1॥

2. आदम बहिशतऊँ कढि तड़ आयसि,
यूनिस पेट मछी दे पायसि, नौह बनी तूफान चढहायसि।
लाव बाली दरबार है, साँई तुझ इस्तफफा रहै ॥2॥

3. न करि या कलूट चौरासिया,
युसूफ कूँ बिच खूँह सटायसि, दिसत अजीज दे मिलह चिकायसि।

बीचसि बिच बाजार है, साई तुझ इस्तफफा रहै ॥3॥

4. अली दे फिर न दलोट न्यास,
मोन्यान हथोअन मार मुठियास, करबला बिच सद कठियास।
अपने दोस्तीन प्यार है, साँई तुझ इस्तफफा रहै ॥4॥

5. सर निबिया दे सितम सहायस,
इब्राहीम आराह अड़ाइस, इस्माइल कूँ जझू कराइस।
कादर कुदरत वार है, साँई तुझ इस्तफफा रहै ॥5॥

6. रोगी रोग बिचू नहिं रजंदा,
गुजरी छोड फिकर कराजंदा, मुल्क अमुल्क नगारा बजंदा।
धान धान कर दहिकार है, साँई तुझ इस्तफफा रहै ॥6॥

7. असल समझ नहीं तूँ अहदी,
ऊथाँ आकर थीवें फसादी, नीती लोड़ह अजल दे वादी।
जे आहिन शहितार है, साँई तुम इस्तफफा रहै ॥7॥

8. हीकड़ियाँ कूँ बादशाही दींदा,
हिकड़े तख्तऊँ लाहें सटींदा, गर्दिश देख फलक वित नींदा।
साथ गवींदा सार है, साँई तुम इस्तफफा रहै ॥8॥

9. किथ सुल्तान सिकंदर दारा,
किथ सुलेमान दा तख्त पसारा, हर को गया बजंदा वारा ॥
सभी कंहिं सिर वार हैं, साँई तुझ इस्तफफा रहै ॥9॥

10. नित न सहियां सोही सावे,
नित न खेद खुशी दे भावे, नित न मौसम सावण आवै।
नित न मेघ मल्हार है, साँई तुझ इस्तफफा रहै ॥10॥

11. मुल्क अल्मुक अजल ना छोड,
माउ पी हथूँ फर्जंद विछोड़, क्या तो फीक जे को मुँहूँ मोड़े।
साहब दे सरकार है, साँई तुझ इस्तफफा रहै ॥11॥

12. अंधी लीला अकल न आयो,
क्या ते चा सच मिटायो, हारा ते घर बार हरायो।
हार गिवीअ बेकार है, साँई तुझ इस्तफफा रहै ॥12॥

13. भोरी छोड भँवर दा भूला,
गाफिल गफलत दा पई रोला, देरान दामँह आयो दोला।
दूंकर दा दहकार है, साँई तुझ इस्तफफा रहै ॥13॥

14. रंगपुर दा आकीस राया,

वेखण सील सियालीन आया, उथाँ आकर चाक सदाया।
छोडिस तख्त हजार है, साँई तुझ इस्तफफा रहै ॥14॥

15. सुहिणीं सावण देख न डरदी,
इश्क विसारियस या वर घटवी, आधी रात दरियावद तरदी।
काण महिवाल मणियार है, साँई तुझ इस्तफफा रहै ॥15॥

16. मूरत देख मेफल वत मूठा,
औखी देख न आशिक हूटा, पखस इश्क पिरीं दे कूठा।
किहा वस वीचार है, साँई तुझ इस्तफफा रहै ॥16॥

17. कौड़ी आशिक इश्क कमांदी,
औखी देख न थीवै मांदी, सहसे सूरत ले रख आयदी।
किहा करन शुमार है, साँई तुझ इस्तफफा रहै ॥17॥

18. दरियाखान तुझ नाल गुजरी,
दिल तू कीना कढ उतारीं, तू ही तू दे तार तवांरी।
कलमे नाल करार है, साँई तुझ इस्तफफा रहै ॥18॥

(4) मुस्तजाद

1. रहनि उदास हमेश आशिक देख हुस्न दी।
जे घिंड खोले ते खड़ बोले ॥1॥

2. थीवन फना फसादी यारो, रकियायाबां दे रोले।
जे घिंड खोले ते खड़ बोले ॥2॥

3. डिठी बाझ न आशिक रहंदे, सहंदी झकां झोले।
जो घिंड खोले ते खड़ बोले ॥3॥

4. हिन मुशताक हमेश आशिक, गाह अहींदे गोले।
जे घिंड खोले ते खड़ बोले ॥4॥

5. देखण दरस निमाणी आशिक, कर कर आवण टोले।
जे घिंड खोले ते खड़ बोले ॥6॥

6. चार अखिन जे वेखे आशिक, भज पवन सभ भोले।
जे घिंड खोले ते खड़ बोले ॥6॥

7. वेख हुस्न दा शवल यारो, ताब झलनि के थोले।
जे घिंड खोले ते खड़ बोले ॥7॥

8. कोइल कूँ शरमावन जी, वित चाए लबाँ कूँ चोले।
जे घिंड खोले ते खड़ बोले ॥8॥

9. दरियाखान मुड़ंदे मूल न आशिक, थीदे तके तोले।
जे घिंड खोले ते खड़ बोले ॥9॥

(5)

1. माण भरे महबूब मिठे दी, नैन दुन्हीं खुश आंदी।
साँई जे हिक वारी मड़ भाली ॥1॥
2. बैंसट बोल लबां ते झूले, चोर कीते चांदी।
साँई झूमक दींवइ झाली ॥2॥
3. बाजवंद सो नंहं वत सुहिणे, ठाहकती वत ठहंदी।
साँई वह कंकड़िया कठमाली ॥3॥
4. वह अणिवट अटालो मुंडरियाँ, दसतियाँ दसत न सहंदी।
साँई वह चुस्त रखन वत चाली ॥4॥
5. बिन पायजेब हजीब करन थी, आशिक बरदे बांदी।
साँई महबूब सदा मतवाले ॥5॥
6. हर गहिने सिंगार सभोई, आशिक दे मन भांदे।
साँई वह वाहकनां दे वाली ॥6॥
7. बात वराधे वासिंग वांगे, पेच पेचाँ विच पांदे।
साँई वह किस सजण दे काली ॥7॥
8. थी निमाणी आशिक जोगी, पई तां गल फांदी।
साँई ओ हरगिज करन न टाली ॥8॥
9. आशिकाँ दी अरवाह हमेशा, विरह किनू न वांदी।
साँई वत इश्क तिहाँ कूँ काली ॥9॥
10. दरियाखान आशिक आह न करंदी, रात दिंहाँ गम खांदी।
साँई नित नैन तहाँ दे आली ॥10॥

काफी-रेखता

इश्क जे मकतब वेही, कर दरद जो दिल में दरक।
कूड़ियूँ किताबनि जूँ पढ़हीं, हिन हुन बडो आहे फरक ॥थल॥
अखरनि में जे के अड़िया, से इश्क चाढे ना चढिया।
कंहिजी मजनि था कीन की, आहिन बडा साड़े सड़िया ॥
हादीअ दिनो हुन खे हरफ, बेढहे छदिया तिन सम वरक ॥1॥

जेकीं खुदा फरमायो, रोगी तंहि ते ना रहनिं।
रिशवा वठीं रिवाज जी, कूड़ा मसलऊ था कहनि ॥
थिया तमह जा तालिब, इहे गर्ज पंहिंजे मंझि गरक ॥2॥
इश्क खाँ आजाद थिया, वर दो, वज़ाइन था पढ़हनि।
मुँह ढकें माण्हुनि अगिया, इहे दावतुनि ते था दड़नि ॥
नुक्तो पढ़हनि जे नींहं जो, कनि ताल तसबीन जा तरक ॥3॥
दरियाखान दफतर दरद जा, जिन थे पढ़हिया से मस्त थिया।
पाडियाउं सुखन पंहिंजा सचा, जेके हुअनि अलसत जा ॥
फानी थिया फी अल्ला में, सिर दियूं पढहनि इहो सबक ॥4॥1॥

पउ पतंग थी पाण तूं, हिन इश्क जे आराह में ॥थल॥
मंझि मच मोहबत जी मचे, कुपा अचनि था काह में।
रहे पवन पखाना पची, तंहिं विरह बारीअ बाहि में ॥1॥
से वतन वेगाना संदा, आशिक असती आन्ह में।
को जो नज़र पवेनि नींहं जो, दीदन संदे दरियाह में ॥2॥
परे न भांणिज पाण खूं, साजन वसे थो साह में।
उहे रमज रिधा रूह में, ठहरिया न बी कंहिं ठाह में ॥3॥
दरियाखान दुई कर दफा, नैणनि संदी निगाह में।
की जो पसियाऊं पाण में, फानी थिया फी अल्लाह में ॥4॥2॥
इश्क जी बाजीअ में आशिक, सिर देई मन्सूर थीउ।
पाण खे पासे करे, पोए महबती मजकूर थीउ ॥थल॥
लाहे लागाया लोक जा, तू विरह में विहलोर थी।
जाते कुसनि था कापणी, तंहिं मुल्क में मशहूर थी ॥1॥
शाकी अगियूँ सिर पंहिंजो, नाए संवरो नूर थी।
सुर्की चखीं तंहिं सूर जी, मोखण में मखमूर थी ॥2॥
कुछ कंहिं सां कियम की, तूं सिक में साबूर थी।
अकरब खूं ओदो वसी, पस पाण में ना दूर थी ॥3॥
दरियाखान दामन इश्क जे, महकुम वठी मंजूर थी।
पुर न बी कंहिं पार तू, मुरसद मथऊँ मैमूर थी ॥4॥3॥

उलफत अहल सफा की, अब तो मुझ कूँ भाती है।
जा बनी आगे बनी, क्यों देख दिल गम खाती है ॥थल॥

लात तहरीक जर तन, अल्लाह बाजन अल्ला है।
किसका कुछ मुकदर नहीं, दिल की दिल में रहती है ॥1॥
जो कुछ मुकदर में लिखिया, मेरी ओही तकसीर पर।
लातक नतवा फरमान से, ओही सभ मिट जाती है ॥2॥
यह दिल मेरे को आरजू, किसके आगे मैं क्या कहूँ।
तुझ बिन मेरा बिया को नहीं, औराँ सूँ दिल घबराती है ॥3॥
दरियाखान तेरे दरद में, दिन रैन रोया ज़ार ज़ार।
जिस दिन गुलामअली हुआ, तिस दिन यह दिल गुण गाती है ॥4॥4॥
बुध सवाल सवाई जी सदा, पीर मगान मौला अली ॥थल॥
डे इश्क बाजन खे अता, दिल शौक जा पुरचा पीता।
हर दम रहन तो रंग रता, तू रही सुधी ना बी गली ॥1॥
बुध इंतिजा मिसकीन जी, डे तात मूँ तलकीन जी।
थिए दिल सफाई सिन जी, बाहर कजो वारिस अली ॥2॥
बियो आरजू दिल है अथऊँ, डे जाम कोशर को हथऊँ।
लहे बार गफलत सिर मथऊँ, रोशन थिए खफी जले ॥3॥
दरियाखान सगि दर तो संदो, तोड़ी आऊ मेरो मंदो।
बेशक गुनाहनि में गंदो, तंहिं जी हिमायत कर हली ॥4॥5॥
या अली मुश्किल कटा, कर दरद मुंहिजे जी दवा।
अर्ज बन्ध आजिज संदो, मंञ सुहिणा साई है सदा ॥थल॥
हिन अर्ज मखफीअ मुहिंजे जो, तोखे आहे सारो समाउ।
कर कम मिड़ेई हिक पल में,दम देर ना तोखे जगाय ॥1॥
मुहिंजो दस्त दामन में अथई, सो हथ तूं कीन की कढाए।
जीअं तीअं लज पाल मुहिंजी, ही गल गिचीअ नंग तुंहिंजी आहो ॥2॥
जे के खातिर मंझ खलल, वहम ऐं विसवास जा।
रहे हुब हमेशा हरदम तुहिंजी, विसरी वञन बिया वास्ता ॥3॥
दरियाखान जेके हिन वास्ते, लख आजिजियूँ ऐं इंतजार।
हुजु हमेशा हरदम मूँ वटि, दम न थीउ जानी जुदा ॥4॥6॥

से मुठल कीअं माठिकनि, जिन खे इश्क जो आजार आहे।
दारू त इन जे दरद जो, दिलवर संदो दीदार आहे ॥थल॥
हिक रोअण रातियाँ दीहाँ, बियो बेकरारी बार आहे।

मान्दा मिलन लाए था मरनि, दाढो तलब तिख तार आहे ॥1॥
जिन लगी जाणनि सेई, बी कंहिं न हुई अखबार आहे।
हर हमेशा आशिकनि ते, दरद जो धुंधकार आहे ॥2॥
जे के घायलहिन धुर जा, तिन खे सब्र लाचार आहे।
छद जुल्म जोरावरियूँ, हाणे मिलण मोचार आहे ॥3॥
गीद हुअन तोसाँ सजन, दरियाखान खे दरकार आहे।
जोड़े दियाउं जायूँ आखिन में, सरब सौ सौ बार आहे ॥4॥7॥

आयो इश्क अंडण, लायूँ दर्द धजूँ।
तदहिं अक्ल चयो हितूँ भजत भजूँ ॥थल॥
इश्क का आजम हुल हंगामा, नहिं जी नौबत दुहुल दमामा।
से आशिक अचन था सिर संजूं ॥1॥
आशिक बाण आखिन जा लाया, शर्म हयाउ अकल वरिआया।
चयाउं हाणे असीं साई कादे वजूं ॥2॥
सवें साज आवाज अचनि था, आशिक रमज इन्हींअ में रचनि था।
उते अनहद वाजट कनि वजूं ॥3॥
दरियाखान जंहिजे इश्क अंदर, उहे कीन मुड़न्दा से पवंदा पधर।
उहे लाहे हलिया सभ लोक लजूँ ॥4॥8॥

वेई वरे न किन गाल्हिन सां, मुहिंजी दिलड़ी कंहिं दस्तूर ॥थल॥
अगे थां थी अगरा, पराईनि पूर ॥1॥
कंहिं सां गरहियांई आऊं वेही, साह पंहिंजे जा सूर ॥2॥
वञी दस्त चढही दोस्तनि जे, सा कींअं मोटे मूर ॥3॥
दरियाखान मिलन्दसि आऊं बि, उनखे जंहिं जो जोंक जरूर ॥4॥9॥

कल्याण

हिन उमर संदी इफरार, वञी विहाणी रातड़ी ॥थल॥
जे मरी तां मरण आगे थी, अमर इहो इरशाद। करलाए संदी हथ कातड़ी ॥1॥
फाज करो नी अजकर कम, जे रखीं दिल याद। बी न बोलीज बातड़ी ॥2॥
हेफ हयातीअ दींहड़ा, यार बिन बरबाद। दिस पाए दरवनी झातड़ी ॥3॥
दरियाखान दिल जे देस खे, कर इश्क सां आबाद। लिवं बिना कूड़ी लातड़ी ॥4॥10॥

बिलावल

वाह बाजीगर दी बाजी, छप ओली आदम साजी ॥थल॥
यू निस पेट मछी दे पायो, नूह बनी तूफान चढहायो।
मिला हो मंसूर मरायो, थी कज़ा ते काज़ी ॥1॥
किथ हाकिम थी हुकुम हलींदा, किथ गदागर थी जु गुजरींदा।
किथ सूरह थी मलुक सदींदा, किथ ते रव दा दर गाजी ॥2॥
किथ संन्यासी नाम सदींदा, तिलक मथे गल जाणियो पाईंदा।
किथ मुसला मस्जिद वेंदा, वाअज करींदा वअजी ॥3॥
सहसें मजहब सिर सहणी दा, अंत किसी दे बिच नहिं आंदा।
किथ शीया किथ सुंनी सदींदा, किथ रोजेदार नमाजी ॥4॥
दरियाखान दावे दूर कीते सी, अमर अली इरशाद थियोसी।
पह न वल को बिया पुछेसी, रमजा हीं बिच राजी ॥5॥11॥

रेखता पहाड़ी

बेयाद उमर सारी, आहज चली यूँ जाती है ॥थल॥
फरमान फाज़ करो नीका जिस दिल हुआ है याद, तिस दिल है नव बहारी ॥1॥
जो दम है तेरी याद में सो दम हयात है, बेयाद है बीमारी ॥2॥
बाजी जो खोला लाम नीं अर मूल भूल गया, हए हए चली गई हारी ॥3॥
दरियाखान वह दिन याद कर कालो बला कहा, वह बात क्यों बिसारी ॥4॥12॥

रेखता

आउ मियाँ अश्का किया तुम कहते, तैराकी मैं गँवाया है ॥थल॥
जिसकूँ अपना कर तुम लिया, तिसका सीस कटाया है ॥1॥
कहाँ हकीकी कहाँ मिजाजी, सारा मुल्क मनाया है ॥2॥
कहाँ मंसूर कहाँ तुम मिला, सरबरदार चढाया है ॥3॥
दरियाखान इश्क गुलाम अली दे, ठाठा नाच नचाया है ॥4॥13॥

रेखता पहाड़ी

कोई आरजू दिल रहे ना रहे, रख फना का फक्र दम बका हो बका ॥थल॥
सारी मद आही तेरी बेकसी मूँ, वह कर बल का मातम तुमछे दिल छे।
इश्क बाजां के सर है ओही जरजला ॥1॥

तेरे हजर में हयाती वसल की, बिना दरद दिल कचा थी ना थी।
वह साफी सफा हम लका मुं लका ॥2॥
शब व रोज वरदी बनी ओर अली का, मेरे दिल मना कब कहे यूँ कहे।
भर दिया जाम साकी छका हूँ छका ॥3॥
दरियाखान दिल दरद आबाद इश्क, बिना प्रेम पह को पहना पहा।
वह कदम इश्क मंजिल रखा हूँ रखा ॥4॥14॥

रेखता खंभात

तेरा हजर विसाल लगी अगन आब की।
ये जग है झूठ तिलिस्म बूता है खवाब नी ॥थल॥
दुनिया न दीन मांगो, खोफ रजा सूँ लांधो।
वेशक दोनों त्यागो, डोह और सवाब नी ॥1॥
पीर मुगाँ इशारत है, विरह की विशारत।
दिया है जाम वहिदत, पिया शताव नी ॥2॥
नहीं आप बीच आनूँ, पी मय महबूब मानूँ।
महतसब्र नहीं रे जानूं, अताब बहिताब नी ॥3॥
दरियाखान दरद यारा, सभ प्रेम का पसारा।
हउमैं नहीं है न्यारा, छूटा हिजाब नी ॥4॥15॥

काराइयल

मुंखे डूंगर डस डियन था, डे आयल बारोचल जा ॥थल॥
बंधी संदिरो सच जो, जे कहनि से लहनि था ॥1॥
वैड़ त लहीन वर खे, चारी हैं चवनि था ॥2॥
चढही जबल चोटीअं, मथूं रोह रवनि था ॥3॥
दरियाखान ऐन अजीब रे, रुअणऊँ कीन रहनि था ॥4॥16॥

ससुई

मुंखे डूंगर डोरण आयो अदियूं, घट घाट जबल जा पंध पटियूँ ॥थल॥
ववड़े लहंदियसि वर खे, मन पवै को सुध समाउ अदियूँ, उहे कीन वरन जे के सूर सिटियूँ ॥1॥
छुली वेंदसि छपिरीं, जावणी वह वाह अदियूँ, धारी धार करे बिया मुँह मटियूँ ॥2॥
सरितियूँ साहिड़ियूँ सभी, हली हाड़ई थियो हमराह अदियूँ, कोड़ियू केच वजण खूं सभ नटियूँ ॥3॥
दरियाखान हामी होत थियो, बियो शामिल शाहंशाह अदियूँ मुंह परत प्यारियूँ विरह वटियूँ ॥4॥17॥

ससुई

जेकी आम खां पासे था ओरिनी, बट में मड़ हुयूं तिन वैरागिन जूं ॥थल॥
सुख तंहिं खे सूरथिया, इहे देह दुखनि जो था डोरिनि, आहिन विरह वायूं वैरागनि जूं ॥1॥
बिझी मुंहुं मुननि में, डील अन्दर में था डोरीनि, कनि झद जफाऊँ जागण जूं ॥2॥
दूंहनि पासे दादला, पाण भरियूं सिर था भोरिनि, हथ सूंहं सिमरणियूँ सामन जूं ॥3॥
दरियाखान सामी सिक मूं, घोर क्यों सिर तां घोरीनि, आहिन तलिबूं पहूं तिन त्यागण जूं ॥5॥18॥

ससुई

शाल अहिड़ी कंहिं सां को न करे, जहिड़ी जाड़ करे मुईअ सांजत विया ॥थल॥
वेंदियसी रहंदियारी कीन की, तोड़ेरत रेला कयंऊँ पेर भरे, डेईडेर मुईज खेदति विया ॥1॥
बउड़े लहंदियसि वर खे, उन रे मन मुंहिंजे साहसेर, इहे कीन पाड़े पंहिंजे पत विया ॥2॥
जाम आरयाणी पंहिंजा, शल हीणीअ मथे हथ धरे, उहे डेई मुड़हीअ खे मत विया ॥3॥
वदा तालह तंहिंजा, जे दरियाखान अगियूं होत मरे, इहे साण वठी पंहिंजो सत विया ॥4॥19॥

ससुई

उहे जोगी जीअ जड़जाए विया, तिन जा मारन था हंघ माग मड़हियूँ ॥थल॥
सामे सफर संभया, उहे पूरव पंधु पुछाए विया, बंधी अमर ओलावां कश कड़ियूँ ॥1॥
लागापा हिन लोक जा, लाहोती सभ लाहे विया, डेई तरक तमह खे विया तड़ियू ॥2॥
ताल तंबूरा सुरि करे रुअ में राम रिझाए विया, मुंखे धारण आयूं हित घड़ियूँ ॥3॥
दरियाखान सिंड़ियूँ सील जू, वरी से वीर विजाए विया, तिन बाझ पवे मन का बड़ियूं ॥4॥20॥

काराइयल

कंहिं गण केचनि जी गारे, वेचारी थी डूंगर डोरे ॥थल॥
हेडे शहर भंभोर में, आयसि इश्क उमाड़ी ॥1॥
चढ़ही जबल चोटीअं, दखण कई सा देखारी ॥2॥
मथे बंगाणिण वरलई, बलही कीन विसारी ॥3॥
छुलण पेठी छपरिन, मुंझ जतनि जी भारी ॥4॥
भोरी हिन भंभोर में, कइड़े इश्क अवाड़ी ॥5॥
दरियाखान बोल बरोच सां, साबित सिक सचारी ॥6॥21॥
आदेसनि जे अचण जा,
अज अंजाम पिया, से मूं सेण थिया ॥थल॥

सामे सफर संभया, लाहे लोक लिया ॥1॥
गोरो गदियासी गोदड़िया, नांगा नींहं नया ॥2॥
सिंडियूँ सामे सील जू, विञाए भी विया ॥3॥
मोतो थियासे मरण खूं, जुगो जुग जिया ॥4॥
दरियाखान पारू पिर जी, समकंहि सीस निया ॥5॥22॥
तिन मारूअड़नि मरजात, उमर अल्ला लग छो न रखीं ॥थल॥
अबाणनि दंह आइयो, नवनि निया पो रात ॥1॥
हिक पटे में हेकिलो, ईंदें मनह आजात ॥2॥
कढ वंदियाणी वंदमूं, मंञ तूं हुई महलहात ॥3॥
दरियाखान दम दम इन जां, अंदर में ओकात ॥4॥23॥

मारी मारुनी जी मजकूर, उमर आउ उकन्दी आहियाँ ॥थल॥
वठी वेड़हीचनि मुं, मुखे डोथिन खूं कयो डूर।
उमर खूह खवंदो ही खाइया ॥1॥
सरितियूँ संधारनि जा, मुंखे पलपल पवनि पूर।
उमर पांदु गिची गल पाइयाँ ॥2॥
जे दिन जाथम जई में, सवें सीगन सूर।
उमर से कैन साह सहाइयाँ ॥3॥
सेणनि संदे सरितियूँ मुंखे छा कनि कयो चोर।
उमर घाउ हणी पाणा घाइयाँ ॥4॥
वडी विझां वेरह मुं, तिन पहुं खो तां पूर।
उमर डोहनि मंझि डुहाइयाँ ॥5॥
दरियाखान दिलबर दिल में, तू तां मट न महबत मूर।
उमर गण गाल्हियूं तिन गाइया ॥6॥24॥

इश्क रंगीन रंगों रंग दे बिच, बेरंगी रंग लाया है।
सभ रंग दे बिच सुहिणा साई, सहजे आप समाया है ॥थल॥
ये जग बाजीगर दी बाजी, सांग सरीर ठहाया है।
आपे खेडे आप खेड़अई, आपे भूल भुलाया है ॥1॥
कर इसरार बहार बनायसि, बुलबुल शोर मचाया है।
केई भुणकार भँवर पिए भुणकनि, वास अते भरमाया है ॥2॥
किते बहर बयावान बेहद, किते झंगल छाया है।

घट घट दे बिच बोली बोले, अंत किसे नहिं आया है ॥3॥
किथ काजी थी खोल किताबाँ, मुसलै बिच मुँह पाया है।
द्वारीदार बनाही है, किथाँ संत सदाया है ॥4॥
छोड़ गाफिल तू गफलत बाजी, कच करोरई काया है।
कलशय भरिया भरपूरन, अन्धयां पंध अजाया है ॥5॥
दरियाखान दिलबर दिल बिच बसंदा हर अशिया बिच आया है।
आपे अपनी बोल बलीन्दा, आप आपे गुन गाया है ॥6॥25॥

तू आ सुणु सुहिणा साईं, तां मैं हाल दी गाल्ह साखाईं ॥थल॥
दरद तेड़े दिल बहुं दरमांदी, सीने दे बिच नहीं समांदी।
वाटिन ते खड़ पूछां पांदी, कूड़िन कांग उदाईं ॥1॥
तेड़े कीते सुहिणा साईं, दर दर फिरंदी फारां पाईं।
खड़े उडेंगा संझ सुवाहीं रहबर रोज पुछाईं ॥2॥
नींह तेड़े दियां, लगड़ियां नोकां, डरंदे आख न सघंदी लोकां।
जय अंदर बिच तेड़ियां झुकां, महबत मींहं बसाईं ॥3॥
रमज जबहीं तां ए दिल रेही, गाल्ह करां मैं तंहिं दे केही।
नींहं लाया तंहिं नव शइ नेही, सो चाहूं तां चम चाईं ॥4॥
दरियाखान दिलबर आयां वेडही, आक्षम बिसम अल्ला लिख भेरी।
हाल आखाँ मैं कहिड़ी कहिड़ी, समझूं चा गल लाईं ॥5॥26॥

बरोर

कर इश्क अल्ल अख्तियार यार, तो कएं गाफिल दींहं गुजारिया ॥थल॥
बंहनं अकरब पाण उताईं, इहो होको हक दिनाईं।
बंध गोश देईं गुफ्तार यार, मोतो थियासे कंहिं न मारिया ॥1॥
नींहं निहोड़या के नामियां नेही, रमज इशाकनि का जेही केही।
आयो सर मंसूर मदार यार, गाल्ह अखही तां केईं लिख गारिया ॥2॥
बात विरह जी बेहद बारी, सर इशाकनि आईं सारी।
वह आशिक मड़द अतार यार, जंहिं बोल बियाईं जा सम बारियां ॥3॥
जिकर या कलिवट बिझायो, इब्राहीम आड़ाह अड़ायो।
पायोगल सनान जनार पार तंहि, जाहद जहद जा वरक विसारिया ॥4॥
दरियाखान दावे इश्क धरे थो, नव नव बातियाँ नींहं करे थो।
दिस आसिक ही इसरार यार, गुरु गुलामअली गैर उतारिया ॥5॥27॥

झंगलौ

इश्क सौदागर सिर दा आया, डे सिर सौदा न संगी वे यार ॥थल॥
सिर सरवाह सभो सौदे बिच, आप सोधा चा अंगे वे यार ॥1॥
गैर गुमान खयाल खुदी दे, बिच वहिदत दे वंगी वे यार ॥2॥
आ आशिक बिच राह इश्क दी,नेकी बदी होई दंगे वे यार ॥3॥
दरियाखान सुदु यह सौदे, का मोड़ी महबत मंगे वे यार ॥4॥28॥

आप कुँ वेखण आया आप, आदम अदा कर जोड़ आएं ॥थल॥
बेरंगी दा करके बहाना, सूरत बिच समाया आप ॥1॥
भुलां हो मंसूर मरायस, अना अलहक अल्ला या आप ॥2॥
किथां बातन दे बिच बनिया, किथां हुल हुलाया आप ॥3॥
किथां हुंदा होश हज बिच, किथां भूल भुलाया आप ॥4॥
दरियाखान इश्क अली दे बिच सांवु, वहिदत बीच विलाया आप ॥5॥29॥

वसंत

आतण दे दींह डूं चार, उथी कुड़ई करका कार कतण जी ॥थल॥
नित न होसी राज बाबाणा, नित न जोमन जवानी माणा।
साहुड़े धर लहसनीं सार ॥1॥
नित न सहिया सोही सावे, नित न खेड़ खुशी दे भावै।
नित न मेघ मल्हार ॥2॥
उथीं कत वेल्ह कतण दी आई, छोड हुस्न दे होए हवाई।
अहीं खूबी कीते कपीअ खुवार ॥3॥
बंहां कतिया चाया मैं, क्या चाईं, दरियाखान पांदुं पलव मैं पाई।
जरम विजायम सभ जमार ॥4॥30॥

बेरंग बन बन आया, सभ रंग दे बिच सुहिना साई ॥थल॥
सभ रंग दे बिच सैर करींदा, अंत किसी दे बिच नहिं आंदा।
ठाह अजब इहो ठाहया ॥1॥
आदम ओली आप छपाइसि, सांग सरीर दा बेख बनायसि।
सूरज बिच समाया ॥2॥
रंगपुर दा आकीतस राया, आप कूँ वेखण आपे आया।

महबत मच मचाया ॥3॥
दरियाखान आप बिचऊं ना आणीं, हक सिंञाणीं गैर न जाणी।
सभ घट सुहिणे दा साया ॥4॥31॥

कंहिं सांग थीअड़म सांग, जीजां तिन जतन साड़े जेदियूं ॥थल॥
निंड निहोड़ियसि वेड़म निकरी, थियसि वैरागिण वांग ॥1॥
सुरनि साहू सुकायमि जेड़ियूँ, नींहं निसोरो नांग ॥2॥
बी कंहिं केचन सूर सुणायां, दखन वारे कांग ॥3॥
दरियाखान लोचे लहदयसि लकियूं, मन में इहा तांग ॥4॥32॥

मुखड़ा सांवु वखा के, हण क्यों वत आप छपींदनी ॥थल॥
वंहन अकरब दा दस दितऊं अल्ला, इहो सबक सिखा के ॥1॥
फांमा तोलो फशम वजह अल्ला, जिथ किथ रहियो तू लखा के ॥2॥
अना अहमद विलामीमी, इहो हरफ आखा के ॥3॥
दरियाखान किनूं कयाईं याकी वसदी, अपना दुख दिसा के ॥4॥33॥

झंगलो

इश्क न पुछन्दा जात सफाती जहाँ वत लगिया सेई परवान ॥थल॥
जहाँ वत लगिया से वतन दीवाने, अदां बिच मस्जिद कदां मयखाने।
कड़ा बिच होश कड़ा हैरान ॥1॥
ना विच कुफर इस्लाम दे काइल, ना शरहफीर दुहां विच माइल।
कंडा विच वस्ती कडां वीराना।
ना विच दीन मजाहब आन्दी, दुख सुख डेख न थीवन मांदी।
रहन हमेशा सदा गलतान ॥2॥
दरियाखान आशिक इश्क कमावन, दम दम खून जिगर दा गावन।
डे सिर सीस करन कुरबान ॥3॥34॥

जोग

मुरलीअ धूम मचाई वे यार, रंगपुर दे विच रांझन वाली ॥थल॥
तखत हजारे दा रांझान साई, आया वेस मटाए वे यार।
कर की चाक चनाहदियाँ चाली ॥1॥
वन फकत फी मनरो जी, सागी फूक सुणाई वे यार।
गाल्ह तंहि तां मैं वत गाली ॥2॥

असलग आहुअसि इहो राया, कल कंहिं कुं न काई वे यार।
प्रीत आहीं तां आये पाले ॥3॥
दरियाखान सादी असलग आही, माही नाल सचाई वे यार।
खाम खयाल खेड़िया दे खाली ॥4॥35॥

हुस्न के गले में जिसने आकर लिया पाया, रो रो होश गँवाया।
मर्जी महबूब जाया ॥थल॥
कह कह दीवार की झाती, जिस पाती सा दिल फाथी।
है इश्क असल इहो राया, हस हस के सीस कटाया ॥1॥
सूरत समझ आईन जाती, लाइ की दसत महबूबां काती।
इथां आशिक सिर नवाया, जिस आया कदम उठाया ॥2॥
असल महबूबां इहा चाली, सरकश से फरकन हथ खाली।
इथां आशिक सीस अघाया, बल अपना करव बधाया ॥3॥
दरियाखान इश्क ओताक ओली, जो सिर घाउ प्रेम का झली।
हण काण असां वल आया, बल विलंदा नहीं विलाया ॥4॥36॥

पाण भांयमि मंझि भोली, गोले गोले लहां न थो पाण खे ॥थल॥
पाण विञाए पाण सिंञातमि, यार ठाडियो मंझि ओले ॥1॥
लासीन ला खे साबित कयोसीं, फकल इन्हीअ सां फोले ॥2॥
ही घर हस्तीअ जो जीअरे जलायमि, चिणंग पई मंझि चोले ॥3॥
दरियाखान सतगुरु है समझायो, डूर मतां कोई डोले ॥4॥37॥

फजोर

मुश्किल यार दी यारी है, लावण नींहं निभावण औखा ॥टेक॥
लावण इश्क कीहा पछतावण, जग मिला मत खुवारी है ॥1॥
आशिक नाम सडावण सौखा, जोर न चलसीअ जारी है ॥2॥
इश्क मिलामत जंहिं ते आंदी, डे सिर चावण सारी है ॥3॥
दरियाखान इश्क दी औखी बाजी, बार चावण सिर बारी है ॥4॥38॥

मल्हार

उल्टी रमज अल्ला दी यारो, मन जीवे तां जाणी यार।
ताकूं समझ नफी कर साबित, आप बिचूं ना आणी यार ॥थल॥

जोई अंदर सोई बाहर, तरफ नबी कंहिं ताणीं यार।
अना अहमद बिला मीमी, गाल्ह आहीं कूँ जाणी यार ॥1॥
रमज रंदे कूँ समझ न सघंदे, वाई अजब का वाणी यार।
सूरत मुरशद मक्के ना अल्ला, कर प्रीति पुछाणी यार ॥2॥
विच बहर बेरंगी वाली, मौज इलाहीं माणीं यार।
जेर जबर सभ आप दसीन्दा, पियल करीन्दा पाई यार ॥3॥
दरियाखान इश्क अल्ला बिन यारो, बी सभ कूड़ कहाणी यार।
ये बुझारत बिरला बूझे, औखे इश्क आखाणी यार ॥4॥39॥

झंगलो

बिन इश्क अल्ला गुमराही, दम नाल मौला बादशाही ॥थल॥
दम फरओनी हस्ती वारो, सालिक समझ तू माना।
तुझ इस्तफफार पढही कर, शाइक तू शुक्राना ॥
हस्ती होवण कर तू पासे, माणी इश्क इलाही ॥1॥
श सुलेमान सिकन्दर दारा, जंहिं जो तख्त हवाई।
मुल्क अल्मोत फना क्या फानी, तिन जी खबर न काई ॥
देव परियूं इंसान अमर में, सवें लख सिपाई ॥2॥
मुरसल मीर महमद अरबी, आयो नबी सुंहारो।
कयाईं दीन जी दावत सभ खे, खुश थियो आलम सारो ॥
वठि तू वाट वहीदत वारी, इहा राह न छदि जाइ राही ॥3॥
फाज करो नी अजकर कम, इहो फरमोदो फरकानो।
दरियाखान जाण तू जाण इन्हीअ खे, इहो कौल करानो ॥
फामा तोलो फशम विझ अल्ला, हर जाए मौला माहीं ॥4॥40॥

बिन माड़ियूँ है उमर माड़ियूं, असांजा भाण भिटनि भर वाड़ियू ॥थल॥
कढि बंदियाणी बंद मूं ड़े उमर, नीअरनि मूं हए निमाणी।
माणियां मुल्क मलीर बजी हुत, पिछ पियां गदि पाणी ॥
रोयों राह निहारियां तिन जा, गोड हागिलन ते गाडियूं ॥1॥
मुंदिन मारन मींहं वसनि था, गाहनि क्यूँ गुलजारियूं।
छेड़िन धण धनार उमर जा, तरहीं कन तंवारुनि ॥
खाईनि खाज खुम्मिन जा खासा, आणनि डुथ डिहाड़ियूं ॥2॥

कौन जियां हित जग मेंडे जेडियूं, मैहणनि तां हित मारी।
सांग पिए मद सांग अचनि था, तहदिल करियां तयारी ॥
डे मोकल मियां सूमरा, ही अजहर वालि उमाड़ियूं ॥3॥
आछ न उमर पट पटूं हित, पहिरनि कीन पनू हारियूं।
दरियाखान आहे ईल उन्हीन खे, इन्हनि गाल्हिन खूं आरियूं।
ओढन खूब खथियूं हुत खासियूं , लाल लोयूँ से गाड़ियूं ॥4॥41॥

इश्क दियां उलटियां बाजियां, कोई उलट बाजीगर वेखे ॥थल॥
इश्क दी मंजिल ओखी अणांगी, गोए चाती कहाँ गाजियाँ ॥1॥
इल्म हकीकी अशिक पढहंदे, सुध नहीं मुलां काजियाँ ॥2॥
इश्क अलादी बाझूं सुणोवी यारो, विया सभ हीले साजियां ॥3॥
दरियाखान दम दम दर सुहिणे दे, सवें हजारें लिखें आजियां ॥4॥42॥

लगी लाग विरह दी यारो, उलटी बिन सिर आई वे यार।
लधमि ख्वाब जलीखां वाला, जहिं दी खबर न काई वे यार ॥थल॥
अवलि इश्क दी यही निशानी, लाए के थींदा राही वे यार।
जंहिं तन लगड़ी सो तन जाणे, और न को दुख भाई वे यार ॥1॥
इश्क औकात अवेड़ औले, दाढी वेंदा लाए वे यार।
गल कफनी सिर पाए विरहन, रमता मुंड मुंड आई वे यार ॥2॥
तखत हजारे दा जोगी सहियूँ, आया वेस मटाए वे यार।
रंगपुर दे बिच करके राया, कैसी बीन बजाई वे यार ॥3॥
नींद करां फिर सुपने आवे, जागा तां सूरत साई वे यार।
दरियाखान इस गल दी खबर न काई, कौन वेंदा दिल चाई वे यार ॥4॥43॥

रेखता, तिलंग

थारे नैना मुझ मारा, सपा हेड़ा, थारे नैना मुझ मारा ॥थल॥
घायल की गति घायल जाने, क्या जाने वैद विचारा ॥1॥
दामन लगड़े वा शर्म तुसां तू, रख तू लाज पियारा ॥2॥
जेही केही यार तुसाडे नींहं तेडे दा न्यारा ॥3॥
इश्क तुसांडे दा सिर असांडे, बार विरह दा बारा ॥4॥
सर असांडा हिलिक तुसांडे, जान जिगर है सारा ॥5॥
दरियाखान ये जग झूठ पसारा, छोड़ चिकन दा चारा ॥6॥44॥

खबर लहो डींदियां खबर लहो इस दम की, क्या है कहाँ फिर जावेंगा ॥थल॥
जैसे मीन तड़फत जल बिन, तैसे लगन लगावेगा ॥1॥
सीस की भेट रखे गुरु आगे, तब ही मतलब पावेगा ॥2॥
बन्फकत फी मुनरो ही, दम ही में दम समावेगा ॥3॥
दरियाखान ये उलटी कोइ बूझै, बिन जिभिया गुन गावेगा ॥4॥45॥
हरि बिचि हरि कूँ सही कीतोसी, हरि भी सूरत हरि दे यार ॥थल॥
हरि रंग दे बिच सैर कीतोसी, बेरंग अर्थ अखर गम थियोसी।
कीहा पूछण वत तंहिं दा पार ॥1॥
अला निसान समझो सी, वाना सर हो दा राज बूझोसी।
कीहा कारण हण डूझा तकरार ॥2॥
रंग बिच बेरंग यू वीं बनयासी, ज्यूँ वी गल बिच बास छपायसी।
नको शरह को तंहिं दा शुमार ॥3॥
दरियाखान हर सूरत सबहानी, जिथ किथ नूर हको नूरानी।
बुतखान किनूं थियस बेजार ॥4॥46॥

फजोर

हर मजहर बिच आशिक यारो, सारा सैर करींदी वह वाह।
अला निसान लिवास अहीं बिच, तरहीं पोश पहरींदी वह वाह ॥थल॥
कड़ां बिच मस्जिद कड़ां बतखानी, जानियो तिलक लगींदी वह वाह।
होका मार अना अलहक वाला, सवले कदम धरींदी वह वाह ॥1॥
किथां वैरागी भस्मी लावंदे, अंग भभूत रमींदे वह वाह।
कड़ां बिच मस्त रहनि मैखान, सर सुबहाँ सुनंदी वह वाह ॥2॥
गल बिच कफनी दस्त पहूड़ी, दो नहीं दरद दुखींदी वह वाह।
कड़ां बिच बाज़िज़ कड़ां बिच वरदी, गोशी बह गुजरींदी वह वाह ॥3॥
दरियाखान आशिक गाल्ह अहीं बिच, मोतो थी फिर जिन्दे वह वाह।
लथी होल हिसाब हशर दी, पीछे केही कर्ज भरींदी वह वाह ॥4॥47॥

रेखता, तिलंग

माया में क्यों लिपटाना रे दीवाना, चलने का दिन अज कल्ह है ॥थल॥
मोह माया में रीझ रह्यो है, राव रंक सुलताना ॥1॥
तू जो करता मेरी मेरी, कूड़े भरम भरमाना ॥2॥

अपने आप कूँ जाने नाहीं, हए हए करे हैवाना ॥3॥
दरियाखान मृगतृष्णा के जल को, कैसा करै उनमाना ॥4॥48॥

ख्याल खुदाई रख तू खासो, तोमें तुहिंजो सजन आहे ॥थल॥
बिना खयाल खुदाई यारो, रांदी कूड़ी सभ रहिसो ॥1॥
तो में तोसा हरदम आहे, रती घटि न मासो ॥2॥
आशिक इश्क मइशूक इहोई, मंझि विसाल विरह थियो वासो ॥3॥
दरियाखान मुर्शिद मुकाम सही कर, पीर मफाम जो वठि तू पासो ॥4॥49॥
इश्क आयो करे हुल हंगाम, जई अंदर में जोश जगाया ॥थल॥
छातीअ में जड़हिं पातमि झाती, इश्क तड़हिं अची कई अशबाती।
अगियूं महबूबनि जे कंधु काती, मोतो बारी परचीमाम ॥
लासी लोड हया सभ लहाया ॥1॥
नाज वारनि जे नाज निमारिया, आशिक वो वो कनि बेचारा।
बेशक कीन मुड़नि से सचियारा, आणे अड़ाया दरस जे दाम ॥
डाढी फकल कंहिं फंद फासाया ॥2॥
इश्क वारनि खे बियो छा जाणे, बिन महबूबां केर सिंञाणे।
जर खरीद थिया बेजर जाणे, सभई छड़ियाउ नंग ऐं नाम ॥
सखन सचनि जा थिया सजाया ॥3॥
दरियाखान इश्क अंदर जन आहे, लहंदा लोक लागाया लोह।
छाए मजाल कंहिं बी जे आहे, हुस्न अगियूँ जो हणंदो हाम ॥
इश्क बारनि उते सिर अघाया ॥4॥50॥
जड़ा पीतम केफ कलाल किनूं, जिंद छुट पई गैर ख्याल किनूं ॥थल॥
इन्हीं कहनी केफ सरशार कीता, तंहिं तां पीवन नाल पसार कीता।
पीछे बिच मस्ती दे होशियार कीता, तडां वा कूफ थियोसीं विसाल किनूं ॥1॥
गई सिर्फ नवज दे सभ भल कसब, असां काज़ी शरह नूं कीतोसी बसब।
तडां शाह इश्क दा थियोसी सबब, तंहिं तां खबर दिती हरहाल कनूं ॥2॥
जडां गैर दा नुक्त गम थिया, तडां हम रहिया नाको तुम रहिया।
नाको असम रहिया नाको जिस्म रहिया, पीछे लंध पियासी कैद कसाल कनूं ॥3॥
दरियाखान जडां थिया गुलाम अली, तडां वाकुफ थियोसी अहीं त गली।
वञी जात दे नाल सफात रली, हन तां फजल थिया फी अलहाल कनूं ॥4॥51॥

मंझि जोश जबल कोहतूर जले, डाढो ताब हुस्न जो केर झले ॥थल॥
रब अरजी मोसी थी चयो, लिन तरानी अलहाम थियो।

कोई वीर बडा इन्हीअ छल छले ॥1॥
सवें आशिक जे दरद भुठा, कंए नाज़ नेणनि जे काक कुठा।
पायो शेग भगान ज नार गले ॥2॥
इश्क जंहिं ते कदम धरे, इहे डोह शवाब खां पिया परे।
हित बी कंहिं जी साई कान चले ॥3॥
दरियाखान आशिक आहन कनि, उहे बिन महबूबां कीन रहनि।
डिसी पतंग शमह खे कएन वले ॥4॥52॥

सारंग

हिक असां जो तूं हीं तू, तो बिना बियो न धुरिजे मूं ॥थल॥
ला लंघे वञे महू थियासीं, इला अल्ला चयो लिंव लिंव ॥1॥
बञी पियासी मुलक अमन में, डेह उन्हीं में नाहं डून ॥2॥
पंहिंजो पाण में गुम थियासीं, बेरंगी रे नाहे बून ॥3॥
दरियाखान देस इन्हीअ में पियासी, जिते हां रहे नका बी का हूं ॥4॥53॥

हिक तेड़ा भरोसा, साई हिक तेड़ा भरोसा।
हर वक्त हमेशा है असां नूं ॥थल॥
हिक तूं राजी केही मुहताजी, बे दी गर्ज न काई।
तइनी तहमत सिर ते चायमि, लोकां दे रुसवाई ॥
इश्क आवै तां कर शुक्राना, डे पारस कूं पासा ॥1॥
सिक तेडी बिच सुहिणा साई, मैं सारी उमर गुजारी।
इश्क तेडा झुल आया सिर ते, बार विरह दा बारी ॥
माणा सुहाग करिई न हरगिज, तोड़े मिले दिलासा ॥2॥
दामन लगड़े दा शर्म तुसां नूं, अपना नंग निभाहिया।
मैं अवगुण हारी तूं सभ गुण लाइक, मैं बानी तू साई ॥
नित ही हमेशा नाल असां डे, रती घट न मासा ॥3॥
आशिक नाम सडावण सोखा, इश्क अणांगा लावण।
लाफा लख मरींदे पढ ही, मुश्किल तोड़ निभावण ॥
दरियाखान इश्क दी औखी, बाजी रांदि नहीं को रहिसां ॥4॥54॥

आशिकां दा उलटा है राह, उलट समावण मुश्किल बाजी ॥थल॥
उलट उभारे आशिक तरंदे, हिन गवास बेरंग बहर दी।

दहशत ना कर दरियाह, पेर टिकावण मुश्किल बाजी ॥1॥
आशिक जंग फिरंगी जोड़िन, डे सिर सोरह मुहं न मोड़िन।
आंदी वी काहो काह कदम, उठावण मुश्किल बाजी ॥2॥
बाह विरह बिच आशिक जलन्दे, डेख शमह कूं पतंग न वलन्दे।
पवन्दी बिच आड़ाह, आप जलावण मुश्किल बाजी ॥3॥
सोरह सिर दा सांग न धरन्दी, मोतो थी आशिक नहीं मुरन्दी।
थींदी फना फी अल्ला, आप गंवावण मुश्किल बाजी ॥4॥
दरियाखान कोच नगाड़ा बजंदा, गुजरी कूँ छोड फिकर कराज दा।
जावणी सा वह वाह नींहं, निभावण मुश्किल बाजी ॥5॥55॥
मारूअड़नि दिनह शाल, अचे का खबर खुशीअ जी।
गूंदर में थी डींह गुजारियां ॥थल॥
मूं जेड़ियूँ मलीर में, ओढनि लोयूं लाल ॥1॥
हिक पियसी परडेह में, जीअण आह जंजाल ॥2॥
ऊठा मींहं मलीर ते, पलर पाणी जाल ॥3॥
दरियाखान मारू मूर न छडीन्दा, लहंदा कैद कशाल ॥4॥56॥

आशिकां दी उलटी है चाल, लोकां नूं खबर न काई ॥थल॥
उलटी बोली उलटी चाली, उलट समावण मसत मवाली।
इहो फक्र दा है हाल, रहंदी साफ सफाई ॥1॥
उहो बल चाढह आशिक चढहंदी, मोतो थी फिर अना अहलक पढहंदी।
मरण जीअण दा ख्याल, डे सिर करन अदाई ॥2॥
आशिक इमाम हसीन जो आहा, जंहिं सिर नेजे दे नींहं हुलाया।
बी दे की ही मजाल, मलिकां डींदी गवाही ॥3॥
आशिक नाम सडावण सौखा, दरियाखान नींहं निभावण औखा।
दम दम करंदी विसाल, रहंदी ख्याल खुदाई ॥4॥57॥
बेरंगी बाहि विच जलना है, इश्क दा रंग न रूप निशानी ॥थल॥
इश्क जिथां आ पावंदा झाती, अल्लाह दे दस्त आन्दा कर काती।
कदम अशाकां ते घर नाहीं, जोड़ डाहीन्दा सभ जिस्मानी ॥1॥
इश्क मुलामत जंहिं सर चाती, तंहिं कूं डीन्दा फैज हयाती।
मोतो कबलाल मरना है, मार जगा चल चाल शाहानी ॥2॥
इश्क न लेखां दी कीहा कम कीता, यूसूफ धन मसूर विच नीता।

वल पीछे नहीं वलना है, जरहजील थिया शाह कनआनी ॥3॥
दरियाखान इश्क दी इहा निशानी, कोल मरींदा केई अखवानी।
झूल न बी कंहिं झूलना है, डे सिर आशिक थी कुरबानी ॥4॥58॥

वेखो सिर इशाकां यार कीहा हुकम हलाया ॥थल॥
इश्क जिन्हां दे भांडे पइया, रसम तिंहां दी असल न इहा।
आप जलीखा यूसुफ थीया, आया मिस्र बाजार, मालिक मुल्ह चुकाया ॥1॥
सर मंसूर दी आई मस्ती, अना अलहक बोले बोल अलस्ती।
आपे काजी आपे मुफ्ती, आप वेखे इसरार सोलई सिर सहलाया ॥2॥
किथ रांझो दा कीतस राया, वेखन सैल सयालीन आया।
हीरदे कीते हाल गँवाया, छोड़िसी तख्त हजार, चोचक चाक सडाया ॥3॥
शमस अलहक दे खिल खिलायस, हसर सखां दे सितम सहायसि।
मेड़ किताबें उठ लडायसि, भज थिया बेजार, जणियो तिलक लगाया ॥4॥
मोसे कूँ कोह हवा चढहायसि, रब अरनी दा सवाल करायसि।
लुन तरानी आवाज जो आयसि, केई लख हजार जबल सर जलाया ॥5॥
दरियाखान इश्क असां वल आया, इल्म अकल सभ छोड सधाया।
पिया पिया कर मैं पिया पाया, विरहीं बेअख्तियार नींहं निशान बनाया ॥6॥59॥

हर मजहर बिच वसंदे आप, रंगपुर दे बिच मार के नगारा ॥थल॥
रवन बिचूँ फेखूं थी आया, आवण नाल कैसा रंग लाया।
बाज विरह दा सिर ते चाया, डे रमज इन दिल खिसंदी आप,
इश्क दा पसरिया यार पसारा ॥1॥
शेख अतार दा कंध कपायसि, शमस अलहक दे खिल खिलायसि।
शमसुलहक दे खिल खिलायसि, परत इन्हां दे पसंदी आप।
तबाजनी दा करके इशारा ॥2॥
मंसूर मएराज सवली ते कीता, वहिदत जाम शहादत पीता।
बेशक आहीं कूं इश्क जो नीता, दिस अना अलहक दिसदे आप।
मुलां हो फिर कीते मारा ॥3॥
दरियाखान इश्क असांवल आया, सो मैं चुम अखे सर चाया।
आया विलंदा नहीं विलाया, रमज आहीं कूं रसंदे आथ,
लाशिक आया साडावारा ॥4॥60॥

मिलिक माही दे थइयां सारा, राज सयालिन दा सटिके ॥थल॥
रोज अजल किनूं रांझो दे थइयां, मैं पखी तंहिं दे पइयां,
हटक न मायो रहिसां हटिके ॥1॥
भेण अलीन्दे वेण औली, तू त मार न मायो भइयां,
वेसां पाड खेड़ा दे पटके ॥2॥
रात अंधारी मैं अणतारी, तेडे नींहं तरायम नइया,
छल छल छोलीसी दियों छटिको ॥3॥
दरियाखान राह रांझन दे वैसां, लव तंहिं दे लइया,
लटक सुहिने दे रहिसां लटिके ॥4॥61॥

सारंग

आउ सिधा कर आवण दे, तेडी जुदाई सावूं मार नीता हुन ॥थल॥
सिक तुसाडे सुहिणा सांई, जीउ अंदर बिच कितां जाई।
सीने नहीं समावण दे, उठण बीहण अख्तियार नीताहण ॥1॥
विरह तेडे दीन नित बरसाते, अखियाँ रोवन दीहां राते।
सीर वहे ज्यूँ सावण दे, इन्हीं अजब इसरार नीताहुण ॥2॥
इश्क तुसाडे किहा कम कीता, इश्क आराम दी डूंहां कूं नीता।
क्यों कीतव दिल चावण दे, अहीं तेडे विचार नीताहुण ॥3॥
हुएं असां कने यार सदाई, दरियाखान दे नाल सुहिणा साई।
कर का नींहं निभावण दे, बेखुदी दे बार नीताहुण ॥4॥62॥
जेका विरह विलोच जी मारी, सा बेबसि डूंगर डोरे ॥थल॥
केचन संदे कुर्व जो, कानु लगसि दिल कहरी, सात घोर क्यूं सिर घोरे ॥1॥
डेरनि मुईअ सां कई डाढाई, तरस न तिन तुझ नारी, पहन पेरो डिस पब कोरे ॥2॥
रोई रोई राह निहारी, गोठहा गिलन ते जारी, जे हिक वारी चश्मा चोरे ॥3॥
दरियाखान ववड़ तलहें वरखे, करे हिमत हिक वारी, सात अटकी रहे न ओरे ॥4॥63॥

आउ कांगा कर गाल्ह, मूं खे मारुअड़नि जी ॥थल॥
आउ दुआगण आहियां इन्हनि जी, खुश वसनि इहे शाल ॥1॥
बिन बुटूं ही पट जा मुंखे, वरू लोई सा लाल ॥2॥
ख्वाब ख्याल मारूअड़ा मन में, सदा सिक संभाल ॥3॥
पट पहरीं दियसि कीन की, लोई अबाणीं लाल ॥4॥
वाह खथी हुई खुम्भ जी खासी, बिन मटियूँ खूह माल ॥5॥

घड़ियूं धारण आयूं इन्हनि रे, साइत साइत साल ॥6॥
खूह महल ही बंगला माड़ियूं, बिन दुरयुनि कठमाल ॥7॥
दरियाखान मारुअड़नि रे हितड़े हए हए कहिड़ो हाल ॥8॥64॥

कोहयारी

मुंहिंजो वर वठी विया दिलबंद डे अदियूं, इहे डेर मुईअ खे मारे विया ॥थल॥
हाञो करे होत वठी विया, इहे करे मुईअ सां छंद ड़े अदियूं।
उहे का घड़ी हित न घारे विया ॥1॥
मूं भायां हिन माइट मुईअ जा, फकल करे विया फंद डे अदियूं।
उहे नंग डे कीन निहारे विया ॥2॥
डूंगर डे को दस डेरनि जो, रोज निहारियां तिन जा रंद ड़े अदियूं।
उहे चांगन खे हित चारे विया ॥3॥
मूं मे कान्हे हिमत हलण जी, सूर भरिया संध संध ड़े अदियूं।
उहे वण वण हेठि विहारे विया ॥4॥
दरियाखान जत करे विया जाडूं तिन जा पेट निहारियामि हंध हंधड़े अदियूं।
उहे मुईअ खे कोह विसारे विया ॥5॥65॥

भोरे भम्भोर खूं भूलू, तोमें पुन्हल आहे तुहिंजे पाड़े ॥थल॥
अकरब खूं तोखे वेझो वसे थो, रंद न बी कंहिं रुलु ॥1॥
पाण विञाए पाण सही कर, पाणउं परे कियम छुलु ॥2॥
मोतो कबलाइ लानत मोतो, जीअरे सरें त लहें मुल्ह ॥3॥
दरियाखान पसिज पाण में, छडे हाड़ही जो हुल ॥4॥66॥

तिलंग

मुख जीवन का त्यूं बखलाए, आईन में को फेर नहीं ॥थल॥
मारि कड़ा कढ कटु अंदर जी, मन मूरचा उड़जाए।
पीछै वेरी उथा कोइ वैर नहीं ॥1॥
दिल आईन साफ सफाई, साफी सफण सफाए।
जे रुख माहीं गैर नहीं ॥2॥
आप सिंञाणी गैर न जाणी, माणीं तूं जोक बकाउ।
आप जीहा वल को शीर नहीं ॥3॥

पाए झाती तां जाहिर वेखीं जलवा नूर खुदाए।
हि दम दरियाखान देर नहीं ॥4॥67॥

सारंग

मांझी वजूद शहूद कयो, ऊंदहि जो इसबाब वियो।
उभरियो सिज लकीकत वारो, तारनि जो सम ताब वियो ॥थल॥
इश्क जुलेखां यूसुफ नैनी, मंझ मसर बेआब कयो।
अब्दीत जो भूल भगो, जड हन रुख उतों नकाब कयो ॥1॥
शाह मंसूर मइराज सुलिअ ते, शाउक दिस शताब वियो।
मुलनि मंजिल कीन परूड़ी, हुअण संदो हिजाब वियो ॥2॥
आशिक इश्क में शाह शहीदो कहिड़े दोह सबाब कयो।
सूफी साफ थियो सिर डेई, बहर मथऊं हबाब वियो ॥3॥
आशिक कनि था अलफ मुताले, बात वारो बात वियो।
दरियाखान थीउ बेदार हितूं, ही खौफ रजा वारो ख्वाब वियो ॥4॥68॥

बाहरियाँ तीरथ छो पुछायाई, मुंहं मिड़ही दिल पंहिंजी न पाईनि ॥थल॥
सखा सफर छो कष्ट करी थो, पथर पाणीअ ध्यान धरी थो।
रूह पंहिंजी में राम रिझाईं ॥1॥
गीता पारस भाग पढहीं थो, पंहिंजो पाण में कीन कढहीं थो।
कथां कयूं पियो लोक सुणाईं ॥2॥
पोथियूं पुस्तक वेद बताईं, मन पंहिंजे प्रबोध न लाईं।
फिथा ग्यान पियो बियनि खे बुधाई ॥3॥
दरियाखान दरद रखिज दम यारी, इश्क सुहिणे बिन कूड़ी ताड़ी।
पंहिंजो पाण में छो न समाई ॥4॥69॥

कयव अहद खे इशवात, दिसो इश्क करामात ॥थल॥
खुन चई फेखूं थियो, आदम नालो जात।
थियो पसूं पंखी पधिरो, पाणूअ वाणी लात ॥1॥
अरबन अनासर मिटई मंजून, जोड़िया ऐं विसमात।
राजक रजक तंहिं खे, थो आणे विझे वात ॥2॥
जमीन ऐं आसमान कयाएं, महकम मुकामात।
सिज चंड तारा तंहिं में, कनि तरहें तरहें तात ॥3॥
आदम हवा काण कयाएं, मेवा मौजूं दात।

गंदम दाणो करे बहानो, उछलियाएं अरफात ॥4॥
दरियाखान आशिक इश्क में, थारुंअ डींहां रात।
लकलकोटी पाण लकाए, आया मुंहं आफात ॥5॥70॥

मयखाने बिच मिलिया यार, वञण मसीत कीहां सानूं मकसद ॥थल॥
हथों हादी दे जाम पीतोसी, कुहनो कैफ कलाल डितोसीं।
तंहिं दी खास खुमार तालां ॥1॥
मुख महराव सजण दी सूरत, बेरंग मोहिया मोहन मूरत।
बुतखां किनू थियसि बेजार, इह मनमुख थियोसी मस्जिद ॥2॥
मयखान बिच मस्त थियोसि, सजद सजाद डूहीं भल गयोसी।
आप उते आयां अएतबार, वरद वनाइफ थियोसी सभ रद ॥3॥
दरियाखान आप बिचूं ना आणी, हक सिंञाणीं गैर न जाणी।
खोल आखिन तां हुई इजहार, अल्ला मुरशिद हकाहक हद ॥4॥71॥

इश्क होया फरहाद, मैं दाटकर टिकींदा ॥थल॥
तालिब दातीशा हथ करींदा अवल मारे फिर जीवंदा।
पीछे करींदा शाह, हस्ती कूँ मार हटीन्दा ॥1॥
जोड़ जिस्म दे सभ डाहीन्दा, हस्ती दे बंद जोर भनींदा।
विरह कीते बरबाद, पाडूं पहाड़ पटीन्दा ॥2॥
अज असां नुं संवरी साहियां, विरह बराता भांडे पइयां।
इश्क कीता इमदाद, आमी अंग मटींदा ॥3॥
दरियाखान अपना आप न जाणी, जाहिर बातन जात सिंञाणी।
आप रखे आजाद, ये सिर कोई सटींदा ॥4॥72॥
तुंहिंजे दीद कयो खरीद, डिसण साण असां खे ॥थल॥
जाणनि विया न जाणनि, तोखे सिकवारा सिंञाणनि।
तुंहिंजे शौंक कयो शहीद ॥1॥
विरह कयो बेहाल, महबत मस्त कयो खयाल।
डे का राज जी रसीद ॥2॥
हुजु हंज में हमेशा, तू मिलियल यार मूँसाँ।
कराए इश्क संदीं ईद ॥3॥
सूरत में सादाई, फिक्र कई फनाई।
दरियाखान दिल दरीद ॥4॥73॥

पहाड़ी

फाम तेड़े जग में हुलिया वे यार, बेबस लगिया दी लज पालीं ॥थल॥
जे तूं आवें साडे वेड़ही, घोल घतां मैं डुखी भेड़ी।
नित नित वेखां कर की सिंगार, हिक वारी जे तूं मड़ भाली ॥1॥
नींहं तेडे दियां लगड़िया नोकां, डरन्दी आख न सघंयी लोकां।
बेबस थइयां वे अख्तियार, नित नित मास हडां दा गालीं ॥2॥
रंगपुर दा आकीतस राया, कीहा कीहा वेख बनाया।
छोड़ के आया तख्त हजार, करके चाक चना हदिया चालीं ॥3॥
दयिाखान इश्क अक्ल कूँ नीता, बाह बिरह दे अंबह कीता।
छिड़के भड़कनि बेशुमार, नित नित जोशान वे बिचा जालीं ॥4॥74॥

ढोलियो

बेखो जो घूंघट दे बिच, यार समाया है ॥थल॥
सूरत वाला सांग सही कर, बेरंगी रंग लाया है ॥1॥
रंगपुर दे बिच करके राया, रांझो चाक सडाया है ॥2॥
आपे आशिक आपे माशूक, बार विरह दा चाया है ॥3॥
अना अहमद बिला मीमी, बिच अवली दे आया है ॥4॥
दरियाखान जाहिर बातन दे बिच, सभ सुहिणे का साया है ॥5॥75॥
वह दम खुश दम सो दम है, जो दम साहब नाल वे यार।
फाज करोनी अजकर कुम, तू पड़ह फरकान संभाल वे यार ॥थल॥
काजियाँ शरअ करन वत कोला, नुक्त समझ न कढन्दे भोला।
सिर्फ नहव दा पियो नी रोला, इश्क बिना सभ काल वे यार ॥1॥
डिठी बाझ न आशिक रजंदी, बिन महबूबां थीवइं मांदी।
जां सर आई सा सभ सहंदी, खेड़नि दरद धमाल वे यार ॥2॥
आशिक चाढह अही वल चढहंदी, मोतो थी अना अलहक पढहंदी।
नव नव मंजिल हुट न खड़ंदी, चलण अजाइब चाल वे यार ॥3॥
पीर मुगां हथों समझ इशारत, इहो दम हो हक विरह विशारत।
साई कसरत दे विच वहिदत, दरियाखान मिड़ण महाल वे यार ॥4॥76॥

बरोर

पाण विञाए पाण सिंञातमि, बियो जातमि सो तां जाण वियो ॥थल॥
फाइनामा तवलू पूशम वझहिल्ला, विझाईअ वारो पाण वियो ॥1॥
जंहिं गोलियो थे गोठ गली में, सो त बिचूँ ई पाण वियो ॥2॥

पंहिंजे पाण में पातमि झाती, बियो पह पंधु परियाण वियो ॥3॥
दरियाखान बहर बेरंग वारी में, अकल संदो अहजाण वियो ॥4॥77॥

पुछ दर्द वालियां दा हाल, ओ त रहंदे अपने ख्याल ॥थल॥
दर्द वालियाँ कूँ आम क्या जाणनि, बिन महबूबां कौन सिंञाणनि।
गुझी तंहां दी गाल्ह ॥1॥
डिठड़ी बाझ न आशिक रहंदी, हिन गवास बेरंग बहर दी।
कीते नींहं निहाल ॥2॥
आशिक मस्त रहनि मयखान, कडा बिच मस्जिद बतखान।
चलन्दी अजब चाल ॥3॥
बार विरह दा आशिक चावनि, डे सिर सूर्य सोम मिलहावनि।
मिड़ण तहाँ दा महाल ॥4॥
दरियाखान आशिक मर के ज्यूँ जीयूं, वहिदत जाम विसालू पीयूँ।
हथों कैफ कलाल ॥4॥78॥

शोला शाह हुसन दे मार नीता, हण वस नहीं जे अख्तियार नीता ॥थल॥
कर आन्दी इशाकां ते काह वेखो, अन भूमि सख्त सिपाह वेखो।
कढ सधंदे न आशिक आह वेखो, ला दे सेफ सीने सटकार नीता ॥1॥
जडां सुहिणी करन सींगार वेखो, हिक जोभन विया जिनसार वेखो।
चौतरफ हुस्न दी बहार वेखो, अहीं लटक सुहिणी रफ्तार नीता ॥2॥
छिटके नैन यारो तरफे वेखो, सुख चैन नहीं दिन रैन वेखो।
गया गैर दा नुक्त ऐन देखो, सरसब्ज चीरे दे चमकार नीता ॥3॥
दरियाखान हुस्न दा सामान वेखो, नहीं ताकत शिरअ वयान वेखो।
आया सूरत दा सुलतान वेखो, आहीं अजब यारो इसरार नीता ॥4॥79॥

अंङण असां जो आउ तूं यार, असल असां आहे नींहं जो नातो।
सरितियूँ सभई मां खे डियन बाधायूं, पेर परतऊं पाए तूं यार।
सिक सजण तुंहिंजी अंदर उरातो ॥1॥
आउ त ईदान थियन असां घर, पंहिंजो पाण भलाए तूं यार।
इश्क उन्हां जो मूँ सरचातो ॥2॥
गाल्हियूं दुखनि सूरनि जूं सभई, दोस्त बंधी दिल लाए तूं यार।
आहे असां इहो ख्याल जो खातो ॥3॥
दरियाखान दरस तुंहिंजे जो प्यासी, तंहिं सां रमज रुलाए तूं यार।
गोठ गले गण तुंहिंजो मूँ गातो ॥4॥80॥

ढोलियो

सांउ रमजां रांझो यार दियां, हर वक्त हमेशा लग रहिया ॥थल॥
मिल सयालियां लावंदियां झेड़े, हरकाई अपने आप निवेड़े।
तुसां कम नहीं कहिं कार दियां, हिक रब राजी केई वग रहिया ॥1॥
वेसां न रहिसां माही दे बेली, घणकनि घिंड यां कान्ह कहेली।
लंघ वेखां सब्ज यां पार दियां, मैं थी मशहूर जग रहियां ॥2॥
दरियाखान माहीं अल्ला मिलाया, जंहिं दे आहे सो शह पाया।
हण कीहा डर संसार दा, मैं तां नार माहीं दे अग रहियां ॥3॥81॥

झोक वेसां ड़े, मैं नुं मतां काई झले ॥थल॥
मिल सियालीं मारन मतियां, सनी तहमत दींदी ततियां।
आप अपना काई पले ॥1॥
मैं कमली कोई कुझ जाणां, नींहं माहीं दा शींह सामाणा।
चारा न को वस चले ॥2॥
झको वेसां क्या लो करेसी, अपने तुरही तार तरसी।
जे माही मेडी वली ॥3॥
वेसां न रहिसां माही डे बेली, जित सर सब्जियां कान्ह कहेली।
रंग मंझा दे सावे तली ॥4॥
रोज अवलि किनूं रांझो दे थईया, कालो बली वाला कलमा वहियां।
खेड़ियां दे सरते गले ॥5॥
दरियाखान बोल माही दे बघियां, अपना नेकयां अपना बदियां।
पाए वेसां सभ पले ॥6॥82॥
रावे दी रांझे सांड रमजां लाया, चाक चकणी सांड रमजां लाया ॥थल॥
रात अंधारी चकण चाढही, रिमझिम मींहं पवनि फुहारी।
इश्क अड़ी बिच आया ॥1॥
मिलसिया लियां डींदिया तइनी, उथंदिया बहन्दियाँ नाल झानी।
कीहा डोह पराया ॥2॥
घोल घता सभ खेड़ियां दे बेढही, जहाँ वत साडी निखेड़ी।
लहनि तहां दियां जाया ॥3॥
दरियाखान राह रांझो दी वेसां, हिक पल पिछते पेर न पैसां।
सणाया भरावां भया ॥4॥83॥

लगियां दा पेंडा डूर।
जिन वत लगड़ी सेई वत जाणनि, महबत दा मनकूर ॥1॥
जनत दोस्त बिना सांउ दोजख, क्या वत होर कसूर ॥2॥
हिक वारी मुड़िमां प्यारा, जग भयावान मिसरो ॥3॥
तइनी तहमत सभ लोका दे, सभ सावुं मंजूर ॥4॥
दरियाखान इश्क दे येही निशानी, डे सिर थे मशहूर ॥5॥84॥

उमर रे शाल ईन्दा मुंहिंजा भारूअड़ा।
ईंदमि अथमि आसरो, मुंहिंजूं सिक सडीन्दा ॥1॥
आऊ सदिके आहियां तिन तूं, जे आया इसे चींदा ॥2॥
आऊ उन्हनि जी आहियां, छिपूं कीन छडीन्दा ॥3॥
पखा पखनि साम्हूं, आणे शाल अडीन्दा ॥4॥
अचण उन्हनि जी जा अज असां ते, लख थोरा तिन थीन्दा ॥5॥
दरियाखान खबरूं खेह जूं, डोथीड़ा शाल डीन्दा ॥6॥85॥
आयो फरमान इहो फरमान, हातिफ इश्क आवाज अलस्ती ॥थल॥
इश्क खायत रावे करे थो, सर इशाकनि कदम धरे थो।
फरमोदो इहो बंध फरतां मोतो थी वियाए हुई हस्ती ॥1॥
अवलि जिस्म खूं कर तूं जुदाई, डे सिर आशिक इश्क अदाई।
बफी अनफसीकुम कोल कुरान, मान महबत हक जी मस्ती ॥2॥
जाहिर ज़ात सिफात सिंञाणी, आशिक इश्क जूं मौजूं माणीं।
ही घर हस्तीअ जो कर वीरान, डे सिर सौदा दस्त बरस्तीं ॥3॥
ही तुम सारी तिलिस्म बाजी, दरियाखान गोए खणन की गाजी।
इश्क धुजुं यार नीहं निशान, खोड़ तू आशिक ....वस्ती ॥4॥86॥
मैं मन मिलिया माही यार, जात खेड़ियां दे मैं मैं बात क्या जाणां ॥थल॥
भेणां छाई हटिके माई, बेड़ही सारी दे हका वाई।
नाल खेड़ियां दे थी नी खुवार, वेखो वाई अजब को वाणा ॥1॥
रोज अजल किनूं रांझो दे थईयां, पार तंहिं दे पखे पइयां।
खूह खेड़ियां दे हार सिंगार, सोज सुहिणे दा साह सियाणा ॥2॥
रंगपुर दे मैं राह न वेसां, तख्त हजारे दा शाह पुछीसां।
विरह तंहिं दे वे अख्तियार, लिंव कूं दे विच कीतस थाणा ॥3॥
राज चोचक दासई चोली चावै, खेड़िया भीड़िया दे कोड़ी दअवी।
तालिब रांझो दी लगड़ियमि तार, जंहिं दा पेटा तंहिं दा ताणा ॥4॥
दरियाखान खेड़िया दे खेह नलीसां, हिक पल पलंगें पेर न पाईसां।

पार वेसां तर निन्दया तार, भाणा रांझनि दा असां वल भाणा ॥5॥87॥

सांनु रमज लाई दिल यार, कतण आतण वल न वेसां ॥थल॥
चरखा चाई सट कर पासे, दिती इश्क आधार।
चाहूं ता मैं वल न चाइसां ॥1॥
नाल सुहिणी दे संवरे सहियां, तंहिं लगा निखार।
नाल तंहिं दे विरह वसींसां ॥2॥
अज असाण नूं आउ सिया की, मूरत का सरदार।
तलब तंहिं दी मैं तोड़ निभयां ॥3॥
रोज अवलि किनूं जंहिं दे हलन मैं, जीउ तंहिं दे पनार।
पेर पिछो ते मैं वल न पइयाँ ॥4॥
अल्ला वेखों नाल अखनि दे, दिलबर दा दीदार।
दीदां वे बिच दीदां मैं लीसां ॥5॥
दरियाखान दिलबर दर्द पाए, दम दम दिल दीदार।
नंहिं तंहिं दा मैं निवह नीसा ॥6॥88॥

जोग

जीउ जंहिं लए जोगी थीअड़ो, सांग वरिया अथमि सेई ॥थल॥
अमर अमर आजुजि आहियां, दुख विञायमि हसेई।
सरतिन खे वञी सूर चवां, हित चिंबा चिंबन डेई ॥1॥
मारुनि मुल्क मलीर अठोहित, विरह विञायमि वेही।
खुह खंडुनि जा खाइन मुंखे, वरू डइरा से डेही ॥2॥
रूह रचंदियूं गाल्हियूं गरह्या, बेड़हीचनि सां वेही।
बन बटनी साटन पर जा मुंखे, लीड लोई सालख जेही ॥3॥
सही गुलामअली जो सडायमि, नींहं लायो तंहिं नेई।
हिमत हादी हक हकानी, रमज हमी दिल रेही ॥4॥
दरियाखान दिलबर दिल में दाइम, रचाण पसिज तूं पेही।
हादी वार वहाल असां जे, जेही आहियाँ तेही ॥5॥89॥
वसों थीड़मि वोई, सांगिन भासे अज सांग थिया ॥थल॥
जिन लए जीअ जखिम थयो, हाय छड़ियां कएन होई ॥1॥
कीअं जियां हित जेडियूँ, पनिहारन खां पोए ॥2॥
पखापखनि साम्हूं, उडा तांई उड़ियोई ॥3॥
आहियां जंहिं जे आसरे, सतुरू रखंदमि सोई ॥4॥

मोतो जे मैदान में, कामिल ईंदो कोई ॥5॥
दरियाखान खे आहे दाइम दिल में, सदा साँवल सोई ॥6॥90॥

मारू माञ मूं खे हूंदा, दुखिया डींह न सारियाँ ॥थल॥
संघारनि रे सरितियूं, गून्दरं मंझि गुजारियां ॥1॥
रहां उन जे राज में, पत पंवहारनि पाड़ियाँ ॥2॥
सांगी वेड़मि सांग ते, वेडहीचनि खे वारियां ॥3॥
दरियाखान डोथी डूर थिया, खूह घड़ियूं हित घाड़ियाँ ॥4॥91॥

मारूई

उमर अबाणा उहै, बेड़मि बसवरे ॥थल॥
संधारनि जी सूमिरा, थियड़मि गाल्ह गरी ॥1॥
मारियस मारूनि सा सरे, चाकनि कयसि परे ॥2॥
सरितियूं सूर सलां सही तां, डूंगर पवनि डरी ॥3॥
सारे नेहीं सूमिरा, वेन्दइ डूर धरे ॥4॥
सांगीड़नि सां सूमिरा, शाल मूं पत पड़ी ॥5॥
खाली आण खोहजी, डे मूं खबर खरी ॥6॥
रजा जार महमान जी, टारे कंहिं न टरे ॥7॥
दरियाखान खाईंदसि खेत सां, सोई सिंङर सरी ॥8॥92॥

डिसी दुख थियो डील, कह महल बिन माड़ियूं भाडियूं ॥थल॥
वाह वेड़हीचनि जा खड़ सथूरियूँ, लाल लोयूं किन खे की मोरियूं।
डुइड़ा डुथ सबील घर, खंडनि गदि वाड़ियू वाडियूं ॥1॥
भाण भिटनि भर पखा पंहवारा, कूत मारूनि जो डुथ ऐं डोटा।
असल इन्हनि खें ईट, चांवर डियो कन चाढहियू चाढहियूं ॥2॥
बिन जरी जर तूल विहाणा, खूह खंडनि जा तंहिजा खाणा।
सांगिन सां सत सील, लोह लिखियो झुट जाड़ियूं जाडियूं ॥3॥
दरियाखान मारूनि मींहं मंडाणा, तोश वसनि शल डेह डाडाणा।
पुसी पका थिया पियल वरू गाड़ियूं से सभ गाढहियूं गाढहियूँ ॥4॥93॥

मंञ तूं कड़ा कैद कुंजियूं कुल्फ कजा जा।
त वेहीं मारूनि घारियां, ही डुखिया डींह न सारियां ॥थल॥
थियन डोथिन खूं डूर, पवनि पल पल जा पूर, इन्हीअ सोज सजा जा।
से विहियां कीअं विसारियां, सेसदा सुख तिन सारियां ॥1॥

बनही बाग बहारां, जे खन नेण निहारियां, त सभेई खार खजान जा।
वह वेड़हिन जारिया, त वञी चून पुकारियां ॥2॥
लिखियो लोह में हींअ हो, सो सभो पाड़ण मूँ पियो, सो आहे रब रजा जा।
से कंहिं सीं गाल्हियूं गरहियां, से विहियां शाल तंवारियां ॥3॥
दरियाखान घरी दान, सदा तो दर सुब्हां, रसजि रोज जुजा ज।
त तुंहिजो इश्क अजारियां, त तूं ही तूं तंवारिया ॥4॥94॥
विरह न भांयमि जेडियूं, आहे इश्क अणांगो अदियूं ॥थल॥
राई में थी राह निहारियां, हए हए कयूं थी हंझूं हारियां।
नेणनि विहायम निन्दियूँ ॥1॥
रोहनि में थी करियां राड़ू, जित करे विया मुईअ सां जाड़ूं।
वरू वञनि था विदियूं ॥2॥
गोरागस हलनि था गामूं, कर हुन खे तिन कहयूं कामूं।
बेल वञनि था बधियूँ ॥3॥
दरियाखान दिलबर दिल में दाइम, सही गुलाम अली जो सडायमि।
माफ थियूं सभ भंदायूं ॥4॥95॥

फिराकनि जूं विझां फारूं, राह निहारियूँ तो लाए कांग उडारियूँ ॥थल॥
लिखियमि खत खुशीअ मां खोले, कासिद कदमें ओले घोले।
हाल चइजनि भेण बोले बोले, इश्क अव्हां जे ही कयूं कारूं ॥1॥
रहबर रोज पूछां थी राहूं, विरह विञायमि बियूं सम वाहूं।
आउ अल्ला लग बुध ही आंहूं, सिक अव्हां जी जूं अथम सारूं ॥2॥
आउ अल्ला लग हीअ आजिज आहे, वर विहयारा तंहिं डे काहे।
संड न बियो कों तोसां साहे, दोस्त दिलासो डे की दिल दारियूं ॥3॥
दरियाखान दोस्त मुकी दिलदारी, हार सिंगार बनायमि भारी।
आउ बुध हाल मुंहिंजो हिक वारी, वरक विछोड़े जा वहंदोई वारियूँ ॥4॥96॥
हो तिन रे ही हाल जेडियूं कहिं सां ओरियां ओर अजीबनि ॥थल॥
गफलत बाजी यार गंवाई, हइ हथो वियमि होत छडाई।
केचे हए हए काल्ह जेडियूँ ॥1॥
सरितियूं संड न को बियो साहियां, दर दर पोथी दार पुछायां।
जोगनि जी मा अथम जाल ॥2॥
कहंदियस केच कशाला काहे, लहंदियस लोक लगाया लाहे।
भपर कंदयसि छाल ॥3॥
रहबर इश्क अवल किनूं आयमि, सही गुलाम अली जो सडायमि।

कयड़मि नजर निहाल ॥4॥

दरियाखान इश्क अंदर जिन आहे, भप पंध तंहिंखे छाहे।

कोह नी केच कशाल ॥5॥97॥

पीर मुगां वटि वञ तूं प्यासो, इश्क खुमार खमर पी खासो ॥थल॥

काह कलालनि वञ तूं काहे, खबर हकमस्ती बी हस्ती नाहे,

मंझि विसाल विरह वटि वासो ॥1॥

मयखान केई मस्त अचनि था, सिर दे सौदे मड़द मचनि था,

रमज रंदे आहे रांदि न रहिसो ॥2॥

विरिह अथई इहो विरह बकाई, इश्क अल्ला बिन बी कूड़ कमाई,

आस हके हक वियो कूड़ा वासो ॥3॥

दरियाखान दरद रखिजि दम साजी, इश्क अल्ला बिन बी कूड़ी बाजी,

ही हंध होश हुनर बाही हासो ॥4॥98॥

पुछो पुछो हालड़े विसामिन दासहियूं। झंग पुछ्यां आंदा, मेरे मन भावंदा ॥थल॥

तख्त हजारे दा जोगी आया, तंहिं वत कीहा कीहा वेख बनाया।

वेखो अजब खयाल ड़े को सामिन दा सहियूँ वंझले बजांदा गांदा चेटक लावंदा ॥1॥

अजब अजायब वियसि करींदा, मोहन मुरलीं दे नाल मरींदा।

सन धन थइयां बेहाल, चिश्मां चा चांदा गांदा, रमजान जो लावंदा ॥2॥

अहीं जोगी दे नाल जोगिन थीसां, गल बिच खरक मैं खाकी पाईसां।

विरह तंहिं दा बरहाल, लिंव जो लांदा जांदा, पेचड़ा यावंदा ॥3॥

दरियाखान दिलबर दिल बिच वसंदा, माही मिलिया खेड़ा संदा।

कीता नींहं निहाल पूं पूं तां दा चांदा, अंङण आवंदा ॥4॥99॥

अज कासिद को ईंदो मुड़ी, मन काढो थ मारूईं ॥थल॥

रहबर तुंहिंजा रातियू डींहां, रोयो राह निहारियां।

माड़ीअ में मारूनि रए मांदी, गूंदर मंझि गुजारियां ॥

आउ मूंडे का खबर खरी, को नी अरनि मूँ नींदो मड़ी ॥1॥

खाते तुंहिंजे नातरां, हित पोथीदार पुछायां।

सडे बांभण जोशी जागी, वहियूं रूं वाचायां ॥

जो मूँ मारूनि हाल चवे, अज तंहिं थोरो थींदुमि ड़े ॥2॥

मारूनि माग मलीर उठो हित, गाहनि कयूं गांदारियूं।

पुसी पट पका थिया पेरूं, वाह वेड़हनि जूं वाड़ियूं ॥

मान अची मूँ मांदीअ खे को, डस डोथिन डीन्दुमि ड़े ॥3॥

दरियाखान मारूं मूर न छडीन्दा, आउं उन्हनि जी आहिया।

नंगी नंग निबहि नींदा, लूण हारी भायां ॥
शाल वसां वेड़हनिमेंतां, ही वहम सभ वेंदुमि ड़े ॥4॥100॥

जिथ वेखां तिथ तूं हीं डिसन्दा, सागी सूरत यार दी।
दोई दिल तूं कर तूं पासे, बियाई बे पार दी ॥थल॥
अंदर बाहर तूं ही वसंदा, आग उपटि अहंकार दी।
फान्मा तोलो फशम इशारा, सूझ सिरजणहार दी ॥1॥
खेड़ आशिक इश्क दी बाजी, चौतरफ चौधार दी।
नसर जुदा तिन तिख बाजी, दीन समझनवार वे ॥2॥
गाल्ह आखन विच नहीं आवजी, इश्क वे अलवार वे।
सुध उहीं कूं आपे होसी, बेखुदी दे बार वे ॥3॥
दरियाखान काबो कश कमर तू, अपन एतबार दे।
वंहन अकूरब रमज रहबर, मआम तंहिं मुख्तयार दे ॥4॥101॥

सुहिणे यार जे दीदार जो, इसरार इहो आहे ॥थल॥
सही पाण तूं सिंञाण, अलसती अहिञाण खो।
नहन अकरब निखार, सो घरवार इहो आहे ॥1॥
मंझूं मीर थी मुख्तियार, आयो अवतार अहीं में।
सचे इश्क जी गुफ्तार, जो एतबार इहो आहे ॥2॥
गुल गुलजार सवें यार, खिलिया बाग बहारां।
चमन चमन में चौधार, सो हुबकार इहो आहे ॥3॥
दरियाखान धर ध्यान, छदि गुमान गुजर जो।
मोतो थी मड़ न यार, सो इकरार इहो आहे ॥4॥102॥
इश्क जड़ां इश्बात थियोसी, अकल दियां गाल्हियां गाल्हियां ॥थल॥
बेरंगी दा बाब पढहियोसी, रंगपुर किनूं मैं रहियां रहियां ॥1॥
लिखया अंग अंसल दरयोइन, वहवाह कलमां वहियां वहियां ॥2॥
खन फेखूं जवां रब फरमाया, पखी तंहिं डींहं मैं पइयां पइयां ॥3॥
दरियाखान रूह...रांझन, ठाहन बी कंहिं ठहियां ठहियां ॥4॥103॥
तेडे इश्क नचाया यार, छर छम छेरिन दा छमकार ॥थल॥
इश्क तेडा मैं पाता झोली, गल पेशवाज अन्त न बोले।
गली गली में थीसां गोली, थी फिरसां फेरीदार ॥1॥
मैं धर आवञण थीवां घोली, फंडे मूल न मावां चोली।
लहनार कीबां दे रगड़ी रोली, आउ गाल्हियां करां डूं चार ॥2॥
तेडे कारण सुहिणा साई, घर घर पुछंदी फालां पाईं।

बांभण जोशी रोज पुछाईं, आसीं तूं कहिड़ी वार ॥3॥
दरियाखान यार थिया बञया की, का जा लहणी आहेसि बाकी।
सुती पई नउं लही इशाकी, दारू दीदार ॥4॥104॥

तुंहिंजी वेंदी आए उमर बिहाणी, तूं त समझ सियाणा यारड़े ॥थल॥
अज कल्ह तेडा साथ लडाणा, जाणी तोड निभानी।
कीअं तूं थींवे अयाणा ॥1॥
मैं मेडी कर माया मेलई, कोडी न तेडी अघाई।
इथां नाल न चलसई नाणा ॥2॥
इथां डेसी उथां कम आसई, अगियूं अन्न न पाणी।
कुझ पोख धरम दा दाणा ॥3॥
दरियाखान तूं तां कर का अपणी, पर आप बिचो ना आणी।
पीछे जीवें रब दा भाणा ॥4॥105॥

तुंहिंजा अजब तमासा अहिड़ा यार, कयई तरहें तरहें नाज नवां ॥थल॥
काथे शाह काथे थियन गदागर, जोड़ न कयई हिक जहिड़ा यार ॥1॥
मजनून मस्त कयो नाज लीला जे, वाहवली जा वेहड़ा यार ॥2॥
शेख सखा गल जाणियो जड़ायई, तोंहिं खे कुफर बतायई कहिड़ा यार ॥3॥
जे मरन मरणा अगे, इहे वेही डिसन पंहिंजा डीहड़ा यार ॥4॥
दरियाखान कीन गुड़नि से आशिक, सूरनि सां गडि सिहिड़ा यार ॥5॥106॥

मुंहिंजी माड़ मारूनि खूं थींदी, खूह डींह डुखिया पर डेह जा ॥थल॥
उमर अबाणनि सां बञी, पिछ पाणी गदि पीनरी ॥1॥
सरितियूं संघारनि सां वञी चा, सीने जा सींदी ॥2॥
बिन हलवा हिन हंध जा, वञी खेत खुंभियूं गदि खाईंदी ॥3॥
दरियाखान मारूअड़नि जी, जुअ डिसी दिल जींदी ॥4॥107॥

दम दरद पवनि था पूर, सरितियूँ संघारनि सां सूंहां।
संघारनि सां सूहां, जिन जा दिल दुखनि था दूंहां ॥थल॥
चारन चून आणन बाहूं, डोथी डुथु करे, इहे शाल न थींदमि डूर ॥1॥
मींहं मंडाणा थर ते थाणा पूरां पट थिया, इहे कएं सहां हित सूर ॥2॥
ओढन लोयूं सिंड़र सोयूं बेड़हनि मंझि वसनि, हित मारीसि तोंहिं मजकूरु ॥3॥
दरियाखान अथमि उम्मेद इन्हनि में मारूं माड़ कंदा म, तूं मट म महबत मूरु ॥4॥108॥

रेखता

तुम वेखो सैर सफाई दा, नक्श दुरंगी दूर करो ॥थल॥
ख्याल यकायक दमदम दिल ते, मोतो थी आशिक फिर मिलते।
गीत अना अलहक मरजीगा, मुकराज सवली मंजूर करो ॥1॥
बहर हुस्न दिया..... भारी, सिर इशिकान झटकियां जारी।
बाज बिरह दांडे सर पा, दरद मंदान दस्तूर करो ॥2॥
आशिक मस्त अलसतूं रहंदी, डिठी बाझ महबूबां मांदी।
छेर प्रेम छम छम छम का, वेख मतां को कसूर करो ॥3॥
दरियाखान जे तूं आप सिंञाणीं, गैर ख्याल न दिल ते आणीं।
रख तूं जहद जफाई दा, महबत दिल मशहूर करो ॥4॥109॥

क्या कुछ वेखें कहिं नुं काहिं नुं, अखियाँ दे बिच तूं ही वसंदा ॥थल॥
मूरत दे विच मूरत सागी, नुक्त समझण नैनों नैनों ॥1॥
दीद सजण दे ऐद बराबर, चश्म वेखावन चेनूं चेनूं ॥2॥
गुल फुल दे बिच रांझन मेडा, भंवरे भुणकनि बेनूं बेनूं ॥3॥
दरियाखान गैर न जाणै कोई, ऐन सियाणी कीनूं कीनूं ॥4॥110॥

मूं संड बारोचल सां, तोडे आहे कि नाहे ॥थल॥
हांञो करे हलिया, डुखई खे डुखाए न जगाए ॥1॥
छुली वेन्दसि पिरीं, काह करे हुते काहे दिल चाहे ॥2॥
डाढा पेच प्रीत जा, डूर वधी तंहं डाहे थो साहे ॥3॥
दरियाखान सिक सरीर में, काह कयों था काहे, हित मुंहिंजो छाहे ॥4॥111॥
उडु कांगाड़े खबर खरी, मारुनि रे हीउ हाल थियो ॥थल॥
चएज सलाम सनिहा सारी, डोह केही हित वेठव विसारे।
हए हए इनरे मुंहिंजो साह न सरे, जीअण हित जंजाल थियो ॥1॥
बियो पैगाम चज ही पांधे, नईअ गडियो गडि हेकर हेका।
तोड़े खोटी आहिया खरी, करम लिखियो मूं कशाल थियो ॥2॥
टियो पैगाम चइजि दिल लाए, रे अव्हां मुंहिंजो हित छाहे।
इहा थीअरमि गाल्ह गरी, रातियूँ डींहां अव्हा जो ख्याल थियो ॥3॥
दरियाखान जाण इहो जो जातमि, बाहर पेर पखे ना पातमि।
इन्हनि मेहागनि खूं शल वञा मरी, साहब खेही सवाल थियो ॥4॥112॥

डोथिन जे डिथे मुंखे दींहं थिया, मूंखे डींह थिया मुंदिन मींहं पिया ॥थल॥

अकंड अबाणनि जी हिंअड़े नित होरी, कयसि फिरा कफना झुंजां तिन झोरी।
हाकिम हने न हलां कनि जुल्म जोरी, डिसी महल माड़ियूं नैणनि नीर वहिया ॥1॥
पल पल पूर पवनि मुंखे नित नवां, को अबाणो अचे तां ही हाल चवां।
हाल चई उन जे आऊं तां पेरें पवां, साइत साल मुंखे हित वह्र्य विया ॥2॥
सिक संघारनि जी ही मूं हाल थियो, किस्मत आणे कजा हित कैद कयो।
कोड वथन जो अची मुंखे डसडियो, नित अबाना उहे मुंहिंजो रूह रहिया ॥3॥
संघारनि जे सरितियूं वञी राज रहा, पंहवारनि जे जेडियूं पखे शाल पवां।
दरियाखान डूर थींदमि ही डुख राहरवाज, मेडा ई जे मुंखे आहे उमेद अञा ॥4॥113॥

रंग रावे सब्ज किनारियां, कीहा लायां रांझो रमजान ॥थल॥
असल आहोस इहो राया, वेखन सैल सियालीं आया,
थी चाक तहिं कटियां चारडियाँ ॥1॥
किथां वैरागी भस्मी लाईन्दा डुखां सबलां दे धाड़ चखीन्दा,
वाह वंझली दरद तंवारिड़या ॥2॥
माही मेंडे सर दा साई, झंग तंहिं तूं मैं घोल घुमाई,
खूह खेड़ियां दियां खवारड़िया ॥3॥
रंगपुर दे मैं राह न वेसां, दरियाखान आप निमेसां,
कीता नींहं नियाड़ियां ॥4॥114॥
वल वल नाल असाँडे इश्का, अखि वेखाए किनूं अड़ नाहे ॥थल॥
जबंहिं आकेडींदा डुखाली, ओ मस्त चले मंसूरी धाले।
पढह पढह हरफ अना अलहक वाली आख पीछे क्यों लड़नाही ॥1॥
जहाँ दे नाल तूं रखंदे दावे, उस आशिक आराम न आवे।
पट पट मास हडां तूं खावे, धन काती बिच धड़ नाही ॥2॥
जंहिं दे नाल रखे तूं सांगी, औतड़तार तराइबि लांधे।
कर बेदार लिखां वांगी, आप वेखाए क्यों तड़ नाही ॥3॥
दरियाखान इश्क असां वल आया, सो मैं चुम अखिन सर चाया।
नाजाण कीहा चेटक लाया, नाल जुल्फ दे फड़ नाही ॥4॥115॥

डूरिया डूथड़नि कीअं डूर, मिठा मारूअड़ा मुंहिंज मन वसन ॥थल॥
रातियां डींहां मन मुंहिंजे में, हियड़े रहनि हजूर।
धरियूं धूर रहियूं से थियूं डूर डिसनि ॥1॥
जीअरे जीउ जुदा जिन कीड़ो, बंधी मोतो हो मजकूर।
इहे बेली पाण बिञाई पोई पसनि ॥2॥

किस्मत कैद कैयई कएं काबो, सिक सबक पढह सूर।
इहे साई नागा तोहूं नीर पसनि ॥3॥
पेर मनां..... जे हथउं पीअड़ो, प्यालो मंझऊं पूर।
जांकी जीअं पोए तां, जाके जशन ॥4॥
मंझी अई माग मलीर मउं थीअड़ो, सभी संवरो नूर।
पोए साई दरियाखान, हिअड़े थिया हुब हुस्न ॥5॥116॥

वहियां वसि वरी ईंदमिलोए लड़े, पखासणु पखनि उडाकन उडी ॥थल॥
खवाब खयाल सदा मारूअड़ा मन में, पल पल पूर पवनि तरहें तरहें तन में।
आयमि खबर खरी, नींदम सांग सडी ॥1॥
डेह डुराहीं डोथी डूर रहिया, कढ बंदियाणी बंद मूं उझिड़ो अलाहा।
पहुं मंझ परी, कंदा गदु गदी ॥2॥
कैदनि कढि उमर वरी पंहिंजे वतन वञा, मेड़ाई जी मुंखे आहे उमेद अञां।
वञां वतन वरी, माड़युनि महल छड़े ॥3॥
दरियाखान डोरे डिसां उहे सांग सगा, खूह खुंडुनि जा खाइन वरसे पेरुन पका।
सोई सिंङर सरी, खायां तिन जे तड़े ॥4॥117॥

आउ मारुनि रे हित मांदी, उहे ईंदमि शाल ईंदा ॥थल॥
आउं मारुनि संघारनि सां, हेकर थियां हेकांदी। इहे नींदमि शाल नींदां ॥1॥
सवें गूंदर गदी थिया, वेल्ह न आहियां कंहिं वांदी, इहे वेदंमि शाल वेंदा ॥1॥
आणे उमरकोट में, कएन बंदियाणी बांदी। इहे जीअंदइ शाल जीअंदा ॥3॥
दरियाखान खबर हथ खूह जी, इन असां ही आंदी। इहे डीन्दइ शाल डींदा ॥4॥118॥

रांझो जोगी असाँ नूं भावंदा, भावंदा भावंदा वेस मटावंदा ॥थल॥
अहीं जोगी वेखो सहियां कींहा वेख बनाया।
तखत हजारे छोड़के सहासो झंग पुछावंदा आया। चाक सदावंदा वे ॥1॥
कनिन कुंडल मुख बिच मुरली, अंग भभूत मलीन्दा।
गल बिच कगनी दस्त पहूड़ी, दोनही दरद दुखींदा। वैंसी बजावंदा वे ॥2॥
बडे वेले पार दरिया हो, माही मंझियां चारी।
हुल पिया बिच कल सियालीं, बंझिली दे धधकारी। चेटक लावंदा वे ॥3॥
विरह वैरागी रहनी दे वेखो, कीता जोर पसारा।
रंगपुर दे बिच आकर सहियां, इश्क दा चा वेद वारा। रमजां लावंदा वे ॥4॥
दरियाखान दरद फिराक माही दे, ढूंढिया झंगल बेले।
राज सियासी वारण वारी, माही मौलाई मेले। अंङण सुहावंदा वे ॥5॥119॥

डोरे डोरे डिसां शाल डोथीड़ा, डोथीड़ा मिठा मारूअड़ा ॥थल॥
उमर इन्हनि रे आहियां उदास, तन मारूनि रे दिलड़ी प्यासी।
वरी वञी शाल वतन वसां ॥1॥
किस्मत कैद डाढा बंद वारी, नैणनि नीर वहन था जारी।
वन उमर तंहिंजो चाह चसां ॥2॥
उकंड अबाणनि हिंयरे होरी, सवें गूंदर झबा तिन झोरी।
उम उन्हनि जे शाल राज रसां ॥3॥
दरियाखान मारूनि रे दिल मांदी, हेकर उन गदि थिया हेकांदी।
साण सिकी लहियां हियांउ कसां ॥4॥120॥

नाजां दे नाल साडी दिल लुटी है ॥थल॥
जोरां जोर सुनकर हमले, काल नैणा दे कुटी है ॥1॥
दीदां दाम जुल्फ घत फाही, घरां सेती घुटी है ॥2॥
गई दिल कडां नहीं बलंदी, मुशकण सेती मुठी है ॥3॥
हिक दिल आहे चा दस्त कीतोई, अनिर खयालो छुटी है ॥4॥
दरियाखान दस्त कमान कर, आबरू तरकश मड़गां छुटी है ॥5॥121॥
यार रांझन दियां झुकानी सहियां, ढूंढ लहिसां वञ झंगल बेले ॥थल॥
मिलसिया लीन मारूनि मातियां, तइनीं तहमत डीन्दी ततियां।
ठला लाहन टोकां सुण रहियां, इश्क न पुछन्दा वक्त न वेले ॥1॥
सावण माह मजीठयां लइयां, मां माही दे पखे पइया।
चाक डीदां दिल चुकां नीमियां, रंग मुंहिंजे दे कान्ह कहले ॥2॥
भेणा भाई हटि के माई, यार बना कोई हाल न भाई।
झंग दे लिया लोकां क्यों खहयां, रूह रांझन डे डीन्दा रेले ॥3॥
दरियाखान राह रांण्न दे बसिया, पीछोते वल न पैसां।
बुठ घतां वियां थोका कलशइयां, दम दम नाल झाही दे मिले ॥4॥122॥
दिल खुद खाना है हम खाना,
जे तू अपना आप सिंञाणीं ॥थल॥
जोई जाहर सोई बातन, बेशक यार यखां।
जे तूं आप विचऊं ना आणीं ॥1॥
जो तू आशिक सोई माशुक, ये ओ समझाना।
जे तूं जाण अहीं अहीं कोन जाणीं ॥2॥
कलाशय महीत हिम बिच, ही सभ सूरत हिक मानी।
बिच जलवा जोत समाणीं ॥3॥

दरियाखान मिड़ण महाल होया, हण ही साहब दाना बीना।
यार वेदई वेल्ह विहाणीं ॥4॥123॥

इश्क घती धूमधाम सहियां, जाहिर मुफ्त मलाम सहियां।
रंगपुर वे शह शोर मचावे, बेड़ही असां डे आवे सहियां ॥थल॥
जहिं कूं इश्क दुखालें डींदा, कुफर इस्लाम डूंझा कूँ नींदा।
करके हुकम मकाम सहियां, तिलक मथे गल जणियो पावै।
केही केही वेख बनावै ॥1॥
अवलि इश्क दी ऐहि निशानी, मारे नगारे सिर सुलतानी।
मस्तो मस्त मदाम सहीयां, अना अलहक वाले वोल वोलावे।
सुली ते मंसूर चढ़ावे ॥2॥
इश्क इश्कां दे सिर आया, कर मंजूर इंखान चमचाया।
हरद विझां भर हाम सहीयां, कर सभ दूर दोई दे दावे।
यार बिना कुछ और न भावै ॥3॥
दरियाखान इश्क जिन्हां कुं रसती, बेखुद मस्त रहनि मठ मस्ती।
क्या जाणे कोइ आम सहीया, जहिं सिर आवे कदम उठावे।
दम दम खुं जिगर दा खावै ॥4॥124॥
पिरीं मुंहिंजे मारुअड़नि खेड़े, दिल दरद जूं दांहूं।
दिल दरद जूं दांहूं बंधी मन अचनि ओड़ाहूं ॥थल॥
थियासी बंदियाणी बंदमें, बिचूं सभ वयूं वाहूं।
हिक कैद कड़ा बियूं कोठियूं, बई हथ बधा बाहूं ॥1॥
हुत विसारे वेही रहिया, केही डोह गुनाहूं।
सुणनि मान सडिड़ा ही, आजिज जूं आहूँ ॥2॥
सरितियूं संघारनि खूं, वञी पियसि पराहूं।
ईंदा नींदमि जेडियूं, इहे काह करे काहूं ॥3॥
जुल्म फेनफन ते, उमर छो करी छाहूं।
सांग अबाणनि सूमिरा, अल्ला कंदो ओराहूँ ॥4॥
अदियूं अबाणनि जा, नित रंज पुछां राहूं।
दरियाखान मुल्क मलीर डे, क्युँ मींहं मंडारयूँ ॥5॥125॥
इश्क माही दे सांउं निंदियां, तारियां वेवसि थीइयां सहियां तुझ जारियां ॥थल॥
तेडे कीते मैं तां खड़ी जो अडेगां, नैण वहनि नित रिमझिम नारियां ॥1॥
दरद बिना दम कोई नहीं वांदा, बार आया सर विरह दा बारियां ॥2॥
पुछंदियां बांभण जोशी कांगा, उडींदियां आवस वेडही सहियां मैं वारण वारियां ॥3॥

दरियाखान दरद तुसाड़े, बहुं दर मांदियां, मखड़ा बखावें सांउं महबत मारियां ॥4॥126॥
अंग अंग मूं बेरंग बोले, लगी इश्क अगनि तिन चोले ॥थल॥
वनहंन अकरब रब फरमाया, अंदर बाहर यार समाया। जे को अखियां खोले ॥1॥
वफी अफुसी कुम कौल करानो, है फरमोदा फरकानो। याद दूर नहीं है ओले ॥2॥
फांमा तोलो इश्क इशारा, जिथ किथ तंहिं दा नूर नजारा। भाज पई सभ भूले ॥3॥
दरियाखान आप बिचोउं न आणी, गुलाम जाणी है ऐन अली दिल कोले ॥4॥127॥
रंग लगड़ा गोड़हा रंग लगड़ा वे यार, इश्क दी आग लगी तन साडी ॥थल॥
नहीं कसूबा नहीं हलारी, हर जाए हुस्न सुहिणे दा हजारी।
अंग लगड़ा साडा अंग लगड़ा वे यार, विरह बहार जगी तन साडी ॥1॥
हथऊं हादी दे जाम पीतोसी, कहिनू केफ कलाल डितोसी।
भव झगड़ा साडा भव झगड़ा वे यार, लादी सेफ वगे तन साड़ी ॥2॥
रमज रांझो दी साडी रेही, गाल्ह करां मैं तंहिं दी केही।
नींहं निकड़ा साडा नींहं निकड़ा वे यार, खेड़ियां दी बास भगी तिन साडी ॥3॥
रमज अवलि कीनूं रांझो दी थइयां, दरियाखान पखे तंहिं डींहं पइयां।
रोला रगड़ा लथा झेड़ा झगड़ा वे यार, तलवार तगे तन साडी ॥4॥128॥
आज मेरे नंदा बांसुरी बजाई, बांसुरी बजाई अच्छी धुन लाई ॥थल॥
दिल में दीदार हो विरह को बहार हो, सभ सांति आई ॥1॥
थी तंहिं है हालत है, गावत है खेलत है, चोखी चट चखाई ॥2॥
दरियाखान जब यार मिलया, तन मन उजवाळ थिया, हउमैं भूल जाई ॥3॥129॥

तखत हजारे दा जोगी, जादू लाया मैनूं ॥थल॥
बेखुदी दा बाब चढिहियोसी, होया हाल विसारी दा। साई समझाया मैनूं ॥1॥
तन मन अंदर होया बहारियां, खिलिया गुल हजारे दा। अल्ला चा बखाया मैनूं ॥2॥
कनिन कुंडल मुख बिच मुरली, गलड़ा नींहं नजारा। येही जोगी कहाया मैनूं ॥3॥
दरियाखान दम दम दी नार असांडि, लगड़ा प्रेम पसारे दा। सीने आउ समाया अैनूं ॥4॥130॥

तू त पाए वनी दर जाती, दिस पंहिंजो तूं पाण नजारो ॥थल॥
मुंह डिसी तूं मथिन न आशिक अथी मंझललिमा हयाती।
साई सिर सिकंदरी सारों ॥1॥
पीर मनां जो अमुरू इहो थी, करला वसंदी हथ काती।
करमाजो सी ते मारो ॥2॥
अल्ला हो हो अल्ला हो हक, इहा मार जरब दिल जाती।
चौतरफ हुस्न हुबकारो ॥3॥
दरियाखान जाण तू जाण इन्हींअ खे, पाण ही इश्क हिंदवा शबाती।
इथे वहिदत जो बणजारो ॥4॥131॥

छोड़सि तख्त हजार, रांझन चाक सडीन्दा ॥थल॥
माहीं मेडे दी सही सूरत, जादू कीता मोहन मूरत।
मंझवई दा चरवीदार, भुतड़े भाण वसींदा ॥1॥
तख्त हजारे दा मालिक आया, तंहिं वल कहिड़ा बेख बनाया।
आया वतन विसार, रंगपुर भाण भाणींदा ॥2॥
अखियाँ माहीं दियां गोहर शराबी, भगवे कपड़े सूंहं गुलाबी।
कर जोगियाँ दा जिंसार, दर दर बंझली बजंदा ॥3॥
दरद फिराक दे माहीं वल मारी, हीर जटी नूं कौन विचारे।
कीता नींहं निखार, सीने आण समींदा ॥4॥
दरियाखान मुल्क माही वेर थइयां, रोज असल किनूं पखे पइया।
थइयां शुक्रगुजार, कादर करम करींदा ॥5॥132॥

जहां रमज रांझो दिल नार लगी, से हाल किनूं बेहाल थियां ॥थल॥
अलसत आवाज जड़ा कन पियोसी, तालो... दा कोल कयोसी।
इहा बाह विरह तन भड़क लगी, मैं तां पखे यारो तहिं दींहं पइयां ॥1॥
कीहा ख्याल पियोई इथां आवण दा, साई बार विरहसर चावण दा।
आलक छिप कीतोई ठाह ठगी, साई इश्क दा नगारा मार आइया ॥2॥
ये ही जोगी जादूगर जादू कीता, तिथां झंग सियालीन दा होश नीता।
जडां बंझले दरद फिराक वगी, तड़ां रंगपुर दियां सभ गाल्हिन गइयां ॥3॥
दरियाखान सभो सुजान है, इहो फरमोदा फरकान है।
मैं तां मलमल मौलाई दे तलब तगी, साई ठाह कंहिं बी ठाहियां ॥4॥133॥
वह वाह बाजीगर बाजी दे बिच, कीहा हुनुर हलींदे हो ॥थल॥
इथ घूंघट दे बिच आइके सुहिणा, पतलियाँ नूं दौडींदे हो।
आपे बोले आपे चोले, कलोकां क्यों भरींदे हो ॥1॥
वेफकत फी मन रूही सागी, फूक सुणींदे हो।
बाह बिरह तन भड़क लगी, फूक आराह मचींदे हो ॥2॥
जहाँ बाजी कूं बाजी कर जाता, तहाँ मार जीवींदे हो।
अवलि मार जीवाए रूडा है, पीछे आप बेखींदे हो ॥3॥
दरियाखान कूँ तूँ सुहिणा साई, अपना डुख डसीन्दे हो।
अपणा डुख डिसां कर आहे, पीछे तंहिं दे क्यों न करींदे हो ॥4॥134॥
समै जी त सुहाग, नूर यूँ केई नवाजियूँ ॥थल॥
जिन कुम कढिया थे कोणियूं, तिन जे भरूडिनो अची भाग।
उहे खाइन चांवर चूरमां जिन जो, लोढह मछी मो लाग ॥1॥

थिया अंकामी तिनखे, केई बागी पाइ ऐं बाग।
मेई अतऊँ माफी थिया, डुखिया डींहं डुहाग ॥2॥
जिते हुई छट जी, उते अत्र थिया उजाग।
उते मेईं वही महिलनि में, कनि रस रीझूं ऐं राग ॥3॥
जाम तमाची तिन जी, हली मुंह आयो माग।
दरियाखान तडहिं तिन जा, सवला थिया सुभाग ॥4॥135॥
गीड़हा रंग लाया नीवे पार, उते भला शह वे रावियां दा रांझा ॥थल॥
विच हजारे हल जंहिंदा, सो शह अल्ला मिलाया ॥1॥
मैं रांझन दी रांझन मेड़ा, खेला घोल घुमाया।
इश्क पनघोड़े दे विच साडा, नींहं निकाह पढहाया ॥2॥
विच सियालिन दे सुणभण सहियां, आन के नींहं नवाया ॥3॥
दरियाखान रूह रहिया शह रांझा, सीने विच समाया ॥4॥136॥
रमज लगी दिल रांझो यार, आतण इश्क विसारी कार ॥थल॥
पोणी चले पई विच गले, संयम सलूक सहियां दे सलहे।
झल न माजो रहिसां झले, यार वेसां तर तांघा तार ॥1॥
भेण भरजाई हटिक कमाई कोल, न काई बी हमसाई।
जा सर आई सामईं चाईं, खूह खेड़ियां दे हीरे हार ॥2॥
वेखो चाल चनाह दियां चालीं, मिल सियालीन डियूं गालिन।
नाल तहां मैं केवीं चालीं, भज परे थीसां बेजार ॥3॥
रांझो मेडा सर दा साई, झंग तंहिं तू घोल घुमाईं।
जए अंदर तंहिं दियां जाईं, बेबस भया वे अख्तियार ॥4॥
दरियाखान दिलबर दिल वटि गोलीं, राहां दे निच रूहन रोलीं।
भूल न कोई वियावत भूलीं, विचंह इशाकां थे इजहार ॥5॥137॥

बेअख्तियार कीतई साउं सुणवे सुहिणा साई ॥थल॥
अवलिआके नाल अड़ायई, दीदां दे बिच दीदां लायईं।
लगड़िया चश्मा जो चार, कर कर फंद फंद फसायईं ॥1॥
विरह तेड़ेदियां नव नव बातियां, तन मेडे बिच तेडियां तातियां।
कीड़ महबर करार कीहा, कीहा इश्क अदाईं ॥2॥
जे तूं आवें साडी वेड़ही घोल, घतां सभ डुखी भेड़ी।
सहियां विच सिंगार, अतर मुश्क मिलाई ॥3॥
दरियाखान दिलबर दे मैं दामन लगिया, गैर ख्याल वे मैं ठाहन ठगियां।

पेई मैं तंहिं दे पनार, केही पहु पचाई ॥4॥138॥

हित हो तिन रे ही हाल थियो, पध पारिहनि डे मूंत पियो ॥थल॥
गोली नींदा नेई गड़ींदा, भेन रु मूं ते भाल थियो ॥1॥
हीउ सर डींदसि कीन छड़ींदसी, मरन मूं त महाल थियो ॥2॥
जी जां तन जतन सां मुंखे, विरह मंझि विसाल थियो ॥3॥
भेनरू हिन भम्भोर में मुंखे, जण हित जंजाल थियो ॥4॥
दरियाखान इश्क अली जे मुंखे, नजर नींहं निहाल कयो ॥5॥139॥

हादी हमेशा दिल बिच वसंदा, नाल आखिन वे मैं डिठा ॥थल॥
मन कान फमान हलामा, डिस हादी दा चिठा ॥1॥
तखत अकरब आप फरमाइस, डूझा कीतम फिटा ॥2॥
फांमा तोलो इश्क इशारा, जिथ किथ मोहन मिठा ॥3॥
दरियाखान खेड़ियां दे मैं खेहन लीसा, रांझो वेढही विठा ॥4॥140॥

मारूअड़नि जे मिलण जो,
उमर आसिरो मूं थियो, कुछिज कीन बिचो ॥थल॥
सांगी वेरम सांग ते, मूं को डस डियो ॥1॥
उठा नींहं मलीर ते, पुसी पट पियो ॥2॥
आणे उमरकोट में, किनऊ कैद कयो ॥3॥
संधारनि जे सूमिटा, मुंखो नींहं नयो ॥4॥
दरियाखान आहर उन जी, पखनि ते पियो ॥5॥141॥

हो तिन धारां हित ड़े जेड़ियूं बी कंहिं हाल सुणायां ॥थल॥
सरितियूं सावण मींहं जां, नैन वसनि था नित रोयो राह पुछायां ॥1॥
कान कशाला केच जा, तरिसन नाहे तित, काह जबल काहियां ॥2॥
लहंदसि लोचे लकियूं आहे जोअ जतन जी जित कमतर नाउ को ठायां ॥3॥
दरियाखान धारी जोरी धणीं, कोन मुई जो मिट संड न को बियो सहियाँ ॥4॥142॥

विरह दियां बंदियां वो मैं सरआयां, संघरे सहियां रांझे यार दियां मैं चमचायां ॥थल॥
इश्क अंदर बिच आउ समाणा, लिंव लिंव दे विच कीतस थाणा।
वेखो चश्मा दी चाल, जंहिं रमजान लाया ॥1॥
दरद विरह दिल वहुं दर मांदी, सेज सुतियां नैणां निंड न आंदी।
बांभण पुछां जोशी यारदियां, फालां मैं पायां ॥2॥
नही मैं मिटा दे चिन न छिनाई, मैं मन लगड़ा इश्का इलाही।

लिखई रूह अजल दे इह कलमा जो बाध्यां ॥3॥
मैं कमली कम कोई न जाणा, सोज सुहिणी दा साह सभाणा।
दरद दरूनी माहीं यार दियां, भड़कनि बाध्यां ॥4॥
दरियाखान दिलबर दिल लधोसी, डस हादी दा हासिल थियोसी।
खह खोड़ियां दियां असांवल विसरबां वाया ॥5॥143॥
जेही भावें तेही तेडे यार प्यार लसाए ॥थल॥
तो बाझूं नहीं मरंदे नहीं जींदे, आस तुसांडी प्यास नहीं जी।
मैं विच मैं विच नहीं मेडी, तेडियां त हरजाए जाईं ॥1॥
अवगुण हारी दातुं सभ गुण लाइक,
मैं कमली दा दाना फेल दा फाइक।
जोड़िनसी तैं जेडी, भली दियां लख भलाई ॥2॥
चोल न साडी सुहिणा चाक डुखां दी, मरन रकीब तथियउं साई सुखां
द ।
करीं न असां नाल एडी मैं पांदु गिची गल चाईं ॥3॥
दरियाखान दिलबर दे मैं दम दे बर दी, धनड़ियां बाझूं असाडे साहन सरंदी।
पुनी उमेद असां डे केतियां नींहं निरवाहीं ॥4॥144॥

तन पंहवारनि जे पासें, थिया वसन जा व सकारा ॥थल॥
बसि मींहं मलीर इते, सभी बण टिण बधड़ा वासी।
हित भौरांनि जा भुणकारा ॥1॥
यूं जेडियूं मलीर में, रांदियूं कनिं थियूं रासी।
हित गुन गुन तेड़ियनि गारा ॥2॥
आणिनि डुथ डिहाड़ियूँ डोरे, ख्याल मंझूं कंहीं खासी।
हित पीरूं कनि पसारा ॥3॥
पुसी पट पची पिया, कनि गाजारियूँ गासी।
हित चड़िन जाचो नगारा ॥4॥
दरियाखान मांदी मारूई, हित बेठी बासियूं बासे।
को करम कजो कलतारा ॥5॥145॥
उथी कत कडेई धर को ध्यान,
आतण ओरे चरखो चोरे, साझर धरिज सामान ॥थल॥
नागह नींदइ कीन छड़ींदइ, भाग उन्हीअ में आहीं महमान ॥1॥
घर जा भाती थींदइ साथी, हेकल वेंदइ ॥2॥
....॥3॥146॥

साण सूरनि मुंहिंजे आहे ओर, होत पुंहलंइ मूं विरह बसाया ॥थल॥
डूंगर डोरण मुंखे आया, तरहें तरहें पूर पराया।
दम दम होतनि जा दिल हूर, जए अंदर में जोश जगाया ॥1॥
वउड़े वर खे लहंदियसी जाए, कान कहली मूंसा सतितियूं काई।
औखा आहिनि पंध अघोर, पथर पब दा इश्क उठाया ॥2॥
डेरनि मूंसां कई डाढाई, हई न थीड़मि सूरनि भाई।
जे कलि हउड़ा चोर चोर, डाढा डोह दुखीअ खे लाया ॥3॥
दरियाखान दरद जंहिं दिल आहे, लहंदा लोक लागापा लाहे।
चाम आरयाणी कर को गोर, डाढा बार बार विरह सर आया ॥4॥147॥

वेखो सहेलिया सहियां, मैं रांझो थी दी थइया ॥थल॥
लिखया रोज अवलि किनूं होया, वह वाह कलमां वहियां ॥1॥
वेसां मुलक माही दे बेले, तिर तिर निंदियां नईयां ॥2॥
पार दरिया हूँ झुक रांझे दे, सौ सौ सोजा थईआं ॥3॥
ताना तइमत सर ते चातम, मारण आया मइयां ॥4॥
दरियाखान पुखे माही दे पइयां, विरह बरातां ढइयां ॥5॥148॥

सिंधी बैत दास्तां

नालो संदसि नांह में बढां जा वेही।
दरियाखान इन अजब जी गाल्ह करियां केही।
डिठम से डेही जे पसण खूं पासे हुवा ॥1॥
पसण खूं पासे हुवा से मूं थीअड़ा सेन।
रातियूं डींहां तिन जा थियम विर वुहिन वेन।
बिन खुशियूं बिन खइन मुंहिंजो जीउ जुखी तिन जो गईन ॥2॥
नालो संदसि नांह में भी नमूनो।
नफी ऐं इशबात खूं अञा पंधु ऊन्हों ॥
दरियाखान आहे अहद खूं जो बखीसर झूनो।
हि कात उहो कूहिनो जंहिं आशिक बढे अधकया ॥3॥
आशिक बढ़िजी अध थियां से वजूदूअनि विया।
तिहां पोइ पिया जिथ निहायत नाह का ॥4॥
नालो संदसि नांह में पसण पसारो।

अहुरू इशारो हीउ पिण आहे इन जो ॥5॥
नालो संदसि नांह में पसण कर पासे।
वहिदत सीं वासो रखि जि सिर संदाण ते ॥6॥
रखी सिर संदान ते खूरे मंझि खजिज।
वाजट वडाइण जा मथे सिर सुणीजि ॥
दरियाखान आग इश्क जी बारन मंझि बरिजि।
तिहां पोइ पिहिज गाल्ह परियां जे गुझ जी ॥7॥
बिना नाले सुपिरीं आए नालो ठाहो ठो।
जेकी अव्हां डिठो सा सभ सारह सिफत जी ॥8॥
बिना सूरत सूझ मूरत जा महबूब जी।
छडि नमूनो नाहं में खाहोड़ी थी खोज।
ही अखर छड़ि अबोझ, माना मंझ महीत थीउ ॥9॥
सूरत नाउ सिफत जो मूरत मिशल त को।
जेकी अव्हां डिठो सा तां मूरत सिफत जी ॥10॥
रे नुक्त नाहे सूझा सुपिंरी जी।
वहिमी अंग वजूद तूं लानसी छडि लाए।
दरियाखान अखर कड़ाही रहनी मतहं महबूब जो ॥11॥
दरियाखान पसां पाण में जा संधो पंहो रे पेट।
त नका सूरत ससुई नको डूगर डेर।
हिन भोरहीअ संदो भेर सिनो रोई नींहं थियो ॥12॥
डिसन रोई डिसनि सूरत सुपिरीं जी।
अखियूं रत रुअनि उञूं नींहं अजब में ॥13॥
जेकी डिठमि काल्ह अज न उन्हीअ विसिहां।
नको इस्तकबाल नका माजी मंञियां ॥14॥
नका माजी मंञिया नका सुबह सार।
दरियाखान पिर पचार, नई मंझि नई थिए ॥15॥
नका जात सफात, नालो मथिसि नांह को।
दरियाखान परझां पाण में त नका वाई वात ॥
हिक अड़ी पियो कात, अगियो आहे इन जी ॥16॥
दरियाखान परलाउ जो जड़हिं कन पियो।
उजं तंहि अजब में बुधनि कीन बियो ॥
हमजी तित वियो, हींअड़ो तंहिं हैरत में ॥17॥
बीजल बोले कीन, तंदू तवारीनि।

मूंखे थियूं मारिनि, मामूं मंङणहार जू ॥18॥
पधर पियों जे, आहे वर तंहिं खे बेझिड़ो।
कांध न पासे से जे हुयूं हिजबनि में ॥19॥
दरियाखान कहिं सीं कान, हुई निमाणई निसबत।
पाणा पासे थी डिसे जोए मिड़ेई जित।
पुंहुं साण पहात, हो अंग अगेई लिखियो ॥20॥
गिली रताउ गोदिरियूं सुहिणी सूंह संदां।
दरियाखान आसण इन जा डूरियां कीन डिसां ॥
ववडींदी वतां दिल न दिलबर हथ में ॥21॥
दिल न दिलबर हथ में बेईटोल बिया।
तिहां पोए पिया, ओला बिना तंहिं इश्क जा ॥22॥
ओला बिना तंहिं इश्क जा अन्दर में आहिनी।
दरियाखान लोसी लोह जी खोरी में खाईति ॥
आग न उझाईं बारन था बीणी कयोट ॥23॥
अल्ला जे अडाठिया मुठियासीं मरदूद।
दरियाखान विसही वसिफ खे वाकया मंझि वजूद ॥
बिना सिर सजूद अञा अगालहूं थियो ॥24॥
सोई अखर संसई सोई अखर सूर।
माजीं जो मन कूर थियो पंहुं ऊरलो पधिरो ॥25॥
सोई अखर ससुई सोई अखर सिक।
दरियाखान परिझां पाण में त आहे हिकोई हिक।
लोकां करे लिक थियो पंहुं ओही पधिरो ॥26॥
सो वेरी सो वाहिरो सो डूंगर सो दुख।
डुखनि मंझूं सिख थियो पंहुं ओई पधिरो ॥27॥
सो वेरी सो वाहिरो सो डूंगर सो डेर।
कुपीरीअ जो पीर, थियो पंहुं ओली पधिरो ॥28॥
नको भाग मिटीअ जो, नको देस न डिस।
बिना डिसण डिस जो, डिसीं डिसण खे ॥29॥
जएं कएं डिसनि अखियूं तएं तएं पिरीं डर।
दरियाखान अरनी सड़ियो सीना तोर।
सूरत में तां सूर माना में मखफी होई ॥30॥
जएं जएं विसारिया, तएं तएं पिरीं पधिरा।

दरियाखान अहदो जो अगे हो सो सभोई सारियां।
वेठी निहारियां आउ न जाणा गण खे ॥31॥

सिंधाी बैत लीला

आतण सभ अंदूह थियो रूनो लीलां रत।
दरियाखान कूड़िन केतिरियूं हार हणनि थियूं हथ।
हिण मणीअ संदी मत भेनर लख भुलायूं ॥1॥
आतण सभी अंदूह थियो, लीलां लुडियो हाण।
दरियाखान कूड़नि केतिरियूं मोहियूं मणीअ माण।
जाम चनेसर साण, हारी हार न मटियां ॥2॥
आतण सभ अदूंह थियो मिड़ियोई मातम।
हारी उन्हीअ हार ते जाण विञायो जाम ॥
दरियाखान कूड़िन केतिरियूं हाए हंयूं से हाम।
हिन मणीअ संदी माम लिखनि मंझूं कूलमी ॥3॥
हीअ न उहे अखियूं जे डिसनि उहे डेह।
संदए सो साड़ेह जिथ नांहं बिना बियो नांहं की ॥4॥
पाण विञाए पिर खो सा मांझी सरीर।
हो जे पिमां मंझि पसाह थी सो बातन समझ बहतर ॥
दरियाखान सिक समे जी कई अन्दर मंझि उकीर।
हो जे नाजर मंझि नजीर तंहिं खे डूरियां डूर कए ॥5॥
साई सूरत ससुई साई सूरत सूर।
छड़े सूरत साफ थी माइने में मंजूर ॥
दरियाखान डिस म डूर पंहु पसिजि पाण में ॥6॥
साई सूरत ससुई साई सूरत सिक।
वेहिज थी न वेसिलीं वहिदत विझी विख ॥
मरणा अगे जे मरीं हारी पसिजि हक।
दरियाखान डूंगर डुख आडो आजीबनि जे ॥7॥
साई सूरत ससुई साई सूरत डेर।
हारी हुअणि छटि यो नको बेरी वेर ॥
पसिजि पंहुं पेर नाए कंध कलूब में ॥8॥
साई सूरत ससुई साई सूरत जत।
वस वीचारई को नको मंझाई महबत ॥

दरियाखान पाड़ी पिर सीं निमाणी निस्बत।
हल साण हिमथ वेझी थी वणिकार खे ॥9॥
वहिदत संदई बेढह में कई जोगिन जूअ।
तित कयाउ तकाउ जिते हई न हुअ ॥
वञी उते प्यारो जिते हुअण सभ हजी वियो ॥10॥
हुअण सभ हजी वियो थिया हैरत में हैरान।
भाजाग अलबसिरो मातंह मोटी आखे कयो अहिसान।
दरियाखान रे सुब्हान कीन डिठाउ की आयो ॥11॥

सिंधी बैत सुहिणी

सा निभर साहिड़ जा से मंझि वजूद वजनि वजनि।
चिण चिण तिन चड़िन जी विधो रूह रगुनि ॥
तौकल तरहो जिन खे से सिर जो सांग न कनि।
दरियाखान दौर दिरयाह जो घड़ो कीन खणनि।
जे मेहर मेहर कनि, से बडुन्दियूं बार में ॥1॥
सांभर जे साहिड़ जा से मंझि सरीर सुरिन।
वाजट कन वजूद में बाहर कीन बुरत।
अचो सूर चुरिन नको साहिड़ सुहिणी ॥2॥
हिक चोंगारूँ चड़िन जूं बिया सुमहन न दियनि सूर।
दरियाखान माम मेहार जी कई चोटीअ ताए चूर ॥
दिलो कयाउ दूर वाहिड़ तंहिखे विख थियो ॥3॥
के बेला के बैट के वाहिड़ के कंधियूं।
नको दादु दरियाह खे लस वहे थो ठेट ॥
रे वसीले डेठ थींदी मूं मेहार सां ॥4॥
सांभड़ जे साहिड़ जा बेले भासदा बुरनि।
उहे वहनि कीन वथाण में नकी ठाह धुरनि ॥
अचो सुर चरनि मेहियूं तंहिं मेहार जू ॥5॥
नको तरहो तार में नका सेणह साण।
मेहर जंदि खे मन में सदा घोरियो घोरे पाण।
तिन सन्धीअ कान्हे हाण, पतण कीन पुछन्दियूं ॥6॥
नको तरहो तार में घड़ो कीन खणे।
दरियाखान दौर दरियाह जो डिसी कीन डरे।

सा बिचूं कीन वरे मेहर जहिं खे मन में ॥7॥
नको तरहो तार में नको कपर कान्ह।
जे मरां त मान थिए मिरूं खाइनिं माल।
कहिड़ी करिया दांह साहिड़ तरहो साण मूं ॥8॥

सिंधाी बैत जोग

डेई जफा जुहुद जुसी खे थाला होती लुछनि।
सिर डेई सरहा थिया सची सिक सचिन।
अंदर औधो तिन जे था दिल में दरद दुखनि।
उहे परवाना पचनि दूंहं जे धुंधकार में ॥1॥
दूंहं जे धुंधकार में था सुमिरणियूं सूरिन।
सिंङियूं सामी सील जूं था चित अंदर चोरिन ॥
बिझी मुंहुं मूणनि में अंधो कंधु ओरिन।
दरियाखान ख्याल खुदीअ जा कलब मूं कोरिन ॥
जे डील अंदर डोरिनि से वैरागी विसाल थिया ॥2॥
वैरागी विसाल थी विरह मंझि विया।
बानू विदेही थिया से पाणूं परे पिया ॥
तिन सभई ख्याल खंयां खुदीअ जा जान तूं ॥3॥
सामी सूरनि साम्हा था आवेसी अचनि।
गोर सां गडिजी गोदड़िया ऊन्ही रंद रमनि ॥
पाण विञाए पिर लई था जुठ जसी सां कनि।
मोतो मंझि महीत थिया से मोटी कीन मरनि ॥
दरियाखान आग इश्क जी था बारण मंझि वरनि।
बियूं डेईं सभ बिन बञी नांगा गडिया नाथ खे ॥4॥
नांगा गड़िया नाथ खे पाणूं परे थिया।
तिन जोगिन जोग जुहार जा वहम सभ विया ॥
खुदी खाइ खेह थिया से मिड़न कीन मया।
तिन सदा सुख थिया जिन जीअरे जीउ जुदा कयो ॥5॥
जीअरे जीउ जुदा करे लखनि लाए लुछनि।
ओरण आथनि पाण में कंहिं सां कीन कुछनि ॥6॥
पाणूं जे परवाह थिया, से कुस कियो कीन कुसनि।
उहे पूरब कोह पुछनि, जे नांगा नींहं नवाजिया ॥7॥

नांगा नींहं नवाजिया थिया सन्मुख संनासी।
तिन में जिन तीरथ कया से कोह पुछनि कासी ॥
तकिया छड़े तमह जा थिया वहदत जा वासी।
दरियाखान संग नामूस खूं पिया परे प्यासी ॥
उहे आबद अविनासी वञी अलख सां अलख थिया ॥7॥
अलख सां अलख थिया साफ सफा सामी।
पची परावा तिन जाँ खोह थिया खामी ॥
माना मांझी महीत थिया अखर छडे आमी।
तिन जा वहम वियां वहमी दरियाखान दोई जा समी ॥8॥
जोगी जे दिन जग जा माया खे मेड़ीनि।
पैसे कान पटियल था झट विझूं झोड़िन ॥
थोरीअ बीख बुखिया रसी फिका थी फिरिन।
पाण बियाई में बधा गुरु खे था बोड़िन ॥
खेड़ साई खेड़िन जंहिजो सलो साओ ई न थिए ॥9॥
जोगी जे दिन जग जा माया में मोड़हा।
को डे कही क्रोध जे था कंधु विंझनि कूड़ा ॥
दगाबाजी जा दिल में बंधन था बोड़ा।
छुटिड़ी लट लिबास जी जिथूं कनि झूड़ा ॥
दरियाखान घणेई खुवार थिया मथीअ ते मूड़ा।
कहनीअ जा कूड़ा छो थो कनि चोराइनि कापड़ी ॥10॥
कनि चोराइनि कापड़ी थीन थियनि पिनण लए पूरो।
कढेई कीन कलूब खुदीअ जो खूर।
कुते जएं काहे वञनि जित बन्धीन झोरो।
जे सामी होई सूरो कुर्बूं वञनि न का पड़े ॥11॥

भाई भोजाराम दाहिं लिखियल सलोक दूल्हदरियाखान जा

भोजा भजन प्रताब ते, मिट गया आल जंजाल।
सब्द सोहारा सतगुरु मिलिया, जिस दीया खोट निकाल ॥1॥
तोला मासा छाडिए, रती न राखो काण।
मार क्रोध अहंकार को, कबहुँ न लागे बाण ॥2॥

घनो खुट्यो खुटाया नाम का, खर्चन खूटत नाहिं
भवसागर के सीर मूं, पकड़ उतारै बांहि ॥3॥
तिल सां तलब न छाडई, जब लग पिंजर सास।
छड दे माया झूठ सँग, रूप वर्ण सभ नास ॥4॥
होणा हयाती डींहड़ा, हनी दो दिन चार।
मानख जनम अमोल है, मूरख चेत गँवार ॥5॥
मोहन माया मोहनी, बरथी जिनकी आस।
काया माया माल धन, ऊवां कौण निवास ॥6॥
मघ यम त्यागी संत है, आत्म त्यागि संसार।
समदतर तो खारा भया, कोइ कोइ बिरले लाल ॥7॥
लख पियो लाईं करोड़ियूं कुर्बान करीं।
वरणी अगम निगम जे लख सां थो गांई ॥8॥
पर जड़हिं पाण विंञाई तडहिं पैसनि परखी।
जंहिं पसियो परख सुखी थिया सेई।
अंदर बाहर उन्हनि खे दृष्ट हुवा पेई ॥
जनम ऐं मरण जी चिंता सभ बेई।
पाण में पेही डिठाऊं अलख अखिन सा ॥9॥
डिसी अलख अखिन सां थिया सदा शाहूकार।
काया माया माल जो छडियाऊ सभ जंजाल ॥10॥
दरियाखान दिलबर सां सदा रहनि निहाल।
तिन खे धर्मराय ऐं काल डूरहऊं था डंडवंत कनि ॥11॥

पंजाबी बैत

पार तंवारे यार मुंहिंजी बेदार इथां भड़की।
भड़की बाह विरह तिन अंदर जीवें दोजख भड़की ॥
फड़के दिल केती शह काबो नाल कुलफ दे फड़की।
दरियाखान खड़के हाल मेडा सुण गई खेड़ियां दी खड़के ॥1॥
छोड मस्त गीस मयखान कफर कबूल कीतोसी।
खाउ हराम हलालऊं तुझ साकी डस डितोसी ॥
शिरक शैतान थियोसी शामिल मैं कूं समझ सटयोसी ॥
दरियाखान जाहिर बातन अखैन हको हक डिठोसी ॥2॥

मां माही दे बेले वेसां झल न रहिसां झले।
कुट न मेंदी मायो मेडी मैं तिल त लाइसां तले ॥
रंगपुर राज सियालीन सारी मिलसी याही मिले।
देसां चीर चिनाह दे चालेरा चाक डहूं मैं चले ॥
दरियाखान रूह रहिया शह रांझा मैं पल न कड़हि पले ॥3॥
मां माही दी बेले वेसां सची सिक जंहिं दे।
मैं विच मैं न रह गई मेडे सभ आस पास उहिं वे ॥
लिंव लिंव विच लआऊं थियोसी तलब तार तंहिं दी।
दरियाखान रुह रहिया शह रांझा पीछे केही अणफन कंहि दे ॥4॥
मां माही दे बैल वेसां पेर चिनाह दे चारी।
रंगपुर राज सियासी दे विच नींहं मरींदा नकारी ॥
माही नाल महारे वर सां खुश थी चढहसां खारी।
दरियाखान रूह टहिया रहिया, शह रांझा रे जिंद वारत वारी ॥5॥
मां माही दे बेले वेसां तिर तिर निंदियां नाले।
घर सा घपड़ न डरसां तोड़े कड़कनि माह माह पाले।
रंगपुर राफ सियालीन कछी कल करीसां काले ॥
रोज मेणाक दे मलख असाडा लिखया लिखण वाले।
दरियाखान महबत नाल माही दे पालण वाला पाले ॥6॥
मां माही दे बेले वेसां बा गल घर न बहिसां।
मेहणी माही यार वाले मैं सभी सिर ते सहिसां।
चाक कीते दिल चाकु मेड़े मैं ठाह न बी कंहिं ठहाई ॥
बनहन अकरब इश्क थियोसी आप बिच आप समासां।
दरियाखान रूह रहिया शह रांझा लिवं लिवं दे बिच लहसां ॥7॥
मां माही दे बेले वेसां तिर तिर तंदियां नईयां।
भेणां भाई मस्ती माई मारण आवन भईयां ॥
हिका हीर त मैं भी नसी क्यो कर लोकां लईयां।
खेड़ियां पास मैं पास न डीसा पास माही दे पईयां ॥
माही नाल महारे वड सां रंगपुर कनूं रहियां।
जिस नंगरी माही यार न वसंदा सा नगरी सुंञ सहियां ॥
दरियाखान रूह रहिया शह रांझा विरह बरातां ढईयां ॥8॥
मां माही आउ तखत हजारों इथां चार सडाया।
इश्क पिंघूड़ीं वे विच साडा नींहं नकल पड़हाया ॥

छुटसि झंग वे झेड़े कनूं माही अलख मिलाया।
बाबल वाला बेले मैं तां चाक अखिन चमचाया ॥
दरियाखान रूह रहिया शह रांझा राहें बिच समाया ॥9॥
मैं मेले मेडा यार हसब कयोई जोड़ उहे दे होवां।
अवगुण हारी बारंदिया दे पंधी बैठी रोवां ॥
पतण सड मिलाह करींदी मैं नाल कनां वे सोवां।
दरियाखान यार उठारे बार मेडे तां मैं पुर चली लंघ पवां ॥10॥
इश्क माही वे आगम कीता विरह विरहा थीं लाईं।
बरसनि बूंदा नैन फुहारे हरदम मंझि रहाईं ॥
सावण माह मंञोठियां लइया पीली थधियां छाइयां।
घणहनि घिंडिया रंगनि मंझिया मूं मूं वे कट आहीं।
दरियाखान मैं नूं मील शह रांझा मैं कोयल हो गल लाईं ॥11॥
विरहीं वाज ते मैं हरगाबी मैं नूं चाए चंबा विच सटी।
तड़फां तड़फन सघां तोड़े विच फिटा वें फटी ॥
नित नित तआं ताजा खावे मास हडां तू पटी।
दरियाखान इश्क अकाब दे यारो जो मुंहुं पिया सो झटी ॥12॥
जे जाहिर वेखें बातन कूं त बातन जाहिर थीवे।
जीवें आ हरि वेखें अखियें त उलटा आप वेखे ॥
यूँ ई तालिब बिच तलब दे मैं कूं गम की जीवे।
यूँ ई दरियाखान विच अल्ला दे मोता थी फिर जीवे ॥13॥
जे हुई दिल जिअंदी जाणीं तां जाती असम सिञाणीं।
पास इंफास दे नाल हमेशा गुलमिं गुल को माणें ॥
विच तलमा तें आब हयाती ख्याल खाजरकर जाणें।
दरियाखान जाहिर बातन आशिक डे सर इश्क अघाणें ॥14॥
जे मैं दिल जीऊंदी जाणी तां हौदा हर्फ कमावे।
ये दम हो हयाती हरदम हौ बिच हौ समावे ॥
अन्दर हू ते बाहर हू दम हू दे नाल जियावे।
हौदे नाल महबत जंहिं दे मैं कुं मार हटावे ॥
दरियाखान डुंहां झाना दे बिच हौदा हर्फ निमावे ॥15॥
वहिदत छोड आदत बिच आंदी कलूब तंहाँ दे काली।
असल सट नकल विच पवंदी राहअंगथीर जाले ॥
दुनीयादीन बराबर जाणनि निहारिज खाम खयाली।

दरियाखान दम दम दे बिच आशिक डे सिर सहन कशाली ॥16॥
आदत छोड वहिदत विच पवंदी गाल्ह तहां दे केही।
खन फेंखूं असल दा आशिक डेह सिंञाणीं डेही ॥
रहनि आजाद हमेशा आशिक नांगे फिरंदी नेही।
दरियाखान डे सिर सहंदी आशिक जेही आहे तेही ॥17॥
जे दिल ते हिक वाहिरक लखें तहू दा थियो ई नजारा।
अवलि हो ते आखिर हौ हौदा जोर पसारा ॥
हुअ दे पाणी नाल हमेशा खिले गुल हजारा।
दरियाखान हौ विच गम होया हण आपहुँ करो विसारा ॥18॥
जुद थीवां तां जिंद वञी जे मुलां त मिलण न डींदा।
पंधु पवां तां अगियो सुंहां ओझड़ राह डसींदा ॥
सुंञ पवां वसती डिसी वञ गुम हूंदा।
दरियाखान इश्क उस्ताद असां नूं केही सबक सिखींदा ॥19॥
इश्क ईमान असां नुं आया छुटी जिंद जवाबूं।
कुफर विचूं इस्लाम थिया बेदार थियोसी खवाबूं ॥
सूरत मुरशिद भाना अल्ला खुलिया घुंडु नकाबूं।
दरियाखान आप कूं आप सही कर बी तुसी छोड़ किताबूं ॥20॥

सीहरफी जो गुम हो गई, का अंश

'ह' हे हैरान सांवुं सुहिणो यार कीता जो घर बार सांवुं भूल गए।
तेडी मार हुसन हीरा कीता छुटी फट फिरातां दे छल गए ॥
जो कोई आशिकां दे ठंडा करे सो राज रकीबां दे रूल गए।
हादी यार मिलिया मतलब थई ताड़ियां हात अंदर दे गल गए ॥
पखे पइयां दरियाखान यार दे घर घर होके हल गए ॥